मीरां और आण्डाळ का तुलनात्मक अध्ययन

[जबलपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डा० ना० सुन्दरम
प्राध्यापक, प्रेसिडेन्सी कालेज, मद्रास

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
मौलिचन्द्र शर्मा
सचिव
प्रथम शासी निकाय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण
११००
शक १८९२
सन् १९७१

●

मूल्य
३०.००

●

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

'मीरा और आण्डाळ का तुलनात्मक अध्ययन' भारत की सांस्कृतिक एकता, राष्ट्रीय एकता का निदर्शक ग्रन्थ है। उत्तर भारत की भक्त कवयित्री मीरांबाई तथा दक्षिण भारत के तमिळ प्रदेश की भक्त कवयित्री आण्डाळ दोनों भगवान् कृष्ण की रूपमाधुरी की उपासिका थी। दोनों की उपासना माधुर्य-भाव की रही, दोनो भगवान् कृष्ण की आराधना पतिभाव से करती थी और दोनो ने अपने आराध्य के विषय मे अपने हृदय के उद्गार गेय पदो द्वारा व्यक्त किए है।

प्रबुद्ध लेखक डॉ० ना० सुन्दरम् हिन्दी और तमिळ भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् तथा नीरक्षीर विवेक सम्पन्न आलोचक है। दस अध्यायो के इस ग्रन्थ में लेखक ने मीरां और आण्डाळ की रचनाओ का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए दोनो कवयित्रियों के भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर विवेचन किया है। भक्ति के सिद्धान्त-पक्ष और व्यावहारिक पक्ष का विवेचन, दोनों कवयित्रियो के गेयपदों की अप्रस्तुत-योजना, प्रतीक-योजना सगीत-योजना तथा सामाजिक परिवेश का विवेचन वैदुष्य-पूर्ण ढग से किया गया है।

हमे विश्वास है कि इस विघटनाकारी युग मे यह ग्रथ भाषा-विवाद, भौगोलिक अलगाव को दूर कर भावात्मक एकता स्थापित करने मे समर्थ होगा और हिन्दी-भाषी एव तमिळभाषी पाठकों को समान लाभ प्रदान करेगा।

मौलिचन्द्र शर्मा
सचिव
प्रथम शासी निकाय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

कुछ शब्द

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में मीरां एवं आण्डाळ के पदों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। यद्यपि मीरा एवं आण्डाळ दोनो के आविर्भाव काल मे पर्याप्त अन्तर है, (मीरा का समय १४ वी शताब्दी तथा आण्डाळ का ८ वी शताब्दी है) तथापि दोनो के पदो मे अद्भुत साम्य है। इस अधिनिबध मे शोधकर्ता ने दोनो के धार्मिक विचारो का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह अनुभव किया है कि इनकी आधार शिला विशिष्टाद्वैतवादी सिद्धान्त है। दोनों के पदो में माधुर्य भक्ति का ही वैशिष्ट्य है। एक ओर जहाँ मीरा कृष्ण को अपना पति मानती है वहा दूसरी ओर आण्डाळ भी इसी राधाकृष्ण भक्ति मे आकण्ठ मग्न है। समय एव स्थान से विच्छिन्न होते हुए भी दोनो मे माधुर्य भक्ति की एक ऐसी समान धारा प्रवाहित हो रही है जो भक्तो को नितान्त सहज भाव से अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। इस अधिनिबध की यह भी एक विशेषता है कि इसमे आण्डाळ द्वारा प्रयुक्त तमिळ के कई सैद्धान्तिक मूल-शब्दों को हिन्दी मे प्रथम बार रूपान्तरित करने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दी और तमिळ दोनो के पाठको को यह अधिनिबंध बोधगम्य हो सकेगा, ऐसी मेरी आशा है। वास्तव मे डॉ० सुन्दरम ने कई वर्षों तक जो हिन्दी और तमिळ साहित्य का गभीर अध्ययन किया है उसके परिणामस्वरूप यह कृति अस्तित्व मे आ सकी है। इसे यदि हम एक तमिळभाषी की हिन्दी के लिए एक बहुमूल्य देन कहे, तो इसमे किसी प्रकार की अत्युक्ति नही होगी।

--उदयनारायण तिवारी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
जबलपुर विश्वविद्यालय
जबलपुर

वैष्णवमति वै० वा० सेठ बजरंगदासजी साहूवाला

की

पुण्य स्मृति में

विषय-सूची

आण्डाळ का जीवन-वृत्त, कृतित्व : परिचय

जीवन वृत्त, आण्डाल की जन्म तिथि, बचपन, रगनाथ पर प्रेम, रगनाथ से विवाह, आण्डाल के अस्तित्व पर विद्वानो का मत, आण्डाल की रचनाए तिरुप्पावै, नाच्चियार तिरुमोलि, इन ग्रन्थो के प्रतिपाद्य का सामान्य परिचय।

मीरां का जीवन वृत्त एवं उनकी रचनाएं

मीरा की जन्म तिथि, विभिन्न विद्वानो का मत, जन्न स्थान, बाल्यावस्था, विवाह, मीरा की विवाह-तिथि, पति की मृत्यु, मीरा के अन्तिम दिन, मीरा की भक्ति, उन पर वैष्णव धर्म का प्रभाव, जनश्रुति, तुलसीदास से पत्र-व्यवहार एव अन्य किवदन्तिया, मीरा के अन्तिम दिन की घटना पर विद्वानो का मत।

मीराबाई की रचनाए, नरसी रो माहेरो, गीत गोविन्द की टीका, राग गोविन्द, सोरठ के पद, मीराबाई का मलार, गर्वागीत, मीराबाई के पदो का सक्षिप्त विवरण।

तृतीय अध्याय

(क) मीरां और आण्डाळ की भक्ति-भावना एवं भक्ति-स्वरूप ४७

भक्ति भावना का प्रसार एव समर्पण भाव, पराभक्ति, कैंकर्य भाव में मीरा और आण्डाळ, मीरा पर रामानुजीय संप्रदाय का प्रभाव, मीरा और आण्डाल मे अकिचन तथा अनन्य गति होने की भावना, स्वसवेद्य तथा परसवेद्य रूप, दोनो के पदो मे आत्म निवेदन, आत्म-समर्पण का भाव, प्रपत्ति मार्ग मे मीरा तथा आण्डाळ, माधुर्य भक्ति मे मीरा तथा आण्डाळ, मीरा एवं आण्डाळ की भक्ति साधना में भक्ति का नौ स्वरूप, मीरा और आण्डाळ का कान्त-कान्ता भाव, दास्य भाव, सख्य भाव।

(ख) आण्डाळ का दर्शन, मीरा का दर्शन, निष्कर्ष।

(ग) पाच रात्र सहिता, अवतार, भगवान के पांच रूप, पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चा की परिभाषा एवं विवेचन, मीरा और आण्डाळ के पदो मे इन पाच रूपो का प्रभाव, विशेषकर अर्चावतार का वर्णन, विभिन्न अर्चामूर्तियो की वन्दना, गिरधरलाल की मूर्ति,

आल्वारो की शब्द-योजना मे तमिळ के ठेठ शब्द, सस्कृत के तत्सम शब्द, सस्कृत शब्दो के तमिल रूपो का मूल्याकन, आण्डाळ की रचनाओ मे प्रयुक्त सस्कृत के तत्सम शब्दो का भाषा शास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण, आण्डाळ की भाषा पर विचार, आण्डाळ की रचनाओ मे प्रयुक्त सस्कृत के तत्सम शब्द, अनुरणनात्मक शब्द, मुहावरे तथा लोकोक्तिया।
मीरा की भाषा मे विभिन्न भाषाओ एव बोलियो का प्रभाव, मीरा की शब्द-योजना मे तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी अनुरणनात्मक शब्दो का मूल्याकन, मीरा द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तिया तथा मुहावरे।
मीरा एवं आण्डाल की भाषा का पुनरीक्षण।
वर्णयोजना, शब्दालंकार, मीरा और आण्डाळ की वर्णयोजना का उद्देश्य, मूल्याकन, शब्दालकार, निष्कर्ष।

अष्टम अध्याय

सामाजिक परिवेश में आण्डाळ तथा मीरां

मीरां तथा आण्डाळ पर इतर समाज का प्रभाव, दोनो काव्यो मे वर्णित उत्सव, सामाजिक विश्वास, मागलिक अभिप्राय पर विचार एवं विश्लेषण, मीरां एवं आण्डाळ के पदो मे आये वैवाहिक सस्कार, सामाजिक जीवन, स्नान विधान, व्रत, प्रात.काल के दृश्य मे सामाजिक जीवन, कन्याओ के खेल, अलकार विधान, त्योहार, परिधान, आभूषण तथा अन्य शृंगार नर्तन आदि का विधान एवं विवरण, निष्कर्ष।

नवम अध्याय

मीरां एवं आण्डाळ के काव्य में संगीत तथा छंद-विधान

संगीत एव काव्य का सबध, संगीत और लय, मीरां और आण्डाळ के पद लालित्य, दोनो भक्त कवयित्रियो के पदों मे शास्त्रीय संगीत तथा लोक संगीत के तत्त्व, आण्डाळ और मीरा की "भजन कीर्तन शैली, संगीत संबंधी आत्मविषयक उल्लेख, मीरां के पदो मे नृत्य संबंधी उल्लेख, मीरां और आण्डाळ के पदों मे प्रयुक्त राग रागिनिया।
आण्डाळ और मीरा के काव्य मे छन्द-योजना, तमिळ छन्द शास्त्र का विवेचन, असै, सीर, तलै, अडि, तोडै, एदुकै, मोनै, अन्तादि, तमिल

भूमिका : एक प्रस्तावना

स्वाधीनता के दायित्व ने भारतीय एकता के चिरतन एव शाश्वत मूल्यो के अन्वेषण की अपनी समग्र सास्कृतिक चेतना के पुनरकन की प्रेरणा जगाई है। इस देश की एकता का सबसे प्रमुख स्रोत है भक्ति। भक्ति देश की ही एकता नही, विश्व की एकता की प्रेरणा देने वाली शक्ति के रूप मे इस देश मे प्रवहमान रही है। विगत चालीस वर्षो मे समस्त भारत व्यापी भक्ति आन्दोलन के विविध पक्षो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन अध्ययनों से तथा रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द, गाधी, रवीन्द्रनाथ, सुब्रह्मण्य भारती, रानाडे, विनोबा भावे जैसे विचारकों से देश की सास्कृतिक चेतना को एक नया आधार मिला है। मैंने भी इसी से प्रेरणा प्राप्त कर भारतीय भक्ति-साहित्य के दो साकार भगवत्-प्रेम साधिकाओं, आण्डाळ और मीरा का तुलनात्मक अध्ययन करने का संकल्प किया। उस सकल्प को इस अध्ययन के रूप मे मूर्त रूप दे रहा हूँ। इस अध्ययन का प्रयोजन सक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है।

वह,

(१) सक्षेप मे भक्ति आन्दोलन के आध्यात्मिक, सामाजिक और भावनात्मक पृष्ठ-भूमि पर आण्डाळ और मीरा को स्थापित करना,

(२) आल्वार सन्तो के कृतित्व और सास्कृतिक परिवेश के आलोक में आण्डाळ के वैशिष्ट्य को सामने लाना,

(३) रागानुगा-भक्ति को अपने जीवन मे उतारनेवाली इन दो भक्त कवयित्रियो की भौतिक और दिव्य लीला के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ईश्वरीय प्रेम की तीव्रता के सघर्षमय जीवन का चित्र प्रस्तुत करना,

(४) भगवान की प्रतिमा के साथ सहज भाव मे विवाहित दोनो साधिकाओं की समानान्तर भक्ति-साधना की तुलना के द्वारा प्रेमानुगा-भक्ति के अनुभवो के विभिन्न सोपानो को निरूपित करना।

(५) इस अनुभव को व्यक्त करने के लिये प्रतीक रूप मे जिस भाषा, बिम्ब और छन्द, राग का प्रयोग इन दोनों कवयित्रियो ने किया है उसकी अपर्याप्तता, लोकरंजकता तथा अर्थैकता का विवेचन करना।

(६) हिन्दी पाठको के समक्ष इस तुलनात्मक अध्ययन को अधिक हृदयगम बनाने के लिए आण्डाळ के पदो का मूल सहित अनुवाद प्रस्तुत करना है। बहुमुखी प्रयोजनो के पीछे एक ही भावना है। वह यह है कि मीरां ने आण्डाळ के पद शब्दश चाहे न पढे हो पर दोनों एक ही अविच्छिन्न भक्ति-धारा के अग है। एक दूसरे से अविलग है। दोनो का अनुभव एक दूसरे से विशिष्ट होते हुए भी एकोन्मुख है। दोनो का आध्यात्मिक-बोध कालातीत है। दोनो ईश्वरमय होती हुई भी लोक के संगीत, लोक की भाषा, लोक के जीवित सस्पर्श से सलग्न है। समाज के सामान्य नैतिक बोध के ऊपर उठकर दोनो एक ऊची नैतिकता की सृष्टि करनेवाली देवियाँ है। इस अध्ययन का केन्द्र भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन की निरन्तरता और एकता का अनुध्यान ह।

प्रस्तुत अध्ययन की परिधि आण्डाळ और मीरां के कृतित्व के तुलनात्मक अध्ययन को केन्द्र मानकर खीची गई है। इसीलिये इसमे दोनो कवयित्रियो के समकालिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियो का विवरण देने का यत्न नही किया गया है। केवल दोनो की साधना-परंपरा का विवरण दिया गया है। भक्ति के विविध सप्रदायो का तथा उनके सिद्धान्तो का भी विशद प्रतिपादन करने का यत्न नही किया गया है, क्योकि आण्डाळ और मीरा दोनो मतवाद या संप्रदाय के बधन से मुक्त है। दोनो स्वच्छन्द भक्ति-धारा के ही प्रतिमान है। यह जरूर है कि आण्डाळ के अनुभव को निदर्शन के रूप मे ग्रहण करके विशिष्टाद्वैत सप्रदाय ने उनके काव्य को अपने सिद्धान्त का स्रोत माना है। और इसी से यह प्रासगिक प्रतीत हुआ कि इस सिद्धान्त का सक्षिप्त परिचय दे दिया जाय। पर आण्डाळका अनुभव विश्वात्मा के प्रेम का विश्व-व्यापी अनुभव है। यही स्थिति मीरां की भी है। इस तथ्य को सामने रखकर ही भक्ति के सामान्य सिद्धान्तो की तथा उसकी व्यापकता के उपादानो की चर्चा इस अध्ययन मे की गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे दस अध्याय और चार परिशिष्ट है। इन्ही अध्यायों परिशिष्टो मे मीरा और आण्डाळ की भक्ति-भावना तथा अन्य आवश्यक सामग्री प्रस्तुत की गई है।

प्रथम अध्याय मे भक्ति के सिद्धान्त एव व्यवहार पक्ष का विवेचन किया गया है। वैदिक परपराओ के आधार पर "भक्ति के बीज" अथवा भक्ति के मूल स्रोत का विवेचन हुआ है। आगम परपरा की विवेचना भी इसी अध्याय मे की गई है। इस परम्परा का निरूपण करते समय प्रामाणिक सामग्री का आश्रय लिया गया है। इसी अध्याय मे भक्ति-काव्य और उसके मानदडो का अनुशीलन किया गया है।

वास्तव मे यह अध्याय सिद्धान्त पक्ष के निरूपण के लिये लिखा गया है जिससे कि मीरा और आण्डाळ की रागानुगा भक्ति का विश्लेषण सहजतापूर्वक किया जा सके।

द्वितीय अध्याय के आल्वार साहित्य अथवा चार हजार दिव्य प्रबन्ध मे आल्वारो की परपरा का विशद विवेचन हुआ है। आल्वार साहित्य की विवेचना करते हुए आल्वार भक्तो एव आचार्यो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। आरभ मे पहला हजार (इसैप्पा)। दूसरा हजार (तिरुमोलि), तीसरा हजार (तिरुवाय्मोलि) और चौथा हजार (इयर्पा) की विवेचना की गई है। इसके उपरान्त सपूर्ण दिव्य प्रबन्ध मे निहित विषय वस्तु एव दार्शनिक सत्यो का उद्घाटन करते हुए विवेचन हुआ है। इसी अध्याय मे बारह आल्वारो के जीवन वृत्त का सक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। तत्पश्चात् आण्डाळ के जीवन वृत्त का वैज्ञानिक रूप मे निरूपण एव तिथि का स्थिरीकरण किया गया है। आण्डाळ की कृतियो—तिरुप्पावै और आच्चियार तिरुमोलि—का सामान्य परिचय भी इसी अध्याय मे दिया गया है। यद्यपि आल्वार परपरा आण्डाळ का स्थान पेरियाल्वार के उपरान्त आता है तथापि विषय का केन्द्रीकरण और आण्डाळ की भक्ति-भावना के सुसपादन के लिये आल्वार परपरा के निरूपण करने के उपरान्त ही आण्डाळ का जीवन वृत्त और उसकी भक्ति भावना का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत अध्याय मे ही मीरा के जीवन-वृत्त एवं उनकी रचनाओ का सामान्य परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय मे प्रथम अध्याय के सिद्धान्त पक्ष के आधार पर "मीरां और आण्डाल की भक्ति भावना एव उनकी भक्ति के स्वरूप" की विवेचना की गई है। मीरा और आण्डाळ दोनो की भक्ति भावना मे रागानुगा भक्ति के दर्शन होते है। उनकी पदाभिव्यजना में विशिष्टाद्वैत की दार्शनिक भावनाओ का प्रसार हुआ है और यही उनके अलौकिक प्रेम का सत्य है। आण्डाळ की भक्ति-भावना का विवेचन तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमौलि मे सगृहीत पदो के आधार पर किया गया है। मीरा की भक्ति-भावना आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सपादित मीराबाई की पदावली मे सगृहीत पदो के आधार पर विवेचित है। मीरा भी सगुणोपासिका है। उसमे भी रागानुगा भक्ति का पूर्ण प्रसार है और उसके पदो मे भी इसी प्रकार की अभिव्यजना हुई है। निर्गुण तत्त्व मीरा और आण्डाळ के पदो मे कही भी उपलब्ध नही होता। इसी अध्याय मे "पाच रात्र सिद्धान्त"—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा रूपो-का विवेचन किया गया है तथा मीरॉ और आण्डाल के पद प्रस्तुत किये गये है, जिनमे इन तत्त्वो का सन्निवेश है।

चतुर्थ अध्याय मे मीरा और आण्डाळ की वियोगानुभूति की विवेचना हुई है। मीरा कृष्ण के वियोग मे आत्म-विह्वल हो गई और आण्डाळ रगनाथ के विरह मे।

दोनो ही कवयित्रियो के आदि देव कृष्ण ही है और उनके पदो मे कृष्ण के विरह मे हुई अभिव्यजनाओ का प्रसार ही दिखाई देता है। दोनो ही कवयित्रिया अलौकिक सत्य मे एकाकार होने का उपक्रम करती है, सामीप्य का अनुभव करती है। विरह उनके लिये सत्य नही है, वह साधन है, साध्य नही। विरहानुभूतियो के प्रसरण का अनुशीलन करते हुए भाव, विभाव, अनुभाव आदि के प्रसार का ध्यान रखा गया है। मीरा और आण्डाळ के पदो मे कान्ता भाव, सख्य भाव और दास्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है। मीरा ने कृष्ण की उपासना कान्ता भाव एव दास्य भाव से और आण्डाळ ने कान्ता भाव से एव सख्य भाव से की है। कही-कही इन भक्ति भावनाओ का समन्वय भी देखने को मिल जाता है। प्रकृति दोनो ही कवयित्रियो की अभिव्यक्तियो के समय आलंबन एव उद्दीपन के रूप मे प्रकट हुई है। दोनो ही कवयित्रियो की वियोगानुभूतियो मे तरल प्रवाह एव प्रेषणीयता है।

पचम अध्याय मे मीरा और आण्डाळ के पदों मे निहित प्रतीक विधान का विवेचन किया गया है। प्रतीक विधान की परपरा वैदिक कालीन है। अतएव मीरां और आण्डाळ के पदो मे प्रतीको का स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। मीरा के पदो मे कही-कही निर्गुणधारा की शब्दावलिया एव प्रतीक भी प्रकृत रूप मे निबद्ध हुए है किन्तु वे भी रागानुगा भक्ति के प्रसार के साधन मात्र है। दोनो ही कवयित्रियो ने माधुर्य भाव से कृष्ण की उपासना की है। अतएव उनके पदो मे ऐसे प्रतीको का सन्निवेश हुआ है जिनसे रागानुगा भक्ति का पूर्ण आभास हो जाता है।

षष्ठ अध्याय मे मीरा और आण्डाळ के पदों मे प्रयुक्त अप्रस्तुत-योजना का विश्लेषण किया गया है। प्राचीन साहित्य मे उपमा अलकार को प्राचीनतम अलकार के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त है। मीरां और आण्डाळ के पदो मे उपमा अलकार का सयोजन तो हुआ ही है, इसके साथ ही अप्रस्तुत-विधान—मूर्त के अमूर्त उपमान, मूर्त के अमूर्त उपमान, अमूर्त के मूर्त उपमान, और अमूर्त के अमूर्त उपमान—की भी सयोजना है। इनकी विवेचना भी इसी अध्याय में हुई है।

सप्तम एवं अष्टम अध्याय मे मीरां एव आण्डाळ की भाषा की विवेचना, शब्द समूह, वर्ण-योजना एव शब्दालकार के माध्यम से की गई है। आण्डाळ के शब्द समूह का विवेचन करते समय आल्वारों की शब्द-योजनाओ को भी प्रस्तुत किया गया है और भाषा के सबंध मे यह सिद्धान्त स्थिर करने का प्रयास किया गया है कि आण्डाळ के पदों मे तमिळ की ठेठ शब्दावलियो, सस्कृत की तत्सम शब्दावलियों एव सस्कृत के शब्दों के तमिल रूप का प्रयोग हुआ है। इसी अध्याय में आण्डाळ के शब्द समूह का व्याकरणिक दृष्टि से भी विचार किया गया है। मीरां की काव्य भाषा मे लोकोक्तियों, कहावतो एव मुहावरो का प्रयोग हुआ है। राज-

स्थानी के अतिरिक्त गुजराती, पजाबी, ब्रजभाषा की शब्दावलियाँ भी मीरा के पदो मे प्रयुक्त हुई है। अत मे मीरा के पदो मे प्रयुक्त तत्सम एव तद्भव रूपो का विश्लेषण भी हुआ है। अष्ठम अध्याय मे वर्ण-योजना एव शब्दालकार की विशद विवेचना की गई है। मीरा और आण्डाल के पदो मे शब्दालकार अत्यन्त सुस्पष्ट रूप मे प्रकट हुए है। वर्णयोजना के प्रसग मे यह तथ्य स्वीकार करना ही पडता है कि आण्डाल की वर्ण-योजना अत्यन्त प्राजल एव सुस्पष्ट है तथा यही आण्डाल की काव्य-गरिमा एव उसकी अभिव्यक्ति का अलकार है। मीरा के पदो मे अनुप्रसात्मक ध्वनियो का प्रकटीकरण हुआ है और इसी आधार पर मीरा और आण्डाल की वर्ण-योजना एव शब्दालकार का विवेचन हुआ है।

अष्टम अध्याय "सामाजिक परिवेश और आण्डाल तथा मीरा" है। इस अध्याय मे मीरा और आण्डाल के पदो मे वर्णित सास्कृतिक शब्दावलियो को उद्धृत करते हुए अप्रत्यक्ष सामाजिक परिवेश की विवेचना की गई है। सास्कृतिक मूल्यान्वेषण के लिये मीरा और आण्डाल के पदो मे अभिव्यक्त सास्कृतिक मूल्यो को पूर्णत सत्य नही माना गया है। यह सास्कृतिक चित्रावलिया सहज ही समन्वित हुई है। अतएव सहज प्रवाह को बाधित किये बिना सास्कृतिक चित्रो का अनुशीलन इस अध्याय मे हुआ है।

नवम अध्याय मे मीरां एव आण्डाळ के काव्य में निहित सगीत-योजना तथा छद-विधान की विवेचना हुई है। आरभ मे सगीत एवं काव्य के सबंध मे सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण हुआ है। सगीत और लय पर भी इसी अध्याय मे विचार किया गया है तथा मीरा' और आण्डाळ के वे पद प्रस्तुत किये गये है जिनमे सगीतात्मकता एव लयात्मकता निहित है। आण्डाळ के पदो मे सगीतात्मक शास्त्रीयता अधिक है किन्तु मीरा का सगीत एव छन्द-विधान लोक-रागो के मिश्रण के कारण पूर्णतः शास्त्रीय नही है किन्तु सगीतात्मक प्रवाह दोनो ही कवयित्रियो की काव्य-भाषा मे है और उसी के आधार पर मीरा और आण्डाळ के पदो की विवेचना करते हुए लय, सगीत एव छन्द के विधानो का प्रस्तुतीकरण एव निरूपण हुआ है।

प्रथम परिशिष्ट मे आण्डाळ की कृतियो—तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोलि-का गद्यानुवाद सकलित है। इसी परिशिष्ट मे आण्डाळ की कृतियो के व्याख्याकार पेरियवाच्चान पिल्लै की व्याख्या का पर्याप्त आधार लिया गया है। मूल तमिल के पद भी देवनागरी मे दिये गये है।

द्वितीय परिशिष्ट मे कात्यायनी व्रत के विकास का अनुशीलन हुआ है। श्रीमद् भागवत मे वर्णित इस व्रत के स्वरूप का निरूपण करते हुए आण्डाळ के पदो मे वर्णित इस व्रत के स्वरूप का उद्घाटन हुआ है।

तृतीय परिशिष्ट मे मु० देवीप्रसाद कृत "मीराबाई का जीवनवृत्त" मे उपलब्ध राठौड और सिसोदिया वशो का वश-वृक्ष उद्धृत कर दिया गया है। यह मात्र मीरा के वश सबधी अनेक स्थापनो के व्यतिरेक के समानार्थ ही दिया गया है।

चतुर्थ परिशिष्ट मे मीरा के पदो के अब तक उपलब्ध कुछ विशेष महत्वपूर्ण सग्रहो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

अत मे ग्रथानुक्रमणिका एव अन्य सदर्भ-सामग्री दी गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अध्ययन और अनुशीलन मे श्री श्रीनिवासराघवन द्वारा सपादित "नृसिह प्रिया", श्री मु० राघवय्यगार कृत "आल्वारकल् काल निलै", पेरियवाच्चान पिळ्ळै का तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोलि का भाष्य, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सपादित "मीराबाई की पदावली" (सप्तम सस्करण) वगीय हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित मीरा स्मृति ग्रथ तथा श्री सिद्धेश्वर भट्टाचार्य कृत "दि फिलासफी आफ श्रीमद्भागवत" से विशेष सहायता ली गई है। मेरे अध्ययन को दिशा-बोध प्रदान करने मे इन ग्रथो का विशेष योग रहा है। मै इसे स्वीकार करता हू कि ये ही ग्रथ मेरे अध्ययन व अनुशीलन के प्रेरणा-स्रोत रहे है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लेखन काल मे मुझे डा० राजबली पाडेय, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, प्रो० श्रीनिवास राघवन, डा० विद्यानिवास मिश्र, डा० राम शंकर मिश्र, श्री रंगनाथन, प्रो० नजुण्डन जी, श्री कच्छपेश्वरन, तथा डा० महावीर सरन जैन, एव मेरे सहयोगी मित्र डॉ० विश्वनाथ सिह, एव आदरणीय श्री टी० कृष्णस्वामी जी से विशेष सहायता मिली है। इनका मै हृदय से आभारी हू।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे सलग्न मीरा और आण्डाळ तथा उनसे सबधित मंदिरो एव अर्चा मूर्तियो के चित्र सास्कृतिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिये परमावश्यक थे। इन्हे यथासमय भेजकर श्री श्री निवासराघवन तथा श्री स्वामी विश्वेश्वर शरण जी ने इस कार्य को पूर्णता प्रदान की है। अत: मै उनका विशेष रूप से आभारी हूँ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, और मदुरै तमिल सगम के अधिकारियों का मै विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होने वहाँ जाकर अध्ययन करते समय मुझे हर सभव सहायता प्रदान की है।

मैं केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय एवं जबलपुर विश्वविद्यालय के अधिकारियो के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हू जिन्होने एक अहिन्दी भाषी को हिन्दी साहित्य मे शोध-कार्य करने का अवसर एव आवश्यक सुविधा प्रदान की।

अत मे मै अपने गुरु एव निर्देशक, प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा० उदयनारायण तिवारी का स्मरण करना अपना कर्तव्य समझता हू जिनकी प्रेरणा पाकर शोध-

कार्य मे प्रवृत्त हुआ और जिनका निर्देशन पाकर अपने इस कार्य को सपन्न कर सका। वस्तुत· यह सम्पूर्ण कार्य उन्ही की वात्सल्यपूर्ण प्रेरणा का प्रतिफल है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना समीचीन नही है। अत. मै उनके आशीर्वाद की वाछा के साथ श्रद्धापूर्ण कृतज्ञ भाव से नतमस्तक हूँ।

मेरी धारणा है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उत्तर और दक्षिण भारत की भक्ति-साधना के अध्ययन व अनुशीलन मे अवश्य सहायक सिद्ध होगा।

१. भक्ति : सिद्धान्त और व्यवहार

भक्ति का बीज :

वैदिक देववादो सौर देवताओं का महत्त्व दिव्य-आकाश के देवता के रूप में भली भांति प्रामाणिक था। सौर देवताओं मे ही सूर्य के गतिशील, व्यापनशील और ऋतुचालक रूप को विष्णु मे केन्द्रित किया गया। विष्णु के साथ इसीलिये चक्र का प्रतीक आया तथा सूर्य की प्रातःकालीन, मध्याह्नकालीन और सायंकालीन अवस्था विष्णु के तीन पगों के रूप में प्रतीक बद्ध की गई। विष्णु का सबध श्री अर्थात् पृथ्वी से भी इसीलिये हुआ कि उन्हें पृथ्वी का धारयिता माना गया। इसीलिये विष्णु का तादात्म्य यज्ञ से स्थापित किया गया। विष्णु की इस कल्पना में रात्रि के सूर्य तथा सत्य एवं नैतिक आचरण के देवता वरुण का भी योग हुआ। वरुण वैदिक वाङ्मय मे प्रायश्चित्त के देवता के रूप में, मनोबल के देवता के रूप मे चित्रित किये गये हैं। वैष्णव धर्म मे कालान्तर मे जो ऊंची नैतिकता का अभाव आया तथा विष्णु के साथ नैतिक मूल्यों के दूसरे शब्दों में धर्म के रक्षक होने का भाव जुड़ा, उसके मूल में वैदिक वरुण की ही कल्पना है। विष्णु के व्यापक, अप्रमेय रूप को अभिव्यक्त करने के लिये ही उनको श्याम वर्ण दिया गया तथा भूदेवी या श्री से संबद्ध मानकर ही उनके एक हाथ में कमल का सबंध स्थापित किया गया।[1]

विष्णु की इस कल्पना मे, पुरुष कल्पना का भी योग है। इस पुरुष कल्पना मे प्रजापति, विश्व के आदि पुरुष तथा सृष्टि की अव्यक्त अवस्था की उद्बोधक शक्ति इन तीनों का भी योग है। इन तीनों के योग से ही नारायण की कल्पना मूर्त रूप धारण कर सकी है। रामानुज संप्रदाय में ध्यान का प्रसिद्ध श्लोक—

> **ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती**
> **नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।**
> **केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी**
> **हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः॥**[2]

---

१. The Philosophy of the Srimad Bhagavata—Siddhesvara Bhattacharya, pp 64-65

२. कृत्यसंग्रह : संपादित, स्वामी नारायणाचारी, पृष्ठ १२

भी नारायण की केन्द्रभूत कल्पना की पुष्टि करता है । महाभारत मे प्रत्येक पर्व मे आनेवाला मगल श्लोक इस ओर सकेत करता है कि नर को निरन्तर उसके विराट् सवादी रूप की ओर उन्मुख करने के लिये नारायण उपासना महाभारत युग मे सात्वत सप्रदाय के प्रसार से विकसित हो चुकी थी ।

यज्ञ के अर्थ का ब्राह्मणों मे ज्यों ज्यो गहरा अनुशीलन हुआ त्यों-त्यों यज्ञ का समस्त अनुष्ठान देवत्व से—अर्थात् सत्य, प्रकाश और परोक्ष सत्ता से—तथा सृष्टि की प्रक्रिया से जोड़ने का प्रतीक बनता गया । श्रीमद्‌भगवद्‌गीता मे यज्ञ को देवत्व से योजित करने का साधन माना गया और यहा

सह यज्ञैः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥[1]

अर्पण भाव में आहुति की भावना की चरम परिणति दिखलाई गई है । यज्ञ वस्तुतः इष्ट देवता के निमित्त अपनी प्रियवस्तु का त्याग है । क्रमश. इसे सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर पर पहुचाया जाता है तो त्याग के लिये सबसे प्रिय वस्तु अपनी अहन्ता बची रहती है और अपनी अहन्ता का उत्सर्ग भक्ति का प्रथम सोपान है। उपनिषदों मे वर्णित रहस्य विधायें, विद्याओ ने—शाण्डिल्य विद्या, मधु विद्या, दहर विद्या, नाचिकेत चयन, आरुमकेतुक चयन, तथा वरुण विद्या ने—अपने भीतर शक्ति के साक्षात्कार के लिये द्वार खोले। इसी से आत्मानुभूति या दिव्यानुभूति या ईश्वरानुभूति का प्रस्फुटन हुआ ।

वैदिक सामाजिक व्यवस्था, आनृण्य—ऋण से मुक्ति—पर आधृत थी । शतपथ ब्राह्मण मे चार ऋणो की कल्पना है । ऋषि ऋण की मुक्ति ब्रह्मचर्याश्रम मे ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा, पितृ ऋण की मुक्ति ऐसे गार्हस्थ्य जीवन के द्वारा जिसमें शेष अन्य आश्रमों का भरण और पोषण हो ओर अपनी परपरा के आगे वधन हो, काल के आयाम मे एक जातीय जीवन की निरतर साधना हो, देवऋण की मुक्ति एक ऐसे वानप्रस्थ आश्रम के द्वारा जिसमें सयम और संतोषपूर्वक समाज एवं दृश्य, अदृश्य सत्ताओ के साथ अपनी समरसता स्थापित की जाय और अपने को देवत्व से एकान्तता तक जोड़ा जाय, मनुष्य ऋण से मुक्ति जिसमें नाम, वर्ण, पद जैसी प्रत्येक व्यक्तिगत संपत्ति सीमा और सत्ता के पूर्ण रूप से त्याग के अनन्तर अपना तादात्म्य विश्व मानव से स्थापित

---

१. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ३।१०-११॥

किया जाय तथा शुद्ध सेवा भाव मे जीवन को लगाया जाय। इस आनृण्य व्यवस्था ने निष्काम कर्म की भूमिका बनायी तथा कर्म सन्यास का आदर्श प्रस्तुत किया। मनुष्य दायित्व लेकर उत्पन्न होता है, अधिकार लेकर नही। इस प्रकार के विनम्रता के भाव ही भक्ति की नैतिक आधार शिला का निर्माण करता है।

आगम परंपरा :

भक्ति के उदय मे दूसरा महत्वपूर्ण योग तान्त्रिक या आगम परपरा का है। वस्तुतः वैदिक परंपरा का प्रभाव भक्ति के आध्यात्मिक आधार तक अधिक सीमित है। भक्ति के बाह्य अनुष्ठान को तथा रागात्मक अभिनिवेश को आकार मिला है आगम परपरा से ही। वैदिक उपासना ने जो पूजा का रूप ग्रहण किया और इष्टदेवता एक अमूर्त कल्पना न होकर मूर्त एवं अनुभाव्य सत्ता के रूप मे आया, वह तान्त्रिक अनुष्ठान का ही प्रभाव था। जहाँ वैदिक अनुष्ठान मे देवता का आवाहन स्तुति होती है वहाँ अब देवता का ध्यान कल्पित हुए। यह ध्यान मन को एकाग्र करने मे तथा दूसरे विषयों से विनिवृत्त करने में सहायक हुए। वैदिक देवोपासना मे अग्नि को आहुति वहन करनेवाली शक्ति को—माध्यम बनाया जाता था। तान्त्रिक पूजा मे देवता अधिक वैयक्तिक सन्निधि मे आये और उनका सत्कार षोडशोपाचार इस प्रकार किया गया कि वे अपने प्रिय अतिथि हों। पूजा के उपकरण वस्तुतः प्रतीक है। चन्दन जीवन की उस वासना का प्रतीक है जो इष्ट देवता के लिये अर्पित है। पुष्प भौतिक जीवन के सार रूप का प्रतीक है तथा देवता को नैवेद्य अशेष भोग को अर्पित करने का प्रतीक है। जैसा कि जिमर ने अपने ग्रथ दि फिलासफि आफ इण्डिया मे ठीक ही समझा है कि वैदिक दृष्टि और तान्त्रिक दृष्टि मे यह समानता है कि प्रत्येक व्यक्ति एक साथ दोनों है, व्यष्टि भी समष्टि भी और प्रत्येक वस्तु एक ही दिव्य शक्ति प्रवाह से प्रवाहित है, वहाँ एक मुख्य अन्तर है, यह है कि प्राचीन वैदिक उपासना, जगत् को स्वीकार तो करती थी पर उसके अनुष्ठान इस जगत् के बाह्य या ब्रह्माण्डात्मक रूप को ही उद्दिष्ट थे, आन्तरिक या पिण्ड के अन्तर्भूत देवताओं को उद्बोधित करने के लिये अनुष्ठान तंत्र मे ही स्वीकृत हुए।[१] तंत्र का यह एक मूलभूत सिद्धान्त है कि मनुष्य को प्रकृति के भीतर से गुजरकर, प्रकृति के माध्यम से ही उठना है न कि प्रकृति का निषेध करके। तान्त्रिक पद्धति विषयों के प्रति आसक्ति को छिन्न नही करती है, एक नियमित

---

१ Philosophies of India Heinrich Zimmer, pp 575

दिशा में प्रवाहित करती है। वह देह में ही देवता का अधिष्ठान मानती है। इसीलिये तांत्रिक दृष्टि में अपनी अंतर्वृत्तियों के अनुशासन या, दूसरे शब्दों में योग का महत्व अधिक है, योग और भूत शुद्धि का महत्व अधिक है। यह भूत शुद्धि प्राणायाम के द्वारा कुण्डलिनी को मूलाधार से जागृत करके ऊपर उठाने से होती है। इस उन्नयन का क्रम क्रमशः पाँच भूतों को पार करके एक तत्त्व तक पहुंचने का क्रम है। इस मामले में भी वैदिक धारणा से एक और समानता है।

"देवो भूत्वा देवं यजेत्' ॥
नादेवो देवमर्चयेत् ॥"

यहाँ एक मौलिक भेद भी है। वह यह है कि जहाँ वैदिक उपासना मे देवता से संबंध स्थापित करना ही तथा देवता की भावना से सृष्टि की प्रक्रिया को अपने से जोड़ना ही अन्तिम उद्देश्य है, वहाँ तान्त्रिक साधना मे देवता के आगे पहले दास्य भाव से अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विलयन किया जाता है। तदनुसार अभ्यास के द्वारा अपने भीतर की दिव्य शक्ति का अभ्युत्थान किया जाता है। इस प्रकार सख्य भाव के उदय से अपने सहचर बनाया जाता है तथा अन्त में प्रेम भाव के उदय के द्वारा आराध्य देवता को अपने मे आत्मसात् किया जाता है। इस दृष्टि का प्रभाव भक्ति की मूल कल्पना के निर्माण पर पड़ा है। भक्ति माया का निषेध नही है, एक सोद्देश्य और सार्थक लीला मे रूपान्तर है। यह लीला विघटन नही है, सयोजन है। यह लीला साकांक्ष दिव्यता की पूर्ति से प्रेरित है। तांत्रिक दृष्टि के प्रभाव के कारण ही जप, लीलानुकरण, नृत्य, संगीत, कला जैसे सौन्दर्य-बोध के साधनों का भक्ति मे समावेश हुआ और भक्ति ही उच्च से उच्च भारतीय सास्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति का केन्द्र बनी, चाहे वह मंदिर रचना या निर्माण हो, शिल्प रचना हो, चित्र आलेखन हो, काव्य रचना हो, नाट्य या संगीत रचना हो, प्रत्येक रचनात्मक सौन्दर्यबोध का केन्द्र भगवद् भावित जगत् के प्रति निश्चल और निष्काम प्रेम रूप भक्ति ही बनकर रही। तंत्र का दूसरा प्रभाव है गुरु दीक्षा का महत्व। तंत्र चूँकि प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति को पहचाने बिना साधना का क्रम निश्चित नही करता, इस-लिये जो गुरु की एक शक्ति पहचाननेवाली सिद्धावस्था में पहुंचा हुआ है, आवश्यकता पर बल देता है। वैदिक परंपरा में गुरु का स्थान इतना महत्वपूर्ण नही है। वहां दीक्षा भी एक विशेष प्रयोजन से होती थी और दीक्षा उस प्रयोजन के समाप्त होते ही निवृत्त हो जाती थी। तात्रिक दृष्टि मे यह दीक्षा जन्म जन्मान्तर के लिये होती थी। क्योंकि दीक्षा के बाद सारा जीवन ही

अर्पित हो जाता था। उससे निवृत्ति की कोई संभावना ही नहीं रह जाती थी। तंत्र का सामाजिक बोध के स्तर पर भक्ति के आन्दोलन पर यह प्रभाव पड़ा कि सामाजिक वैषम्य को समाप्त करके ही भगवद्भक्त होने की पात्रता आई। वैदिक और आगम परंपराओं का संश्लेष पौराणिक परंपरा में हुआ। पौराणिक परंपरा ने तंत्र के लोकप्रिय और लोक मोहक विश्वास को वैदिक परंपरा के सीधे और अदीक्षगम्य नैतिक बोध से जोड़ा। अवतारवाद का सिद्धान्त वस्तुतः इसीलिये स्वीकृत हुआ कि ईश्वर अधिक मानवीय सवेदना के समीप आ सके। अवतारवाद ने मनुष्य को विश्वास और शक्ति दोनों प्रदान की। पुराणों ने अहिंसा और करुणा, ईश्वर भक्ति, मानववाद, कर्तव्य-बोध तथा सामाजिक गुणों एवं परंपरागत मूल्यों के प्रति आदर भाव—इनके ही ऊपर अपने नैतिक बोध का निर्माण किया। पुराणों की सबसे बड़ी सफलता जन चेतना को विभिन्न ईश्वरीय लीलाओं के सौन्दर्य, औदार्य और नैर्मल्य के साथ रागबद्ध करने मे है। पुराणों ने दिव्य अनुभव को कथाओं और प्रतीक योजनाओं से इतना सुगम बना दिया कि नर और नारायण के बीच का संबंध एक दम सीधा या निकट का हो गया। चाहे वह प्रेमी के रूप में हो चाहे वात्सल्यमयी माता के रूप मे, कृपालु प्रभु के रूप में, स्नेही सखा के रूप में हो, या वत्सल शिशु के रूप में। उनकी लीला इतिहास की सीमाओं को विगलित करके शाश्वत सत्य के रूप में प्रेरक हो गई।

भक्ति के इन उपादानों से जो आधार-शिला बनी उसका व्यवस्थित रूप में वर्णन सबसे पहले नारद और शाण्डिल्य के भक्ति-सूत्रों मे मिलता है। नारद ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है—

"सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च"[1]

अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेममय तथा अमृतानन्दमय भाव है। यह परम प्रेम काम के स्पर्श से रहित है, क्योंकि इसमे लौकिक या पारलौकिक किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति का अपने आप निरोध हो जाता है।[2] शाण्डिल्य द्वारा की गई भक्ति की परिभाषा इस मान्यता से भिन्न है। जहाँ नारद ने पूर्णरूप से आत्म-समर्पण को भक्ति की संज्ञा देने का प्रयास किया है वहाँ शाण्डिल्य का कहना है कि भक्ति ईश्वर के प्रति परम आसक्ति होते हुए भी आत्म भाव की

---

१. नारद भक्ति सूत्र २, ३, गीता प्रेस, गोरखपुर

२. सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्—नारद भक्ति सूत्र ७॥

विरोधिनी नही है।[1] दोनों के अनुसार सासारिक कर्तव्यों का पालन उस समय तक विदित है जब तक बाह्य जगत् की चेतना तनिक भी बनी रहती है। भक्ति अपने आप साध्य है, साधन नही। इसीलिये कर्म, ज्ञान, योग से प्रकृष्टतर है, क्योकि वे मात्र साधन है।[2] यह भक्ति उसी प्रकार अनिर्वचनीय है जिस प्रकार गूगे का आस्वाद है।[3] यह निर्विकल्प है, निष्काम है, प्रतिक्षण उत्तरोत्तर तीव्रतर होने वाली है, निरन्तर प्रवहमान है, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर है और सदैव परोक्षानुभूति स्वरूप है।[4] जहाँ तक कि भक्ति की नैतिकता का प्रश्न है उसकी नैतिकता एक ऊची धरातल की नैतिकता है। भक्त अहन्ता और ममता को त्याग करके सदैव विनम्र भाव से प्रत्येक प्राणी मे ईश्वर भाव देखता है और यदि उसके पास राग द्वेष है भी तो वह राग द्वेष कुल का कुल ईश्वर की ओर ही उन्मुख है। ईश्वर पर ही उसकी खोज है तथा ईश्वर से ही उसकी लडाई है। उसके सासारिक कर्त्तव्य इसीलिये अपने आप एक व्यापक चेतना के साथ परिचालित होने के कारण परिशुद्ध होते है। जैसा कि श्री विद्या-निवास मिश्र ने अपने निबध 'दि सोसल आस्पेक्ट आफ दि भक्ति मूवमेण्ट" मे प्रतिपादित किया है कि भक्ति का बीज अतृप्ति है। यह अतृप्ति पूरी वर्णाश्रम-व्यवस्था से है, पूरे अद्वैत चिन्तन से है। जब तक कि मनुष्य को ईश्वर मे अधिनिष्ठित नही कराया जाता और ईश्वर को मनुष्य के रूप मे लीला करते हुए नही दिखाया जाता तब तक व्यास की समूची ज्ञान-साधना नारद के अनु-सार अधूरी थी। वस्तुत. यह अतृप्ति परंपरागत मूल्यों के आक्रोश के रूप मे नही थी। यह वस्तुतः उपनिषदों के अद्वैतवाद को भावनात्मक स्तर पर वर्णाश्रम धर्म के स्तरीकृत दृढ बद्ध आदर्श के साथ सामंजस्य स्थापित करने की आकुलता के रूप मे उद्भूत हुई। भक्ति ने सामाजिक कर्त्तव्य के अनुष्ठान की गारटी, पाप पुण्य के विवेक के आधार पर नही, बल्कि ईश्वर केन्द्रित होने के आधार

---

१. सा परानुरक्तिरीश्वरे ॥ तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात् ॥

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र : २, ३, गीता प्रेस

२. सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा ॥ नारद भक्ति सूत्र, २५ ॥

गीता प्रेस, गोरखपुर

३. अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् । मूकास्वादनवत् ॥

नारद भक्ति सूत्र : ५१, ५२, गीता प्रेस

४. गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥

नारद भक्ति सूत्र : ५४, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

पर दी । इसने ईश्वर के विरोधी के प्रति भी घृणा भाव जागृत न करके उपेक्षा भाव जागृत किया। इसने शास्त्रों के अर्थ को भक्त के जीवन में उतारा ताकि वह भीड़ के भय से ऊपर उठ सके। इसने व्यक्ति के मोक्ष को उतना महत्त्व नही दिया जितना कि मुक्त व्यक्ति के द्वारा बद्ध जीव के क्लेश को। इसीलिये भक्त के लिये जन्म; विद्या, कुल, रूप, संपत्ति, पुण्य के आधार पर ऊंच नीच का बोध व्यर्थ हो गया, क्योंकि सभी एक से ईश्वरमय है। बिना विषय त्याग किये सन्यास इसीलिये संभव हो सका कि ईश्वर को अर्पित कर देने मात्र से संन्यास पूरा हो सकता है। व्यक्ति के दु:ख को समष्टि के दु:ख से एकाकार करके देखने की प्रवृत्ति पर भक्ति ने जो बल दिया उसके कारण व्यक्ति का दु:ख छोटा हो गया और मोक्ष से भी अधिक उदार जीवन का प्रयोजन सामने आ गया।

यहाँ यह स्मरणीय है कि यद्यपि भारतीय भक्ति के अनुभव के स्तर पर मध्ययुगीन ईसाई रहस्यवादियों की दिव्यानुभूतियों से तथा भक्त की आदर्श भक्ति की कल्पना मे भी सदृश है तथापि जैसा कि स्वर्गीय वैट्टि हैमन ने समझा है "पश्चिमी मध्ययुगीन मर्मी साधना और भक्ति में मुख्य अन्तर यह है कि जहा कैथलिक रहस्यवादी साधना में ईश्वर से मिलन प्रतिपादन के रूप में नही, बल्कि एक ईश्वरीय कृपा के रूप में प्राप्त होता है वहाँ भक्ति-साधना मे यह मिलन अपने आप भक्त के सहज आकर्षण से प्राप्त होता है। इससे भी महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि कैथलिक रहस्यवादी साधना का चरम लक्ष्य केवल महा मिलन है जब कि भक्ति का चरम लक्ष्य 'मैं' और 'तुम' के संबंधो का एक ऐसे धरातल पर पूर्ण विसर्जन है जहा यह 'मैं' और 'तुम' का बोध भी समाप्त हो जाता है। तीसरा अन्तर यह है कि भक्ति का प्रयोजन न तो आत्म पीड़न है न अन्धकार का बोध है न अनचीन्ही स्थिति का तादात्म्य है। भक्ति का मार्ग अधिक स्पष्ट और अधिक आह्लादमय तथा अधिक उदार है।[१] भक्त इस मामले में मूल भूत सत्ता के सत्य का जीवित प्रतिमान है। वह रहस्य का गोप्ता नही है।

हमे यहाँ जिस भक्ति से विशेष रूप से प्रस्तुत अध्ययन में संबंद्ध है वह वैष्णव भक्ति है। वैष्णव भक्ति के स्रोत कुछ ऊपर भी गिनाए गए है पर एक निश्चित सप्रदाय के रूप मे वैष्णव भक्ति का प्रतिपादन ईसा की पहली

---

१. The social aspect of the Bhakti Movement : An approach By Dr. Vidya Niwas Misra

शताब्दी के आसपास अवश्य हो चुका था। और कुछ प्रमुख पाचरात्र संहिताओं की रचना भी हो चुकी थी। ये संहिताएं श्रेडर के मतानुसार उत्तर भारत में पहले उद्भूत होकर दक्षिण भारत में विकसित हुई। दक्षिण भारत की संहिताओं मे सबसे प्राचीन ईश्वर सहिता है। उल्लेखनीय बात तो यह है इसमें द्रमिड़ी श्रुति या तमिल वेद का प्रामाण्य स्वीकार कर लिया गया है। दूसरी दक्षिणी सहिताए उपेन्द्र सहिता जिसमे श्री रग मदिर का विवरण है। बृहद् ब्रह्म सहिता है। पाच रात्र संहिता का समय श्रेडर ने पहली से आठवी शताब्दी निश्चित किया है और पौष्कर, सात्वत, जय का सबसे महत्त्वपूर्ण बताया है।[1] इनमे पाँच मुख्य विषय प्रतिपादित किये गये है—तत्त्व, सृष्टि रहस्य, मुक्ति, भक्ति, योग और वैशेषिक, इन्द्रिय विषय। पर आगे चलकर ये नाम नारायण की पंच विध अभिव्यक्तियों के कारण प्रसिद्ध हुए—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा। पाच रात्र सहिताओं में ईश्वर के छः गुण वर्णित किये गये है, ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, श्रम हानि, धारण सामर्थ्य थे। वीर्य, विकार-विरह, तेजस्, सहकारी-अनपेक्षा और पराभिभव सामर्थ्य। इन छः गुणों के समुदाय को ही वासुदेव कहते है। चार व्यूह, कृष्ण, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध है। कृष्ण में छः गुण है, संकर्षण मे ज्ञान और बल, प्रद्युम्न मे ऐश्वर्य और वीर्य और अनिरुद्ध मे शक्ति और तेजस्। प्रत्येक व्यूह के तीन तीन व्यूहान्तर होते है। इस प्रकार कुल चौबीस मूर्त्तियाँ बनती हैं। ये व्यूह शुद्ध सृष्टि के अग है। इन्ही व्यूहों या व्यूहान्तरों या विद्येश्वरों का जब भूमि पर अवतरण होता है तो वे अवतार कहलाते है। इन अवतारों की संख्या दस से लेकर उनतालीस बतलाए गये है। पाँचरात्र दर्शन की विशेषता यह है कि इसमे अद्वैत की भाषा तो है पर मायावाद नहीं है। सबके मन मे रहनेवाले भगवान को अन्तर्यामी कहते है। अर्चा का प्रयोजन ही है लोक बुद्धि को संतुष्ट और प्रेरित करने वाला भगवान का रूप। अर्चा पूजन की परंपरा आगमों, स्मृतियों और पुराणों मे मिलती है। अर्चा का विस्तार वर्णन आगे के अध्याय मे प्रतिपादित किया जायगा। मीराँ और आण्डाल के जीवन मे ईश्वरोन्मुखता, अर्चा अथवा ईश्वर की विशिष्ट प्रतिमा के माध्यम से आयी। दोनों उसके माध्यम से ही ईश्वर की विवाहिता हुई।

वैष्णव भक्ति के विस्तार मे सबसे प्रमुख हाथ श्रीमद् भागवत पुराण का,

---

१. Introduction to the Pancharatra and the Ahirbudhnya By F. Otto Schrader Ph. pp. 17–34

आगे चलकर हुआ । श्रीमद् भागवत की रचना के बारे मे अनुमान है कि इसकी रचना तीन स्तरों में हुई। पहले स्तर का काल ईसा के आसपास समझा जाता है। चूंकि यह आपस्तंब के पूर्व है, दूसरे का ईसा की पहली और चौथी शताब्दी के बीच में का है और इसका अंतिम सस्करण तमिल देश मे तमिल सन्तों की भाव-प्रवण की छाया मे ईसा की पाचवी या छठी शताब्दी मे किया गया।[1] भागवत ने जिस कृष्ण को नायक के रूप मे स्थापित किया वे कृष्ण इतिहासातीत कृष्ण हैं । ऐतिहासिक कृष्ण उनके अनेक रूपों मे से एक है।[2] जिस वृन्दावन की कल्पना की गई है वह भी नित्य है। रासलीला प्रसग मे श्री कृष्ण के द्वारा अनेक रूपों का एक साथ धारण इसी सत्य को सकेतित करता है कि आराध्य कृष्ण का एक शाश्वत और नित्य रूप है जिसकी देशकालानुसार अनेकरूपता भी दीख जाती है—

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥[3]

वस्तुतः कृष्ण चरित्र में जो दोष बाहरी तौर पर दिखाई पड़ता है उसका परिहार सत्य को कई स्तरों पर देखने से हो जाता है। डा० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य ने दि फिलासफी आफ दि श्रीमद्भागवत मे बहुत परिश्रम पूर्वक यह प्रमाणित किया है कि कृष्ण परब्रह्म है और परब्रह्म भी अनुभाव्य रूपवाले हो सकते हैं, यद्यपि उनका साक्षात् अनुभव तदाकार होने के कारण अनिर्वचनीय रहता है।

वेद उपनिषद् और भागवत को ही, आधार मानकर विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत और अचिन्त्य भेदाभेद वैष्णव सिद्धान्त नामक वैष्णव दर्शनों की रचना ईसा की दसवी शताब्दी से लेकर पन्द्रहवी शताब्दी तक होती रही। इन सिद्धान्तों में विशिष्टाद्वैत इसलिये अग्रणी है कि सबसे पहले आल्वार सन्तों की साधना से प्रेरणा लेकर सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। स्वयं आल्वार सन्त सिद्धान्त के प्रतिष्ठापना के लिये प्रयत्नशील नही थे। उनके साथ विशिष्टाद्वत सिद्धान्त भौगोलिक और ऐतिहासिक कारणों से जुड़ा हुआ है, वह संयोग मात्र है। श्री रामानुजाचार्य ने इन सन्तों के अनुभव को प्रामाण्य का सम्मान दिया। इसलिये उनके सिद्धान्त का कुछ विस्तार से विवेचन यहा कर देना प्रासगिक होगा।

---

१. २, The Philosophy of the Srimad Bhagavata Siddheswara Bhattacharya pp 83 pp xiv

३. श्रीमद् भागवत १०।२३।१९

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त :

अद्वैत सिद्धान्त मे परब्रह्म ही परमतत्त्व माना जाता है, एतदरिक्त जीवात्मा और जगत् उसी परमतत्त्व मे ही अध्यस्त और स्वप्नवत् क्षणभगुर माने जाते है, परन्तु विशिष्टाद्वैत मे चित्, अचित्, और ईश्वर सत्य है। इस सिद्धान्त का नाम विशिष्टाद्वैत इसलिये पड़ा कि ब्रह्म ही कारणावस्था और कार्यावस्था दोनो मे रहता है। प्रलयकाल मे चेतन और अचेतन सूक्ष्म रूप मे तथा सृष्टि के समय स्थूल रूप मे परब्रह्म के शरीर होकर रहते है। इन दोनों अवस्थाओ मे विशिष्ट रूपों मे अद्वैत होने के कारण यह सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहलाता है।

यद्यपि श्री यामुनाचार्य, श्री नाथमुनि, श्री शठकोपाचार्य जैसे पूर्ववर्ती आचार्य इस सिद्धान्त के पहले प्रतिपादक रहे हैं तथापि श्री रामानुजाचार्य के द्वारा यह सिद्धान्त व्यवस्थित रूप मे अधिक प्रकाश मे लाया गया तथा इसको दृढ आधार दिया गया। उन्होंने ही अद्वैत सिद्धान्त का खण्डन करके विशिष्टाद्वैत को सर्वमान्य सिद्ध किया। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त सक्षेप मे इस प्रकार है--

(१) यह भुवन सत्य है। (२) इस भुवन के नियन्ता श्रियःपति नारायण है। (३) श्रियः पति स्वरूप ही परब्रह्म है। (४) यह भुवन ही उनका शरीर है। (५) चेतन स्वरूप समस्त जीव परब्रह्म से सर्वथा भिन्न है। (६) परमात्मा के संकल्प से इस सत् संसार की सृष्टि होती है। (७) भक्ति ही ससार से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है। (८) इसी मार्ग से जीव परमपद को प्राप्त कर भगवान के समस्त गुणो का अनुभव करता है।[1]

आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त पर श्री मुन्शीराम शर्मा का विचार सार विशेष रूप से द्रष्टव्य है--'चित् जीव भोक्ता है और अचित् जगत् भोग्य है, परमेश्वर इन दोनों का अन्तर्यामी है। तीनों नित्य है परन्तु प्रथम दो स्वतःस्वतंत्र होते हुए भी ईश्वर के अधीन हैं। वे उससे भिन्न तो नही कहे जा सकते। परन्तु उसके शरीर अवश्य कहे जा सकते हैं, क्योंकि ईश्वर दोनों के व्यापक है। रामानुज किसी भी पदार्थ को निर्गुण नही मानते। संसार के सभी पदार्थ गुण विशिष्ट है। ईश्वर सदैव सगुण है। वही अमित कल्याणगुण गणाकर

---

१. श्रीमल्लक्ष्मणयोगिनो हि भुवनं सत्यं, तदीशः श्रियः कान्तो, ब्रह्म स एव, सो ऽखिलतनुः भिन्नास्ततश्चेतनाः।
सत्या संसृतिरीशनिग्रहकृता, मुक्तिस्तु भक्त्यादिना, तत्प्राप्तिः परमेपदे तदनुभूत्याख्येति संचक्षते ॥

श्री विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त : श्री श्रीनिवासराघव, नृसिंह प्रिया-से उद्धृत

अनन्त ज्ञानानान्द स्वरूप और ससार की सृष्टि, स्थिति एव संहृति का मूल कारण है। निर्विकल्प समाधि मे भी जीव सविशेष वस्तु का ही प्रत्यक्ष करता है। ईश्वर सजातीय एवं विजातीय दोनों भेदों से शून्य है। चित् जीव भी अचित् जगत् से सर्वथा भिन्न है। तीनों मे अपृथक् सिद्ध संबध है। बाह्य रूप से तीनो में समवाय संबंध है। जो संबध जीव का शरीर के साथ है वही ईश्वर का चित् और अचित् के साथ है।

ईश्वर, चित् एवं अचित् का आश्रय-नियमन-कर्ता तथा उन्हे कार्य में प्रवृत्त करने वाला है। नियामक होने से ही ईश्वर को विशेष्य तथा नियम्य होने से जीव और जगत् को विशेषण कहा जाता है। विशेष्य की सिद्धि पृथक् रूप से भी की जा सकती है, परन्तु विशेषण सदैव विशेष्य के साथ ही रहेगा। रामानुज त्रिविध तत्त्वो की स्थिति स्वीकार करते है और उनमे अंगागी सबध को मानते है। यही विशिष्टाद्वैत मत है।[1]

प्रपंच का सत्यत्व :

यद्यपि अद्वैतवादी प्रपच मे अनुक्षण विकार होने के कारण उसे अनित्य तथा असत्य कहते है तथापि विशिष्टाद्वैती के मत मे इससे भिन्न धारणा है। विशिष्टाद्वैती के मतानुसार अचेतन अर्थात् मूल प्रकृति का विकार ही यह ससार है जो चेतनाचेतनात्मक है। यह पचभूतो से निर्मित है। यह प्रपच ब्रह्म के सदृश सत्य है परन्तु ब्रह्म अपने आप मे स्वतत्र तथा यह परतंत्र है। इसको एक सुन्दर उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है। उसके नाश होने पर पुन: वह मिट्टी मे परिवर्तित हो जाता है। यहा मिट्टी के सत्य को तीन कालों मे देखते है, एक घड़े के निर्माण के पूर्व, दूसरे घडे के आकार मे और तीसरे पुन: मिट्टी के रूप मे। इससे घड़ा अनित्य है परन्तु मिट्टी सत्य है। इसी तरह प्रपच मे विकार होने से वह अनित्य है, परन्तु प्रपच की आधारभूत प्रकृति शाश्वत एवं सत्य है।

आचार्य रामानुज एक अन्य उदाहरण द्वारा प्रपच-सत्यत्व पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि यह प्रपच स्वप्न सदृश असत्य नही। स्वप्न तो प्रतीति मात्र है। जाग्रदवस्था मे स्वप्न-दृष्ट के अभाव का अनुभव करते है। परन्तु यह प्रपंच तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है। यदि प्रपंच नही होता तो ईश्वर और प्रपंच का सबंध जो हमे श्रुतियों से ज्ञात होता है वह निरर्थक हो जाता है। श्रुतियों के

---

१. भागवत भक्ति का स्वरूप : डा० मुन्शीराम शर्मा

कथनानुसार ब्रह्म ही सत्य है और अद्वितीय भी है । इसका यही तात्पर्य है कि परब्रह्म पूर्णतः स्वतत्र, नियामक तथा स्रष्टा है । यह संसार परतत्र है। ब्रह्म को अद्वितीय कहने का तात्पर्य यह है कि उसके सिवा कोई निमित्त कारण नही है परन्तु आक्षेप यहा यह किया जाता है कि यदि अचेतन रूपी प्रपच को सत्य माना भी जाय तो उसे चेतन परमात्मा से कैसे पृथक् कह सकते है। इसका समाधान यह है कि यह प्रपच ईश्वर के अधीन ही रहता है। अतः नियामक होने से ईश्वर को विशेष्य और नियम्य होने से अचेतन-प्रपच को विशेषण कहा जाता है। विशेष्य सर्वथा स्वतंत्र है परन्तु "विशेषण सदैव विशेष्य के साथ ही रहेगा।"

श्रीमन्नारायणस्य जगदीश्वरत्वनिरूपणम् :

तैत्तिरीय उपनिषद् मे यह विचार प्रकट किया गया है कि श्रीमन्नारायण ही इस प्रपंच का स्वामी है और अपने लिये भी वही ईश्वर है।[1] ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है और अति सूक्ष्म है। वह आनन्दमय है। उसका अनुभव कितनी बार करने पर भी अतृप्ति बनी रहती है और निरन्तर उसके प्रति नया तथा आकर्षण बना रहता है। वह द्वेष, क्रोध, दोषादि से सर्वथा रहित एवं मंगलमय है । इसमे विकार नही होता। सदा वह एकरूप ही है।

जीव प्रत्येक जन्म मे पुण्य और पाप कर्म करते रहते है। इन कर्मो के अनुसार जीव को सुख व दुःख भोगने के लिये ही भगवान अपने संकल्प से इस जगत की सृष्टि करता है। इन सुख दुःखों का अनुभव करने के लिये परमात्मा जीवों को शरीर, इन्द्रिया आदि साधन प्रदान करता है । ईश्वर महाकारुणिक है। वह जीव को पाप से बचाने के लिये ही दुःख देता है । वही जीव की रक्षा कर सकता है। वही जीव की माता, पिता, भाई, विश्राम स्थान, रक्षक, सुहृत् तथा प्राप्त करने योग्य फल है।[2] ईश्वर सर्वज्ञ है । वह इतना परमोदार है कि अपने आश्रित भक्तों को उनकी अपेक्षा से अधिक देकर भी यही सोचता है कि मैं उसकी भक्ति के योग्य कुछ नही कर पाया। ईश्वर का सौशील्य गुण यह है कि ईश्वर भक्तो के क्षेमार्थ इस प्रपच मे अवतीर्ण होकर बिना किसी भेदभाव के हिल मिलकर रहता है। यह गुण रामावतार तथा कृष्णावतार मे द्रष्टव्य है। भक्त पराधीनता

---

१. पतिं विश्वस्य आत्मेश्वरम्

२. माता पिता भ्राता निवासः शरणं सुहृत् गतिर्नारायणः,

सुबालोपनिषद् खंड ६ निर्णयसागर

उसके सौलभ्य गुण का सूचक है। भगवान को निर्गुण इसलिये कहा गया है कि उसमे सत्त्व रजस्तमोरूप प्राकृत गुण नही तथा दोष रूप गुण नही है। स्पष्ट रूप से उपनिषद् कहती है कि परमात्मा मे पाप, बुढ़ापा, मरण, शोक, भूख, प्यास आदि नही परन्तु सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व आदि मगलगुण है।[१] अतएव भगवान "अखिलहेयप्रत्यनीककल्याणैकतान" के विरुद से भूषित है।[२]

भगवान हमको दंड देता है, पाप से बचाकर सुधारने के लिये। इस निग्रह संकल्प मे सदय भाव लाने के लिये माता लक्ष्मी कृपा एवं उदारता की मूर्ति सी भगवान के पास विराजमान है। उसका पुरुषकार[३] भक्तों को सदैव मिलता रहता है। परमात्मा के स्वरूप मे माता लक्ष्मी स्वयं विग्रह धरकर रहती है जिससे जीवों को उसके पास जाने में डर नही लगता। ऐसे कारुण्य युक्त लक्ष्मी और भक्तवत्सल भगवान ही प्रपंच के ईश्वर हैं और जीवों के हितार्थ जगत्सृष्टि करते है।

परब्रह्मसर्वशरीरकत्वनिरूपणम् :

जो जगत्-कारण है वही परब्रह्म है "यही उपनिषदों का सिद्धान्त है। महानारायण उपनिषद् मे श्रीमन् नारायण को ही 'परब्रह्म' 'परतत्त्व' 'परंज्योति.' तथा 'परमात्मा' कहा गया है।[४] वह परब्रह्म इसलिये कहलाता है कि स्वयं स्वरूप एवं गुण आदि से सर्वोत्तम है तथा दूसरों को भी वैसे ही उत्कृष्ट गुण्वान बना देता है।[५]

चेतनाचेतनात्मक यह प्रपंच परब्रह्म का शरीर है एवं वह उसकी आत्मा है। प्रपच और परमात्मा का, शरीर-शरीरि अथवा शरीर-आत्म भाव ही विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त है। शरीर का यहा तात्पर्य यह है कि जो दूसरे से सबद्ध रहे और उससे अलग होते ही नष्ट हो जाय। हमारा शरीर ऐसा ही है। जीवात्मा

---

१. अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युः विशोको विजिघत्सो अपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः, श्री सिद्धान्तत्रयसंग्रह : श्री श्रीनिवासराघव, से उद्धृत

२. श्री सिद्धान्तत्रयसंग्रह : श्री श्री निवासराघव से उद्धृत

३. भगवान से हमारे लिये सदय भाव दिखाने के लिये कहना

४. नारायण परंब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः। नारायणपरो ज्योति : आत्मानारायणः महानारायण उपनिषद् ११ खंड ४ श्लोक, ईशादिविंशोत्तरशतोपनिषदः निर्णयसागर

५. बृहत्वात् बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते : श्री सिद्धान्तत्रयसंग्रह से उद्धृत

जब तक इस शरीर मे है तब तक शरीर का अस्तित्व रहता है। जब आत्मा इसे छोड़ती है तो शरीर भी नष्ट हो जाता है। अतः शरीर आत्मा के अधीन है। यह आत्मा अपने इच्छानुसार शरीर से काम करवाती है, क्योकि वह उसका स्वामी शेषी है। यह शरीर आधेय, नियाम्य और शेष दास है। आत्मा, आधार, नियन्ता और शेषी है। उपनिषदे कहती है कि पचभूत, सूर्य चन्द्र सब आत्माए जिस परमात्मा के शरीर है वे जिसे न समझ पाते वह है सर्वेश्वर श्री नारायण। 'अन्त प्रविष्टः शास्ता जनाना सर्वात्मा' सब चेतन और अचेतन की वह आत्मा है—सब वस्तुओं के भीतर प्रवेश करके वह अपनी इच्छा से उनको आज्ञा देकर काम मे नियुक्त कर देता रहता है। अतएव इसके अनुसार यही निरूपित किया जाता है कि सब चेतन और अचेतन परमात्मा के शरीर है। सृष्टि काल मे परमात्मा अपने सकल्प से प्रपच की सृष्टि करता है,चेतन और अचेतन को धारण करता है और प्रलय काल में उन सब को नष्ट करके कारण-भूत अचेतन प्रकृति में लीन बना देता है।

परब्रह्म के नित्य सकल्प से आत्माएं नित्य है। इस प्रकार भगवान एक ही स्वतंत्र और सर्वात्मा है और चेतन और अचेतन उसके शरीर है, वही जगत् का कारण है। अतः वही परब्रह्म है।

जीवेश्वरभेदनिरूपणम् :

जीव परमात्मा के सदृश एक चेतन है। इसका स्वरूप अणु है। अणु होने के कारण से पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर ले लेता है।[1] यह ज्ञानमय तथा स्वयं प्रकाश है। यह आनन्द स्वरूप है, इसका नाश कभी नही होता। इन्ही कारणों से जीव का स्थान प्राकृतिक वस्तुओं से ऊंचा है। जीव के चैतन्य-ज्ञान-गुण के कारण वह चेतन कहलाता है। इसी ज्ञान से ईश्वर के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को जाना जाता है। इसे आत्मा के धर्मभूत ज्ञान कहते है। वस्तुओ को प्रकाशित करते समय अपने को भी यह ज्ञान प्रकाशित करता है। इस ज्ञान का सकोच और विकास होता है। यह सकोच और विकास जीव के पाप और पुण्य कर्मो के अनुकूल होता है। परन्तु इसका स्वाभाविक रूप विकासोन्मुख ही है। आत्मा के 'स्वरूपज्ञान' मे इस प्रकार का सकोच-विकास नही होता।

---

१. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।
श्रीमद् भगवद्गीता २।२२ गीता प्रेस

इच्छा, प्रयत्न, सुख-दुःख आदि इसी धर्मभूत ज्ञान के परिणाम होने के कारण ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता, सुखी आदि नाम चेतन के लिये प्रयुक्त होते है। धर्मभूत ज्ञान के पूर्ण विकास होने पर वह सर्वज्ञ हो सकता है। ससार से मुक्त होने पर सर्वज्ञता चेतन को प्राप्त होती है। इस मुक्ति की अवस्था मे यह परमात्मा के समान सर्वज्ञ और सर्वशक्त होता है, परन्तु रहता ईश्वर के अधीन ही है।

ये चेतन तीन प्रकार के होते है--बद्ध, मुक्त तथा नित्य। अपने पुण्य एवं पाप कर्मो को भोगने के लिये बद्ध जीव इस प्रपच मे उलझते रहते है। ये प्रपत्ति, भक्ति आदि से ससार-सबध से निवृत्त होकर परमात्मा को प्राप्त करते हैं। अतः वे मुक्त कहलाते हैं। ससार का सबंध जिनका नही रहता वे नित्य जीव कहलाते है। ये नित्यसूरि श्रियःपति का नित्यानुभव करते हुए भगवान की सेवा करते है।

जीव परमात्मा से भिन्न है। यह श्रुति के प्रमाण से स्पष्ट है। श्रुति ने कहा है कि परमात्मा एक है जो चेतन और नित्य है। यह अन्य चेतनो की इच्छा पूरी करता है।[1] आदिशेष, गरुड़, विष्वक्सेन आदि नित्यसूरि है जो भगवान की सेवा कर रहे है, भक्त है। इन सेवा करने वाले सूरियों को देखकर आनंदित होने वाले भागवत कहलाते है।

बद्ध जीव और प्रपंच :

सत्त्व, रजस्, तमस् ये प्रकृति के तीन गुण है। इन्ही गुणों के द्वारा प्रकृति, परमात्मा और जीवात्मा के स्वरूप को छिपाती है और जीव मे विपरीत ज्ञान को उत्पन्न करती है।[2] इस विचित्र रूप के कारण इसे माया कहते है। बद्ध जीवों के शरीर सबंध रहते समय तक जीव का धर्मभूत ज्ञान संकुचित रहता है। इस ज्ञान मे सब कालों की वस्तुओं को जानने की शक्ति है। परन्तु जीव की बद्धावस्था मे इन्द्रियो के द्वारा ही ज्ञान संभव होने के कारण वस्तुओं को जानने की शक्ति सीमित रहती है। इसी को ज्ञान सकोच कहते है। इसी ज्ञान सकोच के कारण जीव को असली स्वरूप ज्ञात नही होता और यह भी ज्ञात नही होता कि यह शरीर इन्द्रियों से भिन्न है, ईश्वर से भिन्न है। इसी तरह उसे अपनी

---

१. नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्
कठोपनिषद् ३।२।१३

२. भगवत्स्वरूपतिरोधानकरीं विपरीतज्ञानजननीं स्वविषयायाश्च भोग्य-बुद्धेर्जननीम्

अन्य शक्तियों का भी भास नही रहता। ईश्वर के सदृश उसमे आठ गुण है—पुण्य पाप के संबध मे अलग रहना, बुढापा, मरण, दुख, भूख, प्यास से विमुक्त रहना, अपनी इच्छा को प्राप्त करना । परन्तु ये सब गुण शरीर सबध के कारण प्रतिबद्ध है। इस तरह प्रतिबद्ध होने के कारण जीव शरीर-पोषण को ही भोग्य समझता है और अच्छे या बुरे काम करने मे लगता है। इन कर्मो के अनुकूल फल भोगने के लिये बार-बार जन्म मरण मे उलझता अधिक दुःख पाता है। इस प्रकार जीवों को अपने पुण्य पापों के फल को भोगने के लिये ही भगवान ने प्रपच की सृष्टि की है। अंत मे भगवान की कृपा से अपना स्वाभाविक ऐश्वर्य पाता है और परमात्मा के हृदय मे ही प्रकाशमान रहता है।[1]

भक्ति-काव्य और उसका मानदंड :

भक्ति की साधना ने अपना महत्त्व सिद्धान्त का आधार रखते हुए भी सिद्धान्त द्वारा उतना नही पाया जितना कि साधकों, विशेष रूप से भावोद्बुद्ध संयमशील साधकों द्वारा पाया। यह साधन एक शास्त्रीय मथन तक ही सीमित न रहा। इसमे प्रारभ से लोकानुग्रहपरायण भगवान को आमन्त्रित करने का भाव था। परदुःखकातरता ही इस साधना की कसौटी थी। इसलिये यह साधना सामान्य जन के नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नयन के लिये एक शक्तिशाली आन्दोलन के रूप मे समस्त भारतवर्ष मे प्रसरित हुई। इस साधना को बल मिला पुराणों के पाठ से, भाव-विह्वल स्तुति-गान से, दिव्य लीलाओं के अभिनय से, भगवन्नाम कीर्तन से तथा भगवान के विग्रह के निर्माण तथा 'जंगम तीर्थराज' रूप संत समाज के सहज और भगवद्भावित आचरण से। इसी कारण भक्ति का आन्दोलन जाति, प्रदेश, कुल, अवस्था और विद्या की सीमाओं को लाघकर व्यापक हो सका और देश के एक छोर से दूसरे छोर तक एक नई संवेदना का तार झंकृत कर सका। दक्षिण के सतों की वाणी उत्तर तक फैली और उत्तर के संतों का संदेश दक्षिण तक पहुचा, कृष्ण-कथा और राम कथा ने प्रत्येक भारतीय भाषा में अपना सरस रूपान्तर पाया। आल्वार सन्तों के पद समस्त श्री सप्रदाय की दैनिक पूजा के मंत्र बने। तैलग वल्लभाचार्य ने व्रज भाषा के साहित्य की पुष्टि की। चैतन्य के शिष्यों ने वृन्दावन

---

१. विद्यानिर्वहणेन लब्धविभवो हृद्येष विद्योतते ।

श्रीन्यायसिद्धांजन-वेदान्तदेशिक

श्री विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त : श्री श्रीनिवासराघव, नृसिंह प्रिया से उद्धृत

में आश्रय लिया। महाराष्ट्र के सत नामदेव ने हिन्दी में कविता की। इस प्रकार एक नये भाव धरातल का नव निर्माण हुआ। एक नई कविता का निर्माण हुआ और उस कविता के व्यापक आयाम को समझने के लिये नये काव्य सिद्धान्त का उन्मीलन हुआ।

इस नये सिद्धान्त के प्रतिप्ठापकों मे उल्लेखनीय नाम है—गोपदेव, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी और मधुसूदन सरस्वती। गोपदेव ने हरिलीलामृत मे भागवत भक्ति का काव्यात्मक रूप प्रस्तुत किया। रूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि मे परम प्रेम पर आश्रित श्रीकृष्ण पर आलंबित दिव्य शृंगार के अनुकूल इस सिद्धान्त को नया विस्तार दिया। यह उल्लेखनीय है, मम्मट ने अपने काव्य-प्रकाश मे देवता-विषयक रति को रस न मानकर भाव मात्र ही माना है।[1] रूप गोस्वामी ने संक्षेप मे पहले भक्ति रसामृत सिन्धु नामक ग्रथ में भक्ति रस की स्थापना की। इसका स्थायी भाव मधुरा रति बतलाया। इस रस का दूसरा नाम उन्होंने 'मधुर' भी दिया।

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः स्वाद्यतां मधुरा रतिः।
नीता भक्तिरसः प्रोक्तो मधुराख्यो मनीषिभिः॥

उज्ज्वल नीलमणि मे विस्तार से उज्ज्वल शृंगार का विवेचन किया और उन्होंने प्रेम के छः नाम गिनाए। (१) स्नेह, (२) मान, (३) प्रणय, (४) राग, (५) अनुराग, (६) महाभाव। रूप गोस्वामी ने इसी के अनुकूल आलंबन, उद्दीपन और विभाव अनुभाव तथा संचारि भावों की कल्पना की। उन्होंने स्वकीय और परकीय भाव में अन्तर स्पष्ट किया और सामाजिक धरातल पर परकीय प्रेम का खंडन करते हुए आध्यात्मिक धरातल पर परकीय भाव को प्रविष्ट किया। जहां अभिनव गुप्त ने रस को ब्रह्मास्वादसहोदर मात्र माना था[2] और इसे विषय के सकलन से अविलग नही माना था वहां भक्ति रस की स्थापना ने ब्रह्मानन्द को भी अतिक्रान्त कर दिया और विषय का तो सर्वथा

---

१. **रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाजितः॥**
भावः प्रोक्तः —काव्य प्रकाश : चतुर्थ उल्लास, सूत्र ४८
भंडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना

२. **ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिकचमत्कारकारी शृंगारादिको रसः**
काव्य प्रकाश : चतुर्थ उल्लास, रस निष्पत्ति प्रसंग
तत्र सर्वरसानां शान्तप्राय एवास्वादः विषमेभ्यो विपरिवृत्तया—
अभिनव भारती—अ. १ पृष्ठ ३४० । गायकवाड़ सिरीज।

लोप कर दिया। जहां प्राचीन रस सिद्धान्त मे काव्य भाषा की विशिष्टता की स्थापना थी वहां भक्ति काव्य के नये मान दंडों ने सामान्य भाषा का महत्त्व प्रतिपादित किया। जैसा कि तुलसी की काव्य-सृष्टि नामक शीर्षक निबंध मे श्री विद्यानिवास मिश्र ने प्रतिपादित किया है, प्राचीन रस सिद्धान्त का आधार वस्तु जगत् का निर्वैयक्तिकरण है, वस्तु जगत् का विरोध या अभाव नही वहा भक्ति रस सिद्धान्त का आधार विषय का निर्वैयक्तिकरण नही, व्यक्ति निर्विषयीकरण है तथा इस नये सिद्धान्त के अनुसार काव्य का प्रयोजन, काव्य की परपरा मे परिनिष्ठित, सहृदय की क्षणिक परिनिर्वृति नही। वह उसके ऊपर जाकर सामान्यभाषा, ग्राम्य गिरा, भदेस भणित, कवित्व के विवेक से रहित, वक्रताओ से अपरिचित, सीधे सादे विश्वास और प्रेम में पले सामान्य जन को राममय बनाना है।'[1] यही कारण है कि भक्ति काव्य की योजना लोक-प्रचलित गाथाओं, गीतों और विश्वासों और प्रतीकों से अनुप्राणित है और भक्ति में कही कही शास्त्रीय रूढियों की उपेक्षा भी है।

मधुसूदन सरस्वती अपने 'भगवद् भक्ति रसायन' नामक ग्रथ मे प्रौढ़ विवेचन किया है। उन्होंने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है। भगवान के गुणश्रवण से द्रवीभूत चित्त की, सर्वेश्वर भगवान के विषय मे धारावाहिकता को प्राप्त अविच्छिन्न वृत्ति ही भक्ति है।

द्रुतस्य भगवद्धर्मधारावाहिकतां गता ।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते ॥[2]

उन्होंने द्रवावस्था पर विशेष बल दिया है और इस द्रवावस्था की तीन अवस्थाएं बतलाई है। पहली अवस्था है प्रपंच को सत्य समझना। यह प्राकृत भागवत की अवस्था है। दूसरी अवस्था है प्रपच को मिथ्या समझना, भगवान को सत्य समझना। तीसरी अवस्था है कि प्रपंच का भान ही न होना, यही उत्तम अवस्था है।[3]

उन्होंने द्रुतचित्त मे स्थित वस्तु को, चाहे वह प्रपंचमय ईश्वर हो, प्रपंच

---

१. तुलसी की काव्य सृष्टि : निबंध, श्री विद्यानिवास मिश्र

२. भगवद्भक्तिरसायनम् ॥ १।३

३. द्रवावस्थाप्रविष्टभगवत्स्वरूपमानस्य त्रिविधत्वादुत्तमभागवतो अपि त्रिविधः तत्राद्यं प्रपंचसत्यत्वभानसहितम् । द्वितीयं प्रपंचमिथ्यात्वमानसहितम् । तृतीयं प्रकारद्वयेनापि प्रपंचभानरहितम् ।

श्रीभगवद्भक्तिरसायनम्—भूमिका भाग पृष्ठ ४२, ४३

रहित ईश्वर हो या प्रपच-भान रहित ईश्वर हो, स्थायी भाव की संज्ञा दी और उसी की परमानंद में व्यक्तावस्था ही को रस कहा। इस सिद्धान्त के अनुसार परमानन्द स्वरूप भगवान ही द्रुत चित्त मे प्रविष्ट होकर रस का आकार ग्रहण करते है और इसी माने में भक्ति रस सामान्य शृगार रस से विशिष्ट है कि सामान्य रस स्वतः सिद्ध माया के आवरण से ढका हुआ है जब कि भक्ति रस अखण्ड चैतन्य का रूप है। उसमें जाड्य है ही नही।[1]

मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति की ११ भूमिकाएं बतलाई है।[2] इन भूमिकाओं मे सबसे प्रथम महत्त्व भगवद्भक्तों की सेवा का है। भक्ति भगवान में निरन्तर रमने वाले सन्तों की सेवा के बिना प्राप्त नही होती है। सन्त की महिमा भगवद् भक्ति का द्वार है और सन्त के आचरण के प्रति श्रद्धा होने पर ही भगवान के गुण सुनने में रुचि जगती है और तब भगवत् प्रेम अंकुरित होता है। अकुरित होने पर स्वरूप का बोध होता है और प्रेम बढ़ते बढ़ते ईश्वर को सामने

---

१. स्थायी भावगिरा अतो असौ वस्त्वाकारो अभिधीयते।
व्यक्तश्च रसतामेति परानन्दतया पुनः ॥
भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि।
मनोगतस्तदाकारो रसतामेति पुष्कलम् ॥
कान्तादिविषये अप्यस्ति कारणं सुखचिद्घनम्।
कार्याकारतया अभाने अप्यावृतं मायया स्वतः ॥
सदज्ञातं च तद्ब्रह्म मेयं कान्तादिमानतः।
मायावृत्तितिरोभावे वृत्त्या स्वस्थया क्षणम् ॥
अतस्तदेव भावत्वं मनसि प्रतिपद्यते।
किंच न्यूनां च रसतां याति जाड्यविमिश्रणात् ॥
श्रीभगवद्भक्तिरसायन : श्री मधुसूदन सरस्वती विरचित, ९,१०,११,१२,१३
संपादित : श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय

२. प्रथमम्महतां सेवा, तद्दया पात्रता ततः।
श्रद्धा अथ तेषां धर्मेषु, ततो हरिगुणश्रुतिः ॥
ततो रत्यंकुरोत्पत्तिः, स्वरूपाधिगतिस्ततः।
प्रेमवृद्धिः परानन्दे, तस्याथ स्फुरणं ततः ॥
भगवद्धर्मनिष्ठा अतःस्वस्मिंस्तद्गुणशालिता।
प्रेम्णो अथ परमा काष्ठेत्युदिता भक्तिभूमिकाः ॥
श्रीभगवद्भक्तिरसायन, प्रथम उल्लास ३४, ३५, ३६ ॥

ला देता है। गुण श्रवण के अनन्तर एक नवधा भक्ति का क्रम अपने आप विकसित होता है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दन दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥[1]

इस क्रम के बाद भक्ति की साधनावस्था समाप्त होती है, साध्यावस्था प्रारंभ होती है। प्रेम की पराकाष्ठा रूपी अतिम अवस्था भगवद् विरह को क्षण भर के लिये सहन न करने की अवस्था है और वही सबसे अधिक शुद्ध तीव्र और उज्ज्वल अवस्था है।

भक्ति रसायन मे प्राचीन रस सिद्धान्त के स्थायी भावों को भी भगवद् विषय बनाकर भक्ति रस के अवान्तर भेदो के अन्तर्गत द्वितीय उल्लास मे किया गया है। वहा भी शुद्ध रति, वत्सल रति और प्रेयो रति को दूसरे भावो से अमिश्र बतलाकर सर्वांगपूर्ण कहा गया है। इन तीनों की प्रेयो रति अथवा रागानुगा भक्ति को तीव्रतम बतलाया है।[2] यही कारण है कि गोपी भाव ही भक्ति सिद्धान्त में सर्वोत्कृष्ट भाव है। इस मानदड को ध्यान में रखकर ही भक्ति काव्य का न्यायोचित विवेचन किया जा सकता है। इसका यह अर्थ नही है कि काव्य शास्त्र के दूसरे सिद्धान्त—छन्द, अलकार, रीति, शब्द-व्यापार—भक्ति काव्य पर घटाये नही जा सकते। भक्त कवियो ने भाषा, छन्द या अलकार का उपयोग किया है, पर साधन के रूप मे वस्तु सौन्दर्य का भी निरीक्षण किया गया, पर भावोन्मेष के रूप में और लौकिक भावों को भी सामने रखा है पर प्रतीक के रूप मे। उनका मुख्य साध्य भगवद् प्रेम है और उसकी तीव्रता है। इस तीव्रता के बहाव मे सामान्य काव्य सिद्धान्त किनारे लगाये जाते है। सारा ध्यान चित्त की धारावाहिता पर ही केन्द्रित लगा रहता है। शब्द अपर्याप्त रह जाता है। वह दिव्य अनुभव की गूँज मात्र बनकर आता है। हम प्रस्तुत अध्ययन में इस भूमिका को ध्यान मे रखेंगे।

---

१. श्रीमद्भागवत ७।५।२६
२. शुद्धा च वत्सलरतिः प्रेयोरतिरिति त्रयी ।
भावान्तरामिश्रितत्वादमिश्रा रतिरुच्यते ॥
विशुद्धो वत्सलः प्रेयानिति भक्तिरसास्त्रयः ।
रसान्तरामिश्रितास्ते भवन्ति परिपुष्कलाः ॥
भक्तिरसायन द्वितीय उल्लास ३४, ३५ ॥

२. आल्वार-साहित्य एवं आण्डाल और मीरा का जीवन-वृत्त : परिचय

आल्वार साहित्य का संक्षिप्त परिचय :

श्रीमद्‌भागवत के माहात्म्य मे द्रविड देश को भक्ति का जन्मस्थान कहा गया है। अतः कबीरदास भी "भक्ति उपजी द्राविडी, मानते है। श्रीमद्‌भागवत मे अन्यत्र तमिल देश को भक्ति की भूमि के रूप में वर्णित किया गया है।[1] माहात्म्य के अनुसार भक्ति कर्नाटक में युवती बनकर रही, वही महाराष्ट्र, गुजरात मे आते आते वृद्धावस्था के कारण शिथिल हो गई, आगे चलते चलते उसके ज्ञान, वैराग्य प्रभृति पुत्रों का निधन हो गया और वृन्दावन मे पहुचते ही पुनः उसने जीवन प्राप्त कर लिया।[2] श्रीमद्‌भागवत मे कहा गया है कि विष्णु के परम भक्त दक्षिण मे ताम्रपर्णी, कृतमाला (वैगे) पयस्विनी (पालारु) कावेरी और महानदी (पेरियार) के पवित्र तटो पर उत्पन्न होगे।[3]

---

१. परंपरा से यह देश मानता आया है कि भक्ति का जन्म दक्षिण में हुआ। पद्मपुराण और श्रीमद्भागवत दोनों में एक श्लोक समान रूप से मिलता है जिसमें भक्ति स्वयं अपने मुख से स्वीकार करती है—

उत्पन्ना द्राविडे चाहं, कर्णाटे वृद्धिमागता ।
स्थिता किंचिन्महाराष्ट्रे, गुर्जरे जीर्णतां गता ।।

और हिन्दी में भी परंपरा से आता हुआ एक दोहा है जो भक्ति को दक्षिण से उत्पन्न बताता है :

भक्ति द्राविड ऊपजी, लाये रामानंद
परगट कियो कबीर ने, सात दीप नौ खंड ।

रामानुज, आल्वार संतों की मानस-संतान थे। भक्ति की भावनात्मक अनुभूति पहले आल्वार सन्तों को ही हुई थी। रामानुज ने उन अनुभूतियों से भक्ति का दार्शनिक सिद्धान्त निकाला था।

राजर्षि अभिनंदन ग्रंथ से, लेखक : श्री रामधारीसिंह दिनकर, पृ० ३५९

३. कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणा : ।
क्वचित् क्वचित् महाभागाः द्रविडेषु च भूरिशः ।।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।
कावेरी च महाभागा प्रतीची च महानदी ।।
श्रीमद्भागवत ११-५-३८

दक्षिण मे उत्पन्न वैष्णव भक्त आल्वार कहलाते हैं। आल्वार शब्द का अर्थ भगवत्प्रेमसागर मे डूबनेवाले अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के मूल तत्त्व तक पहुँचकर उसके ध्यान मे मग्न रहने वाले है। इन भक्तो ने परमात्मा का साक्षात्कार करके उसके सौलभ्य परत्व गुणो के अनुभव को अपने पदो मे व्यक्त किया है। ये आल्वार बारह है। उनके नाम और जन्म स्थान का विवरण निम्न प्रकार का है—

१—पोय्गै आल्वार	(सरोयोगिन्)	कांचीपुरम्
२—भूतत्तु आल्वार	(भूतयोगिन्)	महाबलिपुरम्
३—पेयाल्वार	(महायोगिन्)	मइलापुर (मद्रास)
४—तिरुमलिशै आल्वार	(भक्ति सार)	तिरुमलिशै
५—नम्माल्वार	(शठकोप)	आल्वार तिरुनगरी
६—मधुर कवि आल्वार	(मधुर कवि)	तिरुक्कोलूर
७—कुलशेखराल्वार	(कुलशेखर)	वचिक् कलम् (केरल प्रदेश)
८—पेरियाल्वार	(विष्णुचित्त)	श्री विल्लिपुत्तूर
९—आण्डाल	(गोदा)	श्री विल्लिपुत्तूर
१०—तोण्डरडिप्पोडियाल्वार	(भक्ताङ्घ्रिरेणु)	तिरुमण्डङ्कुडि
११—तिरुप्पाणाल्वार	(योगिवाह)	उरैयूर
१२—तिरुमङ्गैयाल्वार	(परकाल)	तिरुवालि तिरुनगरी

श्री पिल्लन के निम्न लिखित श्लोक में आण्डाल को छोडकर अन्य आल्वारों के नाम आये है—

भूतं सरश्च महदाह्वय भट्टनाथ श्रीभक्तिसार कुलशेखर योगिवाहान्।
भक्ताङ्घ्रिरेणु परकाल यतीन्द्र मिश्रान् श्रीमत्परांकुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥

इन आल्वारों द्वारा रचित कुल पद चार हजार है। इन पदो के संग्रह को "चार हजार दिव्य प्रबन्ध" कहते है। इसका पूरा विवरण नीचे दिया जाता है।

	पद संख्या
नम्माल्वार	१२९६
तिरुमंगैयाल्वार	१२५३
पेरियाल्वार	४७३
तिरुमलिशैयाल्वार	२१३

	पद संख्या
आण्डाल	१७३
कुलशेखराल्वार	१०५
पोय्गैयाल्वार	१००
भूतत्तु आल्वार	१००
पेयाल्वार	१००
तोण्डरडिप्पोडिप्याल्वार	५५
मधुर कवि आल्वार	११
तिरुप्पाणाल्वार	१०

इसके अतिरिक्त वैष्णव संप्रदाय के प्रवर्तक और आचार्य रामानुज स्वामी के प्रति रचित १०८ स्तोत्र पद भी चार हजार दिव्य प्रबंध मे संगृहीत है। इस प्रकार श्री निगमान्त महादेशिकन् के द्वारा चार हजार पदों का विवरण दिया गया है। इन चार हजार पदों को विषयानुसार एक एक हजार के चार भागों मे विभाजित किया गया है। इन चार भागों के अलग नाम भी यथा क्रम प्रसिद्ध हैं।

पहला हजार (इशैप्पा)

रचयिता	कृति	पद संख्या
१. पेरियाल्वार	१. पेरियाल्वार तिरुमोलि	४७३
२. आण्डाल	२. तिरुप्पावै	३०
	३. नाच्चियार तिरुमोलि	१४३
३. कुलशेखराल्वार	४. पेरुमाल तिरुमोलि	१०५
४. तिरुमलिशैयाल्वार	५. तिरुच्चन्दवृत्तम्	१२०
५. तोण्डरडिप्पोडिप्याल्वार	६. तिरुमालै	४५
	७. तिरुप्पल्लियेलुच्चि	१०
६. तिरुप्पाणाल्वार	८. अमलनादिपिरान्	१०
७. मधुरकवियाल्वार	९. कण्णि नुण् शिरुत्ताम्बु	११

दूसरा हजार (तिरुमोलि)

१. तिरुमंगैयाल्वार	१०. पेरिय तिरुमोलि	१०८४
	११. तिरुक्कुरुन्ताण्डकम्	२०
	१२. तिरुनेडुन्ताण्डकम्	३०

तीसरा हजार (तिरुवायमोलि)

रचयिता	कृति	पद संख्या
१. नम्माल्वार	१३. तिरुवाय्मोलि	११०२

चौथा हजार (इयर्पा)

रचयिता	कृति	पद संख्या
१. पोय्गै आल्वार	१४. प्रथम तिरुवन्तादि	१००
२. भूतत्तु आल्वार	१५. द्वितीय तिरुवन्तादि	१००
३. पेयाल्वार	१६. तृतीय तिरुवन्तादि	१००
४. तिरुमलिशैयाल्वार	१७. नान्मुकन् तिरुवन्तादि	९६
५. नम्माल्वार	१८. तिरुवृत्तम्	१००
	१९. तिरुवाशिरियम्	७
	२०. पेरिय तिरुवन्तादि	८७
६. तिरुमंगैयाल्वार	२१. तिरुवेलुकूर्रिरुक्कै	१
	२२. शिरिय तिरुमडल	४०
	२३. पेरिय तिरुमडल	७८
	२४. रामानुज नूर्रन्तादि	१०८

इस प्रकार चार हजारी दिव्य प्रबन्ध मे चौबीस ग्रथ सगृहीत है। चौथे हजार के पदों का वैष्णव मंदिरों में भगवान् के उत्सव—मूर्ति की नगर परिक्रमा के समय वेदों के सदृश पारायण किया जाता है। इस दिव्य प्रबन्ध की महत्ता को सिद्ध करने वाले महान् आचार्यों में नाथमुनि, आलवन्दार, रामानुजस्वामी कूरत्ताल्वान्, पराशर भट्ट, वेदान्त देशिक, मणवाल मामुनि आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। दिव्य प्रबन्ध का यह रचना-संग्रह, नाथमुनि, के समय में संपादित हुआ था। कहा जाता है कि दिव्य प्रबन्ध की सभी रचनाएं एक काल में खो चुकी थीं। पुनः अधिक प्रयत्न से प्रकाश में लाने का श्रेय नाथमुनि को ही है। आलवन्दार ने ही नम्माल्वार को आचार्य के स्थान पर प्रतिष्ठापित किया। श्री रामानुजाचार्य ने इस दिव्य प्रबन्ध के रसामृत की सहायता से अन्य धर्मावलंबियों को पराजित कर वैष्णव धर्म की प्रतिस्थापना की और इन आल्वारों द्वारा रचित प्रबन्ध को आधार बनाकर ब्रह्मसूत्र भाष्य की रचना की। तब से वे भाष्यकार के नाम से प्रसिद्ध हुए। कूरत्ताल्वान् और उसके सुपुत्र पराशर भट्ट ने दिव्य प्रबन्ध के सार को संस्कृत मे स्तोत्रों के रूप में चित्रित किया है। कूरत्ताल्वान् द्वारा रचित ग्रन्थ वैकुण्ठस्तवं, वरदराजस्तवं, सुन्दरबाहुस्तवं, श्री स्तवं, अतिमानुषस्तवं और पराशर भट्ट द्वारा रचित रंगराजस्तवं एवं गुणरत्नकोश है। चौदहवी शताब्दी के आसपास श्री वेदान्त देशिक ने तमिल एवं दिव्य

प्रबन्ध की निन्दा करने वाले अन्य धर्मावलंबियों को पराजित कर यह सिद्ध किया कि "दक्षिण वेद" (दिव्य प्रबन्ध), संस्कृत में विरचित वेद की तुलना में किसी भी स्तर मे कम नही कहा जा सकता है। श्री वेदान्त देशिकजी के कारण श्री वैष्णव सिद्धान्त उभय-वेदान्त के रूप मे प्रसिद्ध हुआ। तिरुवाय्मोलि, नम्मा-ल्वार द्वारा रचित, ग्रंथ के लिये लिखी गई विशेष टीका को मणवाल मामुनि ने ही अधिक प्रचार कर उसके महत्त्व को बढ़ाया।

इन आचार्यो के अतिरिक्त समस्त दिव्य-प्रबन्ध के लिये सस्कृत मिश्रित तमिल में जिसे 'मणिप्रवाल शैली' कहते है, टीका लिखनेवालों में प्रथमतः पेरियवाच्चान पिल्लै का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी मणिप्रवाल शैली में अलकिय मणवालप् पेरुमाल् ने आल्वार भक्तों की रचनाओं से सार संग्रह के रूप में 'आचार्य हृदय' नामक ग्रंथ की रचना की है।

आल्वारों का समय :

यदि आल्वारों के पदों के आधार पर तथा तमिल शैली को ध्यान में रखकर देखें तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आल्वारों का समय तमिल साहित्य के 'तृतीय संघोत्तर' काल के उपरान्त ही है। क्योंकि ये समस्त सन्त कवि अपनी रचना की भाषा, पद के अन्त में 'सगत् तमिल' घोषित करते है।[१] इसके अतिरिक्त इनकी रचना में संघ काल साहित्य का प्रभाव अधिक मात्रा मे उपलब्ध है और अपने समय के राजाओं का तथा मदिर निर्माण के दाताओं का उल्लेख इनके पदों मे मिलता है।[२] इसके आधार पर हम यह कह सकते है कि आल्वारों का समय ईसवी छठी शताब्दी से नवी शताब्दी तक का है। 'प्रपन्नामृत ग्रंथ' के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि नाथमुनि ८२५ ई० में पैदा हुए थे। वे ९३ वर्ष जीवित रहे। अतः यही सिद्ध होता है कि इनके पूर्व आल्वारों का समय रहा होगा।

आल्वारों का सिद्धान्त :

आल्वारों का सिद्धान्त है कि श्रियःपति नारायण ही परतत्त्व और जगत्कारण

---

१. संगमुकत् तमिल् मालै पत्तुम् वल्लाय—पेरिय तिरुमोलि ३।४।१०
संगत् तमिल् मालै मुप्पदुम् —तिरुप्पावै पद ३०

२. कोच् चेंगणान् के मंदिर निर्माण कार्य और नन्दिवर्मन नामक पल्लव राजा के युद्ध तिरुमंगै आल्वार से वर्णित हैं।
तमिल इलक्किय वरलारु—ई. एस. वरदराजय्यर पृष्ठ २४९

है, जो प्रपच की सृष्टि, स्थिति और संहृति का मूल कारण है। समस्त चेतन और अचेतन उनके शरीर है। अपने भगवदनुभव से आल्वार भक्तों ने परमात्मा को स्वामी और स्वय को दास मानकर उसकी कृपा से, उसके चरणों की सेवा करना ही पुरुषार्थ बतलाया है। जब परमात्मा के प्रति इनका प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है तो अपने स्वरूप को भूल जाते है और सर्वांग सुन्दर मनोनयनहारी परमात्मा को प्रेमी और अपने को उसके मिलन के लिये तड़पनेवाली प्रेयसी का अनुभव करते है। प्रियतमा के सदृश "साजन" से मिलन का सुख और विरह का दुःख भोगते है।

आल्वारों की भक्ति में दास्य, वात्सल्य तथा कान्ता, तीन भावों की प्रधानता है। कुलशेखराल्वार ने तो अपने को माता कौशल्या या देवकी मानकर श्याम सुन्दर को अपना लाड़ला पुत्र समझ कर भावानुभव को प्रकट किया है। परकाल आल्वार का अनुभव तो और भी विलक्षण है। वे श्री रामचन्द्रजी का अनुभव करते करते रावण को अपना शत्रु मानकर, युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाते है। पेरियाल्वार के परतत्त्व का वर्णन तथा वात्सल्य का वर्णन अत्यन्त विलक्षण है। पेरियाल्वार, सूरदास की भाति वात्सल्य के रसराज हैं। आण्डाल तो कृष्ण की भक्तिन है और स्वयं को गोपी समझती है। नम्माल्वार के शिष्य "मधुर-कवि" ने तो अपने गुरु को विष्णु का अवतार ही माना है। नम्माल्वार का मत है कि जैसे पत्नी अपने पति के आश्रय मे रहती है वैसे ही भक्त को भगवान के आश्रय में रहना चाहिए। उनकी भक्ति 'दास्य-भाव' की है। वे आत्म निवेदन द्वारा प्रभु के समक्ष अपने पापों को अनावृत कर रख देते हैं। आपका मत है कि यदि भक्त के हृदय में प्रभु के लिये पवित्र श्रद्धा और प्रेम की भावना हो तो प्रभु का अहेतुक प्रेम भक्त को अनायास ही प्राप्त होता है। नम्माल्वार अपने को प्रभु की पत्नी के रूप में प्रस्तुत करते है।

आल्वारों का सिद्धान्त यही है कि वे प्रभु-सामीप्य रूप मोक्ष को उत्तम मानते हैं। दास्य भाव से भगवद् कैंकर्य करना ही मोक्ष है। समस्त जगत् और वस्तुओं को भगवान के शरीर-रूप में अनुभव करते हैं। उनका निर्देश है कि श्रीमन्नारायण के अतिरिक्त अन्य देवों मे आस्था नही रखनी चाहिए। आल्वार भक्ति के स्वरूप पर आचार्य मुन्शीराम शर्मा के विचार द्रष्टव्य है—

"आल्वार भक्त का प्रेम सतत नित्य रूप में रहनेवाला है। जब यह प्रेम सघन एवं सान्द्र रूप धारण करता है तब उसकी संज्ञा अनिर्वचनीय हो जाती है। इस प्रगाढ़ प्रेम की अवस्था मे भक्त भी मूक और नीरव बन जाता है। यह प्रेम तीन अवस्थाएं प्राप्त करता है।

स्मरण, मूर्च्छा, अनन्त विराम ।

स्मरण में प्रभु की कृपा से प्राप्त आनन्द की अवस्था का भक्त के हृदय मे बार बार जागरण होता रहता है । मूर्च्छा में भक्त उस आनन्द की स्मृति से आत्म-विभोर हो उठता है । अनन्त विराम मे उसकी अवस्था एकदम स्तब्ध हो जाती हैं । उस समय बाह्य रूप से उसमें और जड ठूँठ मे विशेष अन्तर नही रहता ।"

आल्वार : जीवनी एवं साहित्य :

प्रथम तीन आल्वार :

इन तीनों की अन्त.स्फूर्त भगवत्स्तुति रूप रचना क्रमशः पहला, दूसरा, और तीसरा तिरुवन्तादि के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन तीनों आल्वारों का परमात्मा के सभी रूपों पर प्रेम है, विशेषकर उनके ऐश्वर्यशाली वामनावतार के प्रति इनका आकर्षण है । अर्चा मे तिरुपति के वेंकटाद्रि नाथ पर इनका अधिक मोह है । वेंकटाद्रि नाथ के गुण गान के वर्णन ही उनके पदों मे उपलब्ध है। भगवदनुभव के प्रसारण मे अन्य आल्वारो के लिये ये तीनों मार्गदर्शक है । अतः ये "प्रथम तीन आल्वार" कहलाते हैं ।

बहिःसाक्ष्य के आधार पर डा० कृष्णस्वामी अय्यगार ने इन तीनों आल्वारों का आविर्भाव दूसरी शताब्दी के आसपास माना है। वे अपने कथन की पुष्टि के लिये संघ काल के प्रसिद्ध पोय्गैयार और इस पोय्गैयाल्वार दोनों को एक सिद्ध करते हुए रावसाहिब मु० राघवय्यंगार के मत को प्रामाणिक मानते है । परन्तु अनेक विद्वानों ने इस मत का खंडन करते हुए सिद्ध किया है कि संघ काल के पोय्गैयार और पोय्गैयाल्वार दोनो भिन्न-भिन्न है । इसका कारण यह है कि भूलकर भी अन्य देवताओं की वन्दना न करनेवाले पोय्-गैयाल्वार ने अपने समय के राजाओं की प्रशस्ति की है, ऐसा मानना उचित प्रतीत नही होता । संघ काल के पोय्गैयार के पदों में अपने समय के चोल, चेर, राजाओं के युद्ध वर्णन मिलते हैं । इसके अतिरिक्त दूसरी शताब्दी से पाचवी शताब्दी तक तमिल प्रदेश, कलप्पिरर् नामक राजाओं द्वारा शासित रहा । इस काल में धार्मिक उत्थान के लिये कही भी प्रावधान नही रहा है । अतः अन्तः साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रथम तीनों आल्वारों का समय छठी शताब्दी के आसपास माना जा सकता है। पोय्गैयाल्वार और भूतत्तु आल्वार के पदों में पल्लव राजा, नरसिह पल्लव द्वारा निर्मित 'मामल्लपुर' का उल्लेख मिलता है । यह प्रमाण तर्कसंगत भी है। नरसिह पल्लव ने

ई० ६२५ से ६६० तक राज किया था।[1] परन्तु यहाँ ध्यान देने की बात है कि नरसिह पल्लव ने इस मंदिर का निर्माण नही किया, केवल उसका पुनर्नवीकरण किया है।[2] इन आल्वारो की जीवनी के बारे में अनेक प्रकार की किवदन्तियाँ प्रचलित हैं।[3]

तीनों आल्वार बड़े ज्ञानी और सात्त्विक पुरुष है। ये सदा यही विचार करते है कि हम ईश्वर की विभूति है और वह हमारा सर्वस्व है। ज्ञान, भक्ति और वैराग्य मे डूबकर तीनो सदा घूमते रहते थे। इन तीनों आल्वारो के पदो से नीचे दिये गये कुछ पदों के भावानुवाद से इनके भगवत्प्रेम का अनुमान किया जा सकता है।

> "मेरा मुख उस परमात्मा को छोड़ कर जिसने महाबलि से इस जगत् की रक्षा की, दूसरे की स्तुति नही करेगा। ये कर उसके सिवा अन्य किसी के समक्ष अंजलिबद्ध नही होगे। पूतना का सहार करनेवाले श्री ब्रजविहारी के रूप को छोड़कर न मेरे दृग

---

१. आल्वारकल् काल निलै रावसाहब मु० राघवय्यंगार पृष्ठ २४ और अर्लि हिस्टिरी आफ वैष्णविसम् इन सावुत - डा० कृष्णस्वामी अय्यंगार, पृष्ठ ६७-७३

२. तमिल् इलक्किय वरलारु—इ० एस० वरदराजय्यर, पृष्ठ २५५ मामल्लै कोविल् मदिल् कुडन्दे—भूतत्तु आल्वार, पृष्ठ २५५

३. गुरु परंपरा के अनुसार पोय्गैयाल्वार, भूतत्तुआल्वार, और पेयाल्वार का जन्म द्वापर युग के अन्त में अब से ६१४४ वर्ष पूर्व हुआ। पोय्गैयाल्वार का जन्म कांचीपुरम के निकट एक सरोवर में पुष्पित सुन्दर कमल से, भूतत्तुआल्वार का जन्म महाबलिपुरम् में माधवी लता के सुगंधित पुष्प से, और पेयाल्वार का जन्म मइलापुर में मंदिर के कुएं के रक्त कमल से हुआ। तीनों को क्रमशः विष्णु के शंख, (पांचजन्य), गदा (कौमोदकी) और खड्ग (नन्दक) के अवतार मानते है। तीनों जाति के ब्राह्मण हैं। एक घटना इस प्रकार है कि गहन रजनी में वर्षा हो रही थी। पोय्गैयाल्वार एक टूटी फूटी कुटिया के अन्दर जा ठहरे। थोड़ी देर बाद भूतत्तु आल्वार ने वहाँ आकर कपाट खटखटाये। तब अन्तःकक्ष से यही उत्तर मिला कि एक ही के उपयुक्त शयन का स्थान है। इस पर दूसरे आल्वार ने कहा "ठीक है तब दो बैठ सकते हैं।" इतने में तीसरे आल्वार वहीं आ पहुंचे। उनसे कहा गया कि यहाँ दो व्यक्तियों को ही बैठने के लिये

और किसी रूप को देखेंगे और न मेरे कर्ण किसी का नाम ही सुनेंगे ।"[1]

"भगवान इतना सुलभ है कि उनके भक्त जिस रूप को चाहते है वही रूप वह अपने लिये बना लेता है । जो नाम भक्त को पसंद है वही नाम रख लेता है ।"[2]

"भगवान के नामोच्चारण करने के लिये मुँह के अन्दर ही जिह्वा है जिसे अन्यत्र खोजने की आवश्यकता नही है । जपने के लिये मधुर "नमो नारायण" शब्द है । आश्चर्य है कि लोग अपने पास के साधन को न अपनाकर भगवान को प्राप्त करना छोडकर दिशा-भ्रमित मार्ग पर क्यों चलते है ।"[3]

"मेरे आराध्य देव कमल नयन वासुदेव को प्रणाम करने के उपरान्त, इस तुच्छ रजोगुणमय संसार में क्या सार है अथवा "नित्य सूरियों" के साथ बैकुठ मे जाकर रहने में क्या आनन्द है ।[4]

"तपस्या करने के लिये पहाड की चोटी पर जाना, पानी मे खडे रहना, या पंचाग्नि तपाने की कोई आवश्यकता नही है । सर्वेश्वर के चरण कमलों मे भक्ति भाव से फूल चढ़ाकर हाथ जोड़ो तो पाप स्वयं यह सोचकर कि उसके रहने का स्थान यहाँ नही है, भाग जायगा ।"[5]

जगह है, तब यह कहते वे आल्वार अन्दर आ पहुंचे कि तीनों के लिये खड़े होने की जगह तो है । तीनों ने वहाँ खड़े हुए यह अनुभव किया कि कोई चौथा व्यक्ति उनको ढकेल रहा है । अपने दिव्य-ज्ञान-चक्षु से तीनों ने देखा कि भगवान श्रियःपति ही अपने बीच खड़े हैं । भगवान के दर्शन से गद्‌गद् हो कर तीनों ने उनके माहात्म्य व गुणों की स्तुति करते हुए सौ सौ पदों की सर्जना की ।

तमिल इलक्किय वरलारु : ई० एस० वरदराजय्यर
वैष्णवमुम् तमिलुम्
तथा प्रथम तीन आल्वार : श्री श्रीनिवासराघवन, नृसिंह प्रिया

१. प्रथम तिरुवन्तादि : पद ११
२. प्रथम तिरुवन्तादि : पद ४४
३. वही पद ९५
४. दूसरा तिरुवन्तादि पद १०
५. तीसरा तिरुवन्तादि पद ७६

"यह सोचने की कोई आवश्यकता नही कि भगवद्भक्ति उत्तम है या यह ससार। परमात्मा के मनोहर चरण कमलो का भजन करना चाहिए, जो सबके लिये सुलभ है। इससे सारे पाप विनष्ट हो जायेगे।[१]

तिरुमलिशै आल्वार :

गुरु परपरा के अनुसार इनके जन्म के विषय मे यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि कांचीपुरम् के निकट तिरुमलिशैयार का जन्म हुआ। उनके माता पिता का नाम कनकागी और भार्गव महर्षि था। परन्तु वे तिरुवालन नामक चतुर्थवर्ण के लकड़हारे के यहाँ पले। उस लकड़हारे को "कनिकण्णन" नामक एक लड़का पैदा हुआ, जो पीछे तिरुमलिशैयार का शिष्य बन गया। उनकी जीवनी के संबध मे भी अनेकानेक किवदन्तिया प्रचलित है।[२]

तिरुमलिशैयार ने कट्टर वैष्णव बनने के पूर्व सांख्य, योग, शंकर का अद्वैत सिद्धान्त आदि दर्शनो का गहरा अध्ययन किया।[३] परन्तु वे इन दर्शनों से प्रभावित न हुए। अततः वे पेयाल्वार के उपदेश से विष्णु भक्त बनकर परतत्त्व का प्रचार करने के लिये भ्रमण करते रहे। ये तीव्र कट्टर वैष्णव हैं। अन्य धर्मो के प्रति इनमे सहिष्णुता की भावना नही है। इन्होंने शैव, जैन धर्म की कटु आलोचना की है और यहाँ तक कहा है कि जैन बौद्ध धर्मावलंबी अज्ञानी है, शिव भक्त तो मूढ़ है।[४]

---

१. तीसरा तिरुवन्तादि पद ८८

२. कहा जाता है कि एक बार तिरुमलिशैयार ने वृद्ध स्त्री को अपनी तापस शक्ति से सुन्दर युवती के रूप में परिणत कर दिया तो उस देश के राजा ने आल्वार के शिष्य से प्रार्थना की कि उसे भी युवक बना दे। शिष्य ने इन्कार कर दिया तो राजा रुष्ट हो कर गुरु शिष्य को देश निष्कासन का दंड दे दिया। तब आल्वार ने भगवान् से प्रार्थना की कि तुम्हारा भक्त कनिकण्णन जा रहा है और उसके साथ मै भी। अपनी शेषशय्या लपेटकर तुम भी चले जाओ।

३. "साक्कियम् कर्रोम् समणम् कर्रोम शंगरनार्
आक्किय आगम नूल आराय्न्दोम्—पाक्कियत्ताल्
सेंकट् करियानैच् चेर्न्दु याम् तीदिलोम्
एंगट् करियतोन्रिल् ॥ तमिल इलक्किय वरलारु : वरदराजय्यर पृष्ठ २६२

४. अरियार, शमणर्, अयरन्तार् बबुत्तर्,
शिरियार् सिवभत्तर्, शेप्पिल्-वैरियाय
मायवने, मालवनै एत्तादार्
ईनवरे, आदलाल् इन्रु ॥　　नान्काम् तिरुवन्तादि पद ७

इस आलवार के काल निर्णय मे भी विभिन्न मत मतान्तर प्रचलित है। श्री एल० डी० स्वामिक्कणु पिल्लै प्रथम चार आल्वारो को ईस्वी ७२० के आसपास मानते है। अन्त: साक्ष्य मे एक पद के आधार पर यह धारणा प्रचलित है कि महेन्द्रवर्म के राज्यकाल में अर्थात् ई० ६२५ के आसपास भक्त सार रहे होगे।[1] इस कथन का डा० कृष्णस्वामी अय्यंगार ने खडन किया है। मु० राघवय्यंगार ने इनका समय ७०० ईस्वी के निकट माना है।[2] परन्तु बहि:-साक्ष्य के आधार पर अनेक विद्वानों का मत है कि इस आल्वार के समय को छठी शताब्दी के अंत मे माना जा सकता है, क्योंकि इसी काल मे शैव सप्रदाय के भक्तों मे श्रेष्ठ 'अप्पर' और "संबंधर" ने शिव जी के माहात्म्य का बढ़ा

१. आवकै कोडुत्तलित्त कोने गुण परने चौथा तिरुवन्तादि : पद ९३
२. आल्वारकल् कालनिलै—मु० राघवय्यंगार पृष्ठ ३९
दोनों के चले जाने पर सारा शहर श्री विहीन हो गया। राजा अपनी करनी पर पछताता हुआ, कन्किण्ण से और गुरु से क्षमा मांगी तो आल्वार ने भगवान से पुनः प्रार्थना की कि तुम्हारे भक्त ने जाना छोड़ दिया और उसके साथ मैने भी। तुम भी पहले के जैसे आकर अपनी शय्या पर लेटे रहो।

प्रयाति रोषात् कणिकृष्ण कोविदः तमन्वगेमि त्वमिहास्पदं त्यजन्।
फणीन्द्रतल्पं परिगृह्य मामनुव्रजेति पद्मं स विधाय निर्ययौ॥
पुनर्निवृत्तः कणिकृष्णकोविदः सभार्गवः कांच्यधिनाथ माधव।
इह त्वमास्तीर्य भुजंगमास्तरं कुरुष्व निद्रामिति पद्यमातनोत्॥

कहा जाता है कि ये एक बार कुभकोणम् जाते समय मार्ग में किसी ब्राह्मण के घर की देहली में थोड़ी देर ठहरे। वहाँ ब्राह्मण वेद पाठ कर रहे थे। आल्वार को शूद्र समझ कर पाठ बंद कर दिया। उनके चले जाने पर ब्राह्मणों को इसका स्मरण कितने प्रयत्न करने पर भी नहीं आया कि उन्होंने पाठान्त कहां किया था। उन्होंने आल्वार में भगवान विष्णु के दिव्य रूप का दर्शन कर क्षमा माँगी और नमस्कार किया। यह भी प्रसिद्ध है कि कुंभकोणम् पहुंच कर नम्माल्वार द्वारा विरचित पदों को सुन कर अत्यधिक आनंदित हुए और उन पदों के सामने अपने पदों को निकृष्ट मान कर सभी पदों को फाड़कर कावेरी में फेंक दिया और मात्र २१६ पद ही बचे। तिरुमलिशैयाल्वार—श्री श्रीनिवासराघवन, नृसिंहप्रिया

चढाकर अपनी रचना मे वर्णन किया है। हो सकता है कि इस आल्वार ने उनके खण्डन करने के निमित्त कट्टर मार्ग अपना लिया होगा। यह युक्ति संगत भी प्रतीत होता है।

इन्होंने दो प्रबंध रचे। (१) नान्मुकन् (चतुर्थ) तिरुवन्तादि (२) तिरुच्चन्द वृत्तम्। इनमें ये परतत्त्व का निर्णय करते हुए कहते हैं कि श्रीमन्नारायण ही परमात्मा है और शेष देवता गण उसके इच्छानुसार सृष्टि आदि कार्य करनेवाले हैं, सहचर हैं। ईश्वर को सर्वशक्तिमान् निरूपित करते हुए कहते हैं—

मैंने यह जान लिया कि तू ही सर्वशक्तिमान है तथा ब्रह्म और रुद्र का ईश्वर तू ही है। तू ही जगत् कारण है। जो कुछ जाना गया है और जो कुछ ज्ञात होनेवाला है सब तू ही है। सब कर्मो का आराध्य भूत ईश्वर तू ही है।[1]

श्री भक्तिसार के कुछ पदों का भावानुवाद इस प्रकार है—

> "चारों वर्णों के किसी भी गृह मे मेरा जन्म नही हुआ है। मैंने श्रेष्ठ वेदों का भी अध्ययन नही किया है। शास्त्र ज्ञान के अभाव में अपनी इन्द्रियों को नियत्रण मे नही ला सका। अतएव शब्द स्पर्शादि विषय वासनाओं ने मुझे आक्रान्त कर लिया है।"[2]
>
> "हे मेरे मन, भगवान, माता पिता की तरह हमारा हित करता है। स्वामी की तरह हमारी रक्षा करता है। वही मुक्ति देनेवाला है। वह हमारे सांसारिक दुःखों को दूर करने के लिये उद्यत है। इस दशा मे तुम क्यों दुःख मे पड़े हो।"[3]

पेरियाल्वार :

पेरियाल्वार का जन्म दक्षिण के श्री विल्लिपुत्तूर (श्री धन्वीपुर) नामक नगर मे ब्राह्मण के वेयर कुल मे हुआ था।[4] पेरियाल्वार की जन्म तिथि के संबंध में अनेक मत प्रचलित है। गोपीनाथ राव उनका जन्म नौवी शताब्दी

---

१. चौथा तिरुवन्तादि पद ९६

२. तिरुच्चन्दवृत्तम् पद १०

३. वही पद ११५

४. वेयरतंगल् कुलत्तुदित्त विट्टुचित्तन। (वेयर कुल में पैदा हुआ विष्णुचित्त)
पेरियाल्वार तिरुमोलि ५।४।११

वेयर पुकल् विट्टुचित्तन् (वेयरकुल में प्रसिद्ध विष्णुचित्त)
पेरियाल्वार तिरुमोलि ९।८।११

के प्रारंभ मानते है। मु० राघवअय्यंगार ने "अल्वारकल् काल निलै" मे अपने खोज पूर्ण लेख में इस मत का खण्डन करते हुए सिद्ध किया है कि पेरियाल्वार का जन्म ६९० ई. में हुआ और ये ८५ वर्ष जीवित रहे। श्री अय्यंगार ने सिन्नमनूर शिलालेख मे उल्लिखित चार मारवर्म राजाओं मे तृतीय मारवर्म को ही पेरियाल्वार का समकालीन माना है और यह युक्ति संगत प्रतीत होता है।पाँच गोपीनाथ राव के कथनानुसार चतुर्थ मारवर्म वल्लभ को (ई० ८६२) पेरियाल्वार का समकालीन मानने में विशेष कठिनाई होती है, क्योंकि इन्ही के काल में आचार्य नाथमुनि रहे। चूंकि नाथमुनि ने चार हजार दिव्य प्रबध का संग्रह किया, इसलिये ये पेरियाल्वार के काल में रहे होंगे, ऐसा माना नही जा सकता। क्योंकि आल्वार और इन आचार्यो के बीच का समय अवश्य एक शताब्दी का रहा होगा।[1]

पेरियाल्वार के माता-पिता बडे भक्त थे। बचपन से ही मां-बाप की भगवद् भक्ति का प्रभाव इस बालक पर पडा। गहरे वेदाध्ययन करने के उपरान्त उन्होंने यह निश्चय किया कि भगवत्कैकर्य ही सबसे उत्तम पुरुषार्थ है। विष्णुचित्त ने सुन्दर फुलवारी लगाई और प्रतिदिन भगवान श्री रंगनाथ वटपत्रशायी को एक पुष्पमाला समर्पित करते थे। भगवान के इस कैंकर्य का तथा वटपत्रशायी मदिर में अपने को गौरवान्वित किये जाने का उल्लेख स्वयं उन्होने एक पद मे किया है।[2]

पेरियाल्वार के बारे मे यह प्रसिद्ध है कि पांड्य वंश के वल्लभ देव नाम के मदुरै के अधिपति के दरबार में 'परतत्त्व" पर शास्त्रार्थ करके अन्य धर्मावलबियों को पराजित कर स्वर्ण-शुक को पुरस्कार मे प्राप्त किया। उन्होने इस सिद्धान्त को स्थापित किया कि श्रीमन्नारायण ही "परतत्त्व" है, वही मोक्ष देनेवाला है और उसका अनुभव तथा सेवा ही परमपुरुषार्थ है। कहा जाता है कि शास्त्रार्थ मे विजय के उपलक्ष्य में उनके सम्मानार्थ राजा वल्लभ देव ने नगर परिक्रमा के निमित्त विराट जुलूस का आयोजन किया। नगरपरिक्रमा के समय आकाश में श्रीमन्नारायण के लक्ष्मी गरुड़ सहित दर्शन कर आनन्दातिरेक में भगवान की रक्षा हेतु 'जुग जुग जिये"—पल्लाण्डु पल्लाण्डु—का रक्षा-स्तोत्र के द्वारा स्तुति करने लगे।[3] भगवान की मनोहर सुकुमार तथा नीलमेघ

---

१. आल्वारकल् काल निलै : मु० राघवय्यंगार पृष्ठ ६६
२. हिस्ट्री आफ श्री वैष्णवास् : गोपीनाथ राव : पृष्ठ २३
३. तिरुप्पल्लाण्डु : पेरियाल्वार पद ८, ९ ॥ ३ तिरुप्पल्लाण्डु : पेरियाल्वार, पद १२

सदृश कांति को देखकर विष्णुचित्त अत्यन्त भयभीत हो गये कि कही इस पापी ससार मे मनुष्यो के बीच मे आने पर उसे कोई हानि नही पहुंचे। अतः सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परमात्मा की रक्षा हेतु उत्कठित होकर "तिरुप्पल्लाण्डु" का गायन किया। अत. ये पेरियाल्वार अर्थात् "उत्तम आल्वार" कहलाये। अत्यधिक प्रेम मे भय की आशका होना, भावना-उत्कर्ष की चरम सीमा को सूचित करता है। इस "तिरुप्पल्लाण्डु" के बारह पदो को श्री वैष्णव प्रति दिन पूजा के समय श्रद्धा व भक्ति के साथ गाते है।

वल्लभ देव से प्राप्त सम्मान को वटपत्रशायी भगवान को अर्पित कर पूर्ववत् मालाकार के रूप मे ही भगवान की सेवा मे तल्लीन रहे। तब से विष्णुचित्त श्री विल्लिपुत्तूर के भट्टनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए।

भगवान की लीलाओ मे विशेषतः कृष्णावतार पर वे अधिक आकृष्ट हुए। उसमे विशेषतः कृष्ण की बाल-लीलाओ से वे मोहित होकर अपने विलक्षण अनुभव को "पेरियाल्वार तिरूमोलि" अर्थात् विष्णुचित्त की श्री सूक्ति मे किया है। तमिल मे ९६ तरह के गीत-विधान हैं, जिनमे मानव-जीवन कार्य-कलापो का वर्णन विशेष रूप से होता है। इसमे बालकों की क्रीडा से सबधित वात्सल्य रस युक्त पदों को "पिल्लैत् तमिल" कहते है। इसमे आराध्य देव अथवा नायक या नायिका के बालक जीवन का सुन्दर वर्णन वर्णित है। पेरियाल्वार का बाललीला वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है। इन्होंने बाल-कृष्ण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन किया है। इनके वर्णन के समक्ष अन्य कवियों का वर्णन प्रतिकृति सा जान पड़ता है। कृष्ण का जन्मोत्सव, पालने मे सुलाना, लोरी, चदा मामा दिखाना, कृष्ण का नाचना, ताली पीटना, बालक कृष्ण का यशोदा की पीठ पर आरूढ़ होना, दूध पीना, घुटनो के बल चलना आदि बचपन की क्रीड़ायें, दही माखन चोरी, बछड़ो को खोल देना, दही का मटका लुढका देना, गाय-बछड़े चराना, रास नृत्य, बसी बजाना, गोवर्धन उठाना, आदि क्रीड़ाओं का सजीव वर्णन पेरियाल्वार ने चित्रित किया है। यदि पेरियाल्वार को वात्सल्य के रसराज कहे तो वह अत्युक्ति नही है। उन्होंने अपने गीत-काव्य में वर्ण्य विषय के रूप मे बालकृष्ण को ही लिया है और वात्सल्य वर्णन को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है।

बाल वर्णन के अतिरिक्त इनके पदों में हिरण्यासुर का वध, कालियदमन, पूतना का संहार, यमलार्जुन वृक्ष को तोड़ना, सप्त ऋषभों को वश में कर नप्पिन्नै से विवाह करना, धेनुकासुरों का संहार, भगवान विष्णु के दशावतार, कृष्ण का पार्थ-सारथी बनना, रावणसंहार, त्रिविक्रमावतार, पांडवों का दूत

बनना, कुब्जा का उद्धार, कस का बध, गजेन्द्र की रक्षा, बकासुर का सहार, घट नर्तन, इत्यादि का उल्लेख और वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। गोपियों के साथ कृष्ण का रूप वर्णन अद्वितीय है। गोपियो के अतुलनीय प्रेम, पांचजन्य पर कही गई उक्तियां आदि के संबध मे पेरियाल्वार ने वास्तविक स्वर्गलोक की स्थापना की है। श्रीरग, तिरुप्पेर नगर, कुम्भकोण, तिरुक्कण्णपुरम्, तिरुक्कुरुङ्कुडि, वेकटाचल, अयोध्या, सालग्राम, बद्रिकाश्रम, देवप्रयाग, द्वारका, ब्रजभूमि, क्षीराब्धि, परमपद आदि दिव्य क्षेत्रों का वर्णन उनके पदो मे मिलता है। उनके पदों मे तमिलनाडु का सुन्दर सास्कृतिक चित्र भी उपलब्ध है—जैसे नवजात शिशु को नहलाना-धुलाना, हरिद्र से जिह्वा रंजित करना, पालने मे झुलाने का उत्सव, बच्चों का क्रीडा-गृह बनाकर खेलना, चदा मामा दिखाना, घटनर्तन आदि ।

पेरियाल्वार के गीत प्रेम पूर्ण होते हुए भी भक्ति की भव्य भावनाओ से भूषित है। उनके ४७३ पदों मे रस, रस का परिपाक तथा काव्य के शास्त्रीय गुणों का सन्निवेश जिस पूर्णता तक पहुंचा है, उसके सामने नायन्मार तथा अन्य आचार्यो की वात्सल्य तथा शान्त रस की उक्तिया निष्प्रभ सी लगती है। उन्होंने कलिवृत्तम्, कोच्चककलि नामक प्रसिद्ध तमिल छन्दों मे संपूर्ण काव्य रचना की है। उन्होने अपने समय में व्यवहृत भाषा को अपनाया। आल्वार की शब्द-चातुरी के कारण उनका काव्य प्रसाद गुण सम्पन्न, मधुर एव सरस है। संगीत की लय और ध्वनि इसमे प्रतिध्वनित होती है। बालकृष्ण के सौन्दय में निमग्न पेरियाल्वार की भाषा भी जैसे उसी रस मे निमग्न हो उठी है। उनकी रचना मे अनुप्रास, श्लेष, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सम्यक् प्रयोग हुआ है तथा तत्कालीन प्रचलित कहावतो का समावेश भी प्रचुर मात्रा में है ।

आण्डाल :

पौर्वापर्य क्रम के अनुसार आण्डाल का स्थान पेरियाल्वार के बाद आता है। इनका विवेचन मीरॉ के साथ आगे किया जायगा ।

नम्माल्वार (श्री शठकोप)

शठकोपाल्वार को सब, अधिक प्यार व श्रद्धा से नम्माल्वार अर्थात् हमारे आल्वार कहते है। ये आल्वारो मे प्रधान माने जाते है। इनका जन्म पांड्य देश मे ताम्रपर्णी नदी के किनारे तिरुक्कुरुकूर नगर मे शूद्र कुल मे हुआ। गुरु-परपरा के अनुसार वे "कौस्तुभ" का अवतार माने जाते है। वे सोलह साल की

अवस्था तक मौन ही रहे । अन्त प्रेरणा से प्रभावित होकर मधुर कवि नम्माल्वार से मिलने आये । नम्माल्वार को जगाकर उन्होने पूछा कि शरीर मे वद्ध जीव क्या आहार खाकर कहाँ रहता है, तुरन्त उत्तर मिला कि उसी को खाकर वही निवास करता है । अर्थात् शरीर सबध से प्राप्त सुख और दुःख का अनुभव करते हुए वही पडा रहता है ।[1] इस उत्तर से प्रभावित होकर मधुर कवि उनके चेले बनकर वही रहने लगे ।

नम्माल्वार के जीवन काल के सबध मे अनेक मत मतान्तर प्रचलित है: डा. श्रीनिवासय्यगार का विचार है कि नम्माल्वार ९३५ ईस्वी के लगभग रहे होगे। वे नाथमुनि और मधुर कवि दोनो को नम्माल्वार के शिष्य मानते है।[2] इस मत का खडन करते हुए डा० कृष्णस्वामी अय्यंगार कहते है कि नाथमुनि नम्माल्वार के समकालीन नही है। उनके मत मे नम्माल्वार का जीवन काल छठी शताब्दी के मध्य मे है । परन्तु अधिकतर विद्वान अन्त.साक्ष्य एवं वहि:-साक्ष्य के आधार पर नम्माल्वार को पेरियाल्वार का समकालीन मानते है । नम्माल्वार "कारिमारन", "शठकोप", "वकुलापरणन", "पराकुश", आदि नामों से भी प्रसिद्ध है ।

इनके चार ग्रथ है जो चार वेदो के सार माने जाते है । १०० पद्यो का "तिरुवृत्तम्" ऋग्वेद का सार है। दूसरा सात पद्यो का "तिरुवाशिरिय" यजुर्वेद का सार है । तीसरा अथर्ववेद का सार "पेरिय-तिरुवन्तादि" है जिसमे ८७ पद्य है । चौथा "तिरुवाय्मोलि" है । यह सामवेद का सार माना जाता है, इसमें ११०२ पद्य है । नम्माल्वार का यही लक्ष्य है कि सारी आत्माओं की रक्षा करनी चाहिए । अतः वे अपने प्रबधो मे ईश्वर स्वरूप, जीव स्वरूप, ईश्वर प्राप्ति का उपाय, उपाय के विघ्न और फल प्राप्ति का उपदेश देते हुए आत्म-रक्षा के लिये शरणागति मार्ग पर अधिक जोर देते है। इसी कारण ये "प्रपन्नजन-कूटस्थ" कहलाते है ।

ये परमात्मा के परतत्त्व और सौशील्य गुणो का अनुभव कभी निज रूप मे, कभी एक स्त्री के रूप मे करते है । कही भगवान् से सयोग के आनन्द का अनुभव करते है तो कही वियोग का, कही अपने को अति नीच और निकृष्ट, पतित कहकर भागते है जिससे भगवान का पवित्र रूप इनके सयोग से दूषित न हो, कही अपने को परमात्मा की कृपा का पात्र मानते है और कभी भगवान

१. तिरुवाय्मोलि : वी० के० रामानुजदासन, भूमिका भाग, पृष्ठ २
२. तमिल स्टडीस : एस० श्रीनिवासय्यंगार

से प्रणय-रोष की भावना से मुँह मोडकर कहते है कि तू अब अन्य गोपियों के पास जा।

नम्मालवार का भगवदनुभव :

नम्मालवार सर्वत्र ईश्वर स्वरूप को ही देखते है। नीले आसमान को निहार-कर श्रद्धा के साथ हाथ जोड़कर कहते है "यह मेरे प्रियतम का बैकुठ है।" समुद्र को देखते ही कहते है "यह मेरे प्रियतम का विश्राम स्थल है।" ऊचे पर्वत को देख प्यार से बुलाते है "हे मेरे प्यारे, आ जाओ।" सूर्य को दिखाकर कहने लगते है "मेरे श्रीमन् नारायण को देखा।" सर्प के पीछे दौड़ते हुए गद्-गद् हो कर कहते है "देखो मेरे प्यारे की शय्या को।" इस प्रकार नम्मालवार साधुओं मे, सज्जनों में, बादलों मे, समुद्र मे सर्वत्र अपने प्रियतम की मूर्ति के दर्शन करते है। ये भगवत्प्रेम से कभी कभी इतने उन्मत्त हो जाते है कि उन्ही के ध्यान मे नाचते, गाते, मूर्च्छित हो जाते है। उनका कहना है कि सोते समय में भी श्रिय.पति का ही ध्यान करो। अहंकार ममकार को जड से उखाड फेको और अपनी दीन हीन दशा को निःसंकोच प्रकट करते हुए सर्वरक्षक परमात्मा की शरण मे जाओ। भगवान् की सेवा मे अनुपयुक्त शरीर और इन्द्रियाँ, धन और दौलत किसी काम का नही। "मेरा खाने का भोजन, पीने का पानी, भुगतने का पान सब कृष्ण है।" इसी भगवदनुभव से प्रफुल्लित होकर वे श्रीमन्नारायण की जय जयकार करते है।[1]

नम्मालवार साहित्य :

१. **तिरुवृत्तम् :** —यह ग्रथ ऋग्वेद का सार माना जाता है। इसमे सौ पद है। इस ग्रथ की विशेषता यह है कि प्रत्येक पद मे वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ जिसे अन्यापदेश और स्वापदेश कहते है, दोनों सूचित होते है। वाच्यार्थ से नायक और नायिका के प्रेम संबंध को सूचित करता है तो लक्ष्यार्थ जीव और ब्रह्म सबध को नित्य विभूति अर्थात् बैकुंठ के मुक्त जीव तथा लीला विभूति के बद्ध जीव दोनों भगवान की प्रजाएं हैं। बद्ध जीव को भव सागर मे दुख की झोंके खाते देख नम्माल्वार ने अनुभव किया कि इसका मूल कारण शरीर संबंध

---

१. **श्री शठकोप : श्री श्रीनिवासराघवन्, नृसिंह प्रिया तथा तिरुवाय्मोलि : वी० के० रमानुजदासन, भूमिका भाग ।।**

है। अतः वे इस ग्रंथ मे भगवान से प्रार्थना करते है कि प्रकृति तथा प्राकृत वस्तुओं से मेरा सबंध विच्छेद कर दो।

२. तिरुवाशिरियम् :

इसमे आल्वार लौकिक लाभ को प्रभु प्रपत्ति के समक्ष तुच्छ समझकर आत्मनिवेदन द्वारा अपने को भगवान के समक्ष अर्पित करके भगवान के दिव्य रूप के अनुभव मे विस्मृत हो जाते है। इसमे सात पद्य है। यह यजुर्वेद का सार माना जाता है।

३. पेरिय तिरुवन्तादि :

इसमे आल्वार कहते है कि ईश्वर के बारे मे जो आनन्दानुभव प्राप्त हुआ है वह किंचित् मात्र है, जो अनुभव होनेवाला है वह अत्यधिक है। उनकी मान्यता है कि भक्त के हृदय मे प्रभु के लिये पवित्र श्रद्धा तथा प्रेम की भावना ओत-प्रोत होनी चाहिए। प्रभु का यह अहेतुक प्रेम भक्त को अनायास ही मिल जाता है।

४. तिरुवायमोलि :

इसमे समस्त कल्याण गुणो से परिपूर्ण श्रिय-पति का गुणगान करते है। "भगवान आश्रित वात्सल्य से इस लीला विभूति मे आते है। वे अपने सकल्प से चेतन, अचेतन के स्वरूप, स्थिति और प्रवृत्ति करते है। उनकी अन्तरात्मा हो कर उनमे रहकर भी वे उनके दोषो से दूर रहते है। सब से लिक्षण होते हुए भी देवमनुष्यादि के सजातीय हो कर अपनी निरवधिक कृपा से राम कृष्णादि रूप से जन्म लेते है। जो अभागे अवतार के समकालीन न थे उनके लिये भगवान मदिरों मे रहते है जहाँ अपने सब महत्व के साथ साथ परम सौलभ्य भी रखते है। पत्र, पुष्प, जल, किसी वस्तु से भक्त उनकी पूजा कर सकते है। पूजा की त्रुटि को वह सह लेता है। अर्चा में वह अत्यन्त परतन्त्र होकर अपने पूजक के इच्छानुसार खाता है, पीता है, सोता है और उठता है। इस प्रकार परमात्मा के परत्व आश्रित मुलभत्व आदि सभी गुणों का साक्षात्कार करके आनंदित होते है।[1]

श्री वेदान्त देशिक ने नम्माल्वार के प्रबंध का सार इस प्रकार बतलाया है—

---

१. शठकोप : श्री श्रीनिवासराघवन, नृसिंह प्रिया

श्री शठकोप प्रथम ग्रथ मे ससार की वेदना का विशद वर्णन करते है। दूसरे में उस वेदना को कम करने के लिये भगवान ने जो दिव्य स्वरूप दिखाया है उसका वर्णन करते है। तीसरे में इस रूप दर्शन से बढती अपनी उन्मत्तावस्था का वर्णन करते है। चौथे में अपने इच्छानुसार भगवदनुभव प्राप्त करके मुक्ति पाने का वर्णन है।[1]

नम्माल्वार की भक्ति दास्य भाव की है। वे मोक्ष की अपेक्षा प्रभु सामीप्य को उत्कृष्ट मानते है। दास्य भाव से प्रभु की भक्ति करना ही उनके लिये मोक्ष है। समस्त जगत् और उसकी वस्तुओ का, वे भगवान के शरीर रूप में ही अनुभव करते है। उनका विचार है कि भगवान के दर्शन अत.चक्षुओ से होने है। वे अपने को प्रभु की पत्नी के रूप में भी प्रस्तुत करते है।

नम्माल्वार की भाषा अधिक ही सुन्दर एव परिमार्जित है। यह चलती होने पर भी साहित्यिक और अत्यन्त उत्कृष्ट है। तमिल के प्रचलित मुहावरे, कहावतों के प्रयोग तथा माधुर्य चित्रमयता के कारण भाषा प्रवाहमयी एव शुद्ध है। उनकी शैली मे वचन चातुरी और रस के सचारी भावों का स्वाभाविक और रोचक मेल है। व्यजना शैली पर सघ काल साहित्य का तथा अपने समकालीन शैव का प्रभाव लक्षित होता है। उनके अलकारों के प्रयोग प्रशसनीय है तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति के उदाहरण अधिक सुन्दर है। उनके पदों मे प्राचीन तमिल प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन की सुन्दर झलक मिलती है। शकुन परीक्षा की प्राचीन परिपाटी, प्रियतमा के प्रेम से निराश हुआ नायक के प्राण-त्याग का वर्णन[2] आदि अनेक चित्र विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

कुलशेखराल्वार :

कुलशेखर आल्वार चेर देश (मलबार) के राजा थे।[3] वे अपने को क्षत्रिय और कोल्लि राजधानी के अधिपति मानते है।[4] गुरुपरपरा के अनुसार वे

---

१. आद्ये स्वीयप्रबन्धे शठजिदभिदधे संसृतेर्दुस्सहत्वं
द्वैतीयीके स्वरूपाद्यखिलमयहरेरन्वभूत् स्पष्टदृष्टम्।
तार्तीयीके स्वकीयां भगवदनुभवे स्फोरयामास तीव्राम्
आशां तुर्ये यथेष्टं भगवदनुभवादाप मुक्ति शठारिः ।।
—वेदान्तदेशिक

२. मडलेरुदल तमिल (शब्द)

३. कोंगर्कोन् कुलशेखरन् : पेरुमाल तिरुमोलि ३-८

४. मेरे अपने कुल के राघव सो जा, सो जा : पेरुमाल तिरुमोलि ८-३
कोल्लिकावलन : वही ९-१०

परमात्मा के कौस्तुभ के अंश माने जाते है। वे वड़े ज्ञानी और परम राम भक्त है। इनकी भावुक प्रकृति पर अनेक कथाए प्रसिद्ध है।[१] पाद

---

१. एक दिन रामायण कथा प्रवचन में खरदूषण राक्षसों का प्रसंग आया। कथा वाचक ने एक श्लोक कह कर भावार्थ समझाने लगे कि एक ओर चौदह हजार राक्षस हैं जो कपट युद्ध को छोड़ कर और कुछ नहीं जानते। दूसरी ओर रामचंद्रजी अकेले हैं। कैसे धर्म युद्ध करेंगे।

"चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति।

यह सुनते ही कुलशेखर भावावेश में यह कहते हुए युद्ध में जाने के लिये तैयार हो उठे कि मैं अभी उनकी सहायता के लिये सेना लेकर जाऊंगा। इसे देख कर कथावाचक ने यह कहकर कुलशेखर के भावावेश को शांत किया कि श्री रामचंद्रजी ने अकेले एक ही मुहूर्त में सब राक्षसों को मार डाला।

कुलशेखर के बारे में यह भी प्रसिद्ध है कि वे भगवान की अपेक्षा भक्तों की सेवा करते थे। कुलशेखर चाहते थे कि श्रीरंग जाकर नील रत्न समान सुन्दर भगवान के दर्शन से आनन्द पाऊं। परन्तु उनके मंत्रियों को मालूम था कि यदि वे श्रीरंग जायेंगे तो पुनः वापस नहीं आयेंगे, वहीं ठहर जायेंगे। अतः उन्होंने एक उपाय सोचा। जब राजा श्रीरंग जाने की तैयारी करते तो भक्तों के एक समूह के आने का समाचार देते। भक्तों का आगमन सुन कर राजा यात्रा स्थगित करते हुए उन भक्तों की सेवा शुश्रुषा में लग जाते थे। इन भक्तों के प्रति राजा के अनन्य भाव को कम करने के लिये रामनवमी के दिन मंत्रियों ने राजा से जाकर शिकायत की कि आये भक्तो में किसी ने पूजा गृह में रखे भगवान के रत्न को चुरा लिया है। भक्तों के ऊपर इस कलंक को कैसे वे सहन कर सकते थे। अपने भक्तों की सच्चरित्रता को निरूपित करने के लिये भरे दरबार में एक भयंकर कृष्ण सर्प को एक घड़े में ढंक कर लाने की आज्ञा दी। यह कहते हुए आपने हाथ को घड़े के अन्दर रख दिया कि यदि मेरे भक्त दोषी हैं तो यह सर्प मुझे काटे। कृष्ण सर्प ने कुछ नहीं किया और भक्त निर्दोष साबित हुए। तुरन्त अपने बेटे को सिंहासन पर बिठाकर, चिर वांछित श्री रंगनाथ के दर्शन के लिये निकले। अधिक समय तक वहीं रहे। बाद तिरुप्पति आदि दिव्य क्षेत्रों के दर्शन कर, अन्त में मन्नारगुडी (तंजौर के पास) श्री राजगोपाल के दर्शन कर, वहीं संसार छोड़ कर परमात्मा से एक हो गये।
नृसिंह प्रिया। श्री श्रीनिवासराघव से संपादित के आधार पर।

टिप्पणी देखें। वे ६७ वर्ष तक जीवित रहे। प्रसिद्ध विद्वान भंडारकर कुलशेखर का काल बारहवी शताब्दी मानते है। इस मत का सभी विद्वानों ने खंडन किया है। कुलशेखर अपने को कोल्लि (चेर देश) के अधिपति मानते है। ९०० ई. के बाद चेर राजाओं का शासन अन्त हो गया। अतः पल्लव राजा नरसिंह वर्म के काल के पूर्व अर्थात् सातवी शताब्दी के पूर्व अथवा पल्लवो के शासन के अन्त में अर्थात् ८वी शताब्दी मे ही इस आल्वार का समय माना जा सकता है।[1]

आल्वार कुलशेखर के दो प्रधान ग्रंथ है। एक मुकुन्दमाला संस्कृत मे हैं और दूसरा पेरुमाल तिरुमोलि तमिल मे है। दोनों ही अधिक सरल एवं चलती भाषा मे है। मुकुन्दमाला में ४५ श्लोक हैं और पेरुमाल तिरुमोलि मे १०५ पद्य है। इस तिरुमोलि के पहले दशक मे श्री रंगनाथ भगवान के दर्शन करने की इच्छा वर्णित है। एक गाथा मे अपनी तीव्र अभिलाषा प्रकट करते हुए कहते है —

> "निरन्तर भगवदनुभव करने पर भी अतृप्त मनवाला मै भक्तो के सत्संग में मिलकर, भगवान् के यशोगान करते हुए उससे तृप्त न हो कर आंखों से अविरल अश्रुप्रवाह बहाते हुए, भगवान की स्तुति कर, समुद्र घोष के सदृश नित्य वाद्य घोष से व्याप्त श्री रंग दिव्य धाम के शेषशायी श्री रंगनाथ के दर्शन कर, आनंदातिरेक में नाचते हुए मै भूमि पर लोट जाऊंगा।"[2]

दूसरे दशक मे भगवान के भक्तों की भक्ति का वर्णन है। वे कहते है कि भागवतों की गोष्ठी के दर्शन से ही आँखें धन्य होती, उनकी पद धूली के सेवन मात्र से गंगा स्नान का फल मिलता है। तीसरे दशक मे रंगनाथ भगवान के प्रति अधिक प्रेम तथा लौकिक विषयों में विरक्ति का वर्णन है। चौथे दशक में प्रार्थना करते है कि उनका अगला जन्म श्री वेंकटाद्रि में वास करने के लिये पशु, पक्षी, पुष्प, पुष्कर आदि रूप में दे दे। यहाँ एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है—

> "मदोन्मत्त हाथी की पीठ पर विराजमान होकर, सुख भोगने तथा साम्राज्य की इच्छा मै नही रखता। मेरी एक ही इच्छा है कि

---

१. आल्वारकल् काल निलै : मु राघवय्यंगार
वैष्णवमुम् तमिलुम्। तमिल् इलक्किय वरलाऱु। वलदराजय्यर

२. पेरुमाल तिरुमोलि १-९

सर्वेश्वर भगवान के सुन्दर वेंकटाचल पर सुशोभित होने के लिये पुष्प फल से रहित एक वृक्ष बन जाऊ।"[१]

"ऊर्वशी, मेनका आदि अप्सराओं के गान नर्तन आदि भोग नही चाहता, किन्तु भ्रमरों से गुँजायमान वेंकटाद्रि पर एक पत्थर बनने का सौभाग्य ही पा लूँ।[२]

पांचवें दशक मे केरल देश मे स्थित वित्तुवक्कोडु नामक स्थान के भगवान का वर्णन है। छठे दशक मे कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रणय रोप उक्ति प्रकट की गई है। सातवे दशक मे आलवार स्वय श्री कृष्ण की बाल लीलाओ से वचित देवकी बनकर माता के दुःख का हृदयविदारक वर्णन है तथा आठवे मे कौशल्या के शब्दों में बालक राम के हिडोले मे सुलाने का वर्णन है। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है —

"हे कृष्ण! तुमसे अपने सुन्दर माथे को हिलाते हुए दिये जानेवाले चुँबन को लेने, तुम्हारी मनोहर काति को देखकर आनदित होने, अपनी नन्ही उगलियों को छोटे मुँह में रखकर गुस्से मे आकर तुतली शब्दों मे जो कहा, उसे सुनने का भाग्य से सर्वथा मैं वचित रह गई। यशोदा को यह सब भाग्य प्राप्त हुआ।"[३]

नवे दशक में दशरथ का प्रलाप और दसवे दशक में पूरे रामायण कथा का संक्षिप्त वर्णन है।

तोण्डरडिप्पोडियाल्वार : (भक्तांघ्रिरेणु)

इस आल्वार का वास्तविक नाम विप्रनारायण था। तजोर जिले में कावेरी नदी के किनारे स्थित मंडगुडि गांव मे ब्राह्मण कुल मे इनका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने श्रीरंग जाकर दर्शन किये और भगवान के सौन्दर्य पर मोहित होकर वही आस-पास रह कर भगवान की सेवा का निश्चय किया। श्रीरग मंदिर के पास एक बाग में बाग लगाकर भगवान के लिये माला तैयार करके देते थे। वे श्रीरग धाम को छोड़कर और कही नही गये। उनकी जीवनी के बारे में अनेक कथाएं प्रचलित है।[४]

---

१. पेरुमाल तिरुमोलि ४।५
२. वही ४।६
३. वही ७।५
४. एक बार भगवद् कैंकर्य में लगे रहते समय एक गणिका ने षडयंत्र रच

इस आल्वार ने प्रथम तीन आल्वार तथा तिरुमंगैयाल्वार की तरह अन्य धर्मावलंबियों की कठोर निन्दा की है। विशेषकर जैन बौद्ध धर्मो की।[1] वे रो-रोकर भगवान की असीम कृपा पर गद्‌गद् होकर स्तुति करते है कि भगवद् भक्ति छोड़कर, नीच लोगो की सगति में पड़कर स्त्री के भोग की लालसा मे पड़ा रहा। श्री रगनाथ ने ही मुझे इस जाल से छुडाकर मेरा उद्धार किया।[2] इससे इनके पूर्व जीवन का पता चलता है। वे तिरुमंगै आल्वार के समकालीन हैं।

इन की दो रचनाएँ है। एक तिरुप्पल्लियेलुच्चि (प्राबोधकी) है। इसमे दस पद्य है। इसमें वे भगवान श्री रंगनाथ के पास जाकर उनकी महिमा का गुण गान करते हुए, प्रार्थना करते है कि तू उठ, और तेरे इस दास की सेवा स्वीकार कर, और अपने दासों के दास बन। इन दसो पद्यों को श्री वैष्णव मंदिरो मे प्रातः काल सुप्रभात के रूप मे गाते हैं और भगवान को जगाते है। यहाँ एक पद्य का भावार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

> 'कावेरी से घिरे श्री रग में शयन करने वाले भगवन्। सुगधित कमल के फूल खिल गये है। सूर्य भी घोषयुक्त समुद्र से निकल आया है। कृशोदरी स्त्रियां कावेरी में नहाकर बाल निचोड़कर सुखाकर साडी पहनते हुए तट पर चढ़ आई है। तेरे सदृश बकुलमाला लिये और कधे पर टोकरी से प्रकाशमान "तोण्डर-अडिप्पोडि नामक दास पर कृपा कर और तेरे दासो का दास बना दे। इस दास के लिये श्रीरग मे विराजमान ईश्वर! जाग उठने की कृपा कर।"[३]

इनका दूसरा ग्रंथ तिरुमालै (श्री माला) है जिसमें ४५ पद्य है। इसमे

कर इस आल्वार को अपने मोह जाल में फंसा लिया। अब विप्रनारायण को भगवान की याद नहीं रही। उसके सामने एक नया प्रेम संसार खुल गया और इसी में अपने को कृतार्थ और धन्य समझने लगे। भगवान की कृपा से आल्वार गणिका के प्रेम जाल से छूटे और अपनी पूर्व दशा पर लज्जित हुए। प्रायश्चित्त के लिये भगवद् भक्तों की चरण-धूलि ले लेकर शिरोधार्य कर लेते थे। तब से वे तोण्डरडिप्पोडियाल्वार (भक्तांघ्रिरेणु) अर्थात् भक्तों की चरण रज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

१. तिरुमालै : तोण्डरडिप्पोडियाल्वार, ७,८ ॥
२. वही वही पद १७
३. तिरुप्पल्लियेलुच्चि : तोण्डरडिप्पोडियाल्वार, पद १०

भगवन्नाम की महिमा पर प्रकाश डालते हुए आल्वार कहते है—यह शरीर अतः अचेतन है। एक-न-एक दिन मिट जायगा। इसके पालन पोषण के लिये साधारण मनुष्य और अन्य देवताओ की पूजा करना छोडकर परतत्व की, श्री रगनाथ की भक्ति करो। उनकी मान्यता है कि भगवद् भक्ति ही सर्वोत्कृष्ट है। ब्राह्मण जाति मे जन्म लेकर, वेदो का ज्ञान रखने पर भी अगर उसमे भगवद् भक्ति नहीं हो वह नीच है। जन्म से नीच कुल के होने पर भी यदि उसमे यह गुण हो तो वही उच्च कुल का है, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,वही हमारी पूजा का पात्र है।[1]

तिरुप्पाणाल्वार :

इनका जन्म श्रीरग क्षेत्र से चार मील दूरी पर स्थित उरैयूर मे पाणर्‌नामक अवर्ण कुल मे हुआ। पाण् नामक सुन्दर वाद्य से सुमधुर गीत गाकर जीविका कमाना ही पाणर जाति का काम है। बचपन से ही यह आल्वार अपने वाद्य मे भगवान का ही गुण गान करते थे। यही सोचकर आल्वार नदी के उस किनारे पर ही रहकर गाते रहते थे कि मैं उस परिशुद्ध भूमि को छूकर उसे अपवित्र नही करूँगा। यही रहकर भगवान के गुण गान करके अपना जीवन सफल बनाऊगा। श्री पाणन् प्रति दिन हाथ मे पाण (वीण सदृश वाद्य) लेकर कावेरी जाते और स्नान आदि करके गाने लगते। इस गान मे वे इस कदर तन्मय हो जाते थे कि बाहरी ससार का ही ज्ञान नही रहता था।

इस आल्वार को तोण्डरडिप्पोडियाल्वार के एक पद के आधार पर उनके समकालीन मानते है। "अमलन् आदि पिरान्" नामक दस पद्य ही इनकी रचना है। सूरदास की भाति उन्होने भी भगवान से अपनी इच्छा प्रकट की कि "श्री रंगनाथ मेघ सदृश स्वभाव तथा कातियुक्त है और इसी ने गोपाल का रूप लेकर मक्खन चुराया। इसने नवनीत गन्धयुक्त मुँह मे अर्थात् इस सौलभ्य मे मेरे हृदय को चुरा लिया। वह अण्डान्तर्भूत सभी आत्माओ का ईश्वर है और ससार मडल के आभरण भूत श्रीरंग मे विराजमान मेरे इस अमृत के दर्शन करने वाले ये नेत्र किसी दूसरे को नही देखेगे।'[2]

इस आल्वार के जीवन के बारे मे यह कथा प्रसिद्ध है कि एक दिन आल्वार के भावोन्मेष होकर गाते रहते समय मदिर के कर्मचारी लोकसारग आये और

---

१. तिरुमाले : वही ,पद ४२,४३

२. अमलन् आदि पिरान : तोण्डरडिप्पोडियाल्वार, पद १० : नृसिंह प्रिया से उद्धृत

इसे शूद्र समझ दूर हटने को कहा। उसका प्रभाव न होते देख गुस्से मे आकर कर्मचारी ने उस पर छोटा-सा पत्थर उठाकर फेका। थोड़ी देर में श्री पाणन् अपने ध्यान से सचेत हुए। लोकसारंग से क्षमा याचना कर वहा से हट गये। परन्तु मंदिर जाते ही लोकसारग ने देखा कि भगवान के माथे से रक्त बह रहा है। भगवान का आदेश पाकर लोकसारग श्री पाणन् को मंदिर ले आये। भगवान के दर्शन से गद् गद् होकर दस पद गाये और अन्त मे भगवान मे विलीन हो गये।[1]

तिरुमंगैयाल्वार-परकाल :

परकाल का जन्म तमिल प्रदेश के चोल मडल मे 'कुरैयलूर' मे, चतुर्थ वर्ण मे हुआ। इनके पिता चोल राज की सेना का अधिपति था। वे कलियन के नाम से प्रारंभ मे प्रसिद्ध थे। इस आल्वार ने अपने को आलि प्रदेश का शासक बतलाया है।[2] इनके पदों मे अपने सबंध मे "रथ गज तुरग सैन्य शक्तिवाले है।"[3] "बडे ही युद्ध प्रिय लड़ाकू है"[4] मधुर तमिल के गंभीर ज्ञाता हैं[5] बड़े दानी स्वभाव के हैं[6] श्री वैष्णव भक्तों की सेवा में रत रहनेवाले है[7] तथा अन्य देवताओ की वन्दना भूलकर भी नही करने वाले कठोर वैष्णव भक्त आदि अनेक विषय का पता चलता है।

इन्होने श्री वैष्णव वैद्य की पुत्री कुमुदवल्लि से विवाह कर लिया था।

गुरु परपरा के अनुसार, परकाल पेरियाल्वार के समकालीन है। वरदराजय्यर जैसे विद्वान परकाल का समय ८वी शताब्दी के पिछले भाग का मानते है।[8] परन्तु मु० राघव–अयंगार अपनी आल्वारकल काल निलै में ऐतिहासिक आधार दिखाकर कहते है कि परकाल ई ७९५ के पूर्व ही रहे होगे।[9]

---

१. नृसिंह प्रिया : श्री श्रीनिवासराघव से संपादित के आधार पर
२. आलिनाडन : पेरिय तिरुमोलि, तिरुमंगैयाल्वार पद ७।३।१०
३. वही वही पद २।४।१०, २।५।१०, ५।८।१०
४. वही वही पद ३।९।१०, ३।४।१०
५. वही वही पद ५।२।१०, ७।७।१०, ९।६।१०, १०।१।१०
६. वही वही पद ३।२।१०, ४।२।१०
७. वही वही पद ७।१।१०, ९।६।१०, ४।९।४, १०।८।७, ६।३।५, ६।३।७
८. तमिल इलक्किय वरलारु : वरदराजय्यर पृष्ठ ३७४
९. आल्वार काल निलै : मु. राघव अय्यंगार

कहा जाता है कि तीव्र वैष्णव भक्त यह आल्वार प्रति दिन हजारो भक्तो को खिलाते थे और अन्त मे भक्तों के उच्छिष्ट भोजन का स्वाद कर आनद पाते थे। जब भक्तो को खिलाने के लिये धनाभाव होने लगा तो राजा को पहुँचाये जाने वाले करके पैसे को ले लिया करते थे। इस कारण इनको अपने आश्रित राजा से लड़ना पड़ता था। कभी कभी यात्रियो को लूटकर भक्तों की सेवा करते रहे। गुरु परंपरा के अनुसार यह कथा प्रसिद्ध है कि भगवान श्री रगनाथ गोदा देवी से विवाह करके लौटते समय इस आल्वार ने उन्हे भी लूटा और अत मे साक्षात् भगवान के दर्शन से आनदित हुए और तब से लूटना छोड़कर तीव्र भगवद् भक्ति से गद् गद होकर गाने लगे—

> "मैं मुरझा गया था। मुरझाकर मन मे अत्यधिक व्यथित भी हुआ था और इस असीम जन्म-मार्ग मे भटक रहा था। अब तुम्हारी कृपा से जागृत हुआ। खोजकर पाया "नारायण'।"

इस आल्वार की ६ रचनाएँ है। कुल इस आल्वार ने १२५३ पद्य रचे है।

पेरियतिरुमोलि :	१०८४ पद्य
तिरुक्कुरुन्ताण्डकम्	२० पद्य
तिरुनेडुन्ताण्डकम्	३० पद्य
तिरुवेलुकूरिरुक्कै	१ पद्य
शिरिय तिरुमडल	४० पद्य
पेरिय तिरुमडल	७८ पद्य

इस आल्वार ने भगवद् भक्ति से उन्मत्त होकर समस्त भारत का पर्यटन करके मदिर में विराजमान भगवन्मूर्तियो के दर्शन किये। अन्त मे वे श्रीरग मे ही ठहरे। कहा जाता है कि इस आल्वार ने ही मंदिर के जीर्ण भागो की मरम्मत करायी और भगवान के उत्सवो का भी प्रबध किया। ये ही पहले पहल तिरुनगरी से नम्माल्वार की मूर्ति को आदर सत्कार के साथ ले आये और मार्ग-शीर्ष महीने में : 'अध्ययनोत्सव" मनाया जिसमें संस्कृत वेदो की भाति तमिल गाथाओं को प्रश्रय मिला और आल्वारों की रचनाओं की महिमा प्रकाशित हुई।

परकाल ने अपनी रचनाओं मे कई तरह के प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है। इनकी उक्तियाँ बड़ी ही लुभावनी है। इनकी कविता मार्मिकता से भरी हुई है। तथा सब ने नम्माल्वार की भाँति इनकी रचनाओ को सच्चे हृदय से अपनाया। इनकी समस्त रचनाएँ गेयात्मकता की दृष्टि मे रचित है। इनके पदों से यही पता चलता है कि वे तमिल के संघ काल साहित्य के गंभीर मर्मज्ञ रहे है।

परकाल का भगवदनुभव :

इनकी मान्यता है कि जीव का स्वरूप परमात्मा का इतना अधीन और परतन्त्र है जितना एक स्त्री का अपने प्यारे पति का। इसी से परकाल कभी-कभी नायिका बनकर प्रियतम से मिलन के लिये तड़पते है। नायिका इस कारण विवर्ण और शिथिल हो जाती है। कभी नायिका के रूप मे, कभी नायिका की माता के रूप में, कभी नायिका की सहेली के रूप मे जो विरह वर्णन आल्वार ने चित्रित किया है वह हृदय विदारक है। कभी नायिका मूर्छित हो जाती है, कभी विरहोन्मत्त होकर अपने प्यारे के पास भ्रमर, सारस बादल आदि के द्वारा सदेश भेजती है, तो कभी स्वयं यशोदा का रूप धारण करके श्याम सुन्दर को दूध पीने को बुलाते है, कभी रामचन्द्रजी की विजय मे राक्षसों के रूप मे उसकी जय जयकार करते है।

आल्वार दिव्य क्षेत्रों मे जाकर, वहाँ भगवान के सौलभ्य गुणों का वर्णन अपने पेरुमाल तिरुमोलि मे करते है। तिरुक्कुरुन्ताण्डकम् मे प्रपच की हेयता पर दु:खित होकर इससे अपने को छुड़ाने की प्रार्थना करते है। जैसे पानी ही प्यासे की प्यास को बढाता है वैसे ही इनके भगवद् प्रेम ने ही प्रेम को अभिवर्धित कर दिया। तिरुवेलुकूरिरुक्कै में अपनी इसी आर्ति को प्रकट करते हुए भगवान की शरण ली।

शिरिय तिरुमडल मे नायिका, पति से रूठकर प्राण त्याग करने की धमकी देती है। प्रणय मे निराश व्यक्ति के प्राण त्याग को तमिल साहित्य में 'मडलूर्दल' के नाम से अभिहित किया गया है। परन्तु तमिल साहित्य मे पुरुष को ही इस प्रकार मडलूर्दल से प्राण त्यागने का अधिकार है। अपनी प्रियतमा से विवाह संबंध स्थापित करने मे असमर्थ होने पर नायक अपनी नायिका के चित्र को चित्रित कर उसको सामने रखकर चारो गलियों से परिक्रमा करते हुए, सब के समक्ष अपनी आत्म-हत्या करने की धमकी देने पर उसकी नायिका को उसे सौंप देंगे, वरना वह प्राण त्याग देगा। परन्तु स्त्रियों को प्राण त्यागने की अनुमति नहीं दी गई है।[1] इस विधि के विरुद्ध आल्वार की नायिका ईश्वर प्रेम मे प्राण त्यागना चाहती है।

पेरिय तिरुमडल मे प्रणय रोष में नायिका कहती है कि प्रियतम को अर्चा रूप मे अधिक गर्व हो गया है, मै अब उसको भी चूर-चूर कर दूँगी।

विरह से व्यथित आल्वार को भगवान के दर्शन मिलता है। उससे

---

१. कडललन्न कामत्तरायिनुम् पेण्डिर् मडलूरार् आडवर् मेलेन्ब—

आनंदित होकर भगवान की प्रशंसा करते है यही तिरुनेडुन्ताण्डकम् ग्रंथ का विषय है।

मधुर कवि :

मधुर कवि आल्वार का जन्म पाण्डय देश मे श्री कोलूर मे हुआ। कम उम्र मे ही इन्होने चौदहों विद्याओ का अध्ययन कर उनके विद्वान हो गये। वे संगीत शास्त्र मे भी निपुण थे और अच्छी तरह गा भी सकते थे। अतः वे मधुर कवि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

भगवन्मूर्तियो के दर्शन के लिये वे पर्यटन के लिये निकले। मथुरा, कांची, काशी, अवन्ती, द्वारका आदि के दर्शन कर अयोध्या आये। वहाँ अन्त प्रेरणा से प्रेरित होकर पुनः दक्षिण आये और नम्माल्वार से मिलने गये। नम्माल्वार तो मूकावस्था मे ध्यान मग्न थे। उनके सामने जाकर मधुर कवि ने प्रश्न किया 'प्रकृति के अन्दर अति सूक्ष्म जीव जन्म ले तो वह किसे खाकर कहाँ पड़ा रहेगा'।[1] उत्तर मिला उसे खाकर वही पड़ा रहेगा।[2]

मधुर कवि इस उत्तर से प्रभावित होकर उन्ही के शिष्य बन गये और अपने आचार्य को भगवान से भी बढ़कर मानने लगे। वे अपने आल्वार-आचार्यों की रचनाओ को कई राग रागिनियों मे गा गाकर सुनाते थे।

श्री मधुर कवि की रचना का नाम 'कण्णि नुण शिरुत्ताम्बु' है। इसमे ग्यारह पद्य है। पहले दस पद्यों से अपने आचार्य नम्माल्वार की महिमा का वर्णन करके अंत मे फलश्रुति बतलाते है। सभी पद्यो का साराश यह है—'मुझे शठकोप के नाम अमृत सा लगता है। उसके सिवा मुझे कोई अन्य देवता पसन्द नही है। वे ही मेरे लिये पुरुषार्थ है और माता पिता सर्व विध बन्धु है। वे, विषयान्तरो की रुचि को मिटने वाले एव भक्ति प्रदान करने वाले है। वे ही मेरे सब पाप दूर करके अपनी दया बरसा सकते है। वे ही तत्त्व-ज्ञान का उपदेश देकर स्वाभाविक आकार दिलाने वाले है।

कुछेक विद्वान मधुर कवि को आल्वार परपरा की अपेक्षा, आचार्य परंपरा मे रखना ही उचित मानते है। मधुर कवि के समय से आचार्य की महिमा बढ़

---

१. प्रकृतेरुदरे जीवो यदि जातस्तदा अनघ।
किं भक्षयन् वा कुत्रायं वर्तते स पुमान् गुरो॥

२. तद्वस्तु भक्षयन् सम्यक् जीवः तत्रैव वर्तते।

नृसिंह प्रिया से उद्धृत—

गई। मधुर कवि ने नम्मालवार को आचार्य का स्थान दिलाकर उन्हें तमिल साहित्य का 'सूरज' बना दिया।

आण्डाळ का जीवन वृत्त, कृतित्व : परिचय

जीवन वृत्त :

आण्डाळ के जन्म के वारे में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि आण्डाळ का जन्म सामान्य रूप से नही हुआ। परम वैष्णव भक्त विष्णुचित्त (पेरियाळ्वार) को अपनी पुष्प वाटिका में तुलसी दल सींचते समय रहस्यमय ढंग से शिशु रूपमें आण्डाळ प्राप्त हुई थीं। उनका जन्म भी कुछ वैसे ही हुआ था जैसे पृथ्वी कन्या सीता देवी का। देवी आदेश पाकर शिशु का नाम गोदा रखा गया। तमिल मे 'कोदै' का शब्दार्थ पुष्प के सदृश कोमल, कमनीय होता है।

आण्डाळ की जन्म तिथि के संबंध में श्री मु० राघवय्यंगार के मत को अधिकतर विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। कात्यायनी व्रत के लिये मार्गशीर्ष मास में प्रतिदिन प्रातः किये जाने वाले स्नान[1] को तमिल के संघ काल साहित्य में चांद्रमान रीति के अनुसार "पौष स्नान" कहा गया है।[2] केरल मे यही व्रत 'तिरुवादिरै त्योहार' एवं शैवों मे 'आरुद्रा दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध है।

मार्गशीर्ष व्रत में प्रात.काल शीत जल मे स्नान कर भगवदनुभव करने के लिये आण्डाळ अपनी सभी सखियों को बुलाती है—

> "श्री समृद्ध व्रज बालाओ, दिव्य आभूषण धारिणियां, स्नानेच्छुक जन, सब आइये। आज मार्गशीर्ष मास के पूर्णमासी का शुभ दिन है।"[3]

इसी प्रकार सभी सखियो को जगाते हुए एक सखी के यहाँ जाकर प्रातःकाल होने की सूचना देते हुए आण्डाळ उसे जगाती है—

> "सभी गोप बालिकाएँ अम्बा पूजा स्थल पहुंच गई है। पूर्व दिशा मे शुक्रोदय हो गया है और बृहस्पति अस्तमित हुआ है। पक्षी भी चारो दिशाओ मे चहचहा रहे है।"[4]

---

१. मार्कलि नीराडल (तमिल शब्द)
२. तै नीराडल (तमिल शब्द)
३. तिरुप्पावै पद १
४. तिरुप्पावै पद १३

आण्डाळ अनेक पदों मे 'कुक्कुट-बाग' के पूर्व ही जल-क्रीड़ा करने आये'[१] पौ फटने के पूर्व ही स्नान किया[२] " देखो चारो दिशाओं मे मुर्गे की बांग सुनाई पड रही है।[३] आदि प्रात: काल मे ही व्रत निमित्त स्नान से निवृत्त हो जाने की सूचना मिलती है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वे पो फटने के पूर्व ही स्नान कर व्रत मे सलग्न हो जाती हैं। परन्तु उपयुक्त उद्धरण मे प्रात:काल होने की सूचना मे आण्डाळ अपने समय की एक विशेष घटना का उल्लेख करती है।

> "पूर्व दिशा मे शुक्रोदय हो गया है और बृहस्पति अस्तमित हुआ है।'[४]

तमिल के प्राचीन साहित्य मे 'शुक्रोदय' की सूचना देते हुए प्रात:काल होने की सूचना देना तो सर्वत्र मिलता है[५] परन्तु आण्डाळ यहां शुक्रोदय (Mercury) के अतिरिक्त गुरु (Jupiter) के अस्ताचल होने का भी उल्लेख करती है। प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष महीने मे पूर्णिमा के दिन शुक्रोदय होगा ही, यह कोई निश्चित नही है। कुछ ही वर्षो मे यह घटना घटित हुई है। ऐसी स्थिति मे आण्डाळ द्वारा शुक्रोदय तथा गुरु अस्ताचल का एक साथ उल्लेख करने में ऐसा प्रतीत होता है कि यह विशेष घटना उसके अपने समय मे घटी है। राघवय्यगार अपने शोध पूर्ण ग्रंथ 'आऴ्वारकल् काल निलै' (आऴ्वारो का काल निर्णय) मे कहते है कि आसमान की पूर्व दिशा में शुक्रोदय और पश्चिमी दिशा मे गुरु के अस्त को एक ही साथ हुआ मान ले तो शुक्र और गुरु के मध्य दूर स्थिति १८० अंश है। उदयास्त मे अन्तर होने की मात्र १६५ अश से १८५ अंश के बीच की दूरी ही हो सकती है। इससे अधिक कदापि नही। यदि इससे अधिक अंतर होता तो आण्डाळ को इन दोनों को एक ही समय दर्शन सम्भव न होता।

सौरमान रीति के अनुसार मार्गशीर्ष मास में सूर्य धनुराशि मे ठहरता है। सूर्य के स्थान से शुक्र ४८ अंश से अधिक दूरी पर नही होने के कारण उस महीने में शुक्र को तुला, वृश्चिक, धनु राशियो मे से एक मे रहना चाहिए। इसके

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि पद ३-१
२. वही पद १-२
३. तिरुप्पावै पद १८
४. वही पद १३
५. परिपाडल ११वां पद, पुरनानूरु: पद ३९७, ३८५, ३९८, पेरुंकदें १,५,३,८१ पोरुनरारुंप्पडै पद ७२

अतिरिक्त शुक्रोदय और गुरु का अस्त एक साथ होने से शुक्रस्थित राशि से सातवी राशि में अर्थात् मेष, वृषभ, मिथुन राशियो मे से एक मे रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त शुक्रोदय और गुरु का अस्त एक साथ होने से, गुरुस्थित राशि से सातवी राशि मे अर्थात् मेष, वृषभ, मिथुन राशियो मे से किसी एक मे गुरु को रहना चाहिए। इस आधार पर राघवय्यगार ने अपने मित्र तथा ज्योतिष शास्त्रज्ञ की सहायता से इसका पता लगाया कि सातवी शताब्दी से नवमी शताब्दी तक किन वर्षो मे मार्गशीर्ष महीने की पूर्णिमाओं के समय प्रातः पाँच बजे के पूर्व १६५ से १८० अश तक शुक्रोदय और गुरु का अस्त साथ साथ हुआ। तदनुसार निम्न लिखित विवरण उनको प्राप्त हुआ।

शताब्दी	ईस्वी	महीना	दिनाक	गुरु की दूरी	समय
७	६००	नवबर	२७	१७१	३–२०
८	७३१	दिसबर	१८	१७७	३–५०
९	८८५	नवबर	२५	१८०	५–८
	८८६	दिसंबर	१४	१६५	५–२०

११, १२ सालो मे एक बार शुक्रोदय और गुरु अस्त साथ साथ होने पर भी गति मे अन्तर होने पर उदय, अस्त मे आगे पीछे होने की सभावना है। शुक्र और गुरु की दूरी की स्थिति को निम्नाकित चित्र से अनुमान लगा सकते हैं।
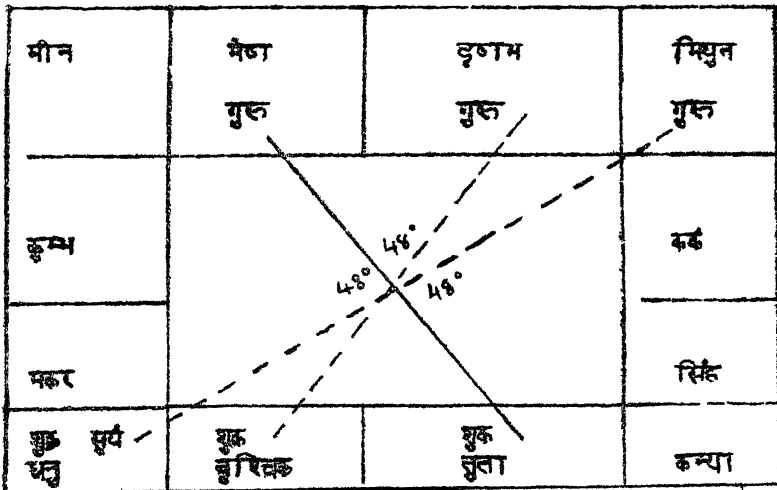
उपर्युक्त विवरण के अनुसार ६०० ईस्वी को आण्डाळ का समय नही मान सकते क्योकि उस समय पांड्य वश वल्लभ देव का राज्य काल नही रहा। ८८५, ८८६ के समय मे तो आचार्य नाथ मुनि रहते थे। अतः इन दोनो को आण्डाळ का काल नही मान सकते। अतएव अवशिष्ट ७३१ ईस्वी को आण्डाळ की तिरुप्पावै रचना काल मानने मे विशेष कठिनाई नही होती। ७३१ ईस्वी मे ३–५० बजे से ४ बजे के बीच मे शुक्रोदय और गुरु अस्त हुआ है। केरल देश मे तिरुवादिरै त्योहार मे सवेरे चार बजे के पूर्व ही उठकर स्नान करने की प्रथा को आज भी देख सकते हैं। अत यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपनी आंखो देखी घटना का ही उल्लेख आण्डाळ ने अपने पदो मे किया है और तिरुप्पावै का रचना काल ७३१ ईस्वी मे मार्ग शीर्ष महीने की पूर्णिमा के समय मे ही हुआ होगा।

गुरु परपरा के अनुसार आण्डाल का जन्म कर्क महीने के पूर्व फल्गुनी नक्षत्र मे हुआ।[1] "बचपन से ही श्री कृष्ण के लिये उद्भूत मेरे पूजनीय पीन पयोधर द्वारकाधीश उस भगवान के ही उपभोग्य बने"[2] के अनुसार तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोलि की रचना करते समय आण्डाळ की अवस्था १५, १६ मान लेने पर ७१५, ७१६ ईस्वी मे आण्डाळ का जन्म हुआ मान सकते है।[3]

विष्णुचित्त ने भक्ति भाव से कन्या का लालन पालन किया। देव प्रकृति एवं सात्त्विक भक्त के यहा पलने से गोदा बचपन से ही भगवद् भक्ति और भगवत्प्रेम की ओर आकृष्ट हुई। प्रतिदिन गीत गाती हुई पिता के साथ बडे प्रेम से भगवान के लिये माला गूँथा करती थी। यह माला श्री रगनाथ को समर्पित की जाती थी। बचपन से ही गोदा ने भगवान को मीरां की भाति ही पतिरूप मे वरण कर लिया था। अतएव गोदा भगवान मे इतना प्रेममय हो जाती थी कि गुँथी हुई माला को स्वय पहले पहनकर, भगवान के सामने खडी होकर कहती थी कि 'मै अपने चन्द्रमुख शिजित चूडियो एव सुगधित माला के साथ कैसी दिखती हूँ? क्या मै आपकी योग्या पत्नी बन सकती हूं?' इस तरह परमात्मा को समर्पित करने के लिये गुँथी हुई पुष्प माला मे से स्वयं को सजाकर देखने के उपरान्त उसे श्री रगनाथ को अर्पण करने के लिये भेजती थी। अततः

---

१. कर्कटे पूर्वफल्गुन्यां तुलसीकाननोद्भवाम्
पांड्ये विश्वंभरां गोदां वन्दे श्रीरंगनायकीम् ॥
२. नाच्चियार तिरुमोलि : पद १-४
३. आळ्वारकल् काल निलै : मु० राघवय्यंगार ॥

एक दिन पुष्प माला मे सिर का एक बाल चिपक जाने के कारण उसका भेद खुल गया। माला मदिर के पुजारी द्वारा अस्वीकृत कर दी गयी। किन्तु भगवान ने स्वयं स्वप्न में विष्णुचित्त को दर्शन देकर आदेश दिया कि मुझे वही आण्डाळ की पहनी माला ही पहनाया करो। भगवान ने उनको इस कन्या के जन्म के उद्देश्य से भी अवगत कराया कि वराहावतार मे पृथ्वी ने उनकी आराधना कर उन्हे प्राप्त करना चाहा था। इस पर उन्होने उसे नाम संकीर्तन तथा पूजा से अर्चना करने की सलाह दी थी। अत. पृथ्वी ने ही 'गोदा' के रूप मे उसके (विष्णुचित्त के) यहां जन्म ग्रहण किया था। विष्णुचित्त अपनी कन्या की भगवद्-भक्ति देखकर गद्गद् हो गये । तब से वे धृतमुक्तमाला "नायिका" (शूडिक्कोडुत्त नाच्चियार) कहलाई ।।

गोदा श्री रंगनाथ की उपस्थिति का ही सदा अनुभव करती है। वह अपने को भगवान के जनम जनम की दासी मानकर उन्ही के ध्यान मे रात दिन रहती है। अपने को गोपी मानकर गोपियो की तरह उसने व्रतों का पालन किया। कामदेव की पूजा की। वह भी मीरां की भांति प्रियतम-वियोग के दु.ख को तथा मिलन-सुख को तरह तरह से व्यक्त करने लगी। प्रेमान्ध होकर कभी वह हँसती, कभी विरह में तड़पती रोती रहती है। प्रियतम के बिना उससे पल भर भी न रहा जाता। भगवत्प्रेम मे उन्मत्त गोदा के मन में श्री कृष्ण के गुण तथा लीलाओं की प्रतिच्छविया इतनी गहरी पड़ गई कि वह ब्रजमोहन की लीलाओ का आन्तरिक अनुभव करने लगी। उसका मन सदैव श्री कृष्ण के साथ किसी कुज गली में भटकता रहता है। कभी वह उनके साथ रासलीला करती तो कभी चीर हरण लीला होती, और कभी पांचजन्य बजाकर वह उसके चित्त को चुरा लेते हैं। कभी वह रो रोकर कोकिला सी मेघो से प्रार्थना करती है कि उसे वेकटाद्रि नाथ से मिला दो।[1] अपने संरक्षकों से वह यही कहती है कि 'मेरे ये पीन पयोधर भगवान श्री रगनाथ के लिये ही उद्भूत है। उसी के लिये उपभोग्य ये स्तन है, साधारण मनुष्य के लिये नही है। किसी मनुष्य द्वारा इनके भोग का प्रस्ताव मात्र सुनकर ही मैं जीवित न रह सकूँगी। मुझे वेकटाद्रि नाथ से मिला दो।"[2] "कृष्ण मेरे सामने आकर अपना मानस साक्षात्कार दिखाकर मुझे सता रहा है, अत: यह अपयश फैलने के पूर्व कि माता पिता के रहते ही यह अपने मार्ग में चली गई, मुझे श्री कृष्ण से मिला दो।"[3] भगवान श्री रंगनाथ ने गोदा की भक्ति से आनंदित होकर उसको अपनी प्रियतमा के रूप मे स्वीकार किया।

१, २, ३. नाच्चियार तिरुमोलि

कहा जाता है कि स्वप्न मे भगवान ने आदेश दिया कि गोदा को उसके पास लाया जाय। इधर विष्णुचित्त को भी भगवान का आदेश प्राप्त हुआ कि वह गोदा को लेकर मदिर मे उपस्थित हो जहा गोदा का विधिवत् पाणिग्रहण किया जायगा। स्वय आण्डाळ ने भी स्वप्न मे देखा कि धूमधाम से उनका विवाह श्री रगनाथ के साथ हो रहा है। इन्द्रादि देवगण पधारे है। स्वय गिरिजा ने उसे 'मत्र वस्त्र' पहनाये। वेदपाठी ब्राह्मण मत्र पढ रहे है और गोपाल उसके हाथ पकडकर अग्नि-परिक्रमा कर रहे है।[1]

यह भी प्रसिद्ध है कि श्रीरग मदिर से गोदा को लेने के लिये पालकी, छत्र चामर, गाजे बाजे के साथ पुजारी आये। पेरियाळ्वार अपनी पुत्री को श्री रंग-क्षेत्र ले गये। गर्भ-गृह मे प्रवेश करते ही वह श्रीरगनाथ की प्रतिमा मे विलीन हो गयी। तब से गोदा "आण्डाळ" के नाम से प्रसिद्ध हुई। आण्डाळ शब्द का अर्थ 'जिसने भगवान को प्राप्त किया' लिया गया है।

आण्डाळ के विवाह सबधी अन्य ऐतिहासिक विवरण गरुड वाहन पडित द्वारा रचित 'दिव्य सूरियो का इतिहास' मे गुरु-परपरा से भिन्न वर्णन दिया गया है। वह इस प्रकार है—

विष्णुचित्त ने अपनी पुत्री की यौवनावस्था और उसके भगवान पर अनुराग पर विचार करके यह निश्चय किया कि भगवान के साथ गोदा का पाणिग्रहण कर देना चाहिए। वे चाहते है कि वह विवाह आचार्य श्रेष्ठ नम्माळ्वार के आज्ञानुसार उनकी उपस्थिति मे होना चाहिए। यह सोचकर वे अपनी पुत्री और पांड्य राजा वल्लभ देव के साथ नम्माळ्वार के पास पहुचे। उसी अवसर पर वहा आये पोय्गैयार, भूतत्तार, पेयार, तिरुमलिशैप्पिरान, तोण्डरडिप्पो-डियाळ्वार, कुलशेखर और मधुर कवि से भी मिले। उपस्थित सभी आळ्वारो ने नम्माळ्वार से रचित पदो को सुना और अपने अपने पदो को भी नम्माळ्वार को सुनाया। फिर गोदा देवी द्वारा विरचित पदो को सुनकर तथा उसके भगवान पर प्रेमाधिक्य को देखकर परमानदित हुए। तुरन्त नम्माळ्वार ने गोदा देवी के विवाह के लिये स्वयवर का प्रबध करने के लिये वल्लभराज तथा मधुर कवि को नियुक्त किया।' इस उद्धरण मे यह ज्ञात होता है कि पेरियाळ्वार, आण्डाळ एव नम्माळ्वार समकालीन है।

गोदा देवी के भगवान मे विलीन हो जाने के उपरान्त पेरियाळ्वार अपनी पुत्री के वियोग पर गद्गद् होकर कह उठे—

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि : छठा दशक

"मैंने अपनी इकलौती पुत्री को लक्ष्मी के सदृश पाला पोसा और उसे रक्त नेत्री श्री रंगनाथ ने मुझसे छीन लिया।"[1]

राजगोपालाचारी (राजाजी) जैसे कुछेक विद्वानो का विचार है कि आण्डाळ विष्णुचित्त की पाली-पोसी हुई पुत्री नही है, वह केवल उनकी मानस पुत्री है। उनका कहना है कि जैसे अन्य आळ्वारों ने अपने को नायिका का अनुभव कर भगवान को नायक मानकर नाना प्रकार से अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है वैसे ही पेरियाळ्वार ने भी अपने को ही गोदा मानकर भगवान को पति रूप में वरण किया है। ये विद्वान् अपने कथन की पुष्टि के लिये अन्त:साक्ष्य के रूप मे पेरियाळ्वार तिरुमोलि के ७वां और ८वा दशक को मानते है। इन दो दशको में आळ्वार कृष्ण में अनुरक्त अपनी बेटी के लिये दु:खित होकर, उसकी शारीरिक व मानसिक स्थिति का वर्णन करते है।[2]

राजाजी एव अन्य विद्वानों का यह कथन युक्ति-युक्त नही प्रतीत होता। क्योंकि पेरियाळ्वार ने अपने सभी दशको के अन्त मे 'विष्णुचित्त' के नाम का उल्लेख किया है। यदि आण्डाळ को विष्णुचित्त की मानस पुत्री माने तो वैसे ही तिरुप्पावे और नाच्चियार तिरुमोलि के दशको के अन्त में भी केवल विष्णुचित्त के नाम का उल्लेख करते। आण्डाळ ने तिरुप्पावै के तीसवे पद में अपने को भट्टनाथ की पुत्री गोदा कहा है और चौदह दशकों में से बारह मे गोदा का नाम दशक के अन्त मे आया है। इसके अतिरिक्त गोदा एक जगह यूथिका पुष्पों को संबोधन करके कहती है—मर्यादा का उल्लंघन करने वाली शूर्पनखा का नासिकाछेदन करने वाले भगवान श्री रामचन्द्र का प्रतिज्ञापालन भले ही मिथ्या हो जाये परन्तु विष्णुचित्त स्वामी की पुत्री के रूप में मेरा जन्म भी क्या व्यर्थ होगा।[3] और एक जगह और भी अधिक स्पष्ट कहती है कि हमारे आचार्य श्रीविल्लिपुत्तूर के स्वामी भगवान को अपने पास बुलायेंगे तो हम सब बिना क्लेश के उसके दर्शन कर सकेंगे।'[4]

बहि:साक्ष्य में नाथमुनि, पराशरभट्ट, पेरियवाच्चान् पिल्लै के अतिरिक्त वेदान्त देशिक के कथन भी द्रष्टव्य है। वेदान्त देशिक अपनी गोदा स्तुति में कहते

---

१. ओरुमकटन्नैयुडैयेनुलकम् निरैन्द पुकलाल् तिरुमकल् पोल् वलर्त्तेन्, सेंकण् माल् तान् कोण्डु पोनान्

२. पेरियाळ्वार तिरुमोलि : दशक : ७,८

३. नाच्चियार तिरुमोलि : पद १०-४

४. वही १०-१०

है कि श्री विष्णुचित्त के कुलरूप, नन्दन वन की कल्पलना सदृश श्री गोदा देवी है जो रंगनाथ रूपी चन्दन वृक्ष के सयोग से, आत्मो को निहाल कर देती है। वह करुणा में साक्षात् पृथ्वी माता है, रूप गुण मे लक्ष्मी ही है। मै उस गोदा की शरण लेता हूं। वही मेरी रक्षिका है—

श्री विष्णुचित कुल नन्दन कल्पवल्लीं
श्री रंगराज हरिचन्दन योग दृश्याम्।
साक्षात् क्षमां करुणया कमलामिवान्यां
गोदामनन्य शरणः शरणं प्रपद्ये॥[1]

अतः अन्त.साक्ष्य एवं बहि:साक्ष्य के आधार पर यह निर्विवाद रूप मे कहा जा सकता है कि राजाजी एव अन्य विद्वानो का मत युक्ति-युक्त नही है।

आण्डाळ की रचनाएं :

आण्डाळ द्वारा विरचित दो ग्रथ है। ।१। तिरुप्पावै २, नाच्चियार तिरुमोलि।

तिरुप्पावै :

यह तीस सुन्दर पद्यो का मुक्तक काव्य है। इसमें कात्यायनी व्रत के अनुकरण मे मार्गशीर्ष व्रत के रूप मे कृष्ण से गोपियों की प्रार्थना का वर्णन वर्णित है। तिरुप्पावै शब्द का अर्थ 'श्री व्रत' लिया जा सकता है। 'पावै' का शब्दार्थ प्रतिमा भी होता है। भागवत मे वर्णित गोपियों के बालू से निर्मित कात्यायनी देवी की पूजा का ही अनुकरण यहां आण्डाळ गोपियो के रूप में करती हैं, मानेगे तो 'पावै' का अर्थ प्रतिमा लेने में कोई आपत्ति नहीं होगी। क्योकि तिरुप्पावै के सभी पदों के अन्त में 'एलोर् एम पावाय्' का वाक्यांश आता है। "एल् ओर' को निरर्थक मान लेने पर 'पावाय्' का अर्थ 'हे देवी,' मानना समीचीन होगा। अण्णंगराचार्य जी 'एल् ओर' को आश्चर्य सूचक शब्द के रूप मे तथा 'पावै' को व्रत के अर्थ में मानते हैं। वे इस वाक्यांश को विशेष अर्थयुक्त नही मानते परन्तु पादान्त में आये हुए अलकार सूचक अवश्य समझते है।[2] अधिकतर विद्वान् इससे सहमत नही है। प्रसिद्ध विद्वान् आलोचक वै० मु० गोपाल

---

१. श्री वेदान्त देशिक कृत गोदा स्तुति पद १
२. तिरुप्पावै टीका : अण्णंगराचार्य : भूमिका भाग

कृष्णामाचार्य जी पावै का अर्थ प्रतिमा ही मानते है।[1] आण्डाळ अपने पदों में कहती है "देवी (प्रतिमा) के लिये की जाने वाली क्रियाओं को सुनिये। यदि देवी (प्रतिमा) का स्नान कराकर हम भी स्नान करेंगी, आदि वर्णन से कहा जा सकता है कि भागवत मे कहे गये कात्यायनी व्रत का ही अनुकरण है। आण्डाळ के समकालीन शैव मत के आचार्य माणिक्य वाचक ने अपने कात्यायनी व्रत से सबंधित काव्य का नाम 'तिरुवेम्पावै' रखा है। यहां भी पावै का अर्थ प्रतिमा ही लिया गया है ।

तिरुप्पावै मे वर्णित देवी व्रत (लक्ष्मी का भी सबोधन माना जा सकता है) के रूप मे श्री कृष्ण से मिलने की प्रार्थना ही इस काव्य का विषय है। 'तिरु' शब्द श्री के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। सपूर्ण काव्य 'कोच्चकक् कलिप्पा' नामक तमिल छद मे रचित है ।

इस तिरुप्पावै मे वर्णित व्रतानुष्ठान का प्रसग यो है—

'गोप बालिकाओ को श्री कृष्ण के साथ विहार करना व्रजभूमि के गोप-वृद्धो को अच्छा नहीं लगा। अत. गोप-वृद्धों ने अपने अपने घर की कोठरी मे गोपियों को बंद कर दिया। बेचारी गोपियां कृष्ण-मिलन से वचित होकर तड़पती रही। दैवयोग से व्रज भूमि मे अकाल पड़ गया तो व्रज भूमि को दुर्भिक्ष से बचाने के लिये उन्होंने गोपियो को व्रतानुष्ठान करके वर्षा के लिये प्रार्थना करने की अनुमति दी। अनुमति पाकर सभी गोपिया निश्चय करती है कि प्रात: काल यमुना जाकर वहा वालू से देवी (कात्यायनी या लक्ष्मी) की प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा करके व्रत के रूप मे श्री कृष्ण से जा मिले। और उससे उनकी सेवा करने का श्रेय प्राप्त करने की प्रार्थना करे। तदनुसार धनुर्मास मे प्रति दिन उप:काल के पूर्व ही प्रथम जागी गोपी, दूसरी को जगाकर सब श्री कृष्ण को जगाने के लिये नद गोप के यहा जाती है। द्वार पालक, नदगोप, यशोदा, बलराम, नीला देवी को जगाकर व्रतानुष्ठान के लिये आवश्यक व्रतोपकरण के रूप मे भगवान के नित्य कैंकर्य करने का श्रेय प्राप्त करने की प्रार्थना करती है।

इस 'तिरुप्पावै' मे गोदा देवी की भावना का उत्कर्ष गोपी रूप में श्री विल्लिपुत्तूर को ही व्रज भूमि समझकर किया गया है तथा वटपत्रशायी के मदिर को ही श्री कृष्ण भवन माना गया है।

तिरुप्पावै के पदों मे वर्णित विषय :

१. गोपियां मार्गशीर्ष व्रत करने के इच्छुक जनो को बुलाती है।

---

१. **तिरुप्पावै : श्री वै. मु. गोपालकृष्णमाचार्य, पृष्ठ ५**

२. व्रतानुष्ठान के नियम तथा वर्जनीय कृत्यो का वर्णन करती है।
३. व्रत के कारण देश को प्राप्त होनेवाला फल बताती है।
४ वर्षा के अधिपति पर्जन्य देव से वर्षा की प्रार्थना करती है।
५. भगवान के कीर्तन से व्रत मे सभावित विघ्न की शका निर्हेतुक बतलाती है।

६ से १५. तक, प्रथम जागी गोपी, अन्य गोपियो के यहा जाकर जगाती है।

१६. सभी गोपिया नद गोप के यहा पहुचकर द्वार पालक से कपाट खोलने की प्रार्थना करती है।
१७ नद गोप, यशोदा, श्री कृष्ण एव बलराम को जगाती है।
१८ श्री कृष्ण की प्रधान नायिका नप्पिन्नै को जगाती है।
१९, २०. श्री कृष्ण एव नप्पिन्नै को अपनी प्रार्थना सुनने की विनती करती है।
२१. नप्पिन्नै के साथ मिलकर श्री कृष्ण की स्तुति करती है।
२२ अपना अनन्यार्हत्व प्रकट करती हुई भगवान के कृपा-कटाक्ष की प्रार्थना करती है।
२३ श्री कृष्ण से सिह सदृश जागकर एव सिहासन पर आरूढ होकर गोपियों की प्रार्थना सुनने की स्तुति करती है।
२४ सिहासन पर विराजे श्री कृष्ण की मगल स्तुति करती है।
२५. श्री कृष्ण की लीलाओं की स्तुति करती है।
२६ व्रतानुष्ठान के लिये शंख भेर्यादि मागती है।
२७. व्रत समाप्त होने पर भगवान से विशेष भेट की अपेक्षा प्रकट करती है।
२८. अपने अपराधों को क्षमा करने की प्रार्थना करती है।
२९ इसमे पूर्व पदों में वर्ण्य विषय की पुनरावृत्ति है तथा पुरुषार्थ का सच्चा स्वरूप प्रकट किया जाता है। गोपिया भगवान से स्पष्ट कहती है कि हम आपके नित्य कैंकर्य को छोड़कर और कुछ नहीं चाहती हैं।
३०. फल श्रुति॥

नाच्चियार तिरुमोलि (गोदा श्री सूक्ति)

इस ग्रंथ मे चौदह दशक अर्थात् १४३ पद्य है। पहले दशक में गोदा देवी श्री कृष्ण के साक्षात्कार रूप अभीष्ट फल प्राप्त करने के लिये, कामदेव के चरणों पर गिरकर, परमात्मा से मिला देने की प्रार्थना करती हैं।

दूसरे दशक मे, गोप गोपिकाएं अपने अभीष्ट की प्राप्ति शीघ्र न होने के

कारण दुखित तथा कुपित होकर श्री कृष्ण के आने पर मान दिखती है और आक्रोश प्रकट करती है।

तीसरे दशक मे चीर हरण लीला का मार्मिक चित्रण है।

चौथे दशक मे, मिलन के उपरान्त गोपिया पुनः मिलने के लिये शकुन परीक्षा की क्रीडा से जानना चाहती है कि श्री कृष्ण से सयोग होगा कि नही।

पाचवे दशक मे गोदा कोकिल के पैरो पडकर कृष्ण को बुलाने की प्रार्थना करती है।

छठे दशक मे स्वप्न मे दृष्ट रगनाथ के साथ सपन्न पाणिग्रहण सस्कार का वर्णन करती है।

सातवे दशक मे, अकेले श्री कृष्ण के अधर पान करने वाले पाचजन्य से ईर्ष्या भाव प्रकट करती है।

आठवे दशक मे मेघ सदेश का हृदय विदारक वर्णन है।

नवम, दशक, एकादश दशको मे उनकी विरह-व्यथा का विशद वर्णन है।

बारहवे दशक मे विरह की व्यथा असह्य होने के कारण, अपनी सखियो तथा माता-पिता अपने को श्री कृष्ण के क्रीडास्थान मथुरा आदि स्थलो मे पहुचा देने की प्रार्थना करती है।

तेरहवे दशक मे कृष्ण से सबध रखनेवाली कोई न कोई वस्तु अर्थात् तुलसी, पीताबर, अधर-रस लाकर अपने शरीर पर लेपन की प्रार्थना करती है।

चौदहवे दशक मे कृष्ण के सयोग का वर्णन है। इस सयोग-आनद को सखियों के संभाषण रूप मे वर्णन करती है। इस अन्तिम दशक मे वृन्दावन मे ब्रजमोहन के साक्षात्कार का वर्णन है।

मीरां का जीवन-वृत्त

मीराबाई के समय के विषय मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद रहा है। मात्र जनश्रुतियो का आधार लेकर कुछ लोगो ने इन्हे महाराणा कुभा की राणी और कुछ लोगो ने जयमल राठौर की पुत्री कहा है। कुछ इनको विद्यापति का समकालीन मानते है। इस पहली धारणा को सर्वप्रथम प्रसारित करनेवाले विद्वान कर्नल टाड है।[1] इन्ही के आधार पर बाद के विद्वानो ने मीराँ का

---

१. अपने पिता की गद्दी पर बैठने वाले (सन् १४९१) महाराणा कुंभने मेड़ता परिवार की कन्या मीरांबाई से विवाह कर लिया। वह अपने समय

सबंध महाराणा कुभा से स्थापित किया। शिवसिह सरोज मे इस बात का उल्लेख है कि मीरांबाई का विवाह चित्तौर नरेश राणा कुभकर्ण के साथ सवत् १४७० (सन् १४१३ ई०) मे हुआ था।[1] बाद मे इन सभी धारणाओ को जनश्रुति पर आधारित ठहराते हुए स्वर्गीय म० म० गौरी शकर हीराचद ओझा ने खडित कर दिया।[2] जहा तक मीराबाई और विद्यापति के समकालीन होने का सबध है, कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। इन दोनो के समकालीन होने का सर्व प्रथम निर्देश डा० ग्रियर्सन ने किया था। उन्होने मीरा का विवाह सन् १४१३ ई० मे उल्लेख किया था।[3] स्मरणीय है कि विद्यापति का समय पन्द्रहवीं शताब्दी विक्रमी है। इस सबध मे सभी विद्वान एकमत हो चुके है। इस प्रकार मीरां और विद्यापति को समकालीन मानना किसी प्रकार भी सगत नही जान पड़ता। इसी प्रकार मीराँ को जयमल राठौर की पुत्री भी नही माना जा सकता। वास्तविकता तो यह है, राव जयमल राठौर पिता न होकर चचेरे भाई थे।[4]

उपर्युक्त इन सभी असगतियों का निवारण करके मु० देवीप्रसाद जी मुँसिफ, अजमेर निवासी हरिविलास सारदा एव प० गौरीशकर हीराचद ओझा आदि ने इतिहास का आधार लेते हुए अतिम रूप से निश्चित कर दिया है कि मीरां राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्न सिह की इकलौती पुत्री थी। इतिहास के अनुसार राव दूदा के पुत्र रत्नसिह की मृत्यु स० १५८४ (सन् १५२७ ई०) में हुई थी। इस आधार पर ही मीरांबाई का जन्म सवत् १५५५ (सन् १४९८ ई०) के आसपास स्वीकार किया गया है। डा० प्रभात अपने शोध-प्रबध

में सौन्दर्य और सच्चरित्रता के लिये सबसे प्रसिद्ध रानी थी और इसके द्वारा रचे हुए अनेक गीत अब भी सुरक्षित है।

एनल्स एंड एंटीक्विटी आव राजस्थान, जेम्स डाड, पृ० ३३७

१. **मीरांबाई का विवाह संवत् १४७० के करीब राजा मोकलदेव के सुपुत्र राजा कुंभकर्ण चित्तौर नरेश के साथ हुआ था।**

ठाकुर शिवसिंह सेंगर, शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४७५

२. **राजपुताने का इतिहास (पहला खंड) म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ ३५५**

३. **माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर, डा०, जो० ए० ग्रियर्सन**

४. **मीरांबाई की पदावली, पं० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २१२, सप्तम संस्करण**

'मीरांबाई" मे मीरांबाई की जन्म तिथि श्रावण सुदी[1] शुक्रवार सवत् १५६१ मानते हैं।[2] कुछ लोग तो मीरांबाई का निश्चित जन्म काल निश्चित रूपसे सं० १५७३ मे स्वीकार करते है।[3]

मीरां का जन्म स्थान विद्वानों के मतानुसार जोधपुर से ३५ मील दूर पूर्वोत्तर दिशा मे उपस्थित कुडकी नामक गॉव है ।[4] मीरां अपने पदो मे अपने को मेड़तणी होने का उल्लेख किया है। इस सबंध में मुँशी देवी प्रसाद का यह मत उल्लेखनीय है कि "दूदा जी ने सं० १५१८ मे (१४६१ ई०) जोधपुर ने ४० कोस पर अजमेर के रास्ते पर पुराने शहर मेड़ते को नये सिरे से बसाया जो बहुत मुद्दतों से ऊजड़ पड़ा था और जिसको ठेट मे पंवार राजा मान्धाता का बसाया हुआ कहते है बस यही जिला जो मेड़ते से अजमेर के पास तक चारो तरफ २०।२० कोस के गिर्दाव मे फैला हुआ है मीराबाई का देश कहलाता है।[5]

---

१. मीरांबाई का जीवन चरित्र, मु० देवीप्रसाद, पृष्ठ ९
   वही पाद टिप्पणी—"हर विलास सारदा के अनुसार इनका जन्म १४९८ ई० के आसपास माना जाता है। अन्य विद्वान् ९५०४ ई० मानते हैं।
   उदयपुर राज्य का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ ३८४
२. मीरांबाई, शोध प्रबंध : डा० प्रभात, पृष्ठ ११९
   श्री सुखवीर सिंह गहलोत के अनुसार मीरांबाई की जन्म तिथि श्रावण शुक्ल तिथि १ संवत् १५६९ (सन् १५०४ ई०) है।
   —देशदूत, सन् १९४५ ई०
३. मीरांबाई का जीवन चरित्र, मु० देवीप्रसाद , पृष्ठ ९
   अर्लनियाबास, व्रजपुरा (मारवाड़) में निवासी मेड़तिया चौहाने के कुल-गुरुओं तथा धोलेराव के उनके भाट के रिकार्ड अनुसार उनका जन्म, ग्राम कुड़की—परगना जैतारण (मारवाड़) में बैसाख सुदी तीज १५५५ को हुआ था। —बगीय हिन्दी परिषद्, मीरां स्मृति ग्रंथ—विद्यानन्द शर्मा
४. मिश्रबन्धु : मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ २६३, पं० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८२
५. मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृष्ठ ८-९

प्रचलित है कि बाल्यावस्था मे ही मीरॉं का गिरधरलाल के प्रति विशेष आकर्षण हो गया था। इस आकर्षण के कारण रूप मे एक घटना विशेष का उल्लेख किया जाता है, जिसके अनुसार कोई महात्मा गिरधरलाल की मूर्ति के साथ मीरां के घर विश्राम हेतु रुका हुआ था। पूजा के समय उसके सामने गिरधरलाल की उक्त सुन्दर मूर्ति को देखकर मीरॉं का मन उसे पाने के लिये मचल उठा। मॉंगने पर महात्मा ने उसे देने से इन्कार कर दिया। किन्तु रात्रि मे उसे स्वप्न आया कि यदि वह मूर्ति को मीरा को नही दे देता तो उसकी कुशल नही है। भयभीत होकर उसने मूर्ति को मीरा को सुपुर्द कर दिया। मीरा उस मूर्ति के साथ सर्वदा खेल रचा करती थी। इस प्रसग मे एक और घटना का उल्लेख किया जाता है जिसके अनुसार अपने किसी पडोसी के यहा विवाहोत्सव में होनेवाले विभिन्न विधि-विधान को देखकर मीरॉं ने अपनी मा से यह पूछा था कि उसकी शादी किसके साथ होगी । मा ने हसती हुई उत्तर दिया कि तेरी शादी गिरधर लाल के साथ होगी। कहा जाता है कि मीरा ने मा के इस कथन को अक्षरश स्वीकार कर लिया था और बाल्यावस्था मे घटित इस घटना की छाप उनके जीवन पर यावज्जीवन रही। मीरा के एक पद मे बालपना की प्रीति मे उल्लेख का यह घटना ही कारण मानी जाती है।[1] इस बाल्पन मे प्राप्त गिरधरलाल की मूर्ति को मीरा अपने विवाह के उपरान्त ससुराल मे भी ले गई थी जिससे सबधित अनेक किवदतिया प्रचलित है।[2]

मीरा के व्यक्तित्व पर सर्वाधिक छाप इनके पितामह राव दूदा जी की पडी थी। मीरा की माता का बहुत अल्प काल मे ही देहान्त हो जाने के कारण तथा इनके पिता के सर्वदा युद्ध मे व्यस्त रहने के कारण इनके पालन की उचित व्यवस्था के लिए राव दूदा ने इन्हे कुड़की से मेड़ता बुला लिया था। वही पर मीरॉं का लालन पालन हुआ था। दूदा के पास ही इनके बडे पुत्र वीरमदेव का पुत्र जयमल भी रहा करता था। इन दोनो के व्यक्तित्व पर राव दूदाजी के धार्मिक सस्कारों की अमिट छाप पड़ी थी।

---

१. **आवो मनमोहना जी मीठा थारो बोल ।**
बालपना की प्रीत रमाइयाजी, कदे नाहिं आयो थारो तोल ।
दरसण बिन मोहिं जक न परत है चित्त मेरो डवांडोल।
मीरां कहै मै भई रावरी, कहो तो बजाऊं ढोल।
मीरां की पदावली : पद १००

२. मीरांबाई की पदावली, भूमिका भाग, पृष्ठ २१, पं० परशुराम चतुर्वेदी

मीरा का विवाह महाराणा सागा के ज्येष्ठ पुत्र कुवर भोजराज के साथ सवत् १५७३ सन् १५१६ ई० मे सम्पन्न हुआ था। विवाहोपरान्त ये अपनी ससुराल मेवाड़ में चली आई थीं। यहा इन्हें मेड़तणी सबोधित किया जाता था। इनका प्रारंभिक वैवाहिक जीवन सुखमय बीता किन्तु यह सुखमय जीवन अधिक दिनों तक नही चल सका। जीवन के अल्प काल मे ही कुंवर भोजराज का देहान्त हो गया था। अनुमान है कि इनका देहान्त इनके पिता के जीवन काल मे ही सन् १५१८ ई० से १५२३ ई० के बीच हो गया था। इस प्रकार मीराबाई अपनी युवावस्था मे ही विधवा हो गई थी ।[1] पति के इस अकाल-कवलित होने की घटना ने मीरा के जीवन मे एक बहुत बडा परिवर्तन ला दिया था और उनका झुकाव गिरधरलाल की तरफ एकनिष्ठ हो गया था।

मीरा की उपर्युक्त विवाह तिथि (संवत् १५७३) को ही मिश्रबधुओं एवं प० रामचन्द्र शुक्ल ने भ्रमवश जन्म तिथि[2] एव वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित "मीराबाई की शब्दावली" के सपादक महोदय ने मृत्यु तिथि मान लिया है।[3] पति की मृत्यु के कुछ दिन बाद ही मीरा के पिता रत्नसिह और श्वसुर राणा सागा की भी मृत्यु हो गई। इस दुःखद घटना का मीरा के मानस पर और भी गहरा प्रभाव हुआ और उन्होने ससार को असार समझकर और अधिक वेग और तन्मयता के साथ गिरधर गोपाल की आराधना तथा साधु संतो की संगति प्रारभ कर दिया। रनवास का त्याग कर मंदिरो मे गिरधर गोपाल की मूर्ति के समक्ष तन्मय होकर इनके नृत्य करने का उल्लेख इनके पदों मे मिलता है।

दिनों दिन बढ़ती हुई इनकी ख्याति को देखते हुए वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों ने इन्हे अपने सम्प्रदाय मे सम्मिलित करने का भी प्रयत्न किया।[4] किन्तु मीरां ने किसी भी संप्रदाय में सम्मिलित होने से अपनी असहमति व्यक्त की और गिरधरलाल में ही नित्यप्रति व्यस्त रहने लगी।

कोई निश्चित आधार न होते हुए भी मीरां का संबंध चैतन्य सप्रदाय से जोड़ा जाता है। चैतन्य महाप्रभु राधाकृष्ण के उपासक थे और राजस्थान

---

१. मीरांबाई का जीवन चरित्र : मु० देवी प्रसाद, पृष्ठ १०
२. मिश्रबन्धु विनोद : मिश्रबन्धु, प्रथम भाग, पृष्ठ २६३
   हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १८२
३. मीरांबाई की शब्दावली, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ १
४. चौरासी वैष्णवन की वार्ता : गोसाई गोकुलनाथ
   मीरांबाई की पदावली : पृष्ठ २२२

गुजरात आदि प्रदेशो का पर्यटन कर चुके थे। इस आधार पर ही अनुमान लगाया जाता है कि मीरां से उनकी भेंट हुई थी और इन्होने मीरा को अपना शिप्य बनाया था। किन्तु दोनों के समय को ध्यान मे रखते हुये देखे तो इनका परस्पर मिलना नितान्त असम्भव सा जान पड़ता है। सम्भावना मात्र इतनी है कि चैतन्य के शिष्य जीवगोस्वामी से मीरा को चैतन्य का सदेश प्राप्त हो गया होगा।[1] कोई निश्चित प्रमाण न होने पर भी वियोगी हरि मीरांबाई को सिद्ध गुरु जी गोस्वामी का शिष्या मानते है। इनका सबध चैतन्य सप्रदाय से स्थापित करते है। इन सब के लिये उन्होने एक पद को आधार बनाया है[2] जिसके मीराबाई द्वारा रचित होने मे ही सन्देह है।[3]

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल जैसे कुछ विद्वान मीरा को सत मत से प्रभावित मानते है और यहां तक कहते है कि मीरा नाम कबीर के अनुयायी संतो द्वारा दिया हुआ ही है।[4] किन्तु इस स्थापना मे सहज ही विश्वास कर लेना उचित नही है। इस विचारणीय विषय पर प० परशुराम चतुर्वेदी का मत विशेष रूप

---

१. अपने समय के जीव गोस्वामी बड़े प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। भारत के पश्चिमोत्तर अंचल में श्री चैतन्य के उपदेशों का प्रचार इन्होंने बहुत अधिक किया था। यह संभव है कि मीरांबाई को इनके संपर्क में आने के कारण श्री चैतन्य का सन्देश प्राप्त हुआ हो और वे उससे प्रभावित भी हुई हों किन्तु यह मानना कि मीरांबाई कभी भी चैतन्य से मिली होंगी आधार युक्त नहीं जान पड़ता।

मीरांबाई और चैतन्य : डा० सुकुमार सेन, मीरां स्मृति ग्रंथ

२. अब तो हरी नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धरयौ वैरागी॥
कित्त छोड़ी वह मोहन मुरली, कहं छोड़ी सब गोपी।
मूँड मुड़ाई डोरि कठि बांधी, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारन, बांधे जाको पांव।
स्याम किशोर भयो नव गोरा, चैतन्य जाको नांव॥
पीतांबर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्ण की दासी मीरां, रसना कृष्ण बसै॥

मीरांबाई, सहजोबाई, दयाबाई का पद्यसंग्रह, पृष्ठ ९

३. मीरांबाई की पदावली, पृष्ठ २२३-२२४

४. मीरांबाई, डा० पीतांबरदत्त बडथ्वाल, "सरस्वती" भाग ४०, संख्या ३

से द्रष्टव्य है—"कबीर साहब का दादु की रचनाओं मे भी आये हुए "मीरा" शब्द को हम ईश्वर के लिये प्रयुक्त व्यक्तिवाचक सज्ञा, किसी प्रकार भी नही मान सकते।[1] हां, इतना निश्चित है कि मीरा संतो की संगति में रही है। अतः जाने या अनजाने उनकी रचनाओ में संतों की शब्दावलियां मिश्रित है। किन्तु इन शब्दों को प्रभाव रूप से ग्रहण किया हुआ नही माना जा सकता। ये तो मात्र गिरधर गोपाल के लिये प्रतीक रूप मे ही आये है।

कुछ प्रक्षिप्त पदों के आधार पर कुछ लोग मीरां को रैदास की शिष्या मानते है और मीरां और रैदास की भेंट काशी नगर के चौक में होने का उल्लेख है। किन्तु मीरां का काशी प्रवास किसी ऐतिहासिक आधार पर निश्चित नहीं होता और मीरां के समय मे चौक का अस्तित्व रहा होगा, इसमें ही सन्देह है। दोनों के समय की दृष्टि से भी इनकी भेट संभव सी नही जान पड़ती।[2] रैदास के साथ चित्तौर की "झाली रानी" की भेंट का उल्लेख मिलता है। इनकी भेट काशी में ही हुई थी। झाली रानी कुंभा की पत्नी थी। अतः सभव हो "झाली रानी" को "मेड़तणी" समझ लिया हो।[3] अतः रैदास के साथ मीरां की भेट का उल्लेख असंभव ही है।

सत्य तो यह है कि मीरां के ऊपर उनके श्वशुर कुल और पितृकुल के अतिरिक्त और किसी का भी प्रभाव नही है। पितृकुल का राजघराना परम वैष्णव था जिनके उपास्यदेव चतुर्भुज भगवान का मदिर अब भी मेड़ते मे वर्तमान है। श्वशुर कुल के राणा कुभा एवं उनके पूर्वज एकलिग के उपासक होते हुए भी वैष्णव धर्म की ओर झुके थे। राणा कुभा एव उनके पूर्वजो द्वारा बनवाये मदिर इसके प्रमाण है।[4] इसलिये यह मानना ही होगा कि मीरां के ऊपर यदि किसी धर्म या मत

---

१. मीरांबाई की पदावली, पृष्ठ २३२

२. "काशी का चौक अभी हाल का बना हुआ है। प्रायः दो शताब्दी पहले वहाँ तक महाश्मशान समाप्त होता था और अब भी श्मशान विनायक फाटक के पास मौजूद है। मुगल काल में वहां अदालत स्थापित हुई थी जो महाल अब भी पुरानी अदालत कहलाता है। चांदनी चौक का छोटा रूप "चौक" भी मुगल काल से प्रचलित हुआ है।
मीरां माधुरी—ब्रजरत्नदास

३. "गुरु रैदास", —तारकनाथ अग्रवाल, मीरां स्मृति ग्रंथ, बंगीय हिन्दी परिषद

४. मीरांबाई का जीवन चरित्र, मु० देवी प्रसाद, पृष्ठ १०
मीरांबाई की पदावली, पृष्ठ २३१

की छाप है तो वह है वैष्णव धर्म। मीरा के समय तक आल्वार भक्तो एव रामानुजीय भक्ति सिद्धान्तो का प्रचार एव प्रसार उत्तर मे विशेपतया राजस्थान और गुजरात मे हो चुके थे। इस प्रकार इस वैष्णव धर्म से प्रभावित होना मीरा के लिये सहज सभव है। राव दूदा जी का चतुर्भुज विष्णु का मदिर बनवाना, वीरमजी, जयमल जी का परम वैष्णव एव भगवद्भक्त होना तथा राणा कुभा द्वारा वैष्णव मदिर का निर्माण करना, रामानुजीय सिद्धान्तो के प्रसार का ही ज्वलन्त उदाहरण है। अत. यह कहना असगत नही है कि मीरां के ऊपर रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्म की छाप पडी है।

जनश्रुति है कि मीरा के साथ अकबर और तानसेन की भेंट हुई थी। किन्तु इतिहास सम्मत न होने के कारण अधिकाश विद्वान इस धारणा से अपनी असहमति प्रकट करते है जिसमे सन्देह के लिये कोई भी स्थान नही है।[१]

मीरां के श्वशुर महाराणा सागा की मृत्यु के बाद उनका द्वितीय पुत्र महाराणा रत्नसिह गद्दी पर बैठे थे। रत्नसिह को बूँदी के हाड़ा सूरजमल ने पारस्परिक वैमनस्य के कारण शिकार खेलते समय मार डाला। इनकी मृत्यु के बाद राणा सागा का तृतीय पुत्र विक्रमाजित सिह उत्तराधिकारी हुआ। यह स्वभावत: दुष्ट था। इन्होने मीरांबाई को नाना प्रकार की यातनाए दी थी जिसका उल्लेख मीरा के पदो मे स्थान-स्थान पर हुआ है। कहा जाता है कि उनकी यातना से तग आकर ही कष्ट शमनार्थ मीरा ने पत्री लिखकर गोस्वामी तुलसीदास से राय मागी थी।[२]

---

१. मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृष्ठ २८

२. कहा जाता है, निम्नलिखित पद भेज कर तुलसीदास जी से राय मांगी थी—यह पाठ मीरांबाई की शब्दावली, वेलवेडियर प्रेस की भूमिका में उद्धृत है—

श्री तुलसी सुख निधान दुख हरन गोसाईं।
बारहि बार प्रणाम करूं, अब हरो सोक समुदाई।
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु-संग अरु भजन करत, मोहिं देत कलेस महाई।
बालपने ते मीरां कीन्हीं, गिरधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूं, लागि लगन बरियाई।
मेरे मात पिता के सम ही, हरिभक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिये समुझाई।

मीरांबाई की शब्दावली—वेलवेडियर प्रेस, पृष्ठ ५

कुछ लोग तो यहाँ तक स्वीकार करते है कि मीरां गोस्वामी तुलसीदास से स्वयं मिली थी।[1] किन्तु यह प्रसंग भी ऐतिहासिक दृष्टि से संदेहास्पद है।

विक्रमाजीत सिह की अत्याचारों एव उनके शासन की कुव्यवस्था के कारण उनकी प्रजा भी असन्तुष्ट रहती थी। उनकी कमजोरियो को देखते हुए गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने मेवाड पर आधिपत्य कर लिया। तत्संबंधी युद्ध में राणा परिवार पूर्णतः विनष्ट हो गया। अनुमान लगाया जाता है कि इन्ही दिनो मीरां अपने चाचा वीरमदेव के बुलाने पर मेवाड़ का त्याग करके अपने नैहर चली आई। यहाँ पर इनका जीवन सुचारु रूप से बीतने लगा। कहा जाता है कि महल के जिस भाग मे मीराबाई गिरधर की पूजा किया करती थी वह चतुर्भुज भगवान के मंदिर मे सम्मिलित है और मीराबाई के भोजनशाला के नाम से अब भी विद्यमान है।[2] कालान्तर मे मेड़ता की दशा भी अस्त-व्यस्त होती गई और अनबन के कारण संवत् १५९५ वि० मे जोधपुर के राव मालदेव ने राव वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया। इस घटना के कारण मीरां का चित्त और भी अव्यवस्थित हो उठा और इस संसार से उन्हे सहज विरक्ति हो गई जिसके फलस्वरूप उन्होने मेड़ता का भी त्याग कर अपना जीवन तीर्थाटन और सत्सग मे व्यतीत कर देने का निश्चय किया। कहा जाता है कि वे प्रथमतः वृन्दावन गई जहाँ उनकी भेट रूपगोस्वामी के भतीजे जीव गोस्वामी से हुई। जीव गोस्वामी जी चैतन्य सप्रदाय के साधुओ मे सर्वप्रसिद्ध थे। कथा प्रचलित है कि जीव गोस्वामी ने पहले कहला भेजा कि मै स्त्रियो से मिला नही करता। किन्तु

कहा जाता है कि तुलसीदास जी ने निम्नलिखित पद लिख भेजा था।

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनिता भये सब मंगलकारी।
नातो नेहु राम से मनियत, सुहृद सुसेव्य जहां लौ।
अंजन कहा आँख जो फूटै, बहुत कहौ कहां लौं।
तुलसी सो सब भांति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो बढ़े सनेह रामपद, एतो मतो हमारो।
—विनय पत्रिका, पृष्ठ ५५१

१. बाः शिवनन्दन सहाय, श्री गोस्वामी तुलसीदास जी, पृष्ठ १११
२. मीरांबाई की पदावली, पृष्ठ २५ पं० परशुराम चतुर्वेदी

मीरां के इस कथन को मुनकर "मै तो अब तक समझती थी कि वृन्दावन मे भगवान श्री कृष्ण ही एक मात्र पुरुष और अन्य सभी लोग गोपी या स्त्री रूप है। मुझे आज ज्ञात हुआ कि भगवान के अतिरिक्त अपने को पुरुप समझने वाले यहा और भी विद्यमान है।[1] जीव गोस्वामी चकित रह गये और दौडकर मीरा मे मिले। मीरांबाई कदाचित वहाँ कुछ दिनो तक उनके साथ सत्सग भी किया और पश्चात् सभवत. सवत् १५६६ वि० मे द्वारिकाधाम चली गई थी। प्रचलित है कि बहादुरशाह, मेवाड पर बहुत दिनों तक आधिपत्य नही कर सका और विक्रमाजीत सिह ने मेवाड पर पुनः अधिकार कर लिया। बणवीर ने विक्रमाजीत सिह की हत्या करके मेवाड पर कब्जा तो कर लिया, वह भी स्थायी रूप से न रह सका और मेवाड की गद्दी पर विक्रमाजीत सिह का छोटा भाई उदय सिह बिठाया गया। इधर राव वीरमदेव ने भी पुन. मेडते पर अधिकार कर लिया। प्रसिद्ध है कि मेवाड़ और मेड़ता दोनो की स्थिति अच्छी होने पर दोनो ने मीरा को द्वारिकाधाम से वापस लौटा लाने के लिये ब्राह्मण भेजे थे। मीरा ने वापस आने से इनकार किया तो ब्राह्मणों ने हठ करना प्रारभ कर दिया। इससे ऊबकर मीरां अपना मानसिक सतुलन खो बैठी और ब्राह्मणो से वापस चलने का आश्वासन देकर रणछोड़जी के मदिर मे उनसे आज्ञा प्राप्त करने के लिये गई। कहते है कि वे उस मदिर से फिर वापस नही लौटी। सभवतः उन्होंने अपने को भगवान रणछोड़जी की पवित्र प्रतिमा मे ही अन्तर्विलीन कर लिया। इस घटना का समय अधिकतर विद्वान सवत् १६०३ वि० (सन् १५४६ ई०) मानते है।[2] किन्तु कुछ विद्वान इससे असहमति प्रकट करते हुए इस तिथि के वाद भी मीरा के जीवित रहने का उल्लेख करते है।[3]

---

१. मीरांबाई की पदावली, पृष्ठ २६, पं० परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई का जीवन चरित्र : पृष्ठ २६, मुँ० देवीप्रसाद
मीरांबाई की पदावली (पृष्ठ २७) पं० परशुराम चतुर्वेदी
३. डा० प्रभात—मीरांबाई शोध प्रबन्ध : मीरां की निश्चित तिथि निर्धारित करना तो संभव नहीं है, पर परिस्थितियों के साक्ष्य के आधार पर उसे संवत् १६१० और १६१३ के बीच माना जा सकता है।
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : कविवचन सुधा—१६२०-१६३० वि०
मीरांबाई की शब्दावली और जीवन चरित्र—सं० १६२०-१६३० वि.
डा० कृष्णलाल : मीरांबाई : सं० १६२२-१६३० वि०
डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास १६२०-१६३० वि०
श्रीमती पद्मावती शबनम्, मीरां—एक अध्ययन सं० १६३०

मीरांबाई की रचनाएँ

मीरांबाई की रचनाएँ अब तक मात्र पदो के रूप मे प्राप्त हुई है। पदो के अतिरिक्त कुछ और रचनाओ के साथ भी मीरा का नाम जोडा जाता है। पर अब तक उनके मीरां विरचित होने के सबध मे न तो कुछ निर्णय लिया जा सका है, न विद्वान ही एक मत हो सके है। ये प्रचलित रचनाएँ निम्न लिखित है—

१. नरसीजीरो माँहेरो :

इसे "नरसी जी का मायरा" या "नरसीजी को माहेरा" भी कहा जाता है। इस ग्रथ को डा० मेनारिया, मीरा विरचित नही मानते है।[1] क्योकि इन्हे इसके मीरा कृत होने का कही भी सकेत नहीं मिलता। अनुमान है कि यह रचना किसी मीरादास नामक वैष्णव भक्त की है और उसका रचना काल स० १७४५ और स० १८९० के बीच है।[2] उल्लेखनीय है कि मुँशी देवीप्रसाद कृत महिला मृदुवाणी मे सगहीत इस ग्रथ के अठारह पदो के आधार पर ही विभिन्न विद्वानों ने अपना मत निश्चित किया है। श्री० के० एम० मुन्शी का अनुमान है कि नरसिह का समय स० १५६९ से १६६० के बीच है।[3] माहेरो की कथा से इतनी बात स्पष्ट हो जाती है कि यह कथा नरसी के अतिम दिनो की कथा है। श्री मुन्शी के उपर्युक्त मत को स्वीकार करने पर यह मानना पडेगा कि "माहेरा" की रचना सं० १६१९—२० के पहले नहीं हुई होगी। मीरां का सं० १६२० तक जीवित रहना किसी प्रकार से सभव नही। अतः उक्त माहेरा के मीरां कृत होने मे सदेह स्वाभाविक है।

"माहेरा" एक विधि विधान है जो गुजरात और राजस्थान मे अत्यधिक प्रचलित है। अपनी लड़की या बहन की संतान की जब शादी होती है तब उस लड़की का पिता या भाई वस्त्रादि देकर उस विवाह मे सम्मिलित होता है। इसे ही माहेरा कहते है। इस ग्रंथ मे नरसी मेहता के माहेरा का वर्णन है। यह माहेरा उनकी पुत्री नानाबाई के घर पर सपन्न हुआ था।

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ ६२
२. मीरांबाई की पदावली : पं० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २८, पाद टिप्पणी में। (सप्तम संस्करण)
३. गुजरात एंड इटस् लिटरेचर : के० एम० मुंशी, पृष्ठ १८५,२००

गीतगोविन्द की टीका :

इस ग्रथ की कोई भी प्रकाशित या हस्त लिखित प्रति अब तक प्राप्त नही हो सकी है। कर्नल टाड ने मीरा को भ्रमवश राणा कुभा की पत्नी माना है। चित्तौड़ के दुर्ग मे स्थित कीर्तिस्तभ की प्रशस्ति से इस बात का स्पष्ट सकेत मिलता है कि कुभा ने गीतगोविन्द की मधुर टीका लिखी थी।[1] सभव है, मीरा को कुभा की पत्नी मानने की असगत धारणा के कारण ही उनका सबध इस रचना से भी जोड़ लिया गया है। श्री व्रजरत्नदास का अनुमान है कि मीरा ने गीत-गोविन्द की टीका न लिख राणा कुभा द्वारा लिखित टीका की व्याख्या लिखी थी।[2] परन्तु इस अनुमान के लिये भी कोई आधार नही है। इसलिये निश्चित रूप मे कह सकते है कि मीरा की ऐसी कोई स्वतत्र रचना नही है।

रागगोविन्द :

इसे रामगोविन्द भी कहा जाता है। म० म० गौरीशकर हीराचद ओझा, शिवसिह सेंगर तथा ग्रियर्सन ने इसका उल्लेख किया है। लेकिन किसी ने भी इस ग्रथ के विषय मे प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत नही किया है। मीरा ने अपने पदो मे गोविन्द संबोधन कई स्थानो पर किया है। ये पद विभिन्न राग-रागिनियो मे लिखे गये है। संभव है कि इस आधार पर ही "रागगोविन्द" नामक काल्पनिक ग्रंथ का प्रचलन कर दिया गया हो।

सोरठ के पद :

इस ग्रथ का उल्लेख मुँशी देवीप्रसाद ने कलकत्ते मे हुए द्वितीय साहित्य सम्मेलन (स० १९६९) के अवसर पर प्रस्तुत निबंध "राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज और उनकी सूची" मे किया है। नागरी प्रचारिणी सभा का सन् १९०२ की हस्त लिखित ग्रंथो की खोज रिपोर्ट मे भी इसका उल्लेख है। इसके अतिरिक्त मिश्र बधुओ ने इसका उल्लेख किया है। जोधपुर पुस्तक प्रकाशन मे एक हस्त लिखित प्रति इस नाम से सुरक्षित है। इसके पाँच पृष्ठो ने मीरां के

---

१. येनाकारि मुरारिसंगतिरसप्रस्यन्दिनी नन्दिनी
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविंदके।
—चित्तौड़ के दुर्ग में स्थित कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति

२. मीरां माधुरी—ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ९१

पद दिये गये हैं।[१] मीरां ने राग सोरठ में भी कई पदों की रचना की है। किन्तु इन पदों का, राग सोरठ नाम से अलग-अलग पुस्तकाकार लिखा जाना असंगत-सा जान पडता है। संभव है कि किसी भक्त ने राग सोरठ मे लिखे गये विभिन्न सन्तो के पदो का संग्रह किया हो, उसमे मीरां के भी इस प्रकार पद सगृहीत हो।

मीरांबाई का मलार :

इसको ब्रज प्रदेश मे "मीरां मल्हार" और महाराष्ट्र में मीराबाई चा मल्हार" कहते हैं।[२] ओझा जी[३] और बलवन्तसिह मेहता ने[४] इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। मलार भी एक राग विशेष है। मीरां ने इस राग में कई पदो की रचना की है। कथा प्रचलित है कि इस राग को जन्म देनेवाली मीरां ही है। परन्तु यह सहज ही विश्वसनीय नहीं है। सभावना यही है कि उपर्युक्त राग सोरठे के पदों की भाति, मलार राग मे भी रचे गये मीरां के पदो का एक सग्रह कर दिया गया हो और उसे मीराबाई का मलार कहा जाने लगा हो।

गवांगीत :

सर्वप्रथम इस रचना का उल्लेख कृष्णलाल मोहनलाल झावेरी ने किया था। हिन्दी मे लिखी गई पुस्तकों में विभिन्न विद्वानों ने झावेरी जी के इस मराठी ग्रथ[५] का आधार ग्रहण किया है । "गवां" एक प्रकार का भावना प्रधान लघु गीत है। मीरां के अनेक पद इस प्रकार के है। पर यह कहना असंगत है कि मीरां ने गवां नामक किसी ग्रंथ की रचना की थी।[६] डा० प्रभात ने मीरां कृत कही जाने वाली कुछ और रचनाओं का उल्लेख किया है जिनकी प्रामाणिकता के विषय मे वे स्वयं आश्वस्त नहीं है। उनके द्वारा उल्लिखित ग्रंथ इस प्रकार है—

रुक्मणि मंगल, रुतमां मानुं रूसणं, नरसी मेहता नी हुंडी, चरीत

---

१. मीरां के पद, पत्र ५, राग सोरठ, हस्त लिखित प्रति, जोधपुर के पुस्तक प्रकाश में वर्तमान है। मीरांबाई—डा० प्रभात, पृष्ठ २७६
२. मीरांबाई : डा० प्रभात, पृष्ठ २७७
३. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १ पृष्ठ ३६०—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
४. भक्तिमती मीरांबाई : बलवन्त सिंह मेहता
५. गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तंभों, पृष्ठ ३२
६. मीरांबाई : डा० प्रभात, पृष्ठ २७८

फुटकल पद : (मीरांबाई के पद)

निष्कर्ष रूप मे कह सकते है कि मीराबाई की प्रामाणिक रचनाएं उनके पद ही है। मीरांबाई के नाम से प्रचलित इन पदो की सख्या २५ से लेकर ५०० तक पहुँचती है।[1] अब तक मीरां की रचनाओ के नाम पर ५० से अधिक सग्रहो का पता चलता है। इनमे से कुछ संग्रहो का सक्षिप्त परिचय परिशिष्ट मे दिया गया है। नागरी प्रचारिणी सभा के सग्रहालय में सुरक्षित प्रतियों,डाकोर की प्रतियां (संवत् १६४२ और स० १८०५ की) एव अन्य प्रतियों के आधार पर प० ललिता प्रसाद सुकुल ने मीरा के कुल १०३.पदो को प्रामाणिक माना है।[2] पं० परशुराम चतुर्वेदी ने प्राय. समस्त उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह निश्चित किया है कि मीरा द्वारा विरचित कुल २०२ पद ही प्रामाणिक हैं।[3] इस संस्कारण में अपने थोड़े से पाठान्तरो के साथ ललिता प्रसाद सुकुल द्वारा स्वीकृत सभी पद आ गये है। अन्य कई दृष्टियों से और अब तक प्रकाशित संस्करणों में प० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सपादित मीराबाई की पदावली अधिक प्रामाणिक जान पडती है। उल्लेखनीय है कि लेखक ने प्रस्तुत अध्ययन मे इन्हीं के सग्रह को ही विशेष आधार बनाया है।

मीरांबाई के पदों का संक्षिप्त विवरण :

मीरा के पदो मे उनका अनन्य आत्म-समर्पण ही बार-बार मुखरित हुआ है। अपने प्रभु गिरधर नागर के समक्ष उन्होने पूर्णतया समर्पित कर दिया है। इनके गिरधरलाल के अतिरिक्त इस संसार में दूसरा कोई सगा संबंधी नही है। इस आत्म-समर्पण की भावना के बीज मीरां के हृदय में बालपन से ही अंकुरित थी। कुंवर भोजराज के साथ हुए विवाह के उपरान्त भी गिरधर लाल के प्रति मीरा का यह अटूट सबंध विच्छिन्न नही हो सका है। इसलिये ही उन्हें अनेक प्रकार की मानवीय यातनाओ और कुत्सित लोक-निन्दा का सामना करना पड़ा है। जीवन के इन सघर्षो के चित्र भी इन पदों के विषय हैं। मीरां का समर्पण अपने आराध्य देव के प्रति "कान्त कान्ता भाव" से है। गिरधर लाल को उन्होंने सर्वत्र ही कान्त भाव में ही देखा है। नारी होने के कारण मीरा कान्त कान्ता भाव और

---

१. मीरां स्मृति ग्रंथ—बंगीय हिन्दी परिषद्, पृष्ठ ख, पदावली–परिचय
२. वही मीरां पदावली, ललिताप्रसाद सुकुल
३. मीरांबाई की पदावली : सप्तम संस्करण (पं० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

विशेषकर विरह के सवेदनशील चित्रो मे अधिक सफल हो सकी है। मीरां की यही संवेदना अन्य भक्तों की तरह "स्वयवेद्य" से पृथक् "परसंवेद्य" में ही विस्तृत न होकर, अपितु वह मात्र स्वयवेद्य ही है। उनके पदो मे कृष्ण के मुरली मनोहर के रूप के अतिरिक्त अन्य रूपो का चित्रण नही है। एकाध स्थलों पर गज, गणिका आदि के संदर्भ मे आये हुए अन्य रूप भी भगवान गिरधर के माहात्म्य के कीर्तन के अंग ही है। इस बात का सकेत मिलता है कि मीरा ने विभिन्न सतो की संगति की थी। पर किसी भी पंथ का प्रभाव या उल्लेख उनकी रचनाओं मे स्पष्ट नहीं होता। मीरां के अन्तःकरण में तो यह धारणा बचपन से ही घर कर ली गई थी कि वह गिरधरलाल की प्रिया है और गिरधरलाल उसे अवश्य अपनायेंगे। उन्हें रिझाने के निमित्त वह उनकी मुरली के मधुर रागो की कल्पना मे जीवन पर्यन्त रीझती-नाचती रही। गिरधर लाल से सश्लेष, पाणिग्रहण आदि से सबधित चित्र भी मीरां के पदो मे देखने को मिलते है जो इनकी अनन्य अनुरक्ति एव दृढ विश्वास का प्रतिफल है।

३. मीरां और आण्डाल की भक्ति-भावना एवं भक्ति-स्वरूप

भक्ति-भावना का प्रसार एवं समर्पण-भाव :

मीरां और आण्डाल कृष्ण भक्त कवयित्रिया है। ये दोनो कवयित्रयां अपनी परा भक्ति द्वारा भगवान श्री कृष्ण के विराटत्व मे एकाकार हो गई है। वे आधिभौतिक धर्म की उपेक्षा करनेवाली आध्यात्मिक सृष्टि की धरा बन गई है। इन कवयित्रियों की धारणा है कि भक्त का शरीर अत्यन्त पावन होता है। वह जगलों में विहार करनेवाला श्रृगालों के अनुरूप और सामान्य मानस के स्पर्श के योग्य नहीं होता। यदि साधारण मनुष्य उनके शरीर को स्पर्श कर दे तो वह अपवित्र हो जाता है, फिर गिरधर नागर अथवा रंगनाथ उन्हे स्वीकार नहीं कर सकते। इन कवयित्रियों की इस धारणा से एक दार्शनिक तथ्य यह उद्घाटित होता है कि पार्थिव सत्य से अलौकिक सत्य ऊपर है। पार्थिव सत्य सासारिक मोहा-शक्ति से अस्पृष्ट रहकर ही विराटत्व मे एकाकार और तिरोहित हो सकता है। इसी धारणा को लेकर इन कवयित्रियों ने कृष्ण की माधुर्य भक्ति की है।भारतीय साहित्य में इन कवयित्रियों का योग दान अक्षुण्ण है। इनके पदों में जिस दार्शनिक सत्य की विवेचना की गई है उससे भारतीय साहित्य समृद्ध हुआ है। दोनों कवयित्रियों ने भक्ति को ही ईश्वर की प्राप्ति का सुलभ साधन माना है और भक्ति एवं उपासना करते हुए ईश्वरत्व को प्राप्त किया है। प्राचीन भारतीय दर्शन ग्रंथों में भक्ति के स्वरूप एवं महत्त्व की पूर्ण विवेचना की गई है। भागवत में इस तथ्य का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

> **न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।**
> **न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।**
> **भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽमा प्रियः सताम्।**
> **भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात्।**[1]

भगवान् कृष्ण उद्धव को संबोधित करते हुए कहते है कि मुझे योग के द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता। मैं सांख्य के द्वारा भी प्राप्य नही। मेरी प्राप्ति का एक मात्र साधन भक्ति ही है। नारद भक्ति सूत्रों के अनुसार भक्ति साधना

---

१. श्रीमद्भागवत। ११।१४।२०

"परा भक्ति" और "गोणी भक्ति" के रूप मे की जाती है। ज्ञानी भक्त परा भक्ति के अधिकारी होते है। "निष्काम भक्ति, परा भक्ति है," किसी किसी का मत है, शरण प्रतिपत्ति परा भक्ति है।"[1] वास्तव में अपने आराध्य देव के नैकट्य की प्राप्ति के लिये अनुरक्ति का होना ही भक्ति की साधना है। भागवत के अनुसार ईश्वर मे हेतु रहित निष्काम, एकनिष्ठा युक्त अनवरत प्रेम का नाम ही भक्ति है। परा भक्ति के संबंध में "न्यास दशकम्" में विचार किया गया है। इस अहेतुक वा निष्काम भक्ति के सबंध मे वेदान्तदेशिक का मत इस प्रकार है—

स्वामिन् स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।
स्वदत्तस्वधिया स्वार्थं स्वस्मिन्न्यस्यति मां स्वयम् ॥[2]

सूत्र मे इस तथ्य का उद्घाटन किया गया है कि मैने यह कार्य नही किया, भगवान मेरे माध्यम से संपूर्ण कार्य कराते है। भगवान द्वारा प्रदत्त प्रयोजन के कारण इस कर्म को वैयक्तिक समझना अहंकार हैं। इस अहंकार भाव की परिसमाप्ति और निवृत्ति के लिये ईश्वर ने बुद्धि चेतना प्रदान की है। न्यासदशकम् सूत्र में 'स्वधिया' शब्द से इस अर्थ की व्यंजना होती है। भक्ति भावना का यही स्वरूप मीरां एवं आण्डाल के पदो मे देखने को मिल जाता है। न्यासदशकम् मे ही रचनाकार ने परा भक्ति के स्वरूप पर अधिक विचार करते हुए अपना मत व्यक्त किया है—

न्यस्याम्यकिंचनः श्रीमन्ननुकूलोऽन्यवर्जितः ।
विश्वासप्रार्थनापूर्वमात्मरक्षाभरं त्वयि ॥[3]

अर्थात् भगवान् के प्रीत्यर्थ सभी करणीय कार्यों के निश्चित स्वरूपों पर विचार करना, उनकी इच्छा के विपरीत कुछ नही कहना, भगवान् पर ही सपूर्णत. अवलंबित होकर पार्थिव सत्य के प्रति आसक्ति न रखना, भगवान के रक्षकत्व पर पूर्ण विश्वास करना, अपनी रक्षा के हेतु प्रार्थना करना, ये ही पांच प्रपत्ति के पचाग है। वेदान्तदेशिक का यह दृढ़ मत है कि भक्ति और शरणागति दोनो एक ही है। उन्होने न्यास दशकम् के पचम, षष्ठ और सप्तम पदों में अपनी भक्ति के फल प्राप्त करते हुए प्रार्थना की है कि मुझे सदा अपने कैंकर्य के योग्य बनाओ किन्तु मात्र मुझे ही नहीं, अपितु तुमसे प्रपत्ति करनेवाले मुझे और मुझसे सबंधित चेतनाचेतन को भी अपने कैंकर्य के अनुकूल निर्मित करो। इस बात की अभिव्यक्ति न्यास दशकम् मे निम्नलिखित श्लोक मे हुई है—

---

१. मीरां स्मृति ग्रंथ, मीराजी की परा भक्ति, पृष्ठ ५६
२. वेदान्तदेशिक द्वारा रचित न्यास दशकम् श्लोक ३
३. वही २

त्वच्छेषत्वे स्थिरधिय त्वत्प्राप्त्येकप्रयोजनम् ।
निषिद्धकाम्यरहितं कुरु मां नित्यकिंकरम् ॥[1]
देवी भूषण हेत्यादि जुष्टस्य भगवंस्तव ।
नित्यं निरपराधेषु कैंकर्येषु नियुङक्ष्व माम् ॥[2]
मां मदीयं च निखिल चेतनाचेतनात्मकम् ।
स्वकैंकर्योपकरणं वरद स्वीकुरु स्वयम् ॥[3]

मीरा और आण्डाल की भक्ति भावना मे यही कैंकर्य भाव देखने को मिलता है। उन्होने मन, वचन और कर्म से कृष्ण की उपासना की है और अपनी पार्थिव सत्य को कृष्ण को समर्पित कर दिया है। इस समर्पण भावना के कारण मीरा और आण्डाल की पार्थिवता, अलौकिकता के ही एक अश रूप मे प्रकट हुई है। मीरा ने इसी कैंकर्य भावना की अभिव्यक्ति की है। इनकी निम्नलिखित पंक्तियो मे समर्पण भाव पूर्णतः स्पष्ट रूप मे उपवर्णित है—

"मीरां हरि रे हाथ बिकाणी, जणम जणम री दासी ।"[4]
"मै दासी थारी जनम जनम की, थे साहिब सुहाणां ॥"[5]
"चरण चरण री दासी मीरां, जणम जणम री क्वांरी ॥"[6]
"मीरां कुँ प्रभु दरसन दीज्यो, जणम जणम की चेली ।"[7]
"मीरां दासी जनम जनम की, दिल की घुंडी खोला ।"[8]
"मीरां दासी जनम जनम री, थारो नेह लगाय ।"[9]
"मीरां दासी चरनन की, हम तेरे तुम मेरे ।"[10]
"मीरां दासी जनम जनम री, भगतां पेजणि भावां ।"[11]
"म्हांरो जणम जणम रो साथी, थाने,णा बिसार्यां दिन राती।[12]
"मीरां तो चरणन की चेरी सुन लीजे सुखदानी ।"[13]
"मीरां दासी राम भरोसे, जग का फंदा निवार ।"[14]
"मीरां दासी अरजां करता म्हारो सहारो णा आण ।"[15]
"शरणागत थे वर दिया परतीत पिछाणी जी ।
मीरां दासी रावली अपणी कर जाणी जी ।[16]

मीरा का आविर्भाव जिस युग मे हुआ उस युग मे रामानुजाचार्य के वैष्णव मत का अत्यधिक प्रसार हो चुका था। मीरा की चिन्तनधारा पर भी इसी मत का प्रभाव पड़ा है। वैसे यह सत्य है कि समाज के वातावरण का मानवी

१-३. न्यास दशकम् श्लोक क्रमशः ५, ६, ७। ४-१६ मीरां बाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी

चेतना पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। आण्डाल की चिन्तनधारा भी वैष्णव मत से प्रभावित थी। आल्वारो ने वैष्णव धर्म का पालन भी किया और प्रसार भी। आल्वारो के उपरान्त प्रसार की यह गति और वेग से प्रसृत हुई। दक्षिण भारत मे वैष्णव धर्म का यह प्रसार अत्यधिक वेग के साथ होने लगा था। मीरां और आण्डाल दोनो ही इसी धर्म की उपासिका है। मीरां का जन्म जिस काल मे हुआ था, उस काल की धार्मिक स्थिति पर यदि गंभीरता पूर्वक विचार किया जाय तो यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि मीरां का काल भागवत पुराण मे कहे गये वैष्णव भक्ति के नवीन रूप से परिप्लावित था और इस व्यापक प्रसार मे दक्षिण भारत के रामानुजीय सप्रदाय के आचार्यो का विशेप योग रहा है। मीरां वैष्णवी हैं, इस तथ्य की उद्घाटना करते हुए प्रो० तारकनाथ अग्रवाल ने अपने विचार को व्यक्त करते हुए मत व्यक्त किया है—

'इतिहास के पृष्ठ इसके साक्षी है कि मीरां का घरेलू वातावरण विष्णु भक्ति से प्रभावित था। ऊपर कहा गया है कि मीरा का काल भागवत पुराण मे कहे गये वैष्णव भक्ति के नवीन रूप से परिप्लावित था। अतएव मीरा का पितृ और श्वशुर कुल भी इससे अछुता न था। सिसोदिया राजवश ने एक लिग का उपासक होते हुए भी इस नव धर्म को प्रश्रय दिया था। राणा मोकल (१४२०–१४२८) ने चित्तौड़ मे द्वारका नायक का एक विशाल मदिर बनवाया था, उनके प्रसिद्ध पुत्र राणा कुभा ने (१४३०–३८ ई०) इस सप्रदाय की दीक्षा ही नही ली वरन् इससे प्रभावित होकर 'गीत गोविन्द' की टीका भी 'रसिक प्रिया' नाम से की। इनकी बहन रमाबाई का विवाह सोरठ के मण्डलिक यादवराज के साथ हुआ था। ये वैष्णवी है। राणा रायमल के शासन काल मे इन्होने १४२८ मे कुंभलमेर दुर्ग मे दामोदर का एक मदिर बनवाया था। यह किवदन्ती भी प्रसिद्ध है कि रामानन्द के प्रथम शिष्य अनन्तानन्द जोधपुर राजवंश के राजगुरु थे। सांभा मे प्रदर्शित अपने चमत्कार से उन्होने शासक को अपना शिष्य बनाया था। यद्यपि यह उल्लेख विस्तृत नही फिर भी प्रकाश तो इतना पड़ता ही है कि मीरा के श्वशुर तथा पितृकुल दोनों ही वैष्णव सप्रदाय से प्रभावित थे। इस वातावरण में जन्म ग्रहण कर तथा ऐसी स्थिति मे रहकर मीरा ने यदि अपने इष्टदेव का रूप साकार कृष्ण—क्योकि उपर्युक्त पक्तियो मे विष्णु के अवतार 'राम' का कही उल्लेख नही है—को माना तो इसकी असम्भावना नही। उपर्युक्त इतिहास यह भी सिद्ध करता है कि इन दोनो राजकुलों पर सतमत का कोई प्रभाव नहीं था। फिर मीरा ही क्योकर सतमतावलबिनी हो सकती थी।"सन्तन ढ़िग बैठ-बैठ"

कर वे सन्त मत को मानने लगी ? नही, कदापि नही। यहा संतन का अर्थ है "ईश्वर भक्त, महात्मा या साधु।[1]

भक्तो और सन्तो के आध्यात्मिक स्वरूपो की विवेचना करते हुए प्रो० अग्रवाल ने यह स्पष्ट किया है कि ये दोनो ही परमात्मा को मानते है। परमात्मा को प्राप्त करना दोनों का लक्ष्य है और परमतत्व मे ही एकाकार होना दोनो की अन्तिम चेष्टा है। किन्तु भक्त सगुण रूप का आश्रय लेता है और सन्त निर्गुण रूप का। सगुण रूप की उपासना करते हुए भक्त परमतत्त्व की प्राप्ति करता है और निगुण तत्त्व को आत्मगत करते हुए सन्त विराटत्व मे एकाकारता का अनुभव करने लगता है । यदि सत सगुण रूप की उपासना करने लगे तो उसकी साधना मे विघटन आ जाता है। वह ईश्वरत्व मे नीर क्षीर के समान एक रस होना चाहता है। ऐसी स्थिति मे उसकी साधना पार्थिव सत्य के निकट नही होती वह अपार्थिव सत्य से अलौकिक सत्य मे विलीन होने की क्रिया मात्र होती है। सन्त भक्तो के समान भगवान के चरण कमलो में नतमस्तक होकर सायुज्य मुक्ति की प्रार्थना नही करता। प्रो० अग्रवाल ने यह भी विचार व्यक्त किया है कि दक्षिण मे प्रसिद्ध शाह मीरा जी के पुत्र द्वारा रचित निर्गुणवाद से सबंधित कुछ पदो को मीरांबाई के नाम से प्रचलित कर उन्हे प्रक्षिप्त मे जोड़ दिया गया है। प्रो० अग्रवाल का मत विवाद का विषय है । मेरी अपनी यह धारणा है कि मीरा ने जिन प्रतीकों का चयन किया है, वे पार्थिव प्रतीक हैं । उन्हें निर्गुण रूप से भी सबधित किया जा सकता है। और निर्गुण तत्व की आशिक व्याख्या भी की जा सकती है। किन्तु उनके पदो मे निर्गुण तत्वो का सपूर्णत: विकास नही देखा जा सकता। इसका कारण यह है कि मीरां पर वैष्णव भक्ति के सगुण रूप और उपासना का ही प्रभाव पडा था और उन्होने समर्पण भाव और कैंकर्य भाव से भगवान् कृष्ण की सगुण उपासना की थी।

आण्डाल के पदों में सपूर्णत: सगुण रूप के ही दर्शन होते है। तिरुप्पावै के प्रत्येक पद मे इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है । एक स्थान पर कैंकर्य भाव की तीव्र अभिव्यक्ति करते हुए आण्डाल शान्ति गाथा मे व्यक्त कर उठती है—

---

१. संत मत और मीरां की भक्ति : प्रो० तारकनाथ अग्रवाल, मीरां स्मृति ग्रंथ पृष्ठ २४९

इरैक्कुमेलेल पिरविक्कुम् उन्तन्नोडु
उर्रोमे यावोमुनक्के नामाट्शेय्वोम् ।
मर्रै नंकामंकल् मार्रेलोरेम्पावाय् ।।[1]

अर्थात् हे रंगनाथ, सदा सर्वदा जनम-जनम मे तुम्हारे साथ ही संबध रखने वाली हम बनेगी और तुम्हारी ही सेवा करेगी, तुम हमारी अपेक्षाओं की पूर्ति करो ।

मीरां और आण्डाल ने अपने पदों में जन्म जन्मान्तरों के लिये विराटत्व में एकाकार होने की भावना व्यक्त की है। वे कृष्ण की उपासना करती हुई अलौकिक आनन्द प्राप्त करना चाहती है। वे मोक्ष की अपेक्षा भगवदनुभव को अधिक महत्व देती हुई नित्य सेवा और नित्य मिलन की अपेक्षा रखती हैं। मीरा और आण्डाल की उपासना और भक्ति के विश्लेषण करने से यह भी प्रतीत होता है कि उन्होने इस लोक में ही परम आनन्द की प्राप्ति को मोक्ष से अधिक श्रेष्ठ माना। भगवान् श्री कृष्ण के गुणानुभव का गायन करना मीरा और आण्डाल का परम लक्ष्य था और इन दोनो कवयित्रियो ने अपने इसी आध्यात्मिक पुरुषार्थ का उल्लेख अपने पदों मे किया है । दक्षिण भारत के आचार्य अण्णगराचार्य ने तिरुप्पावै की टीका ग्रंथ मे अपने इन्ही विचारों की अभिव्यक्ति की है। निम्नोक्त पद में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है । इस पद में समर्पण भाव को अधिक व्यापक बनाते हुए यहाँ तक उल्लेख किया गया है कि मै वृन्दावन मे कोई लता गुल्म या पौधा आदि हो जाऊ जिन पर इन गोपियो की चरण धूलि पड़ गई है और जिन्हे भगवान् के साहचर्य और रास क्रीड़ा का सुअवसर प्राप्त हुआ है।[2] इस प्रकार की अभिव्यक्ति से समर्पण भाव के और भी अधिक व्यापक स्वरूप के दर्शन होते हैं।

जैसा कि पहले भक्ति के विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है, वैष्णव भक्ति का विकास नारायण की नरलीला में ही केन्द्रित होकर इतना प्रसार पा सका। मीरां और आण्डाल ने इसी सगुण रूप परब्रह्म नारायण को सर्वेश्वर मानकर उपासना की है। उनको श्री कृष्ण ही साक्षात् परब्रह्म है। आण्डाल के पदों मे यह अभिव्यक्ति अत्यन्त स्पष्ट रूप मे अभिव्यक्त हुई है । वह अपनी सखी को

---

१. तिरुप्पावै पद २९

२. आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।।

जगाती हुई कह उठती है कि "नारायणने नमक्के परे तरुवान्' अर्थात् श्रीमान् नारायण ही हमारे अभिमत देने की क्षमता रखते है, हमें पुरुपार्थ देने मे वही समर्थ है।[१] यहा पर गोपियो की दढ धारणा है कि अपने अकिचन तथा अनन्यगति होने की भावना लेकर भगवान के शरण मे जाने से वे प्रसन्न होकर हमे स्वीकार कर लेगे। इस भाव को अन्ततः कृष्ण के सम्मुख जाकर कह उठती है—

मरॅ नक्कामड् कल् मारु[२]

अर्थात् हमे ऐसी प्रज्ञा प्रदान कीजिये कि हम गोपिया आपकी प्रसन्नता के लिये सेवा करे न कि अपनी स्वार्थ साधना के लिये। भक्ति साधना मे प्रभु को ही रक्षक मानना सेवक का धर्म होता है। चेतन के परमपद की प्राप्ति हो जाने से परमात्मा अत्यधिक आनदित होता है। दूर सुदूर, यायावर के अनुरूप विचरण करनेवाले जीवो को प्राप्त कर भगवान आनन्द प्राप्त करते है। आण्डाल के पदो मे इसी प्रकार बोध की अत्यन्त विशद अभिव्यक्ति हुई है। उसने उपनिषद् मे वर्णित 'अहमन्नमहन्नमहमन्नम्' मे अभिव्यक्त भावों को अपनी भक्ति साधना से समरस कर लिया था। उपनिषद् के इस वाक्याश से यह ध्वनित होता है कि मै भगवान का योग्य हूँ, या भगवान मेरा भोक्ता है। अतः मोक्ष में चेतन लाभ से आनन्द की प्राप्त करने वाले स्वय भगवान हैं। इस धर्म को और भी अधिक इस रूप मे स्पष्ट किया जा सकता है कि चेतन को मोक्ष की प्राप्ति मे अपने आनन्द प्राप्ति की इच्छा रखना, मोक्ष के अन्तः में निहित आनन्द भाव एव अपने ही स्वरूप से विलग होना है। इसी कारण से गोपियो ने कृष्ण से यह प्रार्थना की है कि आपकी सेवा करते-करते हमारे अन्तर मे व्याप्त हुई स्वभोग-साधन की भावना को दूर कर दीजिये।

भक्त भगवान से यही प्रार्थना करता है कि वह उसे अपने अलौकिक स्वरूप में एकाकार कर ले और उसकी कामना भी यही रहती है कि उसमे ऐसी भावनाओं का उदय हो कि जो भगवान को छोड़कर दूसरे किसी मे आसक्ति न रह सके। परमपद की प्राप्ति होने पर अचेतन की तरह सर्वात्मना भगवान का स्वरूप पूर्णतः स्वतंत्र और भक्ति भावना की दृष्टि से पूर्णतः परतत्र हो जाता है। किन्तु इस प्रक्रिया मे पार्थक्य स्वरूप शून्य हो जाते है। स्वरूप का विभेद मिट जाता है। चेतना आत्मोन्मुखी हो जाती है। किन्तु चेतना भाव तब भी गतिशील रहता है और वह भक्त के वैयक्तिक स्वरूप को ईश्वर के विराटत्व मे लीन कर देना

१. तिरुप्पावै पद १
२. तिरुप्पावै पद २९

चाहता है। इस चेतन अनुभव से भगवान का 'भोग' भी बढ जाता है। भक्त स्वय को भोग्य समझकर आनन्द का अनुभव करने लगता है। आण्डाळ के पदों में इस भाव की अभिव्यक्ति निरन्तर हुई है। 'मरँ नक्कामङ्कळ् मारॅ' के माध्यम से आण्डाळ ने अपने भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति की है। मीरां की भक्ति-भावना भी इसी प्रकार की है और उसके पदों मे आण्डाळ के समान ही भक्ति-भावना व्यक्त हो उठी है। मीरां ने भी भगवद् भोग को भक्ति-साधना का एक आवश्यक तत्व जाना है। किन्तु यह इन्द्रिय जन्य ज्ञान को विशेष महत्व देती है। और कृष्ण के दर्शन पर आनन्द की प्राप्ति करना चाहती है। उसने अपने मन को सबोधित करते हुए ईश्वर से प्रार्थना की है कि

मन थे परस हरि रे चरण ।
सुभग सीतल कंवल कोमल, जगत ज्वाला हरण ।
० ० ०
दासि मीरां लाल गिरधर, अगम तारण तरण ।[1]

मीरा के पदो मे आत्म निवेदन की अभिव्यक्ति अधिक हुई है जो निर्मल स्वसवेद्य से परिपूरित है। इसी प्रकार आण्डाळ के पदों मे भी आत्मनिवेदन का भाव ही परिलक्षित है। आळ्वार भक्तिपद्धति की विशेषता यह है कि भगवान के अनुग्रह की सीमा और केन्द्रीकरण। इस संप्रदायवालों की यह दृढ़ आस्था है कि भगवान की कृपा से ही भक्त का उद्धार हो सकता है और इस भाव की अभिव्यक्ति आण्डाळ के पदों में तो हुई ही है, इसके साथ ही मीरां के पदों में भी दर्शन होते है। एक स्थल पर मीरां भगवान की कृपा की अपेक्षा करती हुई कह उठती है—

मैं तो तेरी सरण परी रे, रामा ज्यूँ जाणे त्यूँ तार।
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो मन नाहीं मानी हार।
या जग में कोई नहीं आपणां, सुणियौ श्रवण मुरार।
'मीरां दासी राम भरोसे जग का फंदा निवार ॥[2]

इसी प्रकार मीरां ने अपने अस्तित्व को भगवान के चरणो मे समर्पित कर दिया था। वह विशुद्ध मन से कृष्ण की उपासिका है। उस उपासना का आनन्द प्राप्त करना चाहती है। इस भाव की अभिव्यक्ति भी मीरां के निम्नलिखित पद मे हुई है—

---

१. मीरांबाई की पदावली, पद १
२. मीरांबाई की पदावली, पद १३३

म्हाणे चाकर राखांजी, गिरधारी लाला ,चाकर राखांजी।
चाकर रहस्यू बाग लगास्यूं नित उठ दरसण पास्यूं।
ब्रिन्दावन री कुंज गलिन मां गोविन्द लीला गास्यूं।
चाकरी में दरसण पास्यूं, जणम जणम री बरसी।
मोर मुगट पीताम्बर सोहां, गल बैजन्ती मालो।
हरे हरे णवा कुंज लगास्यूं बीचा बीचा बारी।
सांवरिया रो दरसण पास्यूं, पहण कुसुम्बी सारी।
मीरों रे प्रभु गिरधर नागर, हिवड़ो घणो अधीरा।
आधीरात प्रभु दरसण दीस्यों जमणाजी रे तीरा॥[1]

मीरा के पदो मे जिस प्रकार की भावाभिव्यक्ति हुई उसी प्रकार की भाव-भिव्यक्ति आण्डाळ के पदो में भी देखने को मिल जाती है। आण्डाळ के पदों मे गोपियों की भक्ति भावना आत्म-निवेदन के रूप मे व्यक्त हुई है। गोपियाँ इस कल्पना का आनन्द प्राप्त करती है कि भगवान श्री कृष्ण का जन्म उनके कुल मे हुआ था और स्वयं कृष्ण की सजातीयता का उल्लेख करते हुए कह उठती है—

"हम गायों के पीछे जाकर कानन पहुचकर वहां सब मिलकर भोजन करती है। सर्वथा ज्ञान से शून्य गोपकुल में पैदा हुए तुमको हमारे कुल में अवतीर्ण होने योग्य पुण्यवती है। दोष रहित हे गोविन्द, तुम्हारे साथ हम गोपियों का सवध किसी भी स्थिति मे विक्षेप नही हो सकता। ज्ञान शून्य हम बालिकाओ ने मात्र प्रेम से ही तुमको अल्प संबोधन से पुकारा। हे सर्वेश्वर, तुम हमारे ऊपर क्रोधित नही होना। हे भक्तवत्सल, हमको पुरुषार्थ प्रदान करो।[2]

मीरा और आण्डाळ के पदो का यदि तात्विक विश्लेषण किया जाय तो यह तत्व भी हमारे सामने प्रकट हो जाता है कि उनके पदों मे 'आनन्द भाव' की सघन अभिव्यक्ति हुई है। आळ्वार भक्तो एव अष्ठ छाप के कवियो मे यही भावना देखने को मिलती है और इसी भावना का प्रसार उनके पदों मे हुआ है। सूरदास ने भी आनन्द भाव से कृष्ण की उपासना की थी। वे स्वय भी भक्त थे और इसलिये उनकी कविताओं मे श्री कृष्ण के देवत्व का स्वरूप अधिक प्रकट हुआ है। आळ्वार भक्त तो स्वप्न में भी श्री कृष्ण को छोड़कर अन्य देवता का स्मरण तक नहीं करते। मीरां भी कृष्ण को ही अपना सर्वस्व मानती है और

---

१. मीरांबाई की पदावली, पद १५४

२. तिरुप्पावै, पद २८

उसने भी किसी अन्य देव की उपासना नही की। इस भाव की अभिव्यक्ति निम्न लिखित पद्यांश मे हुई है—

चोरी न करस्यॉं जिव न सतास्यां, कांई करसी म्हांरो कोई।
गज से उतरके खर नांहि चढ़स्यां, ये तो बात न होंई ॥[1]

आण्डाळ ने भी गोविन्द के अमर स्वरूप की वन्दना करते हुए इस प्रकार व्यक्त किया है—

"मै बार बार दृढ़ता के साथ कहती हू कि मेरे ये स्तन गोविन्द को छोड कर और किसी को नही चाहते है। अत: मुझको यहां से शीघ्र विदा कर यमुना किनारे ले जाकर छोड़ दीजियेगा।'[2]

अतएव मीरां और आण्डाळ के पदो का परीक्षण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पदो में वैष्णव भक्ति का प्रत्येक तत्व विद्यमान है और मीरा तथा आण्डाळ ने आत्म निवेदन को ही चरम सिद्धि का रहस्य माना है। यद्यपि सूर, तुलसी अन्य आळ्वार भक्तो ने आत्म समर्पण और आत्म निवेदन की अभिव्यक्ति की है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति मे उतनी अधिक सरसता और प्रियत्व नहीं है जितनी की मीरां और आण्डाळ के आत्मनिवेदन और आत्म समर्पण मे है। इस आत्म समर्पण की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज।
म्हा अबला बल म्हारो गिरधर, थे म्हारो सरताज।
म्हा गुणहीन गुणागार नागर, म्हा हिवड़ो रो साज।
मीरां रे प्रभु और णा कोई, राखा अब री लाज ॥[3]

इसी प्रकार आण्डाळ ने मीरा के अनुरूप आत्मनिवेदन अथवा आत्मसमर्पण की अभिव्यक्ति की है। आण्डाळ की अभिव्यक्ति मे प्रेय तत्त्व का सपूर्ण विकास देखा जा सकता है। सभी गोपियाँ कृष्ण के पास पहुँचकर उनसे प्रार्थना करती है—

"सुन्दर व विशाल भूतल के समस्त भूपति अपना अभिमान के नाश होने पर, तुम्हारी शय्या के नीचे झुड-के-झुड जैसे आकर खडे रहते है वैसे हम गोपिया भी अभिमान शून्य होकर आपके पास आई है। छोटी किंकिणी सदृश अर्धविकसित कमल पुष्प की भाति अपने रक्त

---

१. मीरांबाई की पदावली, पद, २५
२. नाच्चियार तिरुमोलि, पद १२-४
३. मीराबाई की पदावली पद, ४८

नयन से धीरे-धीरे हमारी तरफ अभिमुख होकर खोलो। चन्द्र सूर्य के सदृश यदि दोनो आखो से हमारे ऊपर कटाक्ष वीक्षण डालोगे तो हमारे समस्त पाप नष्ट हो जायेगे।"[१]

स्पष्ट है कि मीरा और आण्डाळ ने 'अनन्यार्हशेपत्व' की प्रार्थना ही उपर्युक्त पदो मे की है। तात्पर्य यह है कि अपने को ईश्वर मानने वाले राजा लोग जैसे काल क्रमेण गर्वभग होने पर भगवान की लीलाओ एव उनके सौशील्य गुणो का स्मरण कर सेवा मे सलग्न हो जाते है उसी प्रकार गोपिया भी स्त्रीत्वाभिमान को त्यागकर 'अनन्यार्हशेपत्व' मे सबध होने के लिये आई है और वे भगवान के शरण मे आ गई है। इसमे विनीत भाव के ही दर्शन होते है।

भक्ति के क्षेत्र मे प्रपत्ति मार्ग की उद्भावना करने एव उसे सामान्य जन तक पहुंचाने का श्रेय रामानुचाजार्य को ही है । आत्मनिवेदन को ही प्रपति कहा जाता है। भक्ति मार्ग मे इस शब्द का प्रयोग शरणागति के अर्थ मे होता है। समस्त साधनो का परित्याग करके भगवान के शरण मे जाना ही प्रपति है। इसके लक्षण इस प्रकार है—भगवान के मन भावन कार्य करना, असत् कार्य व अप्रिय वचनो का परित्याग करना, भगवान के गुणो एव महिमा का वर्णन करना, भगवान के समक्ष स्वयं को पूर्णतः समर्पित करना, दीनता और दैन्य भाव से भगवान की स्तुति करना और अत मे भगवान के रक्षक स्वरूप पर दृढ विश्वास रखना आदि प्रपत्ति के लक्षण है।[२]

मीरा और आण्डाळ की भक्ति भावना मे इन सभी लक्षणो के दर्शन होते है। आण्डाळ स्वय गोपी भाव के अतिरेक मे सभी सखियो से कहती है—

"जगत्वासियो, भगवान् से पुरुषार्थ पाने के उद्देश्य से हमसे किये जाने वाले व्रतानुष्ठानो को सुनिये। क्षीराब्धिशायी भगवान के श्री चरणो का स्त्रोत करेगी। धृत नही सेवन करेगी। दूध नही पियेगी। नेत्राजन नहीं लगायेगी। केशो को पुष्पो से अलकृत नही करेगी। वर्जित काम नहीं करेंगी। कटुवचन नही सुनायेगी। सत्पात्रो को यथा शक्ति दान व भिक्षा देगी। इस भाति उज्जीवनार्थ ये सब कर आनदित होगी।[३]

---

१. तिरुप्पावै पद २२
२. आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्
रक्षायिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा ।
आत्मनिक्षेप कार्पण्यो षड्विद्या शरणागति : ॥ वायुपुराण ॥
३. तिरुप्पावै पद २

इस स्थल पर गीता में अभिव्यक्त "वोधयन्त परस्परं" के अनुरूप सभी को भगवान के गुण एव महिमा का माहात्मय का वर्णन कर उससे प्राप्त भगवदनुभव से आनदित होती है। गीता मे अभिव्यक्त 'वासुदेव सर्वस्वव' । गीता १–१६। के अनुसार भगवान को ही सर्वस्व मानती है। जिस प्रकार ईश्वर की आराधना में लीन होने पर धृत, क्षीर और दधि आदि से मन विरक्त हो जाता है उसी प्रकार गोपिया इन उपकरणो के प्रति अनासक्त है। तात्पर्य यह है कि घृत क्षीर और दधि पार्थिव उपरकण है और ये उपकरण वासुदेव को अत्यधिक प्रिय है किन्तु जिन गोपियो ने कृष्ण को ही समर्पण भाव से अपना लिया है उन्हे इन पार्थिव उपरकणों के प्रति कोई आसक्ति नही। मीरां और आण्डाळ के पदों में इसी प्रकार की अभिव्यक्ति हुई है।

भक्ति साधना मे भिक्षा अथवा दान का अर्थ भगवत् स्वरूप, एव गुण रूप आदि का अनुगायन करना है। मीरां ने अपने पदो मे इसी प्रकार की अभिव्यक्ति की है। वह स्वयं हरि चर्चा सुनती है। सतो के पास बैठकर कृष्णा के वास्तविक स्वरूप का बोध प्राप्त करती है और भगवान कृष्ण के दर्शन हेतु मदिर मे आत्म विभोर होकर नृत्य कर उठती है। मीरा का निम्न लिखित पद इसी तथ्य की ओर सकेत करते है—

राम नाम रस पीजै मनुआँ, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजै।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूं, बहा चित्त से दीजै।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजै।[1]

और

माई म्हां गोविन्द गुण गास्यां
चरणाम्रित रो नेम सकारे, नित उठ दरसण जास्यां।
हरि मंदिर मां निरत करावां घुंघर्‌या धमकास्यां।
स्याम नाम रो झांझ चलास्यां, भो सागर तर जास्यां।[2]

मीरा ने अपने प्रियतम को सभी कुछ समर्पित कर दिया। उसका लौकिक आकर्षण कृष्ण के लिये था और उसकी अलौकिक आत्मा, कृष्ण के ही अलौकिक सत्य मे एकाकार होना चाहती थी। उसने कृष्ण की उपासना मे अपने सपूर्ण आकर्पणो को त्याग दिया था। न मोती का मोह था, न माणिक्य को धारण

---

१. मीरांबाई की पदावली, पद, २१
२. मीरांबाई की पदावली पद, १९९

करने की लालसा। वह तो विरहिणी है । कृष्ण के वियोग मे वियोगिनी है। कृष्ण की माधुर्य-भक्ति की उपासिका है और अपार्थिव सत्य की साधिका है। उसका अनासक्त भाव निम्नलिखित पद मे पूरी तरह अभिव्यक्त हुआ है—

पाट पटम्बर सब ही मै त्यागा, सिर बांधली जूड़ो।
माणिक मोती सबही मै त्यागा, तज दियो कर को चूड़ो।
मेवा मिसरी मै सबही त्यागा, त्याग्या छे सक्कर बूरो ।
तनकी आस कबहूं नहिं कीनी, ज्यूं माहीं सूरो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो मै पूरो॥[1]

मीरां ने कृष्ण के लौकिक स्वरूप की व्यजना की है। श्याम रग की अलौकिक रंगिमा का गायन किया है। कृष्ण के आत्मरस मे विभोर होने की चेष्टा की है और अपार्थिव गध को स्वय मे समाहित कर विराटत्व को स्पर्श करने की अखंड, अजस्र और अदम्य वेगशीलता मीरा के पदो मे प्रवहमान हो उठे है। इस प्रसंग मे मीरा का एक अन्य पद दृष्टव्य है—

"म्हा मोहणरो रूप लुभाणी ।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, बांका चिवतन णेणा समाणी ।[2]

और

निपट बंकट छब अटकै
म्हारे णेणा निपट बंकट छब अटके ।
देख्या रूप मदन मोहन री, पियत पियूखन मटके ।
वारिज भवां अलक मतवारी, णेण रूप रस अटके ॥[3]

मीरा के अनुरूप ही आण्डाळ के पदो मे भी माधुर्य-भक्ति का सुन्दर स्वरूप परिलक्षित है। उसने अपने पदो मे समर्पण भावो को प्राणवान बना दिया है। इस समर्पण भाव की अभिव्यक्तियाँ इस प्रकार हुई है—

'अत्याश्चयर्यमय मधुरापुरी के स्वामी, गोकुल में उत्पन्न मगल दीप सदृश एव माता की पेट को प्रकाशित करनेवाले दामोदर श्री कृष्ण को—[4]

और

---

१. **मीरांबाई की पदावली, पद, १११**
२. **मीरांबाई की पदावली पद, ११**
३. **वही १०**
४. **तिरुप्पावै पद ५**

सुन्दर नेत्रवाली यशोदा का बाल-सिह, कालमेघ सदृश कान्तिवाला तथा कमलनयन एवं सूर्य तथा चन्द्र सदृश मुखवाला नारायण ही हमें पुरुषार्थ प्रदान करेगा।"[१]

स्पष्ट है कि भगवान के सौशील्य और सौलभ्य गुणों की महिमा का वर्णन ही आण्डाळ ने अपने पदों मे किया है। मीरां के पदों मे भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति हुई है। वह भी आण्डाळ के अनुरूप भगवान के सौशील्य और सौलभ्य गुणों का वर्णन करती है। इन दोनो ही भक्त कवयित्रियों ने भगवान के दया, क्षमा तथा अन्य कल्याण कार्य गुणो का वर्णन किया है। भगवान का अवतार इन्हीं गुणों के प्रसार के लिये होता है और आण्डाळ भगवान के सभी गुण की महिमा का गायन करती हुई अभिव्यक्त कर उठती है—

उस दिन तुमने चरणों से इन लोकों को नापा, उन
श्री चरणों की जय जय हो ।।
दाक्षिणस्थित लंकापुरी जाकर सुन्दर लंकापुरी का नाश किया
तुम्हारे उस पराक्रम की जय जय हो।
कपटी कटासुर के शकट को लात मारकर विनष्ट किया
तुम्हारे यश की जय जय हो।
वत्सासुर को ही दंड बनाकर कपित्थासुर पर फेंककर दोनों का नाश किया।
तुम्हारे चरण कमलों की जय जय हो।
गोवर्धन पर्वत को छत्र के रूप में धारण कर इन्द्र का गर्व भंग किया।
तुम्हारे उन गुणों की जय जय हो।
शत्रुओं को संहारकर द्वेष को दूर करनेवाले तुम्हारे हस्तगत
चक्रायुध की जय जय हो ।।[२]

इस तरह स्पष्ट है कि आण्डाळ ने कृष्ण के सौशील्य और सौलभ्य गुणों का वर्णन करते हुए अपनी भक्ति भावना का समग्र परिचय दिया है। मीरां के पदों मे भी इसी प्रकार की अनेक अभिव्यक्तिया हुई हैं जहाँ पर कृष्ण के लौकिक और अलौकिक गुणों के श्रेयत्व के वर्णन करती हुई अपनी भक्ति भावना को पूरी तरह स्पष्ट करती है। इस प्रसग में मीरा के निम्न लिखित पंक्तियां विचारणीय है—

---

१. तिरुप्पावै पद १
२. तिरुपावै पद २४

हरि थे हर्‌या जन री भीर ।
द्रौपती री लाज राख्यो, थे बढायाँ चीर ।
भगत कारण रूप नरहरि धर्‌यां आप सरीर।
बूड़तां गजराज राख्यां, कट्यां कुँजर कुँजर भीर।
दास मीरां लाल गिरधर, हरो म्हारी भीर॥[1]

मीरां ने अपने प्रियतम के समक्ष अपनी अज्ञानता को प्रकट किया है। सत्य तो यह है कि मीरां ज्ञानवती है। उसने अपार्थिव तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, किन्तु वह अपने प्रियतम के समक्ष अज्ञान ही प्रकट करती है। तात्पर्य यह है कि इस अबोधता मे जितनी अधिक निर्मलता, पावनता, प्रेमाभक्ति और विरहोन्माद समन्वित है उतना समन्वय बोधगम्यता मे नहीं हो सकता। यही है कि मीरां अपनी अज्ञानता को प्रकट करती हुई कह उठती है——

"तुम गुणवंत बड़े गुण सागर, मै हूं जो औगुणहारा।
मैं निरगुणी गुण एकौ नाहीं, तुम हो बगरुणहारा॥[2]

आण्डाळ के पदो मे भी इसी प्रकार का विनीत भाव दिखलाई देता है। वह भी मीरां के अनुरूप ही अबोध है और उसकी ये पक्तियां——

अरि्वोन्रु मिल्लाद वाय्कुलत्तु उन्तन्नै
प्पिरवि पेरुन्तने पुण्णियम्यामुडेयोम् ॥[3]

उसके अन्तर मे निहित विनीत भाव को पूरी तरह स्पष्ट करता है। वह गोपियों को संबोधित करती हुई कह उठती है "हम तो ज्ञान शून्य है, हम तो अबोध है। किन्तु तुम हमारे कुल में उत्पन्न हुए हो और तुम्हारी अवतीर्णता का श्रेय हमे ही है।" वास्तव में आण्डाळ अभिमानिनी है। किन्तु उसका अभिमान लौकिक सत्य से उद्‌भूत नहीं है। अपितु अलौकिक सत्य का एक तत्त्व है और इस अभिमान में पूर्णत: निर्वैयक्तिकता है। इसी विनीत भाव और निर्वैयक्तिक भाव की अभिव्यक्त आण्डाळ के पदो मे हुई है। जैसा कि पहले विस्तार में कहा जा चुका है कि भागवत मे नवधा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। जब भक्त अपने आराध्यदेव की उपासना में तन्मय हो जाता है उस समय उसे संसार के प्रत्येक उपकरण भगवन्मय में ही परिलक्षित होता है। आल्वार भक्त अपने दैनिक कार्यो मे भी कृष्ण के दर्शन पाते है। इसका अर्थ यह है कि उनका जीवन

---

१. मीरांबाई की बदावली ६१
२. मीरांबाई की पदावली
३. तिरुप्पावै पद १८

कृष्णमय हो गया था और कृष्णा की उपासना करते हुए उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था। जब भक्त अपने शुद्ध अन्तःकरण से उपासना मे लीन हो जाता है उस समय उसकी आत्मा पवित्र हो जाती है और वह पूर्णत्व की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। आत्मा पर पड़े आवरण अनावृत हो जाते हैं। तम, रज, और सत् का कुहासा विनष्ट हो जाता है और उसकी आत्मा सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर लेती है। मीरां एवं आण्डाळ दोनो की भक्ति-साधना में भक्ति के नवो स्वरूपो का उल्लेख मिलता है और अन्तिम स्थिति वह है जब दोनो कवयित्रियां अपने प्रियतम की अलौकिक ज्योति में अपनी पार्थिव ज्योति को एक रस कर देती है और धन्य हो जाती है। दोनो भक्त कवयित्रियो का जन्म वैष्णव कुल मे हुआ था और बाल्य काल से ही उन्होने भगवत् कीर्तन और भजन का श्रवण एव मनन किया था। अतएव बाल्य काल मे ही भक्ति के संस्कार उनके मन पर घने होकर अकित हो गये थे और आगे के जीवन मे उनके उन्ही संस्कारों का पूर्णतः विकास भी हुआ है। मीरां और आण्डाळ भगवद् कीर्तनों का अनुगायन करती थी, और आनन्द प्राप्त करती थी। आगे चलकर उनकी सर्जना शक्ति जागृत हुई और वे स्वरचित पदो मे भगवान की महिमा का अनुगायन करने लगी। भगवान कृष्ण का स्मरण वे जागृत और सुषुप्त अवस्था में भी करती थी। उन्होने अपना सपूर्ण जीवन कृष्णत्व की प्राप्ति मे ही लगाया था। ये दोनो कवयित्रिया प्रियतम के मधुर आकर्षण, स्नेह सिक्त आसक्ति और प्रेम के अपूर्व उलझन मे उलझी-सी प्रतीत होती है। दोनो ने प्रियतम के सौन्दर्य रस का पान किया था और कृष्ण के शृंगारी रूप के साक्षात् दर्शन किये थे। मीरां के लिये गिरधर गोपाल ही आलंबन थे। इस आलंबन रूप की अभिव्यक्ति मीरां के पदो मे इस प्रकार हुई है—

रमईया मेरे तोही सूँ नेहा।
लागी प्रीत जिन तोड़ रे बाला अधिको कीजे नेह ॥[1]

प्रियतम के ध्यान मे प्रतीक्षातुर मीरां रात्री व्यतीत कर देती है वह गिरधर नागर का नामोच्चारण करते हुए सुध बुध भूल जाती है

सांवरी सुरत मण रे बसी।
गिरधर ध्यान भरां निसवासर मण मोहण म्हारे बसी।[2]

और

---

१. मीरांबाई की पदावली ५९
२. वही ८८

सखी म्हारी नींद नसानी हो ।
पिय रो पंथ निहारत सब रेणु बिहानी हो ।
मीरां व्याकुल बिरहणी, सुध बुध बिसराणी ।।[१]

मीरा के समान ही आण्डाळ भगवान श्री कृष्ण के दिव्यामृत का भोग करती है और श्रीरगनाथ भगवान पर मोहित हो जाती है जो अपने दिव्य केशपाशों से, जो अपने दिव्य अधरो से और नाभि से उत्पन्न कमल पुष्प की रगिमा के समान सुन्दर है। उन्ही के दर्शन की लालसा में आण्डाळ भी तडपती हुई अपनी आन्तरिक वेदना को इस प्रकार व्यक्त करती है—

> "कितने प्रलाप तथा प्रणाम करने पर भी प्रियतम अपने मगल रूप को नही दिखाता और अभय वचन भी नही देता। ऐसा महान प्रियतम यहा मेरे समक्ष आकर मेरा गाढालिगन करता है और छोडकर कही नही जाता। परन्तु हाय, यह केवल मानसानुभव मात्र ही है।"[२]

मीरां और आण्डाळ ने प्रत्यक्ष रूप से भावावेग मे डूबकर काल्पनिक रूप में कृष्ण के चरणो की सेवा मे ही रत रही। नवधा भक्ति का यह तृतीय सोपान है। अर्चना और वन्दना की सेवा में ही रत रही। नवधा भक्ति का यह तृतीय सोपान अर्चना और वन्दना, पूजा और साधना उनका अभीष्ट था और अपने इष्टदेव की प्राप्ति के लिये वे सदैव भक्ति की साधना करती रही। आण्डाळ ने दास्य भाव की अभिव्यक्ति करते हुए एक स्थान पर कहा है—

> "जैसे तुम्हारे शत्रु अपना समस्त बल खोकर तुम्हारे गृह द्वार पर आकर, तुम्हारे शरणो मे नतमस्तक होते है वैसे तुम्हारी स्मृति करते हुए आयी है।"[३]

स्पष्ट है कि आण्डाळ ने अपने दास्य भाव की अभिव्यक्ति करते हुए अपने संपूर्ण लौकिक स्वरूप कृष्ण को समर्पित कर दिया था और वह उनकी स्तुति भी इसी रूप में करती थी कि उसे कृष्णतत्त्व की प्राप्ति होगी। दिव्यतत्त्व का अवलबन मिलेगा और अलौकिकता में वह अपने लौकिक सत्य को समाहित कर सकेगी। मीरां के पदों में भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति हुई है। वह भी दास्य भाव से प्रेरित होकर कृष्ण की उपासना करने लगती है और अपने विनीत भावों का प्रदर्शन करती है। उदाहरण के लिये—

---

१. **मीरांबाई की पदावली ८७**
२. **नाच्चियार तिरुमोऴि पद १३-५**
३. **तिरुप्पावै पद २१**

अरज करा अबला करजोर्‌या, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, काट्यां म्हारो गांसी ॥[1]

कान्त-कान्ता भाव, दास्य और सख्य भावो का उत्कर्ष होता है । मीरा और आण्डाळ के काव्य मे प्रेम तत्त्वो के साथ-ही-साथ कही-कही ज्ञान तत्त्वो का भी विकास हुआ है। वास्तव मे काव्य और दर्शन का अन्योन्याश्रय सबध होता है। कवि, दार्शनिक को अपना मार्गदर्शक बना लेता है और अनजाने ही उसके व्यक्तित्व को आत्मगत भी कर लेता है। किन्तु जिस समय काव्यकार अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है उस समय उसे दर्शन से प्रेरणा नही मिलती अपितु उसकी सहज अनुभूतियो उसके भावो को व्यक्त करती है और दर्शन अप्रत्यक्ष रूप से अपने सस्कारो को काव्यतत्त्व के रस भिगोकर सम्मिलित कर देता है। मीरा और आण्डाळ के पदो मे भी इसीलिये सपूर्णत निर्गुण अथवा ज्ञान तत्त्वो की खोज व्यर्थ है। ये दोनो ही कवयित्रियो ने प्रेम के दर्शन किये थे । इन दोनो ही कवयित्रियो के आत्मसत्य मे कृष्ण के प्रेमत्व समाहित हो गया था। इस प्रेमत्व ने इनके हृदय को प्रभावित किया ही था, इनकी अन्वेषण को भी प्रभावित किया था और उनकी अन्तर्चेतना प्रेम से उद्‌भूत ज्ञान तत्त्वों का अन्वेषण प्रेम तत्त्वो मे ही करती रही। यही कारण है कि उनके पदो मे कही-कही निर्गुण तत्वो के प्रतिच्छविया देखने को मिल जाती है। जहा कही अन्तर्चेतना की प्रधानता हो गई है वहां निर्गुण का छायभास सा होने लगता है, किन्तु यह वास्तव में निर्गुण सत्य नही है, दार्शनिक चेतना नही है और न आध्यात्मिक व्याख्या ही है । यह उन दोनों कवयित्रियो के अन्तर मे निहित प्रेमत्व की, नवधा भक्ति की प्रसार वृत्ति एवं प्रस्फुटन–प्रकृति का ही परिणाम है।

आण्डाळ का दर्शन :

आण्डाळ का यह दृढ़ विश्वास है कि भगवान सर्वेश्वर, श्रीमन्नारायण को छोड्कर अन्य किसी देव मे रक्षा करने का सामर्थ्य नही है । अत. आण्डाळ इस पर जोर देकर कहती है कि चेतना से किया जाने वाला व्रत, उपवास आदि पुण्यकार्य ही पुरुषार्थ प्रदान करेगा, ऐसा सोचना भ्रम मात्र है । परन्तु शास्त्र का यह कथन है कि पुण्य, पूर्व कर्माचरण से भगवान भक्त पर प्रसन्न होते है और उनके अभीष्ट की पूर्ति करते है। इसीलिये आण्डाळ यह कहती है कि जो मनुष्य अपने अकिचन तथा अनन्यगति होने की भावना से भगवान के शरण में जाता

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १९५

है वही प्रियतम की कृपा का पात्र बनता है और स्वप्रयत्न अथवा अन्य देवता पर आश्रित रहने वाला व्यक्ति भगवान कृष्ण की कृपा का भाजन नही हो सकता। अपने अकिचन तथा अनन्यगति होने की भावना से भगवान के शरण मे जाता है वही प्रियतम की कृपा का पात्र वनता है और स्वप्रयत्न अथवा अन्य देवता पर आश्रित रहनेवाला व्यक्ति भगवान कृष्ण की कृपा का भाजन नही हो सकता। कृष्ण की कृपा की प्राप्ति के लिये उनका ही आश्रय लेना आवश्यक है। श्री यामुनाचार्य ने इसी तत्त्व की ओर सकेत करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि 'अकिचनोनन्यगतिश्शरण्य, त्वत्पादमूल शरण प्रपद्ये" अर्थात् भगवान् के चरणो का आश्रय लेनेवाला अत्यन्त विधेयत्व वा पारतन्त्रय को प्रकट करते हुए दया का अधिकारी होता है। भक्ति के पूर्व मीमासको ने ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग को भगवान की प्राप्ति का मार्ग माना है। किन्तु आण्डाळ का ध्यान 'वासुदेवस्सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ.' के अनुसार भगवान को ही धारक, पोषक, भोग्य माननेवाली होने के कारण आण्डाळ की भक्ति भावना अन्य मार्गो पर नही गई। उनका मन भक्ति भावना मे ही आसक्त रहा। आण्डाळ का एक ही लक्ष्य है कि जिस देश मे श्रीमन्नारायण का सकीर्तन होता है वहा पर दैविक, भौतिक और आधिभौतिक व्याधिया नही होती। नाम सकीर्तन ही भगवान की कृपा की प्राप्त का एक मात्र साधन है। नाम सकीर्तन से देहात्माभिमान दूर हो जाता है और अनन्यार्हशेषत्व, अनन्यशरणत्व और अनन्यभोग्यत्व आदि तीनो गुणो से श्रीमन् नारायण के चेतन स्वरूपो का दर्शन करते हुए उनके गुणो का अनुभव किया जा सकता है।[1]

भगवान के गुणो को अनुभव कर भक्त–चेतन आचार्यत्व को प्राप्त करता है और भगवान की ही कृपा से अन्य चेतनो के उज्जीवनार्थ भगवान के सौशील्य और सौलभ्य गुणो को सुनाकर स्वय उस आनन्द मे कृतार्थ होता है।[2] नाम सकीर्तन से बढ़कर भगवान के गुणो को अनुभव करने के लिये और कोई दूसरा मार्ग नही हो सकता। आण्डाळ ने इसके माहात्म्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—

> अत्याश्चर्यमय गुणचेष्टितवाले, मथुरापुरी मे अवतीर्ण यमुनाविहार रसिक, गोपकुल के अलकार भूत, माताजी के यशोवर्धक, भगवान दामोदर श्री कृष्ण का, तन मन, वाणी से शुद्ध होकर श्रेष्ठ पुष्पो

---

१. तिरुप्पावै पद ३

२. वही ३

से अर्चन कर प्रणाम पूर्वक आपका नाम संकीर्तन करने से हमारे श्रेय मे बाधा डालने वाले समस्त पाप विनष्ट हो जाते है।[1]

ये पाप दो प्रकार के होते है। एक ब्रह्म ज्ञान मिलने के पूर्व अनादि काल से इस चेतन ने जितने कर्म किये होंगे, उन्हें पूर्वार्ध कहलाते है। ज्ञानी बनने के उपरान्त ही रजस्तमोमय पाच भौतिक शरीर के कारण प्रामादिक, अगतिक आदि कर्म करने पड़ते है जो उत्तरार्ध कहलाते हैं। ये सब पाप भगवान के कीर्तन से अग्नि मे प्रक्षिप्त तृण के समान जल जाते है और वह भक्त पवित्र होकर भगवान को प्राप्त करता है।[2]

आण्डाळ यही उपदेश देती है कि देवत्व का अनुभव एकान्तिक रूप से नही करना चाहिए। आचार्यो का कहना भी है कि भगवान् के सान्निध्य में पहुचने की अपेक्षा भगवद्भक्तो का मिलन श्रेयस्कर है। श्री कूरेश्वरस्वामी ने श्री वैकुण्ठस्तव मे कहा भी है 'मै परम पद की प्राप्ति कर भगवान के भक्तों के दर्शन प्राप्त करूगा।' 'यही कारण है कि गोपिया भगवान से मिलने के पूर्व उनके परम भक्तिनी अन्य गोपियो से मिलने की लालसा रहती है और सुषुप्त गोपियो को जागृत करती है। आण्डाळ ने बैकुण्ठ में विहार करनेवाले परवासुदेव मूर्ति से विभवावतार मे कृष्णानुभव की प्राप्ति कर अधिक आनन्द का अनुभव किया था। इसीलिये गोपियों का सा भगवदनुभव प्राप्त करना चाहती है। भक्तो के विषय मे भी आण्डाळ की धारणा है कि भक्त लोग भगवान को प्रेम करते है और भगवान भी भक्तो को प्यार करते है।[3]

आण्डाळ ने अपने आराध्यदेव को देवाधिदेव कहकर संबोधित किया और यही सबोधन उसको आनन्द प्रदान करता है। अपने आराध्य देव को देवो का आदि देव मानना जगत् का ही मूल देव स्वीकार करना है। इससे जगत्कारणत्व की सूचना मिल जाती है। भक्तों पर भगवान का सीमातीत प्रेम रहता है। जिस प्रकार माता पिता अपनी सन्तान की रक्षा, वात्सल्य विभोर होकर सहज भाव से करते है उसी प्रकार भगवान भी अपने भक्तो की रक्षा करता है, किन्तु ससारी व्यक्ति पार्थिव आकर्षणों में आसक्त होता है, रूप, रग, रस और गध का वैभव उसकी रागात्मकता को आन्दोलित करता रहता है और उसकी दृष्टि

---

१. तिरुप्पावै ४

२. तदधिगम उत्तर पूर्वाधयोरश्लेषविनाशो तद्व्यपदेशात् —ब्रह्म सूत्रः अण्णंगराचार्य की तिरुप्पावै टीका से उद्धृत

३. तिरुप्पावै पद ६

अलौकिकता की ओर केन्द्रित नही होती। आण्डाळ ने यह स्पष्ट रूप मे कहा है कि यदि ससारी व्यक्ति भक्ति-साधना का अभिनय भी करता है, भगवान उसकी रक्षा मे तत्पर हो जाते है। भगवद् भक्तो का सबध आत्म कल्याणकारक होता है। इसीलिये बडे-बडे ज्ञानमार्गियो ने वृन्दावन मे गोपियो की पद धूलि से आवृत लता गुल्म आदि बनने की लालसा व्यक्त की है। इसी भावना से प्रेरित होकर परासर भट्ट स्वामी जी ने श्री रंग क्षेत्र मे निवास करने वाले स्वान की योनि मे जन्म लेने की अपेक्षा की। श्री यामुनाचार्य स्वामी जी अपने ज्ञान योग का मूल श्रेय श्री नाथमुनि को "पितामह नाथमुनि" कह कर मानते है। भक्त अपने शरीर धन और संपति के प्रति इसीलिये अनासक्ति भाव प्रदर्शित करते है कि ये सासारिक उपकरण भगवद्भजन मे व्यवधान उपस्थित करते है। मीरा और आण्डाळ दोनो ने स्वयं को राधा और नप्पिन्नै माना है। आळ्वार साहित्य मे व्रजागनाओ मे नप्पिन्नै की गणना की जाती है। राधा सप्रदाय व अन्य कृष्ण भक्ति काव्य धारा मे राधा का महत्त्वपूर्ण स्थान है किन्तु अन्तर केवल इतना है कि आळ्वार साहित्य मे नप्पिन्नै को कृष्ण की परिणीता मानते है और अन्य सम्प्रदायवालो ने राधा को कृष्ण की प्रियतमा के रूप मे देखा है । वह राधा जिसने कृष्ण के रूप और गुणो पर मोहित होकर अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया दिया था। यहा पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आळ्वार साहित्य मे नप्पिन्नै को कृष्ण की प्राप्ति का एक अनिवार्य उपकरण माना है। मीरां और आण्डाळ पाच भौतिक शरीर को स्वीकार नही करती किन्तु वे आत्म कल्याण-कारक गोपी भाव का अनुभव अवश्य करती है।

आण्डाळ की धारणा है कि लक्ष्मीपति होने के कारण ही नारायण को सर्वश्रेष्ठ परम देवता माना गया। इसीलिये वह अपने प्रियतम को "माधव" कहकर सबोधित करती है और इसी मे आत्मिक आनन्द का अनुभव करती है। माधव भी वे है कि जिन्होने ब्रजभूमि मे जन्म लिया और आळ्वार साहित्य के टीकाकारों ने नप्पिन्नै को नीला देवी माना है। किन्तु विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है, भागवत् में या विष्णु पुराण मे जिस नीला देवी का वर्णन किया गया है और जिसके साथ कृष्ण का परिणय हुआ था वह वास्तव मे नीला देवी नही थी। वह सामान्य गोपी थी। तमिऴ् साहित्य मे नप्पिन्नै को पत्नी मानते है किन्तु नप्पिन्नै को अन्य गोपियो के समान कृष्ण की एक अत्यन्त प्रिय प्रियतमा मानना अधिक समीचीन होगा।

मीरा और आण्डाळ दोनो ही वृन्दावन को बैकुण्ठ मानती है । परमपद बैकुण्ठ कहलाता है। भगवान उसी बैकुठ मे निवास करते है । बैकुठ का अर्थ है

सबसे मिलने का स्वभाववाले। भक्त जन' मिलने की इच्छा रखने वाले विकुठ कहलाते है और उनके आराध्यदेव को वैकुठ कहा जाता है ।

आण्डाळ की रचनाओं मे भागवत का प्रभाव परिलक्षित है। गोपियां कृष्ण से निवेदन करती है कि हम चिरकाल से 'ईश्वरोऽहमह भोगी' कहती हुई ससार मे भटकती रह गई है और हमारा अभिमान पद दलित हो गया है। यद्यपि हम जन्म से ही भक्ति रूपिणी है तथापि हमारे मन में निहित स्त्रीत्वाभिमान दृढ रहा है। हमारे मन मे यही धारणा रही है कि कृष्ण को सदैव हमारे पास आना चाहिए, आपकी कृपा से हमारी यह भ्रांति दूर हो गई है। अब हम अपना स्त्रीत्वा-भिमान त्यागकर आपके शरण मे आई है। इस शेष शेषी भाव की अभिव्यक्ति आण्डाळ अत्यन्त मार्मिक ढंग से की है और उसने कृष्ण से अनन्यगतित्व की प्रार्थना भी की है।[1]

भगवान के मानवी अवतार के विषय में नम्माळ्वार ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है "भगवान एक-एक योनि मे जन्म लेनेवाले देवाधिदेव है! सामान्य रूप तो अभिनय मात्र है। इसीलिये भगवान को आळ्वारी कहा गया है। किन्तु आळ्वार भक्तो का मत इससे भिन्न है। उनकी धारणा है कि कर्मकृत जन्म से रहित होने पर भी भगवान नाना योनियों मे जन्म लेते है । समस्त लोक के अधिपति होने पर भी चेतन को ही पितृत्व के रूप में देखते है और कौतूहलमय होकर अवतार धारण करते है । इसीलिये वसुदेव, देवकी ने 'जातोऽसि देव देव' कहकर भगवान की प्रार्थना की है । आळ्वार भक्तो का सिद्धान्त भी यही है कि जन्म लेने मात्र से कोई दूषित नही होता । परन्तु कर्मपरवश होकर वह चेतन नाना कष्ठों को भोगता है। इसीलिये आण्डाळ ने कहा है कि भगवान का अवतार चेतन के उद्धार के लिये और वही दुःख से मुक्ति भी दिलाता है।

भगवान के वैभव की ओर सकेत करती हुई व्यक्त करती है कि भगवान प्रणय रोषवाली प्रेयसी को अपनी श्रृंगार-लीला से, तथा नैच्यानुसधान से विमुख होनेवालो को अपने शील, गुण, पराक्रम से विजित कर लेता है। इसीलिये आण्डाळ गोपियों के रूप मे यही प्रार्थना करती है कि हे प्रभु हम जन्म जन्मान्तर तक आपके ही साहचर्य में रहेगी और आपकी सर्वविध सेवा रत रहेगी, यही हमारा अपेक्षित पुरुषार्थ है । इसी को भट्टर स्वामी ने गोदा स्तुति मे 'श्रुतिशत-शिरसिद्ध मध्यापयन्ती कहा है । तात्पर्य यह है कि जब तक यह शरीर रहेगा तब तक हमको सर्वाविध सेवा का अवसर मिलता रहेगा और उसके पश्चात्

१. तिरुप्पावै पद २१

परमपद मे नित्य सेवा की शक्ति प्राप्त हो सकेगी । उसके पश्चात् भगवान् का जब अवतारो मे आविर्भाव होगा तब हम विरह भानवा से आक्रान्त नही होगे। आण्डाळ ने गोपी भाव से कृष्ण की उपासना की और उसका अन्तर्भाव भी यही था।

मीरां का दर्शन

मीरां ने चेतन को ईश्वर का अश माना है। प्रलय काल मे चेतन और ब्रह्म की जो सूक्ष्म स्थिति है वही सृष्टि के समय स्थूल रूप में प्रकट होती है और परब्रह्म का रूप धारण कर लेती है। इस धारणा मे अद्वैत सिद्धान्त के दर्शन होते है। मीरा ने इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए एक स्थल पर कहा भी है—समस्त चेतन और अचेतन प्रियतम की आत्मा है। पचभूत एव सूर्य चन्द्र सब परमात्मा के ही स्थूल रूप है। ईश्वर ही सब वस्तुओ मे प्रविष्ट हो कर उन्हे क्रियाशील बनाता है और अपनी इच्छा के अनुकूल उन्हे परिचालित करता है। जो प्रियतम हमारे अन्तर मे बस रहा है उसकी बहिर्जगत मे खोज करना व्यर्थ है। पचतत्त्वो से बने इस कर्मशिथिल शरीर के माध्यम से जो क्रियाशीलता दिखलाई देती है वह प्रियतम समन्वय का रूप ही प्रकट करती है। यही मिलन भाव मीरा के पदो मे यत्र-तत्र अभिव्यक्त हुआ है और इस प्रतीकात्मक अर्थ में विशिष्टाद्वैत समाहित है। इसी भाव की अभिव्यक्ति मीरा ने निम्नलिखित पद में की है।

म्हां गिरधर रंग राती, सैयां म्हां।
पंचरंग चोला पहर्या,सखी म्हां, झिरमिट मेलण जाती।
वां झिरमिट मां मिल्यो सांवरो, देख्यों तण मण राती।
जिणरो पियां परदेश बस्यारी लिख भेज्यों पाती।
म्हारां पियां म्हारे हीयड़े बसतां आवां णा जाती।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवां दिण राती।"[1]

मीरा की यह दृढ धारणा है कि प्रियतम के साहचर्य के बिना मुक्ति प्राप्त नही हो सकती। इस ससार की लौकिकता इतनी जड है कि वह साधु सतो का साहचर्य प्राप्त नही करेगी। यही कारण है कि उस अलौकिकता मे अपा-

---

१. मीरांबाई की पदावली पद २३

विवता के तत्त्वो का समन्वय नहीं हुआ है। मीरां ने सदा ही साधु संतों का सत्सग किया था और वह इन्हें प्रियतम की प्राप्ति का एक माध्यम उपकरण मानती थी। मीरां ने एक स्थल पर जीवन और मृत्यु के आवागमन के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कहा भी है—

राम नाम बिनि मुकुति न पावा, फिर चौरासी जावां।
साध संगत मां भूल णा जावां मूरख जणम गवायाँ।
मीरां रे प्रभु थारी सरणां, जीव परमपद पावां ।।[1]

सांसारिक लालसाओ को त्यागने का निर्देश मीरा ने दिया है और वह यह कहती है कि तेरा ईश्वर तेरे अन्तर में ही निवास कर रहा है। उससे कपट नही किया जा सकता। हे मनुष्य हरि भक्त से प्रेम कर, ईश्वर की प्राप्ति कर। सांसारिक आकर्षणों को त्याग दे। सासारिक विषयों से विरक्त भाव की ओर से संकेत करते हुए मीरां ने यह कहा है—

जो तेरे हिय अन्तर की जाने, तासों कपट न बनै
हिरदे हरि को नाम न आवे मुख ते मनिया गने
हरि हेतु हेत से कर, संसार आसा त्याग
दास मीरां लाल गिरधर सहज कर वैराग।।[2]

मीरा का यह स्पष्ट निर्देश है कि हरि की प्राप्ति के लिये हरि भक्तो की उपासना करनी चाहिये। प्रियतम का अनुग्रह ही मुक्ति का कारण है। केवल भगवत् कृपा से मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है और अलौकिक आनन्द की उपलब्धि हो सकती है। मीरां ने इसी भाव की ओर संकेत करते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा है—

तनक हरि चितवां म्हारी ओर।
हम चित्तवां थें चितवो णा हरि, हिवड़ो बड़ा कठोर।
म्हांरी आसा चितवनि थारो और णा दूजा दोर।
ऊभ्यां ठाढ़ी हरि अविनाशी ,देस्यूं प्राण अंकोर।[3]

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार यह भुवन सत्य है। वल्लभाचार्य ने जगत् और संसार को स्पष्ट करते हुए जगत् को नित्य और संसार को अनित्य माना है। परन्तु मीरां इस जगत् में किसी प्रकार का विभेद नही मानती। जैसे घडा

---

१. मीरांबाई की पदावली पद, १५६
२. वही १५८
३. वही ५

अनित्य है और मिट्टी को सत्य निरूपित किया गया है वैसे ही प्रपंच में विकार होने से भी वह अनित्य हो जाता है। परन्तु प्रपच का आधारभूत तत्त्व प्रकृति चेतन शाश्वत और सत्य है। प्रपंच के विकारत्व का अनुगायन करते हुए मीरां ने अपने पदों में विशिष्टाद्वैत की अभिव्यक्ति ही की है। मीरां संपूर्ण सृष्टि को मर्त्य मानती है और उसका यह विचार है कि संपूर्ण सृष्टि नाशवान है किन्तु यह मर्त्य भाव वास्तव में प्रपंच का विकार है। इसीलिये यह मर्त्य भाव तथा यह प्रपंच अनित्य है। जिस प्रकार यह संसार परिवर्तनशील होता है उसी प्रकार विकार मे विपर्यय होता रहता है। संसार को मीरां 'चहर रो बाजी' कहा है। किन्तु चहर की बाजी से व्युत्पन्न कलरव प्रपंच का मुखरित नाद है। अतएव यह नाद भी अनित्य है। इसी भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद में हुई है—

भज मन चरण कंवल अवणासी।
जेताई दीसां धरण गगन मां, तेताई उठ जासी।
तीरथ बरतां ग्याण कथता, कहा लियां करवल कासी।
या देही रो गरब णा करना, माटी गां मिल जासो।
यो संसार चहर रो बाजी, सांझ पड्यां उठ जासी।
कहा भयां थां भगवा पहरयां घर तज लयां सन्यासी"[1]

मीरां संसार के चेतन मे व्याप्त विकृतियों के प्रति अनास्थावान और असहज कार्य व्यापारों के प्रति अनास्तित है। वह भक्ति भाव को प्रधान मानती है और चेतन को भी भक्ति परिवेश में आवृत करना चाहती है। यही कारण है कि उसे चेतन का कार्य व्यापार भी दुःखी बना देता है। किन्तु यह अनित्य के प्रति अनास्थावान नही है। मीरां ने यह स्पष्ट कहा है कि ईश्वर ही एक मात्र नित्य वस्तु है और चेतन सत्य भक्ति पूरित कार्य व्यापारों द्वारा कर्मबन्धन को शिथिल कर सकता है और ईश्वरतत्त्व की उपलब्धि कर सकता है। इस भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद में हुई है–

भगत देख्यां राजी ह्यायां, जगत देख्यां स्यां।[2]

o o o

हरि म्हारा जीवण प्राण अधार।
और आसिरो णा म्हारा ये बिण, तीनूं लोक मंझार॥[3]

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १८५
२. वही पद १८
३. वही पद ४

मीरां ने अपने आराध्यदेव को "हरि अविनाशी" कहा है और वह अपने हृदय मे सदा ही निवास मानती है। वह अपने प्रियतम के उस 'अगम देश' की कल्पना करती है जहाँ काल तक प्रवेश नही कर पाता। केवल वहाँ हंस विहार करता है और वहाँ ही साधुओ की सगति का "ज्ञान जुगुति" की प्राप्ति की जा सकती है। इसीलिये वह सांसारिकता के मोह को त्यागकर ईश्वर के प्रति आसक्ति और संसार के प्रति विरह भाव की अभिव्यक्ति करते हुए यह उपदेश देती है—

> **चालां अगम्म वा देस, काल देख्यां डरां।**
> **भरां प्रेम रा होज, हंस केल्यो करां।**
> **साधा संत रो संग, ग्याणा जुगतां करां।**
> **धरां सांवरो ध्यान चित्त उजलो करां ॥[1]**

मीरा के पदो में अनेक आचार्यो ने निगुण तत्त्व का विचार किया है। मेरा मत है कि उनके पदो मे न तो "निर्गुनिया राम' ही प्रकट हुआ है और न "निर्गुनिया श्याम" ही दिखलाई देती है। मै उसे पूर्णतः सगुण भक्त कवयित्री मानता हूँ। सगुण श्याम की उपासिका मानता हूँ और मेरा यह दृढ़ मत है कि मीरां के पदो मे निर्गुण तत्त्वों की खोज करना मृगतृष्णा है। मीरां के पदों में इस प्रकार की शब्दावलियों का प्रयोग हुआ है जिन्हे देखकर निर्गुण भाव का भ्रम हो जाता है। सत्य तो यह है कि मीरा की ये शब्दावलिया सन्त समाज के साहचर्य, द्वारा ग्रहण की गई है और केवल इन शब्दावलियों को ही निर्गुण तत्त्व के प्रसार का आधार मानकर मीरां के पदो मे निर्गुण रूप की प्रस्थापना करना न्याय संगत प्रतीत नही होता। उसने कृष्ण को साकार रूप मे देखा था और कृष्ण की रंगिमा उसकी आत्मा मे रजित हो गई थी। उसकी देह उसी रगिमा की रक्ताभा से परिपूरित थी। उसकी वाणी में वही रंगिमा मुखरित हुई है। इस तथ्य की पुष्टि निम्न लिखित पद से हो सकती है—

> **णेणा बणज बसावां री, म्हारा सांवरा आवाँ।**
> **णेणा म्हारा सांवरा राज्यां, डरतां पलक न लावां।**
> **म्हारां हिरदां बस्यां मुरारी, पल पल दरसण पावां।**
> **स्याम मिलण सिंगार सजावां सुखरी सेज बिछावां।**
> **मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जावां ॥[2]**

---

१. मीरांबाई की पदावली पद, १५८

२. मीराबाई की पदावली पद, १५

उपर्युक्त पद मे "णेणा बणज बसावा मे, सावरा हृदा बस्यों, सुखरी सेज विछावा" आदि प्रयोग मीरा की अजस्र प्रभाभिव्यक्ति की ओर सकेत करती है।

इस तरह यह पूरी तरह स्पष्ट होता है कि मीरा के पदो मे कृष्ण के सगुण रूप के ही दर्शन होते है। उसने कृष्ण को पूर्णत. नित्य और अनादि-अनत माना है और इसी भाव से कृष्ण की उपासना की है।

मीरां और आण्डाळ की भक्ति-साधना का सूक्ष्म निरीक्षण परीक्षण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मीरा ने कृष्ण के जिस सगुण रूप की उपासना की है, वही वास्तव मे उसकी आत्मा का अपार्थिव तत्त्व है। आण्डाळ ने भी रगनाथ की उपासना करते हुए अपनी उद्दाम, रगिम भावनाओ का प्रकाशन अलौकिक, अपार्थिव तत्त्वो के परिप्रेक्ष्य मे किया है। अतएव दक्षिण भारत की सगुण भक्ति परपरा मे आण्डाळ की भक्ति-साधना का अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसी प्रकार उत्तर भारत की भक्त परपरा की एक अन्विति के रूप मे मीरा का आविर्भाव हुआ है और मीरां ने भी समर्पण भाव से कृष्ण की अलौकिक रूप, अपार्थिव रग, अमर्त्य रस और चिरतन गध मे अपने आत्मतत्त्व को समरस कर दिया है। मीरा और आण्डाळ का यही समरस भाव उनकी आध्यात्मिक एकाकारता को स्पष्ट करता है।

पाञ्चरात्र संहिता-अवतार

अवतारवाद भागवत धर्म की देन है। भागवत धर्म का प्राचीन रूप पॉच रात्र तत्र" है जिसे त्रिशिखण्डी ऋषियो ने प्रचारित किया था। भागवत धर्म के परवर्ती रूप के प्रतिष्ठाता भगवान श्री कृष्ण है।[1] इसी कारण से इनको सात्वत शास्त्र और भगवत्छास्त्र कहते है तथा अनुयायियो को पॉचरात्री, सात्वत तथा भागवत कहते है। पाच रात्र के विषय मे श्रीवेदान्त देशिक ने कहा है—

> **"कमाप्याद्यं गुरुं वन्दे कमला गृहमेधिनम्।**
> **प्रवक्ता छन्दसां वक्ता पाञ्चरात्रस्य यः स्वयम्॥"[2]**

अर्थात् मै उस प्रथम गुरू श्री लक्ष्मीपति की वन्दना करता हूँ जिसकी महिमा अपरपार है। वही वेदों का वक्ता और पाच रात्र का "स्वय वक्ता" है।

---

१. भागवत भक्ति का स्वरूप : डा० मुन्शीराम शर्मा

२. तोट्टालं श्री वेणुगोपालाचार्य : श्री पाञ्चरात्र संहिता नामक निबंध से उद्धृत। नृसिह प्रियामें।

भगवान के पांच रूप :

गीता मे अवतार के सबध मे कहा गया है कि जिस सत्त्व मे विभूति, श्री तथा ऊर्ज दिखाई दे उसी को भगवान के तेजस् अश से उत्पन्न अथवा अवतार मानना चाहिए।[1] शास्त्रो मे परमात्मा के रूप पाच प्रकार से निर्दिष्ट है—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चा।[2] इन पॉच रूपो के बारे मे अलगिय सिगर महराज कहते है—"पर रूप जो योगियो को भी दुर्जेय और सुदुर्लभ है, आवरण के जल के समान है, व्यूह जो जागृदाद्यवस्थान् मनुष्यो का ध्यानगोचर है। विभव सद्यः प्रवाहयुक्त नदी के जैसे कई दिनो का दिखावा है जिसका अनुभव उसके समकालीन लोगों को ही प्राप्त हो सकता है । अन्तर्यामी जो हृदय गुहा मे गूढ है, स्रोत के पानी के समान है और अर्चावतार नदी के एकत्र स्थित हृद के समान मुलभ है और जो मनुष्य पिछले समय के है उनका भी अनुभवयोग्य है।"[3] इस सिद्धान्त के अनुसार पर रूप सर्वेश्वर श्री वैकुण्ठ मे विराजमान है। यह प्रकृति मण्डल से परे है, यहाँ कर्म पराधीन संसारी जीव नही जा सकते। यह शुद्ध तत्त्व गुण से अत्यन्त विलक्षण है, स्वच्छ व स्वय प्रकाश है। इस शुद्ध तत्त्व के परिणाम स्वरूप वैकुण्ठ मे भोग्य, भोग के उपकरण तथा भोग स्थान है। परमात्मा का दिव्य स्वरूप भी इसी का है। 'रामायण मे कहा गया है कि तमस परमो धाता शंख चक्र गदाधर, वह सर्वजगत्कारण है और शख चक्र तथा गदा आदि आयुधो और आभूषणो से प्रकाशमान है।"[4] परमात्मा के इस सुवर्ण सदृश, तेजोयुक्त और स्पृहणीय का साक्षात्कार करने के लिये मीरा परमात्मा का गुणगान करती है। उन्होने उसे 'नारायण'[5] 'चतुरभुज'[6] "हरि"[7] "हरि अविनासी"[8] "प्रभु"[9] पतित पावन प्रभु,[10] "राम अविनासी",[11] "करतार",[12] "गुणवंत गुणसागर",[13] "अधम उधारण",[14] "भव भय तारण",[15] "भगवत कष्ट निवारण",[16] "चरण कवल अविणासी",[17] "पुरुषोत्तम",[18] "त्रिविक्रम"[19] कहा है।

---

१. भागवत भक्ति का स्वरूप—डॉ० मुन्शीराम शर्मा

२. स वा एष पुरुषः पंचधा पंचात्मा येन सर्वमिदं प्रोतम्—तैत्तिरीय नारायणीय

३. वेदान्त दीपिका में प्रकाशित निबंध से। नृसिंह प्रिया

४. वेदान्त दीपिका में प्रकाशित निबंध से उद्धृत : नृसिंहप्रिया : अलगिय सिंगर महाराज।

५. मीरांबाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी ५से १९ तक : पद संख्या : ३९, ५२, १, ५, १७, २९, ३६ ४३, ४५, ६१, ६३, १५१, ५, २६, २९, ५८, ६५, ७२, १८३, ९४, १९७, ११२, १३४, १३७, १९५, १४१

आण्डाळ ने परमपद निवासी, दिव्य स्वरूप इस शुद्ध तत्त्व को "नारायण"[१८] "नारायण मूर्ति"[१९], "क्षीराब्धि शायी"[२०], "परम पुरुपा"[२१], "सुन्दर वाहु पद्‌मनाभ"[२२] "प्रलयादिम पुरुप"[२३], "शख चक्रधारी"[२४], "हरि"[२५], "माधव"[२६], "वैकुण्ठ वासी"[२७], "पकज नयन"[२८], "विशुद्ध विमल रूप"[२९], "ऋजुमार्गी"[३०] "सर्वशक्तिमान"[३१], "भक्त पाप हरनेवाले"[३२], "देव देव[३३], ज्योति रूप,[३४], उज्ज्वल वडवाग्नि रूप,[३५] वट पत्रशायी[३६], सर्वेश्वर[३७], स्वर्ण कमल चरण[३८], चतुर्भुज श्रियः पति[३९], त्रिविक्रम भगवान्[४०] (उत्तम पुरुप) शेष शय्या पर शयन करने वाले[४१], प्रलय काल मे जगत् रक्षण मे चिन्ता करनेवाले भगवान[४२] अनादि चतुर्वेदो से प्रतिपाद्य[४३], गजेन्द्र दुख हरण,[४४] गरुड़ ध्वज साक्षात् पुण्य रूपी भगवान[४५] हृपीकेश[४६], मेरे तत्त्व[४७], श्रिय पति[४८], श्रीमन् नारायण[४९], वासुदेव,[५०] परमपद के निवासी वेद वेद्य श्रीमन् नारायण'[५१] कहा है ।

परमात्मा के पररूप पर प्रकाश डालते हुए उपनिपद् मे कहा गया है कि "परमात्मा एक आकर्षक रूप है जो कुसुमरग वस्त्र, रगीन, कालीन रेशम के कीडे, अग्नि की ज्वाला और कमल के समान है। "उसका रूप तेजोमय है और गन्धयुक्त है । परमात्मा एक विशाल और ज्वलत मडप मे विराजमान है जिसके हजार स्तंभ हैं। उनके दो पत्नियाँ है—लक्ष्मी और भूदेवी ।। इस रूप का दास भूत नित्यसूरी और जीव मुक्त अनुभव करते रहते है।[१] इसी दिव्य तेजोमय परमात्मा के रूप को अनुभव करने के लिये आण्डाळ अपने पास विकसितपुष्पो को देख कर प्रार्थना करती है—

"पेड़ों के ऊपर विकसित पुष्पों, समस्त लोको को पार कर दिव्य

---

१८ से ५१ तक : तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोलि : पद संख्या १-१०, ५-१०, ११, ८-६, १० २, ४, १४, ६, ३०, ७-९, १२-१, ८, १४, २०, २०, २०, २१, २५, २६, २-२, ९-८, १३-२, २९, २९, ३०, ३, १७, २०, ३-१, ३-७, ३-१०, ४-१०, १४-१०, ५-४, ५-६, ५-६, ५-८, ८-९, ८-१, ६-१, ७-३, १३-७ ।

१. तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा माहारजनं वासः, यथा पाण्ड्वादिकं, यथा इन्द्र गोपः, यथा अग्न्यार्चिः यथा पुण्डरीकम्—वृ० ४, ३-५
भारूपः सर्व गन्धः । सहस्रस्थूणे विमते दृढ उग्रे, ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ।। सदा पश्यन्ति सूरयः ।। —वेदान्त दीपिका, अलकियसिंगर महाराज—नृसिंह प्रिया से उद्धृत

ज्योति रूपी परमपद में शोभायमान वेद स्वरूप श्रीमन्नारायण के दाहिने हाथ मे स्थित सुदर्शन के तीव्र ज्योति से जलाये बिना मुझे कैवल्य निष्ठों की गोष्ठी में पहुँचा दो।"[1]

आण्डाळ इस परमपद निवासी की स्तुति करते हुए कहती है—

भगवान सर्वेश्वर श्रीमन् नारायण को छोड़कर और किसी देवता में हमारे रक्षण करने का सामर्थ्य नही है। "हमें पुरुषार्थ देने समर्थ देव नारायण ही है।"[2]

"भगवान् के कैंकर्य करने का सौभाग्य प्राप्त भक्त सदा "नमो नारायण" कहकर स्तुति करते है[3]

मीरां भी अपने आराध्य देव बैकुंठ नाथ की स्तुति करते हुए कहती है कि गणिका ने अधिक बुरे कार्य किये थे, फिर भी तोते को 'राम नाम' पढाने पर वह बैकुण्ठ वासी हुई। अर्थात् नित्य सूरी बनकर परम पद निवासी की सेवा करने का फल पाई। डूबते गजराज ने सर्वेश्वर का अर्ध नाम ही लिया। वे गरुड़ को भी छोड-कर आये और उसका उद्धार किया। पुत्र को नारायण कहकर पुकारने मात्र से प्रसन्न हो कर अजामिल को पापों से छुड़ाया[4] और एक जगह मीरां कहती है कि नि:स्वार्थ सेवा करनेवालो को भगवान प्रसन्न होकर नित्यसूरियों के सदृश बैकुठ वास दिलाते है जहां सदा भगवान के पास रहकर भगवान की सेवा करने का सौभाग्य मिलता है। शबरी इसका ज्वलंत उदाहरण है। शबरी ने भगवान से अत्यधिक प्रेम किया था। इसीलिये उसे बैकुठ का वास मिला।[5] इन उद्धरणों से निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मीरां और आण्डाळ दोनों भगवान के पास रहने वाले नित्यसूरियों के सदृश, भगवान का सामीप्य पाकर नित्य सेवा करना चाहती है।

चतुर्व्यूहों में संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, कृष्ण के संबंधियों, बन्धुबांधवों, पुत्र पौत्रादि के नाम है। इसके अतिरिक्त अवतारकद क्षीराब्धिनाथ को भी व्यूह रूप माना जाता है। आण्डाळ तिरुप्पावै में पहली गाथा मे "नारायण" नाम से परमपद निवासी का स्मरण करती है। दूसरी में व्यूह रूपी "क्षीराब्धि

---

१. नाच्चियार तिरुमोऴि १०-२ ॥
२. तिरुप्पावै पद १।
३. नाच्चियार तिरुमोलि ५-११
४. मीरांबाई की पदावली पद १४०
५. मीरांबाई की पदावली, पद १८६

नाथ" की स्तुति करती है। बन्धु बान्धवो की वन्दना में आण्डाळ श्री कृष्ण को जगाने के पूर्व "अन्न वस्त्र दाता नंदगोप जी, कुल प्रकाशक स्वामिनी यशोदा, स्वर्णाभूषणो से अलकृत बलराम"[1] की स्तुति करते हुए जगाती है। इसके उपरान्त कृष्ण की पट्ट महिषि नप्पिन्नै के भाग्य को सराहते हुए उससे प्रार्थना करती है कि स्वयं पहले जाकर, श्री कृष्ण को भी जगावे।[2]

मीरा के पदों मे व्यूह रूप का वर्णन नही पाया जाता। कही-कही श्री कृष्ण के साथ बलवीर के सग का उल्लेख मात्र करती है। मीरा, पर, व्यूह रूपों में विशेष अन्तर नही पाती। अत. व्यूह रूप के अवतार कद को परत्व रूप मे सम्मिलित कर 'नारायण चतुर्भुज" आदि से संबोधित करती है। बलवीर की स्तुति मे मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधरनागर है जो बलवीर के साथ खेलते है।[3]

विभवावतार के बारे मे यह उक्ति प्रसिद्ध है कि ससार सागर मे निमग्न जीवो का उद्धार करने के लिये भगवान परमपद को छोड़कर ससार मडल में अवतरित होते है और इस ससार मडल को नित्य विभूति की तरह लीला विभूति मे विभव, अर्चादि रूपो मे सन्निहित रहते है। भगवान के दया, क्षमा, सौशील्य, आदि अनन्त कल्याण गुण, सूर्य के सदृश सदा प्रकाशमान, परमपद मे प्रसार विहीन रहते है। इसका कारण यहाँ पापी, दुखी आदि दोष युक्त चेतन का अभाव ही है। अतएव सब प्रकार के अभाव से भरे इस भूमडल मे भगवान विभव रूप मे अवतार लेने पर उनके सभी कल्याण गुण प्रकाशमान होते है। इन अवतारो मे राम, कृष्ण त्रिविक्रम रूप का विशेष माहात्म्य है। भक्त गण अपने को इस अवतार के समय पैदा न होने के दुःख को, मानसिक अनुभव के द्वारा दूर कर आनदातिरेक मे विभवातार का गुण गान करते है। भगवान के कल्याण गुण का प्रभाव भक्तो पर इस अवतार के गुणगान करने मे जितना हुआ, उतना अन्य अवतार मे नही। मीरा और आण्डाळ दोनो को स्वय श्री कृष्ण की प्रियतम का अनुभव कर, उसके सौन्दर्य पर रीझती है, मोहित होती है और उसकी विरह वेदना मे तड़प उठती है। दोनो श्री कृष्ण की प्रतीक्षा मे कभी मूसलाधार वर्षा मे खड़ी-खड़ी भीगती है, कभी यमुना, वन वृक्ष लता, कुँजो से रोते रोते श्री कृष्ण से मिलाने की प्रार्थना करती है। कही-कही दोनों

---

१. **तिरुप्पावै पद १७**
२. **तिरुप्पावै पद १८, १९**
३. **मीरांबाई की पदावली, पद १६१ ॥**

रामावतार तथा त्रिविक्रमवतार का गुण गान भी करती है। परन्तु मीरा और आण्डाळ दोनो अपने स्त्रियोचित हृदय मे भगवान श्री कृष्ण चन्द्र की विश्व-मोहिनी मूर्ति को रखती है और उसी के सौन्दर्य का आभास उन दोनों को सर्वत्र दीख पड़ता है। सर्वत्र दोनो श्री गिरधरलाल व रगनाथ को स्वकीया की भाँति अपना पति समझकर ही कृष्णानुभव करती है। कृष्ण को अवतार मानते हुए मीरा "नन्द यशोदा के यहाँ पुत्र री प्रक्ट्या"[1] और "भक्त कारण रूप नरहरि धर्‌यां आप शरीर"[2] कहती है। कृष्ण लीला के अन्तर्गत बाल लीला,[3] वंशीवादन लीला[4] नाग लीला[5] चीर हरण लीला[6] मिलन लीला[7] पनघट लीला[8] फाग लीला[9] दधिबेचन लीला[10] मधुरा गमन[11] उद्धव सवाद[12] के मनोहर प्रसग वर्णित है। इसके अतिरिक्त कृष्ण लीला से सबधित वर्णनों मे "गरब मधवा हरण निमित्त गोवरधन धारण करने का दृश्य"[13] "मोहन के मुरली बजाते जमुना किनारे धेनु चराने का दृश्य"[14] "बलवीर का संग लिये कान्ह का बसी बजाने का दृश्य"[15] "पूतनी राक्षस का वध"[16] कुब्जा पुारण[17] के उल्लेख मिलते है। कुछ पदो मे "द्रुपद सुताणां का चीर बढ़ाकर दुसासण मद मारण" की कथा[18] "सुदामा का तदुल खाने की कथा"[19] विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

---

१. मीरांबाई की पदावली पद ६
२. मीरांबाई की पदावली पद ६१
३. मीरांबाई की पदावली १६२-१६६
४. मीरांबाई की पदावली १६६-१६७
५. मीरांबाई की पदावली १६८
६. मीरांबाई की पदावली १६९
७. मीरांबाई की पदावली पद १७०-१७१
८. मीरांबाई की पदावली पद १७२-१७३
९. मीरांबाई की पदावली पद १७५
१०. मीरांबाई की पदावली पद १७६-१७८
११. मीरांबाई की पदावली पद १७९-१८२
१२. मीरांबाई की पदावली पद १८३
१३. मीरांबाई की पदावली पद २
१४. मीरांबाई की पदावली पद ११
१५. मीरांबाई की पदावली पद १६१
१६. मीरांबाई की पदावली पद १४०
१७. मीरांबाई की पदावली पद १३४
१८. मीरांबाई की पदावली पद १३९, १८७
१९. मीरांबाई की पदावली पद १३७, ६१

रामावतार से संबधित वर्णनों मे 'शबरी की कथा'[१] "अहल्या शाप विमोचन"[२] के उल्लेख मात्र मिलते है । राम नाम की महिमा से मोक्ष प्राप्त पौराणिक भक्त गाथाओं मे "गणिका का कीर पढाने से बैकुठ वासी होने का उल्लेख[3] दृष्टव्य है । राम कृष्णावतार के अतिरिक्त मीरां के पदो मे त्रिविक्रमवतार लेकर विश्व को नापने का वर्णन,[४] प्रह्लाद की रक्षा हेतु नरसिहावतार का वर्णन[५] मत्स्यावतार का वर्णन[६] मिलते हैं ।

मीरा अपने प्रियतम को लाल गिरधर (१) बाके बिहारी (२) मोहन गिरवर धारी जी (२) नदलाल (३) भक्त वछल गोपाल (३) गोकुल रो ब्रजवासी (६) प्रभु गिरधर नागर (६) नन्द को गुमानी (८) मोर मुगट नटकी (९) मदन मोहन (१०) निपट बकट छव (१०) सुन्दर वदन कमल दल लोचन (११) बड़ी-बड़ी अखियन वारो (७) नद नदन (१२) मोर चन्द्रका किरीट मुगट छव (१२) नटवार प्रभु (१२) मोहन (१३) बदन चंद (१३) मुरारी (१५) श्याम (१५) प्रभु (१६) प्रभु राम जी (१६) प्रियतम (१७) गिरधर गोपाल (१८) सावरे रग (१९) उण (२०) गोविन्दा (२२) दीनानाथ (२७) ब्रजनाथ (२७) मीरा रे प्रभु (३८) सावलिया वर (३९) साजन, धणी, सैंया, गिरधर (२७) गिरधर लाल (४७) गुणागार नागर (४८) ब्रजराज (४८) मोहणा (५६) श्याम मनोहर (५७) मन मोहन (५८) जोगी (५८) रमइया (५९) मेरे प्रतिपाल (६३) राम (६३) मन मोहन (६८) सावलिया (६८) मीरां के पति आप रमैया (७३) माधो (७७) श्याम सुन्दर (९३) महाराज (१०९) पिव (१०९) प्रीतम प्यारा (११२) सरणागत परमदयाल (११३) जोगिया जी (११६) गोवरधन गिरधारी (१३१) गोसाई (१३२) सुख सागर स्वामी (१४४) सुनवल ठाकुर (१६३) श्याम कन्हैया (१५६) मुरलिया (१६७) कृशन मुरारी (१५९) नन्दकिशोर (२०२) प्रभृति नामो से संबोधित करती है।

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १८६
२. मीरांबाई की पदावली पद १३७, ११८
३. मीरांबाई की पदावली पद १४०
४. मीरांबाई की पदावली पद १४१
५. मीरांबाई की पदावली पद १३७
६. मीरांबाई की पदावली पद १३१

आण्डाळ के पदों में गोपियो के क्रीडा गृह तोडने की लीला[1] तथा चीर हरन लीला[2] के विशद व विस्तृत वर्णन मिलते हैं। शेष लीलाओ के वर्णन का उल्लेख मात्र ही मिलता है। इनके पदों में बाललीला, रामलीला तथा होली खेलने का चित्र नहीं मिलते। परन्तु आण्डाळ कृष्ण के पराक्रम के अद्‌भुत चरित्रों का गुण गान करते नही अघाती। इनके पदों में श्री कृष्ण के साहस-पूर्ण कार्यों में "पूतना स्तन्य पान कर वध करना" (६) शकटासुर भंजन (६) "केशी वध व मल्ल सहार" (१२, २४) "बकासुर का संहार" (१३,ना. ति. १-२) 'वत्स कपित्थासुर भंजन' (२४) 'गोबरधन धारण करना (२४) देवकी के यहाँ पैदा होकर कृष्ण के यहाँ पलने का वर्णन (२५) "कस की मनोभिलाषा को व्यर्थ बनाना" (२५) "धेनुओ को चराते बशी बजाने का दृश्य" (२८) कुवलयापीड हाथी का संहार (ना. ति. १-१०) (४-५) कालीयनाग लीला (४-४, १२-५) यमलार्जुन का उद्धार (४-७) शिशुपाल तथा सप्त ऋषभो का सहार (४-८), घट नर्तन (१०-७) रुकमणि के पणिग्रहण का वर्णन (१०-९) ऋषि पत्नियो की कृष्ण वलराम व गोपों की सेवा, रामावतार के संबध में लंका पति का सहार (१२-२४) शूर्पनखा के नासिकाकर्तन (१०-४) राम रावण के युद्ध का वर्णन, (५-३) इत्यादि प्रसग मनोहर ढंग से वर्णित है। इसके अतिरिक्त नरसिहावतार (८-५) वराहवतार (११-८) वामनावतार तथा त्रिविक्रमावतार (४-९) (३-१७), १-७) आदि के उल्लेख भी इनके पदो मे मिलते है।

आण्डाळ अपने प्रियतम को उनके अद्‌भुत कार्यो की प्रशसा व गुण गान करते हुए निम्न प्रकार से सबोधित करती है—माता के उदर महत्व प्रदायक दामोदर (५) केशी मुख चीरनेवाला (८) मल्ल निषूदक (८) बकुल संहारक (१३) लका नाश करनेवाले हे प्रतापशालिन् (२-६) घट नर्तन निपुण प्रभु (३-६) मत गज संहारक (४-५) कस विनाशक (४-५) मधुसूदन (६-६) शूर्पनखा के नासिकाकर्तक कुमार (१०-४) गोवर्धन धारी (१४-२)

कही-कही विपरीत परिस्थिति के कारण "पूतना के स्तन्यपान करने वाले हे निर्लज्ज (३-९) झूठ बोलने में निपुण (१४-३) निर्दयी धूर्त (१४-६) जैसे तन काले वैसे मन काले प्रियतम (१४-७) कहकर श्री कृष्ण को चिढ़ाने में आनन्द भी लेती है।

आण्डाळ ने श्री रगनाथ के रूप लावण्य तथा काति से आकर्षित होकर

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि दूसरा दशक

२. नाच्चियार तिरुमोलि तीसरा दशक

"नीलमेघ निभ रक्त नेत्र, सूर्य चन्द्र सदृश मुखवाला (१) मायावी मणि वर्ण (१६) अतसी पुष्प सदृश श्याम (२३) नील सागर वर्ण (१-२) कमल वर्ण (१-६) रत्न खचित किरीट धारी (५-१) सुन्दरी गोपियो के मन में निवास करने वाले तथा हमारे चित्त को परवश करने मे समर्थ सौन्दर्यवाले (४-१०) प्रवाल सदृश अधरवाले (५-१) शुकशिशु सदृश वर्णवाले (५-६) पीताबर धारी (१४-८) कहा है । अनेक पदो मे वह प्रियतम को 'वर', "साजन", "मेरे स्वामी", कहकर सबोधित करती है । आण्डाळ सदा अपने प्रियतम को नन्द गोप सुत (१) यशोदा का बाल सिह (१) महितोत्तर मथुरा पुर स्वामी (२) यमुना तट विहरणकारी (६) गोप वंश मणि दीपक (६) केशव (७) माधव (६) घन श्याम (११) हृदय मधुर (१२) पकज नयन (१४) दुख विनाशक (१५) प्रियतम (१६) कल्याण गुण पूर्ण गोविन्द (२७) दोप रहित गोविन्द (२८) द्वारका नाथ (१-४) श्रीधर व श्रिय.पति (२-१) चोर (२-५) तुलसी माला धारी (३-२) हमारे अमृत (३-२) श्याम सुन्दर कृष्ण (३-५), कोमल गोप बालक (३-८) देवकी नन्द (४-३)नट राज (४-४) वत्स चराचर खेलने वाले गोप (४-८) हृषी केश (५-६) नरसिह (६-२) परम पावन (६-४) वासुदेव (७-३) नन्द गोपाल (१२-३) मायावी (१४-३) परम साधु (१४-७) विमल (१४-६) कहने मे अत्यधिक आनन्द पाती है।

आण्डाळ और मीरा के मन मे अन्तर्यामी भगवान, एक परम ऐश्वर्यवाले एवं लीलामय सगुण रूप मे अकित हो गये है । मीरा के हृदय मे 'मोर मुगट माथ्या तिलक विराज्या कुडल अलकारी जी, अधर मधुर धर वशी वजावा'[1] के रूप मे प्रियतम सद निवास करते है । स्वय मीरा भक्त वछल गोपाल से प्रार्थना करती है--

बस्यां म्हारे णेणण मां नंदलाल ।
मोर मुकट मकराकृत कुंडल अरुण तिलक सोहां भाल ।।
मोहण मूरत सांवरो सूरत णेणा बण्या विशाल ।।
अधर सुधारस मुरली राजां उर वैजंतां भाल ।।
मीरां प्रभु संतां सुखदायां, भक्त वछल गोपाल ।।[2]

मीरा कहती है कि उसका "प्रीतम हिरदा बसता, दरस लह्या सुख रासी"[3]

---

१. **मीरांबाई की पदावली पद २**
२. **मीरांबाई की पदावली पद ३**
३. **मीरांबाई की पदावली पद १८४**

अतः उसे उसकी प्रीति पर पूर्ण विश्वास हो गया है । श्री कृष्ण के लिये वह कान की बालियाँ बनायगी क्योकि कृष्ण रूपी हार तो अब उसके पास है । चित्तमाला, चतुर्भुज, चूडा आदि सब कुछ उसके लिये श्री कृष्ण है, अब उसको सुनार के पास क्यो जाना चाहिए । उसके कड़े और पैर के आभूषण तो कृष्ण ही है। अन्तर्यामी राम नारायण ही उसके लिये बिछुअे का घुँघरू है ।[1]

मीरां के मन में कृष्ण की रूप माधुरी समा गई है । वह अपने कृष्ण की मधुर मूर्ति की नोक उसके हृदय मे गड़ गई है। चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत; हिवडा अणी गड़ी ।[2] मीराबाई ने अपने इस अन्तर्यामी भगवान को ही कभी 'हरि अविनासी' के रूप मे सबोधित करते हुए सदा उसे अपने हृदय मे निवास करनेवाला बतलाया है । मीरा को कुछ लोग सतमत की अनुयायिनी मानना चाहते है । ऐसा करना मीरां के प्रति अन्याय करना ही है। सर्वत्र वह अपने मन के आराध्य देव का ही भावना प्रकर्ष मे वर्णन किया है। अपने मन के अन्तर्यामी भगवान को निश्चित रूप मे स्पष्ट बताती है—

जिण्रो पियां परदेस बस्यांरी लिख लिख भेज्यां पाती।
म्हारां पियां म्हारे हीयड़े बसतां, णा आवां णा जाती ।।

आण्डाळ के मन मे भगवान का अन्तर्यामी रूप श्री रंगनाथ, वेकटाद्रिश्वर, तिरुमालिरम सोलै के सुन्दरराज आदि के अर्चा रूप मे अकित हुआ है । इसी अर्चारूप भगवान को ही नन्द गोप सुत, गोविन्द, गिरधारी तथा अद्भुत चेष्टाये करनेवाले कान्ह के रूप मे देखती है । नीलमणि सदृश वर्णवाले, नवरत्न खचित किरीटधारी, धेनुओं को चराते बंशी नाद बजाने वाले आण्डाळ के मन को नाना प्रकार से नचा रहा है । उसका प्रियतम उसके हृदय मे घुसकर उसे शिथिल बना कर उस दुख से वह स्वयं सतोष पा रहा है ।[3] आण्डाळ का प्रियतम सदा इस रूप में उसके मन मे वास करते है—

> दिव्यामृत सदृश श्री रगनाथ भगवान परम भोग्य है । वे अपने दिव्य केश समूह से, दिव्य अधर से, दिव्य नेत्रो से, दिव्य नाभी से उत्पन्न दिव्य कमल पुष्प से भी मनोहर व सुन्दर है।"[4]

---

१. **मीरांबाई की पदावली पद १४१**
२. **मीरांबाई की पदावली पद १४**
३. **नाच्चियार तिरुमोलि ५-२**
४. **नाच्चियार तिरुमोलि ११-२**

आण्डाळ के लिये पवित्र कावेरी से घिरे श्री रग क्षेत्र मे विराजमान वेद-स्वरूपी श्री रगनाथ भगवान ही सब पदार्थों के अन्तर्यामी है।[1]

विभवावतार के समान अर्चा मे कोई अमानुप और अत्यद्भुत चेष्टा न होने के कारण कहते है "न तस्य प्रतिमा अस्ति ।" इसमे भगवान की अर्चामूर्ति उपासना का स्पष्ट निषेध है। अलगिय सिगर महाराज और अनेक उद्धरण देते हुए इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते है—"यहाँ" "प्रतिमा"" शब्द का अर्थ विग्रह नही बल्कि 'समान' है। प्रतिभ शब्द सादृश्यार्थ मे भी अनेक जगह प्रयुक्त है। "वज्र प्रतिमा. शरा । वज्र के समान बाण।" लोक त्रये अप्य प्रतिमप्रभाव: तीनो लोको मे जिसके प्रभाव का कही सादृश्य न हो । पतत्पतगप्रतिमस्तपो-निधि । ऋषि सूर्य के सदृश ।। श्री पराशर भट्ट ने अपने सहस्र नाम भाष्य मे 'अतल' शब्द की व्याख्या करते समय उसके प्रमाण के तौर पर "न तस्य प्रतिमा अस्ति" वाक्य को लिखा है। अत: इस वाक्य से यही अर्थ निकलता है "न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यश:" अर्थात् जिसकी अनन्त कीर्ति है उसके समान दूसरा कोई नही ।"[2]

अर्चा रूप का खंडन करनेवाले दूसरा प्रमाण यह देते है—

अग्नौ तिष्ठति विप्राणां हृदि तिष्ठति योगिनाम्
प्रतिमा त्वप्रबुद्धानां सर्वत्र समदर्शिनाम् ।।

अर्थात् ब्राह्मणो के लिये परमात्मा यागाग्नि मे है, योगियो के लिये हृदय में है, ज्ञान हीनों के लिये प्रतिमा है, समदर्शी महानो के लिये सर्वत्र है। अलगिय सिगर महाराज का विचार यहाँ 'प्रतिमान्वप्रबुद्धाना" के लिये दृष्टव्य है । वे कहते हैं "अप्रबुद्धानामपि प्रतिमासु" यानी समदर्शी महात्माओ के लिये मात्र नहीं, अप्रबुद्ध लोगो के लिये भी वह प्रतिमा मे है।[3]

अर्चा के लिये वेद, मनुस्मृति, रामायण, पाँच रात्र प्रमाण है । सामवेदी ब्राह्मण मे कहा गया है कि जब देवताओं का मंदिर कांपता है, या देवताओं की प्रतिमाएँ रोती या नाचती हैं, पसीने से तर होती या टूट जाती है तब प्रायश्चित्त करना चाहिए ।[4]

महाभारत मे विष्णु की अर्चना के संबध में यह उल्लेख मिलता है "तुम

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि पद ११-६

२,३. वेदान्त दीपिका में—अऴगियासिगर महाराज, नृसिंहप्रिया से उद्धृत

४. यदा देवतायतनानि कंपन्ते, दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्ति उन्मीलन्ति तदा प्रायश्चित्तं भवति—सामवेदः षड्विंश ब्राह्मण

सब उस विष्णु की अर्चना, अन्न पान आदि से करो जो भक्तो के ध्यान के अनुसार आविर्भूत होता है ।"[1]

सर्वसम्मत मनुस्मृति में कहा गया है कि गाय, भगवान की मूर्ति, घी, शहद और पूज्य पेड़ आदि की परिक्रमा करनी चाहिए। पहले पहर मे ही देवताओं की पूजा करनी चाहिए तथा देवताओ और धार्मिक ब्राह्मणो का अभिगमन करना चाहिए ।[2]

बाल्मीकि रामायण में भगवान् श्री रामचन्द्र जी की अर्चा वन्दना का सुन्दर वर्णन मिलता है ।[3] वसिष्ट जी के जाने के उपरान्त श्री रामचन्द्र जी स्नान कर परिशुद्ध मन से अपनी पत्नी विशालाक्षी सीता देवी के साथ भगवान नारायण के पूजा-गृह मे आये। वहाँ पहुँचकर विधिवत् हवि का पात्र उठाकर ज्वालायुक्त आग में हवि का होम किया और हवि के शेष को स्वीकार कर लिया। दर्भाशन पर बैठकर मौन से परमात्मा का ध्यान करने लगे और मदिर में लेट गये।

विष्णु धर्म पुराण के आधार पर यदि एक भक्त सुन्दर मनोहर मूर्ति को

---

१. प्र वः प्रान्तमन्धसो धियायते महीशूराय विष्णवे चार्चता ।
यासानुनि पर्वता नाम द्वाभ्यामहस्थ तुरर्वतेव साधुना ।।
—महाभारत—द्वितीयाष्टक

२. मृदं गां दैवतं विप्रान् घृतं मधु चतुष्पथम् ।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ।।
मनु स्मृति—४-२९

पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ।
देवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ।।
मनुस्मृति : ४-१५२

३. गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ।।
प्रगृह्य शिरसा पात्रीं हविषो विधिवत् तदा।
महते देवतायाज्यं जुहाव ज्वलितेऽनले।
शेषं च हविषस्तस्य प्राश्याऽऽशास्यात्मनः प्रियम् ।
ध्यायन् नारायणं देवं स्वास्तीर्णे कुशसंस्तरे।
वाग्यस्सह वैदेह्या भूत्वा नियतमानसः ।
श्रीमत्यायतने विष्णोः शिश्ये नरवरात्मजः ।।
—रामायण —अयोध्या ६

स्वर्ग, चाँदी आदि धातुओ से बनाकर उसी की अर्चना, पूजा, ध्यान करे तो सारा दोष विनष्ट होकर ब्रह्म रूप उसमे प्रविष्ट होता है ।

पाँच रात्र के अनुसार मत्र और मूर्ति मे षडगुणो से परिपूर्ण और सबसे परे परमात्मा निवास करता है । शास्त्रो के अनुसार अर्चावतार मे भगवान के गुण पाँच प्रकार के माने जाते है। वे—स्वय व्यक्त, दिव्य, सिद्ध, आर्ष और मानुष ।[1]

व्यासस्मृति मे लिखा है कि जिसके यहाँ केशव की पूजा न होती हो उसके यहाँ भोजन करना भी निषिद्ध है ।

पराशर भट्ट परमात्मा श्रीमन्नारायण के सौलभ्य गुण की पराकाष्ठा अर्चावतार ही मानते है । वे कहते है—"हे श्री रगनाथ तुम इस पृथ्वी मे अनेक मदिरो, महलो एव कुटीरो मे भेदभाव के विना विराजमान हो। तुम्हारा यह सौलभ्य गुण हमारी समझ के बाहर है जैसे तुम्हारे समस्त कल्याण गुण वेद ज्ञान से परे है । इस ससार मे तुमको सब सुलभ से अपनी शक्ति के अनुसार पूजा कर सकते है ।[2]

गिरधरलाल की उपासिका मीरा और श्री रगनाथ की प्रिया आण्डाल दोनो में न केवल साधना मार्ग मे समानता है बल्कि दोनो के जीवन चरित्रों मे भी समानता को देखते है । मीरावाई के बालपन घटनाओ मे यह प्रसिद्ध है

---

१. सुरूपां प्रतिमां विष्णोः प्रसन्नवदनेक्षणाम् ।
कृत्वाऽऽत्मनः प्रीतिकरीं सुवर्णरजतादिभिः ।।
तामर्चयेत् तां प्रणमेत् तां यजेत् तां विचिन्तयेत् ।।
विशत्यापास्तदोषस्तु तामेव ब्रह्मरूपिणीम् (विष्णु धर्म)
सर्वातिशायि षाड्गुण्यं संस्थितं मन्त्रबिम्बयोः ।
० ० ०
बिम्बाकृत्याऽऽत्मना बिम्बे समागत्याऽवतिष्ठते ।। (पांचरात्र)
विशेषेण स्वयंव्यक्ते दिव्ये सिद्धेऽपि चार्षके
मानुषे तु— (पारमेश्वरे)

२. आस्तां ते गुणराशिवत् गणपरीवादात्मनां जन्मनां
सख्याभौमनिकेतनेष्वपि कुटीकुंजेषु रंगेश्वर
अर्च्यः सर्वसहिष्णुः अर्चकपराधीनाखिलात्मस्थितिः
प्राणीषु हृदयालुभिः तव ततः शीलात् जडीभूयते ।।
(श्री पराशर भट्ट)

कि एक बार एक साधु गिरधर लाल की सुन्दर मूर्ति को साथ लेकर मीरां के यहाँ आये। मीरा इस सुन्दर मूर्ति को पाने के लिये हठ करने लगी और उसे पाने तक अपना खाना पीना सब छोड दिया। साधु ने उस सुन्दर मूर्ति को देने से इन्कार कर दिया। परन्तु स्वप्न मे भगवान का आदेश पाकर उसे मीरा को सौप दिया। मूर्ति को पाकर बालिका मीरां अत्यन्त प्रसन्न हुई और सदा उसे अपने पास रखने लगी। जब एक दिन पड़ोस के यहाँ विवाह को देखते रहते समय बालिका मीरा ने कौतूहल से पूछा कि मेरा वर कौन है तो माता जी ने उस मूर्ति की ओर सकेत करते हुए कहा "गिरधर" ही तुम्हारा वर है।" मीरां को शैशवास्था से ही गिरधरलाल पर लगन लग गई। विवाह के अनन्तर मीरा गिरधरलाल की मूर्ति को अपने साथ लेती आई और उसका विधिवत् पूजन एवं अर्चन करती रही। "कहा जाता है कि राज महल के जिस भाग मे उस समय श्री गिरधरलाल की पूजा किया करती थी वह कदाचित् चतुर्भुज भगवान के मदिर में सम्मिलित है और मीरांबाई की भोजनशाला के नाम से भग्नावशिष्ट दशा मे आज भी वर्तमान है।"[1] मेड़ते की दशा बुरी होने पर मीरां ने मेड़ता को त्यागकर तीर्थयात्रा करने के लिये पर्यटन करते हुए वृन्दावन आ पहुँची। कुछ दिन वृन्दावन मे बाँके बिहारी के मदिर में भजन पूजा करती रही। वहाँ से द्वारिकाधाम चली और श्री रणछोड़जी की भक्ति मे तल्लीन हो गई। अपने अतिम समय मे रणछोडजी की मूर्ति के सम्मुख नाचते नाचते भगवान की मूर्ति मे समा गई।

मीरां हरि मंदिर मे सदा लोक-लाज को त्यागकर नाचती गाती रहती थी।

माई म्हां गोविन्द गुण गास्यां
चरणाम्रित रो नेम सकारे, नित उठ दरसण जास्यो।
हरि मंदिर मां निरत करावां घूघरया घमकास्यां।
श्याम नाम रा झाझ चलास्यां भौ सागर तर जास्यां॥[2]

हरि मदिर जाकर भगवान की पूजा किये बिना समय को व्यर्थ गंवानेवालों की ओर मीरा कहती है—राम नाम लेने में मूर्ख लोगो को लज्जा होती है। हरि मदिर जाते हुए उनके पैर दुखते हैं परन्तु व्यर्थ गाँव भर घूमते रहेगे। घर के काम काज छोड़कर दूसरों के झगड़े में आनन्द लेते हैं। गणिका व भांड के नृत्य को देखने के लिये चारों पहर बैठे रहते है।[3]

---

१. **मीरांबाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २५**
२. **मीरांबाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ १११-३१**
३. **मीरांबाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी पद १५७**

मीरां अपने आराध्य देव की वन्दना व पूजा अपने पास की सुन्दर गिरधर-लाल मूर्ति को, वृन्दावन की बाके विहारी को तथा द्वारिकाधाम के रणछोड़जी की अर्चा रूप मे करती थी ।

गिरधरलाल मूर्ति :

सर्वत्र अपने पदो मे मीरा गिरधर गोपाल की ही स्तुति करती है। इसी मूर्ति के माध्यम से ही मोहन के साथ मानसिक अनुभव प्राप्त कर आनंदित हो कर नाचती गाती है ।

> निपट बंकट छब अटके ।
> म्हारे णेण निपट बंकट छब अटके ।
> देख्यां रूप मदन मोहन री, पियत पियूख न मटके।
> वारिज भवां अलक मंतवारी णेण रूप रस अटके।
> टेढ्यां कट टेढ़े करि मुरलि टेढ़्यां पाग लर लटके।
> मीरां प्रभु, रे रूप लुभाणी, गिरधर नागर नटके ।[1]

बांके बिहारी जी :

वृन्दावन के दिव्य मदिर मे सुशोभित मूर्ति पर गद्गद् हो कर वन्दना करती है—

> म्हारे प्रणाम बॉके बिहारी जी,
> मोर मुगट माथ्यां तिलक बिराज्यां, कुंडल अलकांकारी जी
> अधर मधुर धर बंशी बजावां रीझ रिझावां ब्रजनारी जी,
> या छब देख्यां मोहियां मीरां, मोहन गिरवरधारी जी॥[2]

रणछोड़जी :

द्वारकावासी श्री कृष्ण ने मीरा का मन हर लिया। इसी रणछोड़जी के आगे ही नाच-नाच कर उस प्रतिमा में विलीन हो गई थीं ।

> म्हारो मण हर लीण्या रणछोड़ ।
> मोर मुगट सिर छत्र बिराजां कुंडल री छब ओर ।
> चरण पखार्‌यां रतणाकरी धारा गोमत जोर।

---

१. मीराबाई की पदावली, पद १०
२. मीरांबाई की पदावली, पद २

धजा पताका तट तट राजां झांलर री झकझोर।
भगत जणारो काज संवारया, म्हारा प्रभु रणछोर।।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, कर गह्यो नन्दकिशोर ।।[1]

आण्डाळ के जीवन मे भी मीराबाई के जीवन की झांकी के दर्शन करते है। बचपन से ही आण्डाळ ने स्वयं पहन कर उच्छिष्ट माला को पहनाकर भगवान को प्रसन्न किया था। इसी कारण से 'धृत मुक्त माला नायिका'' के नाम से प्रख्यात हुई। श्री पराशर भट्ट गोदा देवी की वन्दना करते हुए गाते है —

स्वोच्छिष्टायां स्त्रजि निगलित या बलात्कृत्य भुङ्क्ते।
गोदा तस्यै नम इदमिद भूय एवास्तु भूयः।

आण्डाळ मीरा की भांति अपने प्रियतम, श्रीरग क्षेत्र मे सुशोभित शेषशायी भगवान श्री रगनाथ का उल्लेख सभी पदो मे करती है। उसका प्रियतम श्री रगनाथ दिव्यामृत सदृश परम भोग्य है। वे अपने सुन्दर केशो से अलकृत है। अपने दिव्य अधर से सुन्दर है। उनके मनोहर नेत्र अधिक सुन्दर है। दिव्य नाभि मे उत्पन्न कमल पुष्प से वे हमारे चित्ताकर्षक है।[2] आण्डाळ श्री रग की महिमा का वर्णन करते हुए कहती हैं—सबको अवश्य श्री रग क्षेत्र के भगवान के दर्शन करना चाहिए, क्योकि शिशपाल का गर्वभंग करके रुक्मिणी देवी का पाणिग्रहण करनेवाले स्त्रीजन वल्लभ भगवान के निवासस्थान के दिव्य क्षेत्र का नाम श्री रग क्षेत्र है।[3]

आण्डाळ के पदो मे श्री रग क्षेत्र के श्री रगनाथ,[4] तिरुप्पति के वेंकटाद्रीश्वर, तिरुमातिरुमसोलै के सुन्दर राज भगवान,[5] कुभकोणम् के घटनर्तन प्रभु[6] गोपाल-

---

१. मीरांबाई की पदावली, पद २०२।
२. नाच्चियार तिरुमोलि पद ११-२
३. नाच्चियार तिरुमोलि पद ११-९
४. श्री रंग क्षेत्र मद्रास राज्य के त्रिचिरापल्ली जिले में कावेरी नदी के किनारे पर स्थित है। श्री रंगनाथ का मंदिर दक्षिण भारत के बहुत बड़े मंदिरों में से एक है।
५. यह पहाड़ दक्षिण के मदुरे से १० मील की दूरी पर है। इस पहाड़ पर स्थित मंदिर को अलगियर कोयिल अर्थात् "सुन्दर राज" का मंदिर कहा जाता है।
६ मद्रास राज्य के कुभकोणम् तो मदिरों की पवित्र भूमि है। यहां के प्रसिद्ध वैष्णव मंदिर के भगवान को आरावमुदाल्वान् अर्थात् अपर्याप्तामृत कहलानेवाले गोपालकृष्ण हैं।

कृष्ण, श्री विल्लिपुत्तूर के वटपत्रशायी भगवान्, द्वारिकाधाम के द्वारकाधीश भगवान्, मथुरा के गिरधरलाल, वृन्दावन के बाँके बिहारी जी के सौशील्य सौलभ्य गुणों का वर्णन मिलता है। इसका सक्षिप्त विवरण नीचे यहाँ दिया जाता है––

श्री रंगनाथ :

सदा शेष शयन मे लेटनेवाले श्री रगनाथ भगवान की शोभा को स्मरण दिलानेवाले मयूर गण। पद नच्चियार तिरुमोलि १०-६। तिरुमालिरुम सोलै के भगवान श्री रगक्षेत्र मे शयन करते है। ना० ति० ४-१।
विषाग्नि का वमन करनेवाले शेष शयन मे शयन करने वाले श्री रगनाथ भगवान (ना० ति० ११-१)
दिव्यामृत सदृश श्री रगनाथ भगवान परम भोग्य है
परमपद के निवासी, न्याय दड से सुशोभित श्री रगनाथ भगवान (११-३)
महलों से घिरे तथा ऊँचे दीवारों से सुशोभित श्री रग क्षेत्र मे सुशोभित देवाधिदेव भगवान श्री रगनाथ (११-४)
शस्य भूमियो मे बहनेवाली पवित्र कावेरी से घिरे श्री रग मे सुशोभित वेद स्वरूपी श्री रगनाथ भगवान ही सब पदार्थों के अन्तर्यामी है। (११-६)
सुदृढ प्राकार से घिरे श्री रग दिव्य क्षेत्र मे सुशोभित श्रियःपति भगवान। (११-७)
भू देवी के उद्धार निमित्त वाराह अवतार लेनेवाले तेजोमय देवाधिदेव श्री रगनाथ भगवान (११-८)
आर्जव गुण निधि श्री रगनाथ भगवान (११-१०)

वेंकटाद्रिनाथ :

सुतीक्ष्ण एव ज्वालामाली सुदर्शन चक्र से सुशोभित श्री वेंकटाद्रिनाथ (१-१)
चतुर वेकटाद्रि नामक दीप वेकटाचल मे नित्य निवास करनेवाले भगवान् (४-२)

हे कोयल, श्री वेंकटाचल मे विराजनेवाले भगवान को इधर बुलाओ (५-२)
पवित्र नदियो के बहनेवाले श्री वेंकटाद्रि मे निवास करने वाले मेरे प्रियतम भगवान (८-१)
श्याम सुन्दर वेंकटाद्रिनाथ । (८-२)
सुशीतल निर्झरो से सुशोभित श्री वेंकटाद्रि के नाथ मेरे प्रियतम गोविन्द (८-३)
श्री महालक्ष्मी जी का नित्य निवासस्थान श्रेष्ठ वक्षवाले श्री वेंकटाद्रि-नाथ भगवान (८-४)
हे कोयल, श्रेष्ठ श्री वेंकटाद्रि मे विराजमान भगवान यदि आकर दर्शन देगे तो इधर आकर बुलाओ ।(१०-५)
सुन्दर मूर्त्ति श्री वेंकटाद्रिनाथ भगवान (१०-८)

वटपत्र शायी भगवान :

काले रगवाले ढिड्डि पक्षी के समूह प्रात काल वट पत्र शायी भगवान के नामोच्चारण कर रहे है। (६-२)
अत्यन्त कोमल वट पत्र पर शयन करनेवाले परमपुरुष के प्रेम पाश मे बधी हूँ ।
श्री विल्लिपुत्तुर दिव्य क्षेत्र मे सुशोभित भगवान के स्वर्ण सदृश मनोहर श्री चरणो के दर्शन मे मेरे नेत्र नीद से वचित है ।(५-५)

तिरुमालिरुम सोलै का सुन्दर राज भगवान :

अनेक भक्तो से सेवित, अति उदार तिरुमालिरुम सोलै के साजन (४-१)
अति मधुर अमृत रस निकालकर देवो की रक्षा करनेवाले सुन्दर-बाहु भगवान (६-१)
मत्त गजो से घिरे तिरुमालिरुम सोलै मे विकसित यूथिका पुष्प सुन्दर-बाहु भगवान के मद हास की याद दिला रहे है ।(३,४,५)
श्री महालक्ष्मी का क्रीडास्थल दिव्य भुज से सुशोभित तिरुमालिरुम सोलै के नाथ श्री सुन्दर-बाहु भगवान (६-३)
सुगधित उद्यानो से घिरे तिरुमालिरुम सोलै मे विराजमान प्रियतम भगवान् एव क्षण क्षण बढने वाले सुन्दर-बाहु भगवान (६-६)

तिरुमालिरुम सोलै मे विराजमान हमारे प्रियतम सुन्दर-वाहु भगवान (९-७)
काले रगवाले पक्षी मालिरुम सोलै भगवान को इधर आने के लिये वुला रहे है ।(८-८)
नूपुर गगा मे अलकृत तिरुमालिरुम सोलै मे विराजमान सुन्दर-वाहु भगवान (८-९)

मीरा की भाँति आण्डाळ अपने प्रियतम को भोग समर्पित करती है । कहा जाता है कि रामानुजस्वामी ने आण्डाळ की मनोभिलापा पूरी की । एक वार नच्चियार तिरुमोलि पर स्वामी जी प्रवचन कर रहे थे । भोग प्रसग पर आते ही रुककर कहने लगे कि आण्डाळ वाचिक सेवा मात्र से तृप्त हुई है । वास्तव मे भगवान को भोग समर्पण करना ही चाहती थी । हम सव उनकी मनोभिलापा को पूरी करे । यह कहते हुए शीघ्र प्रवचन को समाप्त कर, सब शिष्यो के साथ तिरुमालिरुम सोलै पधार कर सुन्दरवाहु भगवान को एक सौ घड़ा मक्खन का एव एक सो घडा क्षीरान्न का अर्पण कर दिया । वहाँ से लौटकर श्री विल्लिपुलुर पधार कर आण्डाळ के दर्शन किये। तब से वे गोदाग्रज के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

तिरुक्कण्णपुरम् के वामन भगवान

तिरुक्कण्णपुरम् नामक दिव्य नगर मे सानन्द नित्य विराजमान वामन भगवान् (४-२)

कुंभकोण के घटनर्तन भगवान :

घट नर्तन करने मे समर्थ भगवान वासुदेव (१०-२)
गोप जाति के दड से गाय चलाने वाले घटनर्तन प्रवीण श्री कुभकोण क्षेत्र के स्वामी (१३-२)
अपर्याप्तामृत कहलानेवाले गोपालकृष्ण के अमृत रस लाकर मुझे पिलाने पर मेरा सताप दूर होगा ।(१३-४)

द्वारकाधीश :

वचपन से ही श्री कृष्ण प्रेम मे उगे हुए ये विशाल स्तन द्वारकाधीश भगवान के लिये ही उपयोग हो —(३-४)
द्वारकापुरी के नाथ (४-८)

काले रंगवाले पक्षी द्वारकाधीश के नाम का उच्चारण कर रही हैं। (९-८)
ऊँचे महलो मे सुशोभित द्वारका क्षेत्र मे पहुँचा दो (११-९)

मथुरापुरी के श्री कृष्ण :

मथुरापुरी के उज्ज्वल स्वामी श्री कृष्ण (४-३)
मुझे मथुरा नगरी पहुँचा दीजिये (१२-१)

व्रजभूमि के बांके बिहारी जी :

मुझे व्रज भूमि मे ले जाकर छोड़ दीजिये ।(९२-२)
श्री कृष्ण भगवान के कटाक्ष का लक्ष्य स्थान भक्त-विलोचन नामक दिव्य क्षेत्र मे मुझको ले जाकर छोड दीजिये। (१२-६)
मुझ को प्रलबासुर सहार, बल्देवजी के नाथ के पाड्यवट नामक दिव्य देश मे पहुँचा दीजिये–(१२-७)
गो गणो की रक्षा हेतु छत्र रूप मे धारण किये गये गोवर्धन पर्वत पर मुझे छोड दो। (११-८)
व्रज भूमि को अपने वश मे किये हुए तथा वृषभ सदृश श्याम सुन्दर (१३-४)
वृन्दावन के दिव्य धाम मे गोपाल कृष्ण को विविध रूपो मे दर्शन करना (१४-१ मे १० तक)

इस प्रकार मीरा और आण्डाळ के पदो मे सर्वत्र भगवान के पर, व्यूह, विभव अन्तर्यामी और अर्चा रूपो का वर्णन पाते है। अत. निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि मीरा और आण्डाल दोनो ने वैष्णव संप्रदाय की भक्ति पद्धति का पूर्ण रूपेण अनुकरण किया है।

४. मीरां और आण्डाळ की वियोगानुभूति

भागवत धर्म की मीमासा करते राजा निमि के प्रश्न का समाधान करते हुए योगेश्वर कवि ने भगवान के नाम सकीर्तन का निर्देश दिया और उन्होंने व्यक्त किया कि भगवान के लीला-वर्णन और नाम सकीर्तन मे अपनी आतरिक शक्ति को पूर्णत. व्यक्त करना चाहिए। भगवान के निरतर नाम सकीर्तन मे भक्त के मन मे अपने आराध्य के प्रति अशेष श्रद्धा और विशेष अनुराग रहता है। उसका अन्तर और बाह्य दिव्य तत्त्वो का सान्निध्य पाकर लौकिक सत्य के प्रति अनासक्त हो जाता है, उसकी भावनाएँ लोकातीत हो जाती है। वह लौकिक जडता से परे परमतत्त्व के दर्शन करने लगता है। ऐसे क्षणो मे प्रेमोन्माद और प्रेम-भावना इतनी अधिक प्रभावशालिनी होती है कि वह भक्त को आत्म-विह्वलता भी प्रदान करती है । वह लौकिक सत्य की दृष्टि से चेतना शून्य हो जाता है और कभी भगवान को पाया हुआ समझ कर आनन्दित हो उठता है और आनन्दातिरेक मे नृत्य करने लगता है और कभी उस चेतन सत्य के अभाव मे दु:खी हो उठता है, उसका हृदय दु.खात्मक अनुभूतियो से भर उठता है और उसके नेत्र अश्रुपूरित हो जाते है और वह रोने लगता है । वास्तव मे नृत्य और रुदन, सुख और दुख की अवस्थाएँ है । वह कभी कभी उन्मादावस्था मे नाचता, गाता, परमतत्त्व को प्राप्त करने के लिए अपने आन्तरिक भावो को अत्यधिक करुण बना लेता है ।[1]

भगवद्भक्ति की चरम स्थिति पर राजा निमि के सदेह का समाधान करते हुए योगेश्वर प्रबुद्ध ने समाधान प्रस्तुत किया कि भगवान का ध्यान करते करते भक्त प्रेमोन्माद मे इतना अधिक डूब जाता है कि वह रुदन करने लगता है और कभी उस परमतत्त्व का सान्निध्य पाकर नृत्य करने लगता है । कभी कभी

---

१. शृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः ।।
श्रीमद्भागवत : ११-२-३९

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।।
हसत्यथो रोदिति रौति गायन्त्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः ।।
श्रीमद्भागवत ११-२-४०

ऐसा भी होता है कि उसकी उन्मादावस्था प्रलाप के रूप में प्रकट होने लगती है। वह कभी लीलाओ के प्रसग सुनकर अतीव आनन्द प्राप्त करता है और कभी भावनाओ की सकुलता और विराटता मे अपने अस्तित्व को ही भूल जाता है, वह अभिव्यक्तिहीन हो उठता है और उसकी अभिव्यक्तिया मौन हो उठती है।[1]

भागवत धर्म के अनुसार भक्त का जो रूप प्रकट होता है उसी रूप मे हमे विरहिणी मीरा भी दिखलाई देती है। विरह कोकिला मीरा अपने आराध्य देव गिरधर गोपाल के वियोग मे आसुओ की मौक्तिक माला पिरोती हुई अपने आन्तरिक भावावेगो, दु खानुभूतियो और अन्तर्द्वन्द्वो को बाधित करने मे असमर्थ होकर प्रेमोन्माद की अवस्था में नृत्य गान करने लगती है।

मीरा और आण्डाळ ने कृष्ण की उपासना करते हुए अपने जिस रूप का परिचय दिया है वह प्रेम के लौकिक एवं अलौकिक स्वरूपो का बोध भी करता है। कृष्ण के विविध रूपो के दर्शन मीरा और आण्डाळ ने किये है और कृष्ण को ही अपने समस्त पार्थिव सत्य, पार्थिव रूप और पार्थिव सौन्दर्य समर्पित कर दिये है। वे समर्पिता है। कृष्ण के विरह मे उनका अस्तित्व प्रेम पूरित हो गया है। यही कारण है कि उनकी अभिव्यक्ति मे प्रेम की तात्त्विक अभि-व्यजना हुई है। मीरा और आण्डाळ के अपार्थिव अन्तरग की अभिव्यक्ति पदो मे हुई है। इस अभिव्यक्ति के माध्यम से मीरा और आण्डाळ दोनों ही लौकिक भावो की अभिव्यक्ति करते हुए भी अन्तर्मुखी हुई सी प्रतीत होती है। इसका मूल कारण यह है कि उन्होने लौकिक प्रेम को अपार्थिवता और अलौकि-कता प्रदान की है। कृष्ण के विरह मे उन्होने जिन विरह भावो का सचयन किया है वे उनके अतरग को आन्दोलित करते रहे। इसी आन्दोलन के कारण मीरा और आण्डाळ की विरहानुभूतियो मे अतरंग और आत्म तत्त्व की सम-न्वित अभिव्यक्ति हुई है। इन भक्त कवयित्रियो के पदो का विश्लेषण करने से ऐसा भी प्रतीत होता है कि उनका लौकिक प्रेम ही अलौकिक एव अपार्थिव

---

१. **स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौहरं हरिम् ॥**
भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्यपुलकाँ तनुम् ॥
श्रीमद् भागवत : ११-३-३२
क्वचिद्रुन्दन्त्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसंति नंदति वदंत्यलोकिकाः ।
नृत्यति गायंत्यनुशीलयंत्यजम् भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥
श्रीमद्भावगत १९-३-३२
(और) भागवत धर्म : हरिभाउ उपाध्याय, पृष्ठ ११

सत्य का परिवेश ओढकर प्रकट हुआ है। मानवीय चेतना, वस्तु सत्य से आत्म-राग का प्रभाव ग्रहण करती है और अतीव श्रद्धा, भक्ति, तन्मयता एवं अनुभवो का प्रभाव ग्रहण करते हुए जब उन प्रभाव-चित्रो को अपने अन्त स्थल मे स्थिर करती है तब गृहीत लौकिक सत्य ही अपार्थिव अन्तरग का रूप ग्रहण कर लेता है और इन्ही भावो की अभिव्यक्ति काव्य मे होने लगती है। मीरा का लौकिक प्रेम वास्तव मे अलौकिक और अपार्थिव ही है और इसी प्रकार आण्डाळ की प्रेमानुभूतियां भी प्रकट हुई है। किन्ही-किन्ही स्थलो मे इन दोनों कवयित्रियो की प्रेमाभिव्यक्ति मे लोकोन्मुखता आ गई है किन्तु यह लोकोन्मुखी प्रेम भी वास्तव मे अलौकिक तथा अपार्थिव प्रेम ही है। मीरा और आण्डाळ ने सूफी कवियो के समान विरह को सत्य नही माना है। उन्होने निरन्तर सयोग पक्ष से ही अनुभूतियो का सचयन किया है और यही संयोग भाव उनके अन्तर मे स्थिर हो गया है। वास्तविकता यह है कि रागात्मक और विरागात्मक स्थितिया अन्तरंग की सुखात्मक और दु खात्मक अनुभूतियो को प्रकट करनेवाली अन्वितियॉ है किन्तु इन्ही अन्वितियो के साथ जब अनुराग, भक्ति और प्रेम तत्त्वो का सम्मिश्रण हो जाता है तब यही प्रेमाभिव्यजना का रूप ले लेती है। प्रेमानुभूतियों के प्रकाशन के समय अन्तरंग, अधिक प्रखर हो उठता है। परिणामत प्रातिभ ज्ञान, सवेदना और अनुभूतियो पर इनका गहरा प्रभाव पड़ता है। मीरा और आण्डाळ के पदो मे जिस प्रेम तत्त्व का विकास दिखाई देता है वह वास्तव मे पार्थिव सत्य से उद्‌भूत है किन्तु अलौकिक प्रतिमानो के कारण इन भक्त कवयित्रियों के लोकोन्मुखी प्रेम मे भी अलौकिकता और परमतत्त्व का समन्वय सा हो गया है। मन, बुद्धि शरीर और आत्मा इस अन्तरंग से प्रभावित हुए है और इन सभी तत्त्वो के समन्वित अभिव्यक्ति अनुरागमय अभिव्यंजना मे हुई है। प्रेमतत्त्व का विकास आनन्द तत्व से हुआ सा प्रतीत होता है और भक्ति भावना भी अनुरक्त रूप मे प्रकट हुई है। श्री ललिताप्रसाद मुकुल ने भक्ति भाव की मीमांसा करते हुए परसवेद्य। (Objective) और स्वसवेद्य (Subjective) की सीमा एव चेतनता का स्पष्ट उल्लेख किया है। उनका मत है कि "रति या अनुरागजन्य प्रेम का लौकिक और पारलौकिक दोनो ही क्षेत्रों में अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये विशुद्ध विमलता घनिष्ठ आत्मीयता और नैसर्गिक सारल्य की अनिवार्य अपेक्षा करता है। यह लौकिक या पारलौकिक क्षेत्र में यदि एक और ममत्व की भावना से उद्‌भूत होकर वात्सल्य की चेतना को जागृत करता है तो दूसरी ओर आकर्षण चेतना से उद्‌भूत होकर माधुर्य या शृंगार की चेतना भी धारण कर सकता है। यह चेतना जब ईश्वरोन्मुखी

होती है तो इसे माधुर्य-भाव की भक्ति अथवा कान्त भक्ति की संज्ञा प्राप्त होती है ।"[१]

उपर्युक्त विवेचन से कान्त भक्ति और माधुर्य भाव का रूप और भी स्पष्ट हो जाता है । वास्तव मे प्रेम अथवा भक्ति की केन्द्रिय आत्मा रति भाव ही है, किन्तु अनुराग, भक्ति और प्रेम तत्त्व के पारस्परिक समन्वय और विकास के कारण मूल रतिभाव, माधुर्य अथवा अलौकिक अनुराग के रूप में प्रकट होने लगता है और प्रेमतत्त्वो की उद्भावना करते हुए जब लौकिक को अलौकिक रूप मे स्वीकार कर प्रेम साधना की जाती है उस समय माधुर्य भाव ही प्रकट होने लगता है । कृष्ण को अलौकिक प्रेम का प्रतीक मानकर मीरा और आण्डाळ ने अप्रत्यक्ष रूप से सख्य भावों की अभिव्यक्ति की है। यही सख्य भाव कान्त भक्ति अथवा मधुरोपासना है । कृष्ण भक्ति काव्य मे राधातत्त्व का विकास ही हुआ है । यह राधातत्त्व ही मधुरोपासना का प्रधान तत्त्व है । श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इसी राधातत्त्व अथवा माधुर्य भाव की विवेचना करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि "मधुर रस के अनुसार भक्त उनको अपने पति या सर्वस्व रूप मे देखता है । इसी कारण उनके साथ उसका सबध अत्यन्त घनिष्ठता का हो जाता है । कहते है कि जो आर्ति वा गूढ प्रेम एक युवती के हृदय मे किसी युवक को देखकर जाग उठता है वह अन्यत्र दुर्लभ है । इसी कारण भक्त लोग श्री भगवान कृष्ण को स्थिर चित्त के साथ पत्नी भाव से ही नित्य भजा करते है। स्त्री पुरुष की ऐसी ही आसक्ति के सबध में शृगार रस का भी प्रादुर्भाव होता है । अतएव मधुररस के भी भाव, विभाव, अनुभावादि, प्राय: उसी प्रकार के होते है जैसे शृंगार रस मे । किन्तु मधुर रस का विषय अलौकिक एव भगवान स्वरूप है । अतएव शृंगार रस के स्थायी भाव रति का संबध यदि स्थूल या लिग शरीर से है तो मधुर रस एक प्रकार से स्वयं आत्मा का ही धर्म है।"[२] श्री चतुर्वेदी जी ने वास्तव मे माधुर्य भाव एव राधातत्त्व की मीमासा ही मधुर रस के माध्यम से की है। जहाँ तक रसाभास और आनन्द की उपलब्धि का प्रश्न है वहा पर यह तो स्वीकार करना पड़ता है कि भाव, विभाव, और अनुभावादि से ही इन्द्रियबोध प्राप्त होता है और इन्ही के माध्यम से रस की

१. मीरां स्मृति ग्रंथ (कृष्ण भक्ति परंपरा और मीरा) ललिताप्रसाद सुकुल, पृष्ठ २०२

२. मीरांबाई की पदावली (भूमिका भाग श्री परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ ४२, सातवां संस्करण

सृष्टि और आनन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु मीरा और आण्डाळ का माधर्य भाव इन्द्रियजन्य नही है वह इन्द्रियातीत है । इन्द्रियो के द्वारा उस माधुर्य भाव की अनुभूति नही की जा सकती और न रति भाव के माध्यम से उसकी अभि-व्यजना ही । इन दोनो ही भक्त कवयित्रियो ने कृष्ण की उपासना करते हुए जिस अलौकिक माधुर्य की ओर सकेत किया है उसे आत्म-रति की सज्ञा दी जा सकती है । आत्म-रति इन्द्रिय बोध मे परे होती है, लौकिक अनुराग से परे होती है और दैहिक रति भाव से परे होती है । यही कारण है कि इस माधुर्य मे लौकिकता का सन्निवेश नही हो पाता और निरन्तर अलौकिक तत्त्वो का विकास होता रहता है । मीरा और आण्डाळ के पदो की विवेचना करते हुए यह तथ्य और भी अधिक प्रकट हो जाता है कि दोनों ही कवयित्रियो के माधुर्य भाव मे सख्य भाव और कान्त-भक्ति की अभिव्यक्ति ही अधिक हुई है। समर्पण की भावना दोनो कवयित्रियो की अभिव्यक्ति भी दोनो के पदो मे समान रूप से हुई है । मीरा के पदो मे यह समर्पण भाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपो मे प्रकट हुआ है । इस प्रसग मे एक पदाश द्रष्टव्य है जिसमे समर्पण भावना अप्रत्यक्ष रूपो मे दिखलाई देती है—

"हेरी मैं तो दरद दिवाणी मोरा दरद न जाणै कोइ ।
घाइल की गति घाइल जाणै को जिण लाइं होइ ।"[1]

वास्तव मे मीरा ने भक्ति भावना मे डूबकर अपने सर्वस्व का समर्पण कर दिया है और इस समर्पण भाव के कारण ही उसके पदो मे अलौकिक तत्त्वों का सुन्दर विकास भी हुआ है। तमिल साहित्य की आळ्वार भक्त कवि-यित्री आण्डाळ भी चक्रधर श्री रगनाथ को अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है । वह रो रो कर अपनी प्रपीडित स्थिति का सजीव वर्णन करती हुई कामदेव से प्रार्थना करती है कि यदि मैं क्षीरशायी भगवान के चरणारविन्दो की निस्वार्थ सेवा करके कृतार्थ नही हो सकूँगी, तो मेरा जीवन अति कष्टकर हो जायगा और आप भी उस पाप के भागी होगे । इस भाव की अभिव्यक्ति आण्डाळ की नाच्चियार तिरुमोलि नामक ग्रथ मे प्रथम दर्शक के नवे पद मे हुई है ।[2] आण्डाळ ने अपनी प्रेमात्मक भावनाओ को पूर्णत अनावृत रूपो मे प्रस्तुत किया

---

१. **मीरां की प्रेम साधना : पद ६१, भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' प्रथम संस्करण**
२ **पल्ु दिरिप्पार्कडल वण्णनुक्के पणिसेय्दु वाल्प्पेराविडिल नान्**
अल्ुदल्ुदलमन्दम्मा वलंक आर्खुमदुवुनक्कुरैक्कुड् कण्डाय् ॥
नाच्चियार तिरुमोलि पद : ९–९

है । मीरा की तरह समर्पण भावना की अभिव्यक्ति आण्डाळ के पदो में भी हुई है किन्तु उसके पदों मे वासना का प्रखर रूप भी दिखलाई देता है । सत्य तो यह है कि अनुराग तत्त्वो की सघनता और घनीभूतता के कारण उनकी आत्म-रति मे अनुरक्ति-भाव अधिक आ गया है किन्तु यह अनुरक्ति भाव भी वास्तव मे माधुर्य भाव ही है और इसी भाव की अभिव्यक्ति आण्डाळ के पदो मे हुई है । मीरा और आण्डाळ के समर्पण भावो की विभिन्नता यह है कि मीरा ने अप्रत्यक्ष गति से इस भाव की अभिव्यक्ति की है और आण्डाळ ने इस भाव की अभिव्यक्ति के लिये प्रत्यक्ष रीति और प्रत्यक्ष प्रतिमानो का आश्रय लिया है। आण्डाळ का आविर्भाव आठवी शताब्दी मे हुआ और मीरा का १५वी शताब्दि मे । किन्तु इन दोनो ही कवयित्रियो की भक्ति साधना में मधुर रस की समरसता समान रूप से हुई है। दोनो ने कृष्ण को पति रूप मे स्वीकार किया है और उसे ही अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है। मीरा अजर, अमर, कृष्ण की उपासिका है जो बार-बार जन्म नही लेता। इस भाव की अभिव्यक्ति मीरा के निम्न लिखित पदाश मे हुई है--

> **"ऐसे वर को क्या वरूं जो जन्मे औ' मर जाय ।**
> **बर बरिये एक सांवरो, री मेरो चुड़लो अमर होय जाय ।।**[1]

उपर्युक्त पदाश मे मीरा ने जिस समरसता और एकाकारता की ओर सकेत किया है, वह वास्तव मे उसका अप्रत्यक्ष समरस भाव ही है । वह स्वय को चिर सुहागिन मानती है और उसका प्रियतम गिरधर नागर ही उसका अमर सुहाग है । इस कल्पना मे माधुर्य भाव की ही अभिव्यक्ति हुई है और मीरा ने कृष्ण को सम्पूर्ण रूप से पति के रूप मे स्वीकार कर अपनी समस्त आत्म-चेतना को समर्पित कर दिया है । आण्डाळ के पदो मे भी इसी प्रकार की प्रेमा-भिव्यक्ति के दर्शन होते है । वह तो लौकिक अनुराग के प्रति किंचित् मात्र भी आस्थावान् नही है । एक स्थल पर उसने अपने प्रेम भावो की अभिव्यक्ति करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि साधारण कोटि के मानव के साथ उसके सबध की चर्चा छेड़ने से वह जीवित रह नही सकती । इस प्रकार की अभि-व्यक्ति मे प्रत्यक्ष समर्पण भाव के दर्शन होते है ।[2] मीरां के अनुराग मे भक्ति भाव का अनुपात अधिक है । यही कारण कि उसकी भक्ति भावना मे श्रद्धा

---

१. **मीरा स्मृति ग्रंथ**

२. **मानिडवरक्कंन्र पेञ्चुप्पडिल वाऴ्किल्लेन कण्डाय मन्मदने ।।**

नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १–५

भाव भी सहज ही समन्वित हो गया है। किन्तु आण्डाळ की प्रेम भक्ति मे आत्मरति एव लोकरति मे भावो का अधिकाधिक समन्वय हुआ है। परिणामत. उनके लौकिक प्रेम मे अनुरागमयता अथवा अनुरजकता अधिक आ गई है।

मीरा आण्डाळ का वियोग पक्ष अत्यधिक सुन्दर तथा स्पष्ट है। उन दोनो का प्रेम अपने आराध्यदेव के उत्कृष्ट सौन्दर्य का अनुभव करते हुए प्रकट हुआ है और अनेक स्थलो मे विरहानुभूतियो के साथ सौन्दर्य भावनाओ के विविध रूप भी देखने को मिल जाते है। इन कवयित्रियो ने प्रेमासक्ति और प्रेमानुभव के द्वारा अपने रति भावो की अलौकिकता की अभिव्यक्ति की है। श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र "माधव" ने प्रेमासक्ति की मीमासा करते हुए अपना अभिमत व्यक्त किया है कि "प्रेमासक्ति के बढते बढते मन मे अभिलाषाये भी नये-नये रूप मे उत्पन्न होती है। दोनो मे ही यही रूप राग पूर्वराग मे परिणत हो जाता है। प्रेमानुभव की यह पहली सीढी है।[1] यही स्थिति घनीभूत होकर विरहानुभवो के रूप मे प्रकट होने लगती है। मीरा और आण्डाळ ने विरहानुभूतियो का प्रकाशन करते हुए ही अपनी आन्तरिक वेदना का प्रकटीकरण किया है। प्रेम भक्त कवियो की परपरा यही है। भक्तो के लिये श्री कृष्ण की वृन्दावन, निकुज आदि की लीलाएँ नित्य है और भक्त इन लीलाओ में निमज्जित होकर परमानन्द को प्राप्त करता है। मीरां और आण्डाळ के पदों मे जिन लीलाओ का वर्णन किया गया है वे केवल उनके अन्तर मे निहित भक्ति भाव का प्रकाशन नही करते अपितु अलौकिक आत्मरति की ओर भी सकेत करते है। अतएव उनका प्रेम एव भक्ति भाव अन्य भक्तो से पूर्णतः भिन्न-सा प्रतीत होता है। कृष्ण भक्त कवियो ने कृष्ण की रूप माधुरी की ओर आकृष्ट होकर भक्ति भाव से उपासना की। मीरा और आण्डाळ के कृष्ण अत्यन्त सुन्दर और मधुर रस से ओतप्रोत है। दोनो अपने-अपने आराध्यदेव के रूप माधुरी एवं अग लावण्य मे तन्मय होकर सुन्दर वदन, कमल दल लोचन तथा बाकी चितवन आदि संबोधनो के माध्यम से अपने अन्तर मे मधुर रस की सृष्टि करते है। विरह उनके लिये सत्य नही है, संयोग उनके लिये सत्य है। कृष्ण का विराटत्व कण-कण में व्याप्त है। कृष्ण के विराटत्व से मीरा और आण्डाळ की सपूर्ण अन्तर एव बहिःचेतना अभिभूत है। वे सयोग का ही आदि-अनुभव करती है किन्तु अन्य भक्तों के समान कभी-कभी वे वियोग की दशा मे भी दिखलाई देती है। वियोग की स्थिति मे प्रकृति का प्रत्येक उपकरण उनका सदेशा,

१. मीरां की प्रेम साधना : भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव" प्रथम संस्करण पृष्ठ ४३

उनके आराध्यदेव तक पहुँचाता है। मीरा और आण्डाळ ने वियोगाभिव्यंजना के क्षणों मे प्रकृति चेतन का आश्रय लिया है और प्रकृति चेतन का प्रत्येक उपकरण उनके प्रेम सदेश का प्रसारण करता है। मीरा ने कागा के द्वारा अपने प्रियतम को सदेशा भेजते हुए निवेदन किया है—

"प्रीतम कूँ पतियां लिखूँ, कौआ तू लै जाइ।
जाइ प्रीतमजू सूँ यूँ कहै, रे थांरी बिरहणि धान न खाइ॥[1]

मीरा अपने प्रियतम के पास सदेशा भेजने के लिये लेखनी हाथ में लेकर सदेश-पत्र लिखने बैठी है तो हाथ कॉपने लगते है। प्रियतम का स्मरण आते ही वह अपने अन्तर आवेग और अश्रुप्रवाह को रोकने मे असमर्थ हो जाती है। वह अपने अन्तर मर्म को भी प्रकट नही कर पाती। किन्तु इसकी वेदना पूरी तरह प्रकट हो जाती है। अतएव वह सदेशवाहक कागा से केवल इतना ही कहकर सतुष्ट हो जाती है कि तुम मेरी शारीरिक व्यथा देख रही हो। प्रियतम से जाकर मेरी शारीरिक असमर्थता, भावावेशों की घनीभूतता और वियोग की दुःखानुभूति का मूर्तरूप प्रस्तुत कर देना। इस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पदों मे हुई है—

"पतियां मैं कैसे लिखूं, लिख्योरी न जाय।
कलम धरत मेरो कर कंपत है नैन रहैं झड़ जाय।
बात कहूं तो कहत न आवे, जीव रह्यो डराय।
वियत हमारी देख तुम चाले, कहिया हरिजू सं जाय॥[2]

भावावेगो के कारण ही मीरा पत्र लिख नही पा रही है और सदेशवाहक के सम्मुख अपनी शारीरिक असमर्थता और अपनी मानसिक व्यथा प्रकट करती है। वास्तव में पत्र लिखना और कागा को सदेशवाहक बनाने का विधान उसकी आन्तरिक वेदना को ही स्पष्ट करता है। पत्र लिखने मे असमर्थ होने पर शारीरिक तथा मानसिक व्यथा प्रकट करते हुए मीरां कहती है—

"हे भुवनपति, मेरे शरीर पर विरह व्यथा का इतना तीव्र प्रभाव पड़ा है कि मेरा सपूर्ण जीवन ही नष्ट हो चुका है। तुम्हारे दर्शन के अभाव मे यामिनी रोते-रोते व्यतीत होती है और पलकों से नीद उड़ जाती है। तुम्हारे विरह मे मैं इतनी आकुल हो उठती हूँ कि दर्शन के अभाव मे जी नही सकती और यह

---

१. मीरां की प्रेम साधना : भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव" प्रथम संस्करण पद : ४४
२. मीरांबाई की पदावली : पद ७६, श्री परशुराम चतुर्वेदी

पापी जीव दर्शन के बिना मरने भी नही देता।' इस भाव की अभिव्यक्ति निम्न-लिखित पदाश मे हुई है—

"रोवत रोवत डोलतो सब रैण बिहावो जी।
भूख गयां निदरा गयां पापी जीव णा जावां जी ॥[1]

स्पष्ट है कि मीरा वियोग की अतिशयता के कारण सज्ञाहीन सी हो चुकी है। मीरा ने कृष्ण के समक्ष अपने आत्म त्याग का विवरण भी प्रस्तुत किया है। उसने कृष्ण के वियोग मे घर-बार का त्याग कर दिया है। इस आत्म त्याग का प्रतिदान उसे कुछ नही मिला। वह कृष्ण को उपालभ सुनाती हुई पूछती है, हे प्रियतम मुझे क्यो सताते हो। तुम्हारे कारण ही मैने सब कुछ त्याग दिया है। तुम्हारे लिये ही मैने सपूर्ण लौकिक आकर्षणों को विस्मृत कर दिया है और तुम्हारे कारण ही वियोगिनी हो गई हूँ। मेरे विरह की व्यथा तुम्हारे दर्शनो के अभाव मे कम नही हो सकती। मै तो तुम्हारे जनम-जनम की दासी हूँ। तुम मेरा त्याग भी कैसे कर सकते हो। इस प्रकार की भावाभि-व्यजनाओ से मीरा की अन्तर्व्यथा का ही प्रकटीकरण हुआ है। विरहाकुल मीरा कह उठती है—

"थारे कारण कुल जग छाड्यां, अब ये क्यां बिसरायां।
विरह व्यथा त्याया उर अन्तर, ये आस्यां णा बुझावाँ ॥[2]

स्पष्ट है कि मीरा कृष्ण के विराटत्व को अपने हृदय मे समा लेना चाहती है और उसकी प्रेमात्मक परिधि मे एकाकार हो जाना चाहती है। वह प्रियतम को शीघ्रता से आने के लिये बुलाती है। प्रियतम के अभाव में वह पल भी रह नहीं सकती। मीरा के जीवन का सत्य तो यह है कि वह स्वय को कृष्ण से विलग नही मानती। वास्तव मे कृष्ण का विराटत्व मीरां के प्रत्येक खड मे समाहित हो गया है और मीरा की लौकिकता भी कृष्ण के विराटता में समरस हो गई है। इस समरसता के कारण कृष्ण का लौकिक एव अलौकिक रूप मीरा के आन्तरिक एवं बाह्य स्वरूपो से किसी प्रकार से बिलग नही है। यही कारण है कि मीरा सदैव सयोग की अवस्था में रहती है किन्तु जब वह उस विराटत्व को स्थूल रूप मे देखना चाहती है तो वियोग की अनुभूति होने लगती है और इसी अनुभूति के कारण उसकी अभिव्यजना मे वियोग तत्त्वो एवं विरहानुभूतियो की तीव्रता दिखलाई देती है। इसी प्रकार मीरां ने एकाकार के रूप मे अपने

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद ९६, श्री परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई की पदावली : पद १०४, श्री परशुराम चतुर्वेदी

भावों की अभिव्यक्ति की है । "तुम बिच हम बिच अन्तर नाही जैसे सूरज घामा"[1] के माध्यम से मीरां ने स्वयं को एकाकार करते हुए अपनी अन्तर्मुखी भावनाओ की अभिव्यंजना की है । यद्यपि मीरा अपने सदेश पत्र मे अपनी मानसिक व्यथा को प्रकट नही कर पाती तथापि किसी-न-किसी प्रकार प्रेम सदेश प्रसारित कर ही देती है किन्तु गिरधर नागर का प्रत्युत्तर न पाकर उसकी विरहाकुलता और भी अधिक बढ जाती है । वह रोती हुई कह उठती है कि हे प्रियतम तुम तो विदेश मे जाकर शान्ति-चित्त हो गये । किन्तु यहाँ मै अपना धैर्य संतुलित नही कर पा रही हूँ। तुम्हारे मिलन के लिये मेरा मन अधिक उतावला हो रहा है । मैं उन्मादिनी हो गई हूँ। मैंने कितने संदेश तुम्हारे पास भेजे किन्तु तुमने मेरे प्रेम संदेश का प्रत्युत्तर ही नही दिया। ऐसे तरल भावो की अभिव्यक्ति मीरा के निम्नलिखित पद मे हुई है—

"आप तो जायं विदेशां छाये, जिवड़ो धरत न धीर ।
लिख लिख पतियां संदेशा भेजूँ कब घर आँवे म्हारां पीव ॥[2]

मीरा ने प्रकृति के उपकरणों में भी अपने प्रियतम के विविध स्वरूपो के दर्शन किये है । वह विशाल गगन ये नीलांजली मेघावलियों के समूहों को देख कर आनन्द विभोर हो जाती है और उन्हें ही सदेशवाहिका मानकर प्रियतम का सदेशा पाने के लिये दौड़ पडती है किन्तु प्रकृति तो प्रकृति ही है । वह भी मीरां की विरहाकुलता को संतुलित नहीं कर पाती। उसे न तो भावात्मक सांत्वना ही प्रदान करती है, और न उसके भावावेगों को शान्ति कर पाती है। प्रियतम का संदेशा न पाकर वह निराश हो उठती है और उसका अन्तर्मन विरहानुभूतियों की अभिव्यक्ति करता हुआ रुदन कर उठता है—

मतवा ो बादर आये रे,
हरि को सनेसा कबहुं न लाए रे ।[3]

मीरां ने प्रकृति की चेतनता के दर्शन किये है । वह प्रकृति सत्य में अपने अन्तर व्यक्तित्व को समरस कर देना चाहती है और सयोगानुभूतियो का परिवेश धारण कर विरहानुभूतियों के साथ तरंग-रति करती हुई आन्दोलित होना चाहती है । उसका यही आन्दोलन एकाकारता का प्रथम और अन्तिम सोपान है । इसी प्रकार दक्षिण भारत की भक्त साधिका आण्डाळ ने भी प्रकृति

---

१. **मीरांबाई की पदावची : पद ११४, श्री परशुराम चतुर्वेदी**
२. **मीरांबाई की पदावली : पद १२२ श्री परशुराम चतुर्वेदी**
३. **मीरां की प्रेम साधना : पद १२६ श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव"**

के उपकरणो में ही अपने प्रियतम का स्वरूप एकाकार होते देखा है। वह भी आकाश मे उमड़ते हुए श्यामल बादलों को देख कर अपने प्रियतम घनश्याम की स्मृ ि मे व्याकुल हो उठती है। तैरती हुई मेघावलियो को देखकर उसे अपने प्रियतम को प्रेम पूरित शब्दावलियो का स्मरण हो जाता है। वह इन बादलो से पूछती है—

> **"क्या मेरे आराध्यदेव आ रहे हैं"**[1]

प्रत्युत्तर न पाकर विरहिणी मेघो को ही दूत बनाकर अपना विरह संदेश प्रसारित करती हुई कह उठती है—

> "हे बादलो, प्रियतम से कहो कि मुझे इस प्रकार पीड़ित कर नारीत्व के अस्तित्व को विनष्ट करने मे उनकी महिमा क्या रहेगी।"[2]

इस प्रकार की अभिव्यक्ति में आण्डाळ की तीव्र विरह व्यथा के दर्शन होते है। उसने भी रगनाथ की उपासना करते हुए अपना संबध ही अर्पित कर दिया है और अपने नारीत्व को श्यामल रंगनाथ के अलौकिक अस्तित्व में एकाकार करने की तीव्र अभिलाषा आण्डाळ में दिखलाई देती है। इस समर्पण भाव को ही वैष्णव दर्शन में उपादान और इज्या के नाम से अभिहित किया गया है। आण्डाळ वैष्णवी साधिका है और उसके 'उपादान' एव 'इज्या' रूपो मे अपने सर्वस्व को सर्मपित कर अपने अलौकिक समर्पण भावों की अभिव्यक्ति की है। वह बादलों को देखकर अपनी विरह व्यथा की अभिव्यक्ति करते हुए कहती है—

> "वेकटाद्रिनाथ का सदेश न मिलने के कारण, कामदेव की कामाग्नि शरीर के भीतर प्रवेश कर मुझे अग्नि दग्ध कर रही है। इस दयनीय स्थिति के कारण मैं नीद से भी वचित हो गई हूँ। मन मेरे वश में नही है। मेरे शरीर की दीप्ति और रंगिमा पूर्णतः परिवर्तित हो गई है। मै इतनी क्षीण काय हो चुकी हूँ कि मेरी कलाइयो मे चूड़ियाँ भी ठहर नही पाती हैं। हे मेघो, मैं किस प्रकार वेकटाद्रि-नाथ की अलौकिकता का गुणगान और अपार्थिवता का अनुगायन करती हुई जीवित रह सकूँगी।"[3]

---

१. **नाच्चियार तिरुमोलि् : पद ८–६५।४।**

२. **कण्णीर्कळ् मुलैक्कुवट्टिल तुळिसोरच् सोरवोनै।**
पेण्णीरमैयीडलि्क्कुमिडु तमक्कोर पेरुमेये ॥ नाच्चियार तिरुमोलि् ८:–१

३. **ओळिवण्णम् वळैसिन्दे उर्क्कोतोडिवेयेल्लाम् ।**
ऍलि्मैयालिटेन्नै ईडलियप्पोयिनर्वाल् ॥ नाच्चियार तिरुमोलि् पद : ८–३

इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति मे आण्डाळ के अन्तर जीवन के तरल बिम्ब अभिव्यक्त हो कर प्रतिबिबित होने लगते है। उसकी विरहानुभूतियों में लौकिकता भी समरस हो गई है उपादान और इज्या आदि रूपो मे उसकी पार्थिवता रगनाथ को ही समर्पित हो कर एकाकार हो गई है। आण्डाळ ने प्रियतम से अभिन्नता दर्शाते हुए अपने भावो की अभिव्यक्ति करते हुए व्यक्त किया है—

> "जिस प्रकार तुम अपने शरीर में ही विद्युत धारण किये हो उसी प्रकार मैं भी अपने प्रियतम से अभिन्न हूँ। कृपा कर उनसे कहें कि मेरे ये बाल स्तन केवल वेकटाद्रिनाथ से गाढ़ालिगन करने के लिये तड़प रहे है।"[1]

आण्डाळ की इस प्रकार की अभिधात्मक अभिव्यक्ति मे उसकी पार्थिवता के अत्यन्त आवेगात्मक स्वरूपो को देखा जा सकता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति का मर्म यह है कि इस भक्त साधिका ने अपने लौकिक स्वरूपों को आध्यात्मिक तत्त्वों मे एकाकार करते हुए कृष्ण को ही अपने समस्त भौतिकता सार्पित कर दी है। मीरा के पदो मे इस प्रकार के समर्पण का अभाव-सा प्रतीत होता है किन्तु आण्डाळ का कोई भी अस्तित्व खड आवृत नही रह सका। प्रत्येक अंग, प्रत्येक स्वरूप और प्रत्येक स्थिति अनावृत होकर श्यामल कृष्ण के स्वरूप में एकाकार होने के लिये समर्पित हो गई है। वह भी उन्मादिनी है और अपनी विरहाकुलता की तीव्रता के कारण वेकटाद्रिनाथ पर दोषारोपण करते हुए कह उठती है कि उनके कारण ही मेरे हाथो मे चूड़ियाँ ठहर नही पाती। वह मेघों से निवेदन करती है कि वे भगवान रगनाथ से कहे कि उसके हाथो को चूड़ियाँ धारण करने योग्य तो बना दे।[2] आण्डाळ यह भली प्रकार जानती है कि प्रियतम का साहचर्य पाकर वह स्वस्थ हो सकती है, उसका अन्तर और बाह्य, सयोग की अनुभूति कर सकता है और वह पूर्ववत् स्वस्थ हो सकती है। इस प्रकार की तरल भावाभिव्यक्ति में विरहिणी आण्डाळ के मार्मिक दुखों का ही आभास होता है। वह अपनी मानसिक वेदना को ही प्रियतम के समक्ष रखने के लिये प्रियतम से निवेदन कर उठती है—

> "कपित्थ फल को जैसे कीट अन्दर-ही-अन्तर खाकर नि.सार कर

---

१. ऍन्नाहुकतिलङ् कोंगै विरुम्बित् ताम् नाडोरुम्।
पुन्नाहम्पुल्हुदर्कु ऍन् पुरिवुडैमै सेप्पुमिने॥
नाच्चियार तिरुमोऴि पद :८–३॥

२. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ८–५

देता है वैसे ही नारायण मेरे शरीर मे प्रवेश कर मुझे निर्जीव कर रहे है।"[1]

इस समर्पण भाव के साथ वह अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई मेघो को सबोधित करती हुई कहती हे—

"हे मेघो मेरे प्रियतम वेकटाद्रिनाथ से मेरी यह विनीत प्रार्थना कह दो कि यदि प्रियतम आकर उसके स्तनो पर अलकृत कुकुम चिन्ह के सौन्दर्य को अपने प्रगाढ आलिगन से नही अविचित्रित करेगे तो वह जीवित नही रह सकेगी।"[2]

प्रियतम की प्रतीक्षा मे निराश होकर आण्डाळ कहती है कि वह क्या (मेरे प्रियतम) दर्शन देने का अनुग्रह भी नही कर सकते। वह मेघावलियो के समक्ष अपनी दीनता प्रकट करती हुई कहती है—

"जिस प्रकार वर्षाकाल मे अर्कपत्र सूखकर गिरते है उसी प्रकार तुम्हारे ध्यान मे निमग्न इस शिथिलता को अनुग्रहपूर्ण सदेश भी प्रसारित नही कर सकते।"[3]

वह व्यथित होकर कृष्ण को सचेत करती हुई कहती है कि—

"हे मेघो, यदि वह उनके ध्यान मे ही सदा निमग्न रहने वाली अपनी प्रेमिका की उपेक्षा कर उसका सर्वनाश कर डालेगे तो लोग उनको भक्तवत्सल कैसे कहेगे।"[4]

मीरा और आण्डाळ की विरहानुभूतियो की अभिव्यनाओ मे ऊहात्मक वर्णन नही दिखलाई देता। विरहवेदना की भावाभिव्यक्ति मे घनीभूतता और सघन व्यथा इन दोनो ही विरहिणियो मे मिलती है। वे दोनो कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा मे उन्हे स्वादिष्ट व्यंजनो से संतुष्ट करने के लिये आमत्रित करती है। वैष्णव भक्ति पद्धति मे इसी प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थो के भोग का विधान है।

---

१. उलंगुण्ड विलं्कनिपोल् उळ्मोलियप्पुगुन्दु।
एॅन्नै नलंगुण्ड नारणर्कु एॅन्नुडलै नोय्सेय्युमिने ।। नाच्चियार तिरुमोलि ८–६

२. कोङ्गै मेल् कुंगुमत्तिन् कुलम्पलियप्पुगुन्दु ओरुनाळ्
तंगुमेल् एॅन्नावि तंगुमेन्रुरैयीरे ।। नाच्चियार तिरुमोलि ८–७।।

३. नीर् कालत् तेरुक्किल् अम् पल् विलै पोल् वील्वेनै ।
वार् कालत्तोरु नाळ् तम् वासकम् तन्दरुळारे ।।नाच्चियार तिरुमोलि ८–७

४. कदियेॅन्रुत्तानावान् करुतादु ओर् पेॅण् कोडियै ।
वदै सेय्दानेॅन्नुम् सोल् वैयकत्तार मदियारे । नाच्चियार तिरुमोलि ८–९

मीरां और आण्डाल के पदों में इस प्रकार के आमंत्रण निम्न लिखित पदो में मिलते हैं—

"ये जीम्या गिरधरलाल ।
मीरां दासी अरज कर्यां छे, म्हारो लाल दयाल ।
छप्पन भोग छत्तीसां व्यंजन, पावां जब प्रतिपाल ।
राज भोग आरोग्यां गिरधर सन्मुख राखां ताल ।
मीरां दासी सरणां ज्यासी, कीज्यां वेग निहाल ॥[1]

मीरां विरह मे व्याकुल है, उसकी पीड़ा असह्य है। वह गिरधर नागर को सबोधित करती हुई उस लोक रक्षक को छत्तीस ढग के व्यंजन समर्पित करती हुई अपने उद्धार की कामना करती है। दार्शनिक विवेचना की दृष्टि से मीरां की इस समर्पण भावना को 'इज्या' के अन्तर्गत रखा जा सकता है। उसने अपना रूप, रग, रस, और गंध सभी कुछ समर्पित कर दिया है और यही भाव उनके भोगोपकरण मे दिखलाई देता है। आण्डाळ के पदो मे भी इसी प्रकार की भावना दिखलाई देती है। वह भी अपने प्रियतम को नवनीत और क्षीरान्न समर्पित करती है और इसी समर्पण भाव के साथ अपने प्रियतम को सबोधित करती हुई कह उठती है—

"हे मेरे सुन्दर प्रियतम, क्या यहाँ पधार कर मेरे इस भोग को स्वीकार करोगे। यदि आज आकर इसे स्वीकार कर मेरे हृदय को प्रसन्न करोगे तो मै तुम्हे अतुलनीय और बहुविध व्यजनों को समर्पित कर निरन्तर तुम्हारी मेवा करती रहूँगी।"[2]

प्रस्तुत काव्याभिव्यक्ति मे आण्डाळ के विरह भाव की व्यंजना के ही दर्शन होते है। आण्डाल ने अपने भौतिक तथा आधिभौतिक, पार्थिव अपार्थिव एवं लौकिक तथा लौकिक सत्यों को पूरी तरह मे समर्पित कर दिया है। वह लोक

---

१. मीरांबाई की पदावली, पद ४७, श्री परशुराम चतुर्वेदी ॥

२. नारु नरुम्पोऴिल् मालिरुम् सोलै नम्बिक्कु नान्
नूरु तडाविल् वेण्णय् वाय् नेरन्दु परावि वैत्तेन्
नूरु तडा निरैन्द अक्कार वडिसल् सोन्नेन्
एरु तिरुवुडैयान् इन्रु वन्दिवै कोल्लुङ्कोलो
इन्रु वन्दित्तनेयुम् अमुदुसेय्दिडप् पेरिल् नान्
ओन्रु नूरायिरमाक् कोडुत्तुप् पिन्नुमाळुम् सेयवन् ॥
नाच्चियार तिरुमोऴि ९–७

चेतन से रहित होकर अलौकिक आनन्द मे आनन्दमयी होना चाहती है और इसी भाव की अभिव्यक्ति आण्डाळ के विभिन्न पदो मे हुई है। विरह मे प्रियतम से मिलने की तीव्र आकाक्षा होती है। इस सयोग की आकाक्षा मे मीरा एव आण्डाळ का मन ऐसा निमग्न हो जाता है कि वे उनके सबध का रच मात्र भी आभास मिलने पर आनन्द विभोर हो उठती है।

दोनो ही भक्त कवयित्रिया प्रकृति के वातावरण मे आनन्द और प्रफुल्लता के सकेत पाती है और उसे ही प्रियतम के आगमन की सूचना पाकर आनन्दित होती है। मीरा सखियो को सदेश देती है कि चातक, अपने स्वरो से वनमाधुरी को गुँजित करने लगती है। कोकिला की मधुरावाणी वनमेदिनी मे सुनायी पड़ने लगती है। आकाश मे बादलो का समूह घिरने लगता है। मीरा अपनी मर्यादाओ को त्यागकर कृष्ण को पाने के लिये आतुर हो उठती है और इस भाव की अभिव्यक्ति मीरा की निम्नलिखित पद मे हुई है।

> **"दादुर मोर पीपहा बोल्यां, कोइल मधुरां साज।**
> **उमंग्यो इन्द्र चहुं दिसि बरसौ दामिणि छोड्यां लाजा**
> **धरती रूप नवांनवां धर्‌यां इन्द्र मितण रे काज।**
> **मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, वेग मिल्यो महाराज ।।[1]**

प्रकृति उद्दीपकारिणी होती है और विरहणि को और भी अधिक उद्दीप्त कर देती है। मीरा ने प्रकृति के वातावरण से उद्दीपक उपकरणो के माध्यम से अपने भावो की अभिव्यंजना करते हुए अपने विरहानुभूतियो को प्रकट किया है। इसी प्रकार आण्डाळ ने भी प्रकृति से ही उद्दीपन सस्कार ग्रहण किये है। वह पक्षियों को देखकर रंगनाथ का स्मरण करती है और उसे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रात.काल गौरैया तथा अन्य पक्षिगण तिरुमालिरुम सोलै के देवता द्वारकानाथ तथा वटपत्रशायी[2] का नामोच्चारण कर रहे है। आण्डाळ सकल्प और विकल्प मे आन्दोलित सी होने लगती है। उसे प्रियतम के दर्शन होंगे या नही, यही भावना निरंतर से विरहोन्मुख बनाती रहती है और इसी प्रकार विरहोन्मुखी होकर आण्डाळ ने अपने आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति की है। नाच्चियार तिरुमोलि के पदों मे एक स्थल पर कहती है—

---

१. **मीरांबाई की पदावली, पद १३४, श्री परशुराम चतुर्वेदी**

२. **श्री विल्लिपुतर के प्रसिद्ध वैर्ष्णव मंदिर के देवता को वटपत्रशायी कहते हैं।**

"क्या ये पक्षिगण वास्तव में मेरे प्रियतम के लिये ही गा रहे है।[1] आण्डाळ के पदो मे आन्तरिक सत्य को प्रकट करने की अपूर्व शक्ति है। वह इतनी अधिक दुख मे डूब जाती है कि उसकी अभिव्यक्ति मे भी तीव्रता के दर्शन होते है। प्रस्तुत पद मे आण्डाळ की अन्तर वेदना और भी अधिक तीव्र हो उठी है। वह 'अवन वार्तै उरैक्किन्रनवे' अथवा 'हाय मै क्या करू, देखो वे उनके। (मेरे प्रियतम।) नाम का स्मरण कर रहे है।' इसके माध्यम से अपने आन्तरिक वेदना की तीव्रता को ही प्रकट करती है। किन्तु उसे अदम्य विश्वास है, वियोग के क्षणों मे भी उसका विश्वास टूटता नही और यही विश्वास उसके प्रियतम का संयोग और मिलन-केलि की कल्पना कराकर आनन्द प्रदान कराता है। किन्तु विश्वास की भी एक निश्चित सीमा होती है। वह मधुमाती प्रकृति में अपने प्रियतम के दिव्य स्वरूप को देखकर अपना सयम खो बैठती है। प्रियतम से यदि साक्षात्कार न हुआ और उनसे मिलन भी न हुआ तो प्रकृति का मदमस्त वातावरण भी ऐसे प्रतीत होने लगता है कि जैसे नायिका को उपहास कर रहा हो। कभी कभी प्रियतम के अग लावण्य को प्रकृति के अंग ज्योति में समरस हुआ सा देखकर आण्डाळ तिलमिला उठती है। वह तिरुमालिरुमसोलै में सर्वत्र लाल सिन्दूर के सदृश इन्द्रगोप कीटों को फैले हुए देख चिल्ला उठती है कि ये कीट उद्दीपक है, ये मेरी भावनाओ को उद्दीप्त करते है। मै इन उद्दीपकों से कैसे अपने को बचा सकूँ। ये लाल इन्द्रगोप कीट सुबाहु भगवान की याद दिला रहे है दूसरी तरफ मुडकर उस वन गिरि की ओर देखती है तो वहाँ यूथिका पुष्प विकसित दिखलाई देते है। उन पुष्पो को देखकर वह अपनी सखी से कहती है—

> "हाय, सखी, मै अपना दुःख का वर्णन किससे करूं। ये पुष्प मेरे प्रियतम की मद मुस्कान और अधरों की याद दिला रहे है और मुझे उद्दीप्त करते हुए दर्शन के लिये व्याकुल कर रहे है।"[3]

इन पुष्पो मे निहित रूप सौन्दर्य को देखकर आण्डाळ की विरह व्यथा और

१,२ कालैयेल्ुन्दिरुन्दु करियकुरुविक्कणङ्कळ्
मालिन् वरवु सोल्लि मरुळ पाडुदल् मेय्मैकोलो।
सोलै मलैप्पेरुमान तुवरापादिम्पेरुमान
आलिनिलैप्पेरुमान् अवन् वार्तैयुरैक्किन्रनवे ॥ नाच्चियार तिरुमोलि ९–८

३. सिन्दुरच् सेम्पोडिप्पोल् तिरुमालिरुम् सालैयेंगुम्
इन्दिरगोपंगळे येल्ुन्दुम् परिन्दिट्टनवाल्
मन्दिरम् नाट्टियन्रु मदुरक् कोलुँचारु कोण्ड
सुन्दरत् तोळुडैयान् सुललैयिल् निन्रुय्दुँकोलो ॥ नाच्चियार तिरुमोलि ९–१

भी तीव्र हो उठती है। वह उन पुष्पों से अपनी विरह व्यथा को दूर करने का उपाय बतलाने की प्रार्थना करती है और प्रार्थना करते हुए निवेदन कर उठती है—

> "हे मनोहर काकण पुष्पो तुम सब मेरे प्रियतम के रूप सौन्दर्य के प्रतीक हो। तुम्हारे उद्दीपक स्वरूपो को देखकर मै अत्यधिक दुख का अनुभव कर रही हूँ। मेरे दुख को दूर करने का उपाय बतलाओ।"[1]

और उन्ही पुष्पो से उपालभ करती हुई कहती है—

> "मेरे प्रियतम स्वय ही मेरे यहाँ पधारकर बलात् मेरी सुन्दर चूडियों का अपहरण कर ले गए है। क्या यह उचित है।'[2]

इसी प्रकार वे पक्षियो को भी सबोधित करती हुई अपनी अतर्वेदना को प्रकट कर कह उठती है—

> "हे कोकिल, मयूर, हे रमणीय काकण पुष्पो, हे नवीन कला फल, हे सुगधित अतसी पुष्पो तुम सब के सब पच महा पातकी हो। क्योकि तुम सभी मे प्रियतम के रग है और तुम भी प्रियतम के रग ही हो।"[3]

इस प्रकार के भावाभिव्यक्ति मे अन्तर मन की पीड़ा और वेदना का अत्यन्त तरल रूप प्रकट होता है। वह सरोवरों में विकसित पुष्पो को देखकर अपने सपूर्ण क्रोध से उन पुष्पो पर उपालभ करती हुई अपने अन्तर ताप का परिहार करती है और कहती है—[4]

> "तिरुमालिरुम सोलै के चारों दिशाओ के विकसित उद्यानों, मधु-

और तार्क्कोडि मुल्लैकळुम् तवळ नगै काट्टुकिन्र्
कार्कोल पडाक्कल निन्रु कळरिच् सिरिक्कत् तरियेन ॥
नाच्चियार तिरुमोलि ९–२

१. करु विळैयोण् मलर्काळ् काया मतर्काळ् तिरुमा
लुरुवोळि काट्टुकिन्रीर ऍनक्कुय्वलकोन्ररैयीर ॥
वरि वलैयिल् पुगुन्दु वन्दि परुंम वल्क्कुळदे ॥ नाच्चियार तिरुमोलि ९–३

३. ऍम्पेरुम् पादरुर्काळ् अणिमालिरुम् सोलै निन्र्
ऍम्पेरुमानुडैय निरम उङ्कळुक्केन सेय्वदे ॥ नाच्चियार निरुमोलि ९–४

४. सेङ्कट्करुमुकिलिन् तिरुवुरुप् पोल् मलर् मेल्
तोगिय वण्डिनङ्काळ् तोकु पूँजसुनैकाळ्, सुनैयिल्
तंगु सेन्तामरैकाळ् ऍनक्कोर् सरण सारुंमिने ॥ नाच्चियार तिरुमोलिं ९–५

लोलुप मडराने वाले भ्रमर समूह, हे सुन्दर सरोवर, हे सुगंधित पुष्पो, तुम सब मुझे साक्षात् यम किंकर के सदृश प्रतीत होते हो। मेरी विरह व्यथा को दूर करने का मार्ग तुम्ही बताओ।"

इस प्रकार की अभिव्यक्ति में आण्डाळ की विरह वेदना ही अभिव्यक्त हुई है। आण्डाळ ने प्रकृति को उद्दीपनकारिणी के रूप मे ग्रहण किया है और अपने भावों को अभिव्यंजना करते हुए अपने आन्तरिक सत्यों को ही प्रकट करने की चेष्टा की है। और यही प्रकट-सत्य उसकी प्रेम-साधना का प्रेमोपकरण है।

मीरां ने भी प्रकृति के प्रतीको को अपनी विरहाभियक्ति का आधार माना है। वह भी आण्डाळ के ही अनुरूप प्रतीक स्वरूप मे भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति को प्रकृति मे देखती है। गगन के विशाल प्रांगन में उमड़ती और विहार करती मेघ मालाओ और श्यामल घटाओ को देख वह भयभीत हो जाती है और कृष्ण से निवेदन कर उठती है—

"बादल देखि डरी हो श्याम, बादल देखी डरी।"[1]

इसी प्रकार होली के अवसर पर ग्राम और नगर के वातावरण को प्रतिगुंजित करती हुई झाझ, मृदंग, मुरलिका और इकतारा आदि की ध्वनि माधुरी को सुनकर प्रियतम के विरह मे अस्थिर हो उठती है—

बाज्या झांझ मृदंग मुरलिया बाज्यां कर इकतारी
आयां वसन्त पिया घर णारी म्हारी पीड़ा भारी ॥[2]

मीरा और आण्डाळ दोनों ही प्रियतम के दर्शन के लिये निवेदन करती हैं और दर्शन न होने पर अपने प्रियतम रस से भरे उपालभ देती हुई अपने आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति करती है। दोनों की विरह वेदना मे अनेक ऐसे स्थल आते है जहाँ वे अपने प्रियतम पर अविश्वास भी प्रकट करने लगते है। मीरां ने तो यहाँ तक कह दिया कि हे प्रियतम हमे इस प्रकार प्रेम में अनुरक्त कर विश्वासघात क्यो कर रहे हो। मै तो प्रेमानुगामिनी हूँ। प्रेम का पथ ही मेरे जीवन का मुक्तिमार्ग है और मैने अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणो पर अर्पित कर दिया है। मैं प्रेम मार्ग के अतिरिक्त अन्य मार्गो से अभिज्ञ हूँ। पहले प्रेमामृत का पान कराकर अब विष पान करा रहे हो। प्रेम की यह कैसी रीति है। ऐसे भावो की अभिव्यक्ति के समय मीरा की विरह वेदना और भी अधिक उद्दीप्त हो उठती है और उसी उद्दीपन अवस्था मे वह कह उठती है—

---

१. मीरांबाई की पदावली पद, ८२
२. मीराबाई की पदावली, पद, ७७

जाणां रे मोह् जाणां थारी प्रीत,
प्रेम भगति रो पेडा म्हारा,
अबरु णा जाणां रीत,
इमरत पाई विष क्यूँ
लीज्या कूँण गांव की रीत॥[1]

अपनी इस प्रेम रीति पर पश्चाताप प्रकट करते हुए मीरां नें अपने आन्तरिक सत्य और आन्तरिक भावो को जो तरल अभिव्यक्ति की है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम ही उसका दर्शन है, प्रेम ही उसके जीवन का सत्य है, और प्रेम ही उसकी मुक्ति है। इसी प्रकार के भाव उसके अन्य पदो मे भी अभिव्यक्त हुए है। इस प्रसग मे मीरा द्वारा प्रकट किया हुआ एक परिताप भाव प्रस्तुत है—

जो हूं ऐसी जानती रे बाला, प्रीत कीयां दुष होय।
नगर ढंढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय ।
षीर न षाजे आरी रे, मूरष न कीजै मित ।
षिण ताता षिण सीतला रे, षिण बैरी षिण मित॥[2]

उपर्युक्त उद्धरण से मीरां की आन्तरिक भावना तो व्यक्त होती है। इसके साथ ही परिताप-भाव भी पूर्णत स्पष्ट होता है। वह अपनी प्रीति पर पश्चात्ताप करती हुई कहती है कि हे प्रियतम यदि मुझे इसका आभास पहले ही होता कि प्रेम करने पर अधिक मानसिक वेदना सहनी पड़ेगी तो मै ढिढोरा पीटकर यह घोषणा करती कि आगे कोई गिरधर नागर से प्रेम न करे। मानसिक रूप से अल्पज्ञ व्यक्ति से मित्रता नही करनी चाहिए। क्योकि उनका प्रेम क्षणिक होता है जैसे दूध क्षण भर उफन कर फिर शात हो जाता है, उसी प्रकार ये व्यक्ति भी क्षणिक अपूर्व प्रीति की मरीचिका मे भटकाकर फिर विलग हो जाते है और अपने उस प्रेम को विस्मृत कर देते है। मीरा का यह उपालंभ उसकी आतरिक वेदना को ही प्रकट करता है। वह प्रेम में इतनी विभोर हो गई है कि उसने कृष्ण को ऐसे संबोधन भी प्रदान किये है जिन्हें अधिक सुसस्कृत नही कहा जा सकता। किन्तु यह संबोधन प्रेम की अतिशयता और विरह के उन्माद के कारण ही प्रकट हुए। आण्डाळ ने प्रकृति में अपने रंगनाथ के दर्शन किये है। प्रकृति उसके समक्ष उद्दीपन रूप में है। वह प्रकृति के उपकरणों को देखकर भावोद्दीप्त

---

१. मीरांबाई की पदावली पद, ५६ श्री परशुराम चतुर्वेदी॥
२. मीरांबाई की पदावली, पद ५९, श्री परशुराम चतुर्वेदी॥

ती हो उठती है और अपनी विरहानुभूतियों को अभिव्यक्ति करते हुए बिम्ब लताओं को सबिोधित करके कह उठती है—

> "हे बिम्ब लते, क्यो तुम अपने सुन्दर पुष्पो से रंगनाथ के मधुर अधरो का स्मरण दिलाकर मुझे पीड़ित कर रही हो। मैं बिम्ब फल के सदृश प्रियतम के अधरो से अधिक भयभीत हूँ। मेरे प्रियतम भी मेरे जन्म के उपरान्त शेषनाग के सदृशदो जिह्वावाले हो गए है।"[1]

उपर्यक्त भावाभिव्यक्ति आण्डाळ की विरह भावना को ही प्रकट करती है और जो उपालभ आण्डाळ ने रगनाथ के लिए प्रयुक्त किये है वे उसके भावोन्माद का ही प्रकाशन करते है। दो जिह्वाओ द्वारा जिस अर्थ की ओर आण्डाळ ने सकेत किया है, वह वास्तव मे आण्डाळ की भावात्मक सहजता और प्रेम की अतिशयता का प्रतीक है। तमिल् समाज मे यह लोकोक्ति भी है। इसी प्रकार आण्डाळ के पदो मे ऐसे अनेक स्थल आते है जहा रगनाथ की उलाहना करती हुई अपने तीव्र भावावेगो को व्यक्त करती है। वह भक्त शिरोमणि विष्णचित (पेरियाळ्वार) की सुपुत्री है। पेरियाळ्वार रगनाथ के अनन्य उपासक है और कृष्ण ने प्रकट होकर पेरियाळ्वार को आण्डाळ के आन्तरिक माधुर्य और स्वय-गृहीत उपकरण के रूप मे प्रदान किया है। भक्त शिरोमणि की सुपुत्री होने के कारण और कृष्ण की स्वकीया होने के कारण वह साधिकार रगनाथ को उलाहना देती है और कहती है कि भगवान् यदि उसके पवित्र प्रेम को अस्वीकार करेगे तो सारी सृष्टि मे अनेक मिथ्या वचनत्व का प्रचार करेगी। किन्तु जिस प्रकार पेरियाळ्वार की भक्ति अमर है उसी प्रकार उसकी भी प्रीति अविनश्वर है। उसकी प्रीति कभी भी असत्य नही हो सकती। प्रकृति के साथ आत्म-केलि करती हुई आण्डाळ की भक्ति भावना यूथिका लताओ को भी सबोधित करती हुई उसकी विरह व्यथा इस रूप मे प्रकट होती है—

> 'हे यूथिका लते, मै तुम्हारी शरण में हूँ। मुझे प्रियतम की मधुर स्मृति कराकर अधिक पीड़ित न करो। मेरे प्रियतम तो मिथ्यवादी है। भले ही शरणागत की रक्षा करने वाले तथा लौकिक मर्यादा का उल्लंघन करने वाली शूपणखा का नासिकाछेदन करने वाले का वचन मिथ्या प्रमाणित हो सकता है किन्तु पेरियाळ्वार की सुपुत्री

---

१. पावियेन् तोरिन्रप् पाम्बणैयार्क्कु तम् पाम्बु पोल्
नावु मिरण्डुळवायिरं नाणिलियेनुक्के ॥
नाच्चियार तिरुमोलि १०—३

होने के कारण मेरा वचन असत्य नही हो सकता और मेरा पैदा होना असत्य नही हो सकता ।'[१]

मीरा ने प्रकृति को उद्दीपन कार्य रूप मे अत्यन्त कम स्थलों में लिया है, किन्तु आण्डाळ ने प्रत्येक प्रकृति चित्र मे उद्दीपन की भावनाओ के दर्शन किये है। वह कोकिला की स्वर माधुरी को सुनकर रंगनाथ का स्मरण करने लगती है और कोकिला से ही आत्म निवेदन करती हुई प्रार्थना करती है—

"हे कोकिले, मै प्रार्थना करती हूँ, मुझे प्रियतम के दर्शन कराओ।[२]

इसी प्रकार मीरां भी पपीहे से आत्म निवेदन करती हुई कहती है कि हे पपीहे "पी पी" ध्वनि द्वारा मेरे प्रियतम का स्मरण मत दिलाओ। मै विरह मे डूबी हुई हूँ। तुम कितने दिनो का वैर भाव का स्मरण कर आज मुझे इस तरह पीड़ित कर रहे हो। इसी भाव की अभिव्यक्ति के लिये मीरा का यह पद दृष्टव्य है—

"पपइया म्हारो कब रो वैर चितार्यो
म्हा सोवूं छी अपने भवन मां पियु करतां पुकार्यां ॥"[३]

मीरां ने "पपइया पिव वाणी न बोल" के माध्यम से अपने जिस आत्मगत विह्वलता का परिचय दिया है, वह वास्तव मे उसका विरहोन्माद और उसकी आन्तरिक वेदना ही है। पपीहा की स्वर माधुरी निरतर बढती जा रही है और मीरां का विरहोद्वेग भी निरतर बढता जा रहा है। पपीहा चुप नही होता और मीरा "चोच कटावु पपइया रे, ऊपरि कालर लूण"[४] के द्वारा उसे कोसती जा रही है। वह उसकी जीभ काटने के लिये तत्पर है और जिह्वा काटकर उस पर काला नमक भी छिडक देना भी चाहती है जिससे वह किसी और विरहिणी को पीड़ित न कर सके। यदि अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से इस पद का अर्थ विश्लेषण करें और मीरां की प्रेम भावना के मर्म को समझने का प्रयास करे तो यह स्पष्ट होता है कि स्वर माधुरी की अतिशयता वास्तव में प्रेमात्मक आकुलता है और उसी आकुलता के कारण वह वियोग अथवा विरह के क्षणो मे प्रकृति के उन

---

१. **मुल्लैपिराट्टि नी युन मुरुवल्कळ कोण्डु ऍम्मै, अल्लल् विळैयेल् आलिनंगायु-न् नडैक्कलकम्**
कोल्लैयरक्कियै मूक्करिन्दिट्ट कुमरनार् पोय्यानाल् नानुम् पिरन्तमै पोय्यन्रे ॥ नाच्चियार तिरुमोलि १०–४

२. **नाच्चियार तिरुमोलि ५–७**

३. **मीरांबाई की पदावली, पद ८३ श्री परशुराम चतुर्वेदी**

४. **मीरांबाई की पदावली पद, ८४ श्री परशुराम चतुर्वेदी**

उपकरणो से सान्त्वना प्राप्त नही करती जिनके कण कण मे कृष्ण की अखण्ड चिरत्व समाहित है। वह प्रियतम का संयोग चाहती है और यह भावना भी व्यक्त करती है कि यदि उसे प्रियतम के दर्शन हो जाएगे तो वह पपीहे की स्वर-माधुरी आत्मगत करने लगेगी। वास्तव मे यह उपेक्षाभाव उसके आन्तरिक सत्य को एक सम्पूर्ण व्यथा के रूप मे प्रकट करता है और यही प्रेमोन्माद मीरा के प्रत्येक पद मे दिखलाई देता है।

आण्डाळ के पदो मे भी कोकिला की स्वरमाधुरी से उत्पन्न आन्तरिक पीड़ा और आन्तरिक वेदना प्रकट हुई है। आण्डाळ भी कोकिला को सबोधित करती हुई कहती है—

> "हे गायिक कोकिले, तू कर्ण कटु गीत गा रही है। यदि वेकटान्द्रिनाथ हमे दर्शन देकर हमारे दुख और हमारी विरह व्यथा को दूर कर देगे तो तुम आकर अपनी स्वर-माधरी से सपूर्ण सृष्टि को प्रतिगुँजित कर देना। मेरे प्रियतम गरुड़वाहन पर आरूढ होकर मुझसे मिलेगे तो मै तुम्हे बुलाकर तुम्हारी स्वर माधरी काआनन्द प्राप्त करूगी।[1]

इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति से एक सत्य तो यह स्पप्ट हो ही जाता है कि आण्डाळ ने भी प्रकृति के उद्दीपन रूप मे देखते हुए अपने प्रियतम के दर्शन की कामना की है। प्रकृति के प्रत्येक उपकरण चेतन होता है। उसके अन्तर मे चेतनता निवास करती है और दर्शक को वह अपने अन्तर के दर्शन कराकर स्वयं मे ममरस कर लेती है। इसके पश्चात् वह दर्शक उन उपकरणों से ही आनन्द तत्त्वों का अन्वेपण करने लग जाता है और उसका यही अन्वेपण पूर्णता प्रदान करता है। आण्डाळ के पदों मे ठीक यही स्थिति है। उसने प्रकृति के प्रत्येक उपकरण के अन्तर मे वसे हुए सत्य को सबोधित करते हुए अपने प्रेमात्मक भावों की अभिव्यक्ति की है। वह सुन्दर नृत्य करते हुए मयूर को देखकर कहती है—

> हे मयूर, मेरी व्यथा को अधिक करने का प्रयत्न मत करो। तुम इस नृत्य केलि को बद कर दो। मै प्रेम की व्याख्या करने मे इतने अधिक सलग्न हूँ कि मेरे पास इतना समय नही कि मै तुम्हारे नृत्य

---

१. पाडुङ् कुयिल्काळ् ईदेन्नपाडल् नल् वेगड नाडर नमक्कोरु वाल्वु तन्दाल् वन्दु पाडुमिन्।
आडुड् करुळक्कोडियुडैयार वन्दरुळ सेय्दु कूडुवरायिल् कूवि नुम पाट्टुक्कळ केट्टुमे॥ ना० ति० १०–५

देख सकूँ। पहले ही घटनर्तन करनेवाले प्रियतम ने अपनी लीला ने मेरा सर्वस्व अपहरण कर लिया है। इस दयनीय स्थिति मे मेरे प्राणों को भी अपहरण करने से तुमको बडा पाप लगेगा।"[१]

आण्डाळ और मीरा के पदों मे कोकिला की स्वर माधुरी समान रूप से व्यक्त हुई है। किन्तु आण्डाळ कोकिला को सदा के लिये गाने से नही रोकती। उसके रूप लावण्य तथा स्वर-माधरी की प्रशंसा करती हुई उनसे प्रार्थना करती है कि मेरे प्रियतम को मुझसे नित्य सश्लेष करने के लिये बुलाते हुएगीत गाओ और इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए आण्डाल ने कोकिला को सबोधित करते हुए कहा है—

"पुन्नाग, माधवी, प्रियंकु, सुरपुन्नागादि विविध वृक्षो मे आनन्द के साथ निवास करने वाली हे कोकिले, प्रवाल सदृश ओष्टवाले मेरे प्रियतम को मूझसे मिलने के लिये उनके नाम की रटना करो।'[२]

आण्डाळ ने कोकिला के समक्ष अपनी अन्तर्भावना को पूरी तरह प्रकट कर दिया है। दूसरे अर्थो मे यह भी कहा जा सकता है कि उसने प्रकृति के समक्ष अपने आन्तरिक रहस्यो और अपनी आन्तरिक पीडा को पूरी तरह अभिव्यक्ति किया है। वह स्वयं को प्रकृति-माधुरी से विलग नही मानती है। उसने कोकिला के समक्ष अपनी शारीरिक स्थिति का सत्य स्वरूप प्रकट करते हुए व्यक्त किया है—

"मधुभरे चपक पुष्प का सार ग्रहण कर मदमस्त होकर ध्वनि माधुरी से वातावरण को प्रतिगूजित करने वाली हे कोकिले, प्रियतम मेरे हृदय में प्रवेश कर, मन को वेदना से प्रपीड़ित कर मेरी ही वेदना से आनंदित हो रहे है।"[३]

वह प्रियतम के वियोग में इतने अधिक विरहाकुल हो उठी है कि उसे क्षण

---

१. नडमाडित् तोकै विरिक्किन्र् मा मयिल्काळ उम्मै। नडमाट्टंकाणप् पावियेन् नानोर् मुदलिलेन्। कुडमाडुकूत्तन् गोविन्दन कोमिरै सेय्दु एॅम्मै। यूडैमाडु कोण्डान उङ्कलुकिनियोन्रु पोदुमे ॥ नाच्चियार तिरुमोलि १०–७

२. पून्नैकुरुक्कत्तिनालल्सेरुन्दिप् पोदुम्बिनिल् वाल्ङ् कुयिले पन्नियेप्पोदुमिरुन्दुविरैन्तेनवर पवळवायन वरक् कूवाय्॥
नाच्चियार तिरुमोलि ५–१

३. उळळम पुहुन्दु नैवित्तु नाळुमुयिर्पेय्दु कूत्ताट्टुकाणुम्॥
नाच्चियार तिरुमोलि ५–२

क्षण का अभाव प्रताड़ित करने लगा है। वेदना चाहे वह स्वसंवेद्य हो और चाहे परसवेद्य, दोनों प्रकार की वेदनाओं मे प्रभावशीलता अधिक होती है और व्यापकता भी अधिक होती है। वेदना से पीड़ित हृदय ही दूसरी की वेदना सही मूल्यांकन कर सकता है। अर्थात् स्वसवेद्य पीड़ा के द्वारा ही परसंवेद्य की पीड़ा का अनुभव किया जा सकता है। आण्डाळ ने इसी भाव की अभिव्यक्ति अपने पदों में की है। वह कोकिला को संबोधित करती हुई कहती है—

> "हे कोकिले मैं अत्यधिक क्षीणकाय हो चुकी हूं। वेल सदृश मेरी विशाल आँखे तो सदा के लिये निद्रा से वचित रह गई। विरह रूपी महा समुद्र मे वैकुंठ नामक नाव के अभाव मे भटक रही हूँ। मेरी विरह वेदना को केवल तुम ही जानती हो। अतः स्वर्ण कीर्तिवाले, गरुडध्वजवाले साक्षात् मगलमय भगवान को मेरे पास आने के लिये गीत गाओ।'[1]

आण्डाळ की यह विरह वेदना उसके आन्तरिक जीवन को व्यक्त करती है। वह प्रकृति को उतना ही प्यार करती है जितना कि रगनाथ को। वह प्रकृति को रगनाथ की प्राप्ति का साधन मानती है और इसी भाव की अभिव्यक्ति आण्डाळ के पदों में हुई है। भक्त कवयित्री मीरां ने अपनी आन्तरिक वेदनाको प्रकटीकरण करते हुए इसी भाव की अभिव्यक्ति करती है। उसकी आँखों मे भी नीद नहीं और इस निद्राहीनता को मीरा ने "री म्हा बैज्यां जागा, जगत सब सोवां" और "सखी म्हारी नीद नसानी हो, पियरो पंथ निहारत सब रैण बिहाणी हौ" तथा "हरि बिन क्यूँ जिवा री माय स्याम बिना बौरां भयां काठ जिवूँ घुण खाय।'[2] के माध्यम से स्पष्ट किया है। मीरां और आण्डाळ दोनो ही भक्त कवयित्रियों ने कोकिला को उत्कोच देने की चेष्टा की है और यह विधान उनके आन्तरिक मर्म और प्रेम की विह्वलता को पूरी तरह प्रकट करता है। मीरा कोयल को सांत्वना देती हुई कहती है कि यदि उससे प्रियतम का सयोग हो जायगा तो मधुर वाणी सुनने के लिये तैयार रहेगी और वह गीत उस समय सुहावना ही लगेगा। इतना ही नही वह उसकी चोंच को सोने से अलंकृत करवा देने का वादा भी करती है—

---

१. एन्बुरुकियिनवेल नेडुकण्कळ् इमै पोरुन्दा पल नाळुम्
तुन्बक् कडलपुक्कु वैकुन्दनेन्बदोर तोणि पेरा दुलल्किन्रे न्
अन्बुडैयारैप् पिरिवुरु नोयदु नीयुमरिदुकुयिले। नाच्चियार तिरुमोलि ५-४

२. मीरांबाई की पदावली पद ८६, ८७, ९०

"थारा सव्द सुहावण रे, जो पिव मेला आज।
चोंच मढ़ाऊं थारी सोवनी रे, तू मेरे सिरताज॥[१]

मीरां और आण्डाळ के पदों में उत्कोच देने की जो परपरा दिखांई देती है वह उस काल के लोक मूल्यों का ही प्रस्तुत करती है। वास्तव मे इस परंपरा का मीरा और आण्डाळ के पदों में मार्गान्तिरीकरण हुआ है और उसने प्रेम की विह्वलता का रूप धारण कर लिया है। आण्डाळ ने भी अपनी कविताओं मे इस प्रकार के प्रयोग किये है। वह भी कोकिल से सबोधित करती हुई कहती है—

> हे कोकिले, भगवान के चरणाविन्दों के दर्शन करने की लालसा से मेरे नेत्र सदा उनकी राह देखते रहते है। अतः हे कोयल, तुम मेरे प्रियतम को यहॉ आने के लिये बुलाओ। मै क्षीरान्न से पोषित एक सुन्दर शुक को तुम्हारा सहचर बनाऊंगी।"[२]

स्पष्ट है कि आण्डाळ ने कोकिल के मन मे लालसा भर दी है। वह मीरां के समान कोकिल की चोच सोने से नही मढ़ाती अपितु उसे एक नया सहचर प्रदान करने का वचन देती है। तात्पर्य यह है कि उसकी स्वसवेद्य पीड़ा ने कोकिल की परसवेद्य पीड़ा को आत्मगत किया है ओर उसे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वह रंगनाथ के विरह मे उन्मादिनी है वैसे ही कोकिल भी शुक के विरह मे उन्माद मे डूबा हुआ होगा और यही प्रेम-साम्य आण्डाळ की प्रेम भावना को प्रकृति के चेतन सत्य तक पहुँचा देता है। किन्तु मीरां के पदो मे यद्यपि भावों की तरल अभिव्यंजना हुई है तथापि मीरा अपने स्वसवेद्य पीड़ा और परसंवेद्य पीड़ा में सामंजस्य नही कर पाती। मीरा के पदों मे 'चोच मढ़ाऊं थारी सोवनी रे' आदि प्रयोगों के द्वारा प्रलोभन का जो रूप दिखलाई देता है वह पार्थिव सत्य के अधिक निकट है, अपार्थिव अथवा अलौकिक तत्वों की उद्भावना मीरां के प्रलोभन विधान मे दिखाई नही देती। किन्तु आण्डाळ के विधान में प्रेम की सरसता और पीड़ा का सामंजस्यशील स्थितियों के चित्र दिखलाई देते है। वह कोकिला को ही चेतावनी देती हुई कह उठती है—

> "हे कोकिले, तुम भ्रमरों के आनन्दगीत से मस्त होकर यहॉ वाटिका मे विहार कर रही हो। मेरी बात ध्यान से सुन लो। मैं तो यहां

---

१. **मीरांबाई की पदावली पद, ८४**

२. **इन्नडिसिलोडु पालमुदूट्टि येडुत्त वेन् कोलक् किळियै।**
उन्नोडु तोलमैक् कोळ्ळुवन कुयिले उलकळन्दान्वरक् कूवाय॥
नाच्चियार तिरुमोलि ५–५

श्रीधर नामक एक जाल में फंसी हूँ। अगर तुम इस वाटिका मे रहना चाहते हो तो तुम्हें मेरे प्रियतम को आने के लिये बुलाना पड़ेगा और मेरे क्षीण और रिक्त हाथो को चूड़ियाँ धारण करने योग्य बनाना पड़ेगा। आज तुम मेरा यह निश्चय गुन लो कि या तो तुम मेरे निर्देशो का पालन करो अन्यथा मै तुम्हें इस वाटिका से निर्वासित कर दूँगी।"१

आण्डाळ की पदावलियो मे एक प्रकार का भावात्मक उन्माद और एक तरह की आत्म विभोरता भी दिखलाई देती है। वह कोकिला से शक्ति की याचना करती है जिससे कि उसका हाथ चूड़ियो को धारण करने योग्य हो जाय। स्पष्ट है कि आण्डाळ ने प्रकृति के चेतन तत्त्व के प्रवाह के दर्शन किये है। वह प्रकृति सत्य से प्रेम तत्त्व की याचना करती है। वास्तव में आण्डाळ के पदो में जितनी अधिक विभोरता के दर्शन होते हैं उतनी अधिक विभोरता मीरां के पदो में नही दिखलाई देती किन्तु मीरा ने लौकिक पीड़ाओं को विस्मृत कर अपने अलौकिक प्रेमात्मक स्वरूप का परिचय दिया है। वह अपने आराध्यदेव के प्रेम में इतनी लीन हो जाती है कि उसे इस संसार का बोध नही रहता और उसी विह्वलता मे घोषणा कर उठती है—

"ताल पखावज मिरदंग बाजा साधां आगे नाची रे।
कोई कहे मीरां बई बावरी, कोई कहे मदमाती रे।
विष का प्याला राणां भेज्यां अमृत कर आरोपीरे।।२

मीरां ने कृष्ण की भक्ति मे लौकिक मर्यादाओं को त्याग कर दिया है और वह बावली होकर कृष्ण के दर्शन के लिये पथ-चारिणी हो गई है। आण्डाळ के पदों में भी इसी प्रकार की भावना देखने को मिलती है। वह भी रंगनाथ के विरह में बावली है और उनके विरह मे ही अपने पिता तथा बंधुओं को संबोधित करती हुई कहती है कि—

"अब लज्जित होने की कोई बात नही है। इसका कारण यह है कि मेरी इस उन्मादिनी दशा को सभी ने जान लिया है। यदि आप

---

१. शंकोडुसक्करत्तान् वरक्कूवुदल् पोन्वळै कोण्डु तरुदल
इक्काविनिल् बालक् करुदिल् इरन्डेत्तोरेल् तिण्णम् वेण्डुम्
इन्रु नारायणनै वरक् कूवायेल् इंगुत्तु निन्रुम् तुरप्पन् ।।
।। ना० ति० ५-८ ।।

२. मीरांबाई की पदावली, पद ३७।

मुझे मृत्यु से बचाना चाहते है तो मुझको व्रज में जाकर छोड़ दीजिये। वहाँ त्रिविक्रम भगवान के दर्शन से दु.ख दूर हो जायगा।'[1]

मीरां के पदों में भी आण्डाळ के समान ही विवशता दिखाई देती है। वह स्वयं सर्मपिता हैं। इसलिये उसने लौकिक मर्यादाओं को त्याग दिया है। इसी भाव की अभिव्यक्ति से पूरित एक पदांश दृष्टव्य है——

गोविन्द सू प्रीत करत तबहीं क्यूँ न हटकी।
अब सो बात फैल परी जैसे बीज बटकी।
बीच को विचार नाँहि, छांय परी तटकी।
अब चूको तो ठौर नाहि जैसे कला नट की।
जल के बुरी गांठ परी रसना गुन रटकी।
अब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी।
घर घर ये घोस मठोल, बानी घट घट की।
सब ही कर सीस धारी, लोक लाज पटकी।
मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी।
दास मीरां भक्ति बूंद, हिरदय बिच गटकी ॥[2]

मीरां के पदों में यह जो विवशता दिखाई देती है उसका मूल कारण यह है कि उसने कृष्ण को ही अपने सम्पूर्ण जीवन का समर्पण कर दिया है और कृष्ण के वियोग में लोक मर्यादाओं को भी छोड़ चुकी है। इसी प्रकार आण्डाळ के पदों मे भी विवशता दिखलाई देती है। वह अपनी विवशता प्रकट करती हुई कहती है—

> "मैं विवश हू। इसलिये श्री कृष्ण मेरे सामने आकर आनन्द केलि का स्वरूप दिखला रहे है। अगर मै माता-पिता तथा अन्य बन्धुवर्गों को छोड़कर स्वयं कृष्ण के पास भाग जाऊँगी तो अपयश लगेगा। अतः आप ही उस अपयश के आने के पूर्व ही मुझे रात के अन्धकार मे ले जाकर उस नन्दगोप सुत के पास जो अपनी छेड़छाड़ तथा निन्दनीय कार्य कलाप के लिये प्रसिद्ध हैं, छोड़ दीजिये।"[3]

---

१. नाणियिनोर् करुममिल्लै नालायलारुमरिन्दोलिन्दार
आणैयाल् नीरेन्नैक्काक्कवेण्डिल आय्प्पाडिक्के येन्नै युय्त्तिमिडिमन् ॥
ना० ति० १२-२

२. मीरांबाई और उनकी पदावली, पद २४०

३. तन्दैयुम् तायुमुर् रिम् निर्कत् तनिवलि पोयिनाळेन्नुम् सोलल्

इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति में आण्डाळ की विरह वेदना और भी अधिक तीव्र हो उठी है। वह भी मीरां के अनुरुप मर्यादाओ को त्याग करते हुए कृष्ण को वरण करना चाहती है। वास्तव मे उसकी प्रेम साधना का चरम लक्ष्य कृष्ण है और बंधुबाधवो का विरोध, सासारिक व्याघातों के ही प्रतीक है। मीरा और आण्डाळ सासारिक अथवा लौकिक आघातों से भयभीत न होकर कृष्ण के अलौकिक स्वरूप मे ही एकाकार होना चाहती है और एकाकार होने की उत्कट उत्कठा, मिलन का आवेग, वियोग की पीड़ा और आन्तरिक भावों की आवेगात्मक अभिव्यक्ति मीरा और आण्डाळ के पदो मे अत्यन्त सरल रूपो में हुई है। प्रो० शशिभूषण गुप्त ने मीरा की तुलना बगाल के वैष्णव कवियों के साथ करते हुए अपना मन्तव्य व्यक्त किया है कि 'मीराबाई के काव्य में और बंगला वैष्णव काव्य में जो पूर्णसाम्य है उसका कारणहै कि इनका उद्भव भारतीय धर्म एवं साहित्य के एक ही भण्डार से हुआ है और कवियो ने जाने या अनजाने उसमे प्रस्तुत भाव भंगियो को ग्रहण कर लिया है।"[१] स्पष्ट है कि मीरां के काव्य में जिस दार्शनिक चिन्तन की अभिव्यक्ति हुई और उपासना का स्वरूप दिखलाई देता है वह वैष्णव धर्म ही है। डा० उदयनारायण तिवारी का भी मत है कि "भक्ति का स्वयं प्रयोजनत्व,भक्ति की उच्चभाव धारा का अभिव्यंजन है। यह उपासक, उपासना के रस मे इतना आप्तशर्म हो जाता है कि उमे उसकी साधना फीकी जॅचने लगती है और उसी रस मे उन्मत्त होकर घूमने लगता है तब उसे साध्य एव समग्र ससार का सार प्रतीत होने लगता है।"[२]

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में मीरां और आण्डाळ की भक्ति भावना का विश्लेषण करने से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मीरा ने जिस कृष्ण को पति के रूप में स्वीकार कर उसको उसके अखंड स्वरूप में स्वीकार कर एकाकार होना चाहती है और

वन्दपिन्नैप् पलिकाप्परिदु मायवन् वन्दुरुक्कट्टुकिन्रान्
कोन्दळमाक्किप् परक्कळित्तुक् कुरुम्बु सेय्वानोर् मकैप् पेर्र्
नन्दगोपालन् कडैत्लैक्के नळिळरुट्कण् एन्ने उय्त्तिडुमिन् ॥
॥ ना० ति० १२-३ ॥

१. मीरा स्मृति ग्रंथ—मीरांबाई, शशिभूषण गुप्त, पृष्ठ ८४
२. मीरा स्मृति ग्रंथ—मीरा की भक्ति साधना, डा० उदयनारायण तिवारी पृष्ठ १३९

वही वास्तव में प्रेम का चरम लक्ष्य है जिसे पूर्ण सान्निध्य प्राप्त करना ही माना जा सकता है। आण्डाळ ने भी रगनाथ को पति के रूप मे वरण कर लिया है और उसके मन मे भी रगनाथ के सान्निध्य पाने की विकट इच्छा दिखलाई देती है। वह भी कृष्णका सान्निध्य प्राप्त करते हुए उनके ही विराटत्व मे एकाकार होकर विलीन हो जाना चाहती है। ये दोनो भक्त कवयित्रियाँ वैष्णवी है। अतएव वैष्णव भक्ति के पच सोपान––अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय, योग आदि तत्त्वो का इनमे चरम विकास दिखलाई देता है। दोनों ने कृष्ण को प्राप्त करने के लिये भक्ति की है, दोनो ने अपने समस्त लौकिक सत्य को परित्याग कर दिया है, दोनो ने अपनी समस्त प्राण-शक्ति, आत्मा और रागात्मक सबध को कृष्ण के चरणों मे समर्पित कर दिया है। दोनो ही कृष्ण की उपभोग्याये है और दोनो ही कृष्ण के विराटव, किन्तु उनके अपार्थिव रूप और संस्पर्श का सान्निध्य पाकर एकाकार होना चाहती है। साधुओं और योगियो के साहचर्य से उन्हें भक्ति का मार्ग मिल गया था। मीरा और आण्डाळ के पदो मे भागवत धर्म एवं सिद्धान्तो के विविध रूप भी दिखलाई देते है। इसका कारण यह है कि मीरा का पितृकुल वैष्णव है और आरभ से ही भागवत धर्म एवं दर्शन के प्रेमात्मक सस्कार मीरा ने ग्रहण किये है। इसी प्रकार आण्डाळ के पदों मे भी भागवत धर्म की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। आण्डाळ को भी अपने पिता वैष्णव भक्त शिरोमणि पेरियाळ्वार से शिक्षा मिली थी और उन्ही के आश्रम मे अनेक वैष्णवो की वार्ताओ का प्रभाव भी आण्डाळ पर पड़ा है। यही कारण है कि उनके पदो मे भागवत दर्शन का विवेचन हुआ-सा दिखलाई देता है तथा वैष्णव भक्ति के अखड के अन्तर से मीरा आण्डाळ ने समान रूप से तत्त्वों का सचयन कर अपने जीवन में उनका सिकास करते हुए कृष्ण का सान्निध्य पाने एवं समग्रत: एकरूप हो जाने की भावना दोनो ही कवयित्रियो मे स्पष्टत: दिखलाई देती है।

जैसा कि भक्ति विवेचन वाले अध्याय मे यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि भगवद्‌भक्ति की सबसे ऊँची भूमिका प्रिय के विरह को क्षण मात्र के लिये भी सहन न करने की शक्ति है। मीरा और आण्डाळ की प्रेमानुगा भक्ति समस्त भारत की भक्ति साहित्य मे चरम और उत्कृष्ट रूप मे मूर्त आकार रूप ग्रहण कर सकी। इसका कारण यह है कि दोनो नारियाँ है और दोनो ने अपने नारीत्व की पूर्णसार्थकता ईश्वर के लिये अर्पित होने में ही पहले से मान ली थी। दूसरा कारण यह भी है कि दोनो वैषयिक जगत् की सीमा की बाधा असह्य है। इस भौतिक जगत् मे रहती हुई दोनो भौतिक जगत की संकीर्णताओ से मुक्त होने के लिये बेचैन है। बेचैनी की यह स्थिति ईश्वरीय अनभव की पराकाष्ठा है।

पश्चिम के रहस्यवादी ईसाई कवियो की आत्मा की काली रात। (The dark night of the Soul) अनुभव एक समानान्तर अनुभव है। यह अनभव आध्यात्मिक धरातल पर इसलिये सार्थक है कि इस अनुभव की तीव्रता मे सारा त्रिभुवन ही प्रियतम हो जाता है। नैतिक धरातल पर इसलिये सार्थक है कि इस अनुभव के प्रवाह मे चित्त का कलुष एकदम प्रक्षालित हो जाता है और ससार का दुख, वेदना की गहराई मे आत्मसात हो जाता है। काव्य के रसबोध के धरातल पर वियोगानुभूति की सार्थकता इस माने मे है कि सयोग की अनुभूति यदि विच्छिन्न हो जाय तो वियोग की अनुभूति धारावाहिक बनी रहती है। इसीलिये इसमे चैतन्य एक क्षण के लिये भी नही होता। प्रकाश मन्द नही होता, भक्ति मन्द नही होती ॥

५. मीरां और आण्डाळ के पदों में अप्रस्तुत-योजना

काव्य में उक्ति वैचित्र्य का अलंकारिक मूल्य है। उक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिये कवि अभीष्ट अर्थ के साथ बाह्य एव चेतनजगत के विविध उपकरणो से सादृश्य स्थापन करता है। इस प्रक्रिया में अर्थ-विस्तार होता है एवं कवि मूल अर्थ को अतिशयोक्ति रूप मे अभिव्यक्त करके पाठक के मन का भावात्मक-प्रसार भी करता है। वैषम्यमूलक अलंकार-विधान के कारण आश्चर्य-भाव की सृष्टि सहज रूप मे हो जाती है तथा औचित्य के माध्यम से कवि की आतरिक वृत्तियो का प्रसार भी हो जाता है। वाक्‌चातुर्य या उक्तिवैचित्र्य मे आकर्षण शक्ति अधिक होती है। इसमे जिज्ञासाओ को जन्म देने की क्षमता भी होती है। जब कवि उक्ति-वैचित्र्य का प्रयोग करते हुए अपने आंतरिक सत्य की अभिव्यजना करता है, उस समय वह अभिव्यक्त सत्य पाठक के मन मे जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है।[१] बुद्धि गतिशील हो उठती है और वह भी उस अभिव्यक्त-सत्य को आत्मसात करने की चेष्टा करने लगता है। अलंकारिक अभिव्यजना की यह क्रिया साम्य-मूलक, वैषम्य-मूलक, अतिशय-मूलक, औचित्य-मूलक, वक्रता-मूलक तथा चमत्कार-मूलक अलंकारिक रूपों मे प्रकट होती है और इसी आधार पर अलंकार-विभाजन भी किया गया है। अलंकारों के इन बहु विभेदो में उपमा का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन भारतीय सस्कृत काव्य शास्त्र मे उपमा अलंकार की विशद विवेचना की गई है। तमिऴ् काव्य-शास्त्र मे भी अलकारो की मीमांसा हुई है तथा तमिऴ् काव्य-शास्त्र में अलकार का सर्व प्रथम विवेचन "तोलकाप्पियम्" मे हुआ है। इस ग्रंथ के रचयिता तोल्‌काप्पियनार ने उपमालंकारको मूल एव आदि अलकार माना है। जिस काल मे इस ग्रंथ की रचना की गई थी, उस काल में तथा उनके पूर्ववर्ती काल मे उपमालकार को "आदि अलंकार" माना जाता था। परवर्ती काल में अनेक काव्य शास्त्रियो ने अलंकार के विविध रूपों की विवेचना की और अनेक नये अलंकार प्रस्तुत किये। किन्तु ये सभी अलंकार उपमा अलंकार के समानरूप थे। अति परवर्ती काल में उपमालकार के अनेक समानधर्मा अलंकारों का प्रसार होने लगा। और आगे चलकर इन

---

१. **ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य ये अभिव्यंजना-शिल्प : डा० सावित्री सिन्हा** पृष्ठ २६२

नवीन अलंकारों ने भी अपनी प्रकृति, अपना धर्म एवं अपना आलकारिक विधान स्थिर कर दिया। तोल्काप्पियनार के पश्चात् तमिळ् भाषा के वैयाकरण "नच्चिनारक्किनियर" ने भी उपमा अलंकार को ही मूल अलंकार के रूप में स्वीकार किया है। प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्रीय मान्यताओं एवं तमिळ् काव्य शास्त्रीय मान्यताओ मे उपमा विषयक विवेचना मे समान रूपता उपलब्ध है।

भारतीय काव्य-शास्त्र के आचार्यो ने अलंकारों के कार्य एव धर्म पर भी विचार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अलंकारों का प्रधान कार्य भावोन्मेष, भावोत्कर्ष एवं उपकरणों के रूपानुभव, क्रियानुभव तथा गुणानुभव को तीव्र करना माना है। उनका मत है कि अलंकारों का प्रयोग अत्यधिक स्वाभाविक रूप मे होना चाहिए। यदि अलंकार प्रयोग प्रयत्न-साध्य हुआ तो उसमें अस्वाभाविक और कृत्रिमता आ जाती है। अलंकारों के कार्य और धर्म की दृष्टि में रखते हुए यदि सहजतम रूपों में अलंकारों की सृष्टि की जाय तो अलंकार सौन्दर्य मे अधिक प्रांजलता आ जाती है। अतएव अलंकार प्रयोग मर्यादित होना चाहिए। प्रयोग में असंतुलन की अधिकता अलकार के सहज सौन्दर्य के प्रभाव की बाधित करती है और अभिव्यंजना भी अमर्यादित हो उठती है। मीरा और आण्डाळ ने कला साधना नही की थी। अतएव इनके पदों में अलकारों का सहज रूप उपलब्ध है कही-कही प्रयोग की अतिशयता एवं भावोन्मेष के घनत्व के कारण कला साधना का आंशिक रूप दिखलाई पड़ता है। किन्तु यह सहज प्रयोग-साध्य है, प्रयत्न-साध्य नहीं। मीरां ने गिरधर की उपासना की और आण्डाळ ने रंगनाथ की। गिरधर और रगनाथ के प्रेमोन्माद में उन कवयित्रियों की काव्याभिव्यक्ति अत्यन्त सहज रूप में हुई है। अलंकारों के विधान निर्मित किये गए है किन्तु वे भी सहज और स्वाभाविक रूप में हैं। काव्य शास्त्रियों ने सादृश्य-मूलक अलंकार के दो प्रधान तत्त्वों में उपमेय और उपमान की गणना की है। इन्हें ही प्रस्तुत और अप्रस्तुत के रूप में स्वीकार किया गया है। काव्य शिल्प का चरम उत्कर्ष अप्रस्तुत विधान की योजना में माना गया है। सुन्दर अभिव्यक्ति के लिये कलात्मक अभिव्यंजना-शिल्प की आवश्यकता होती है। यदि अभिव्यंजना में कलात्मकता का सन्निवेष नही हो पाया तो उक्ति एक साधारण उक्ति मात्र रह जाती है। अप्रस्तुत योजना का प्रमख कार्य भावना को तीव्रगति प्रधान करना है। यही विधान पाठक को वस्तु के स्वरूप-बोध के साथ सौन्दर्य-बोध प्रधान करता है। यदि इनका समरस प्रयोग हुआ और सामंजस्य स्थापन उचित हुआ तो काव्य-सौन्दर्य बढ़ जाता है और

उसमे अत्यधिक प्रांजलता एवं कलात्मकता आ जाती है। डा० सावित्री सिन्हा का मत है कि 'स्वरूप-बोध के साथ सौन्दर्य-बोध होने पर ही काव्य का अस्तित्व होता है। प्रयोग-औचित्य, यथार्थता अभिव्यजकता, ध्वन्यात्मकता, उपमेय तथा उपमान—सयोजन के लिये अभीप्सित गुण है। यदि उपमान अमार्मिक और असमर्थ हुए तो अप्रस्तुत-विधान साधारण उक्ति को चमत्कारिक और रमणीय बनाने के बदले उपहास्पद बना देते है।"[1] अत. स्पष्ट है कि काव्य-गुण, एवं काव्य-प्रसार के हेतु उपमान की सुसयोजना आवश्यक है।

मीरा एवं आण्डाळ के अप्रस्तुत-विधान मे प्रभाव-साम्य, स्पष्ट रूप मे मिलता है। इस प्रभाव-साम्य के कारण ही दोनो कवयित्रियों के भगवदनुभव की अनुभूतियाँ अधिक स्पष्ट है। अलौकिक सत्य से उद्भूत् अनुभूतियो के प्रसार के कारण इन भक्त-कवयित्रियो की काव्य-धारा मे प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत-विधान का सयोजन अधिक हुआ है।

काव्य मे जिन उपमानो की आयोजना होती है उनमें तत्कालीन सास्कृतिक मूल्य सहज रूप मे समन्वित हो उठते है। सत्य तो यह है कि उपमान-योजना पर समाज के मूल्यो का विशेष प्रभाव पड़ता है। मीरां और आण्डाळ की काव्याभिव्यक्ति मे उनके युग के सास्कृतिक मूल्य सहज रूप मे समन्वित है। कही-कही उन पर प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगत होता है और कही-कही परोक्ष। मीरा ने हिन्दी (राजस्थानी) भाषा के माध्यम से काव्याभिव्यंजना की है और आण्डाळ ने तमिल भाषा के माध्यम से। किन्तु इन भाषागत विविधिताओ के होते हुए भी दोनो ही भक्त कवयित्रियो की उपमान-योजनाओं मे तत्कालीन सामाजिक एवं सास्कृतिक मूल्यों का प्रत्यक्ष एवं अप्रयक्ष रूप मे अभिव्यक्ति हुई है। यही कारण है कि उनकी काव्याभिव्यक्ति मे पर्याप्त एकरूपता के दर्शन होते है।

मीरां एवं आण्डाळ के पदो मे निहित काव्य-सौन्दर्य के अलंकारिक विधान तथा उपमान-योजना को अधोलिखित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(१) मूर्त के मूर्त उपमान
(२) मूर्त के अमूर्त उपमान
(३) अमूर्त के मूर्त उपमान
(४) अमूर्त के अमूर्त उपमान

उपर्यक्त विभाजन के आधार पर ही मीरा और आण्डाळ के पदो में निहित

---

१. **व्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना-शिल्प : डा० सावित्री सिन्हा पृष्ठ २६४**

उपमान-योजना अथवा अप्रस्तुत-योजना का अध्ययन किया जा सकता है। डा० सावित्री सिन्हा ने एक अन्य 'मूर्तामूर्त रूप उपमान" का निर्देश किया है। किन्तु मूर्त के अमूर्त उपमान तथा अमूर्त के मूर्त उपमान के अन्तर्गत इसका अध्ययन किया जा सकता है। वास्तव मे "मूर्तामूर्त" रूप उपमान जैसी कोई अलग अन्विति नही मानी जा सकती जिसका अध्ययन अप्रस्तुत योजना के अनुशीलन के समय किया जा सके।[1]

आण्डाळ के पदों में अप्रस्तुत-योजना :

भक्त कवयित्री आण्डाळ ने दो काव्य ग्रंथों की रचना की है। उनका प्रथम पद सकलन "तिरुप्पावै" तथा द्वितीय सकलन "नाच्चियार तिरुमोलि" है। इन दोनो पद-सकलन-ग्रंथों में अप्रस्तुत विधान का स्वरूप प्रकट हुआ है। आण्डाळ ने मूलत: अपने पदों मे सादृश्य-मूलक अलंकारों का प्रयोग प्रभूत मात्रा मे किया है। उनके पदो में अतिशयमूलक और विरोधमूलक अलकार-योजनाएँ भी सन्निविष्ट है किन्तु इनका प्रयोग गौण है । सादृश्य-मूलक अलकार-योजना, रूप-विधान, रूप-साम्य, धर्म-साम्य, प्रभाव-साम्य और काल्पनिक-साम्य पर आधारित हैं और इन्ही अलकार तत्त्वो के प्रयोगशील रूप आण्डाळ के दोनों पद सकलनो मे दृष्टिगोचर होते है।

तिरुप्पावै :

आण्डाळ कृत "तिरुप्पावै" में जो पद संकलित किये गए है, उनमें सादृश्य-मूलक अलकारों की प्रचुरता है। सादृश्यमूलक अलंकार का प्रथम तत्त्व रूप-सादृश्य है। रूप-सादृश्य का मूल उद्देश्य काव्य माधुर्य की अनुभूति एव कलात्मक सौन्दर्य-बोध प्रधान करना होता है। आण्डाळ ने सौन्दर्याभिव्यंजना के हेतु जिन प्रतीकों का चयन किया है उन्हें आलंबन से संबद्धता प्रदान कर प्रस्तुत सौन्दर्य को बढ़ाने की चेष्टा की है। तिरुप्पावै सकलन ग्रंथ के मगलाचरण के पद में आण्डाळ ने व्यक्त किया है "श्रीमन् नारायण ही परतत्त्व। परमतत्त्व है। यह सारा प्रपच उसका शरीर है। रक्तिम नेत्र तथा रविचन्द्र-मुख उभय धर्म के सूचक है। श्री कृष्ण का मुख मडल सूर्य की भाँति दीप्तिमय और तेजोमय तथा चन्द्र की भाँति शीतलता प्रदान करने वाला है।" इस प्रसंग में एक अभिव्यक्ति दृष्टव्य है—

---

१. ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना-शिल्प : डा० सावित्री सिन्हा पृष्ठ २६५

"तीक्ष्ण शस्त्रों से क्रूर कर्मकारी नन्द गोप का सुत,
सुन्दर नेत्रोंवाली यशोदा देवी का बाल सिंह,
नीलमेघ सदृश कांतियुक्त तन, रक्तिम नयन, रवि चन्द्र सदृश मुखवाला
श्रीमन्नानारायण हमें पुरुषार्थ प्रदान करेगा।"[1]

उपर्युक्त पद में सादृश्यमूलक अलकार के तत्वों मे रूप-साम्य एवं धर्म-साम्य का सुन्दर सहज समन्वय हुआ है। प्रतीकात्मक अप्रस्तुत–विधान की सप्राणता के सकेत रक्तिम नेत्र", "नीलमेघ' तथा "रवि चन्द," शब्द प्रयोगों से उपलब्ध होते हैं। आण्डाळ कृष्ण की भक्ति में विभोर हो गई। उसने मानवीय चेतना के साथ-ही-साथ प्रकृति के अन्य सौन्दर्योपकरणों में भी कृष्ण के सोन्दर्य के दर्शन किये थे। कृष्ण का सौन्दर्य भी सर्वव्यापी था। यशोदा ने अपने पुत्र कृष्ण के सदा ही दर्शन किये थे और दर्शन करते उनके नयन सुन्दर व विशाल हो गए थे। उपर्युक्त पद में "नीलमेघ" जैसे धर्म-साम्यबोधक सांकेतिक शब्द का प्रयोग हुआ है। इस शब्द मे प्रतीकात्मक अर्थ निहित है। नीलमेघ को देखकर भक्तो का दैविक और भौतिक तापों का शमन होता है। इसी भाव-द्योतन के लिये "नीलमेघ" शब्द की संयोजना इस पद मे की गई है। इसी प्रकार रवि और चन्द्र जैसे साकेतिक शब्द भी प्रयुक्त हुए है। तेज और शीलता की अनुभूति इन शब्दों में सन्निहित है।

आण्डाळ कृष्ण की उपासिका हैं। अतएव कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य के भी दर्शन किये। उसके पदों मे भक्ति, विह्वलता पूर्णतः प्रकट हुई है। उसने कृष्ण की भक्ति में रगकर कृष्ण की सुषुप्त तन्द्रा को तोड़ती हुई आह्लादित गोपियों की उत्सुकता के जो चित्र प्रस्तुत किये है तथा उनमे जिन उपमानों का प्रयोग किया है उनमें पूर्ण प्रतीकात्मक तथा चित्रात्मकता का मधुरिम सामजस्य है। कृष्ण को जगाती हुई गोपियो की भाव-विह्वलता एव औत्सुक्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

"सुन्दर व विशाल भूतल के समस्त अपने अभिमान के नाश होने पर तुम्हारी शय्या के नीचे झुंड-के-झुंड आकर जैसे पड़े रहते है वैसे ही हम गोपियाँ भी अभिमान शून्य होकर आपके पास आई हैं। हे कृष्ण तुम अपने रक्तिम नयन, पद-किंकणियों के संकुल मुख तथा अर्ध विकसित कमल पुष्प के सदृश शनै शनैः हमारी और अभिमुख होकर खोलो। यदि तुम उदित हो रहे बाल चन्द्र और बाल सूर्य के

१. तिरुपावै पद १

सदृश अपने कटाक्ष हम पर डालोगे तो हमारे समस्त पाप नष्ट हो जाएगे।"[१]

आण्डाळ के उपर्युक्त पद मे विविधि सौन्दर्य चित्रो के दर्शन होते है। गोपियों के कृष्ण दल में जाते हुए समूह का एक चित्र है। इस चित्र का प्रस्तुतीकरण ठीक उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार स्वयं को भगवान माननेवाले राजगणो के गर्व भंग होने पर पश्चात्ताप करते हुए भगवान की लीलाओं का स्मरण कर देव स्थल में समूह के समूह पड़े रहते हैं, ठीक इसी प्रकार गोपियों ने अपने भौतिक मूल्यों को विस्मृत कर दिया है। वे लौकिक मर्यादाओं को तोड़कर कृष्ण के रगमहल मे प्रवेश कर गई है। गोपियों ने स्त्रीत्वाभिमान को त्याग दिया है और वे "अनन्यार्हशेषत्व" मे दृढ़ रहने के लिये सकल्प कर श्री कृष्ण के निकट आई हैं। इसी पद मे कृष्ण के सुन्दर नयनों के चित्रण के लिये पद-किकणियों के मकुल-मुख तथा अर्ध विकसित कमल पुप्प आदि रूप-साम्य सौन्दर्यालंकार की आलोचना की गई है। इसमें उपमान-योजना का अत्यन्त सुन्दर स्वरूप दिखलाई देता है। कृष्ण के रक्तिम नयनों को प्रकृति और पुरुष के सौन्दर्य तत्त्वो एवं सौन्दर्य रूपो को समानान्तर रखकर रूप-सादृश्य की चेतन संयोजना की गई है। वास्तव में आण्डाळ कृष्ण की भक्ति में इतनी विभोर हैं कि उसे प्रकृति और पुरुष का विभेद ही नही दिखलाई देता है। उसने कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य को प्रकृति और पुरुष के लौकिक सौन्दर्य मे समरस कर दिया है। यही समरसता आण्डाळ के पदो में अभिव्यक्त हुई है। आण्डाळ जिन उपमानों का चयन किया है उनके औचित्य का प्रतिपादन भी किया है। इस प्रसंग में प्रतीकात्मक अप्रस्तुत विधान का एक अन्य सुन्दर उदाहरण दर्शनीय है—

"हे व्यामोहक, नील-मणि के सदृश श्यामल, महाप्रलय काल मे वट पत्र पर शयन करनेवाले पूर्वजों के आचरण में आये मार्ग-शीर्ष स्नान करने के निमित्त यदि तुम हमारी इच्छाओं का परिज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो हम सुनाने के लिये प्रस्तुत हैं। सृष्टि को प्रकंपित करने की शक्ति से पूरित ध्वनि नाद से निनादित पाचजन्य सदृश धवल शंख अत्यधिक गंभीर भेरी, मगलाचरण करने के हेतु वैतालिक, मंगल दीप विजय-पताका- शुभ-वितान हमें कृपा कर प्रदान करो।"[२]

---

१. तिरुप्पावै पद २२

२. तिरुप्पावै : पद २६

मार्ग शीर्ष व्रत के लिये इन अपेक्षित वस्तुओं के माध्यम से ये गोपियां श्री कृष्ण से अनन्य-प्रयोजनत्व की भिक्षा माँगती है । शख को शेषत्व ज्ञान का, वैतालिक को सात्विक साहचर्य का, मंगल दीपक को भगवत् शेषत्व का, ध्वजा को शेषत्व लक्षण कैंकर्य का, वितान को कैंकर्य फल का भोक्ता "मै" रूपी अहंकार निवृत्ति का प्रतीक माना गया है। आण्डाळ ने तिरुप्पावै के अधिकाश पदो में मूर्त से अमूर्त अप्रस्तुत-विधान की योजना प्रस्तुत की है और अमूर्त सत्य को मूर्त प्रतीको के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

आण्डाळ ने परंपरागत उपमानों का आश्रय लेकर गोपियों के प्रेमोन्माद की अभिव्यक्ति की है। नप्पिन्नै कृष्ण की प्रियतमा है। नप्पिन्नै सुषुप्त अवस्था मे है ओर गोपियाँ कृष्ण-प्रिया के उरोजो को स्वर्ण-कलश का सबोधन देती हुई जागृत करने का उपक्रम करती है। नप्पिन्नै के उरोजो को स्वर्ण-कलश की सज्ञा देना पररंपरागत उपमान-योजना का विधान निर्मित करना है।किन्तु इस संबोधन में विलक्षणता भी है । तिरुप्पावै ग्रंथ के २० वे पद मे नपिन्नै के उरोजो को स्वर्ण-कलश के साथ ही सुकोमल भी कहा गया है। अतएव इस अलकारिक योजना मे काठिन्य और सुकोमल जैसे विरोधी गुण एव धर्म के संकेत करने वाले उपमान भी है। नप्पिन्नै के गर्वोन्नत उरोजो को स्वर्ण-कलश के सदृश स्वर्णाभा से युक्त दीप्ति मे, किन्तु सुकोमलता से परिवेष्टित रूप मे भी प्रस्तुत किया गया है। अतएव इसमें रूप-साम्य के दोनो रूप के दर्शन होते है। उरोजो को आकार और बाह्य दर्शन स्वर्ण-कलश के समान आकर्षक एवं मधुरिम हैं, किन्तु उसका अन्तःप्रवेश सुकोमल है । विरह वेदना की ऊष्मा से तपकर उरोजो की काति निखर उठी है, किन्तु उसका अन्त.स्तल वियोग को सह नही सकता। अतएव नप्पिन्नै के संपूर्ण पार्थिवता वियोग के ताप मे झुलस सी रही है। यह अत्यन्त मार्मिक चित्र है। इस प्रकार की परपरागत उपमान-योजनाओ मे रूप-साम्य का विधान निर्मित करते हुए आण्डाळ ने अपने प्रेमोन्माद की अनावृत्त रूप मे प्रस्तुत किया है। यह आण्डाळ का ही सामर्थ्य है कि वह अपने हृदय के सर्वस्व को इतने प्राजल रूप मे प्रस्तुत कर सकी ।

आण्डाळ के पदों में अस्प्रस्तुत–योजना मूलत. परपरागत रूप मे ही प्रकट हुई है। इस भक्त कवयित्री ने पावस ऋतु के विविध उपकरणो को कृष्ण के रूप सौन्दर्य को चित्रित करने के लिये भी लिया है। ऐसे पदों मे कृष्ण की रूप-माधुरी पर पावस के उपकरणों को आरोपित किया गया है। आण्डाळ ने परंपरागत अप्रस्तुत–योजना का सरक्षण करते हुए भी कुछ नवीन उपमानों की आयोजना भी की है। उसने पर्जन्य देव पर श्रीमन् नारायण के अस्त्र-शस्त्र तथा

वर्ण के साम्य आदि को लेकर चित्रित किया है। तिरुप्पावै मे ऐसे अनेक पद है जिनमें पावस ऋतु की गरिमा के चित्रण के साथ ही कृष्ण के असीम रूप-सौन्दर्य का चित्रण भी किया गया है। इसी प्रसग का एक चित्र प्रस्तुत किया जाता है—

> "हे वर्षा देव। समुद्र की अगम जल राशि मे प्रविष्ट हो अपनी मेघा-वलियो मे असीम जल सचित कर विस्तृत आकाश में विहार करते हुए काल के कारणभूत प्रलय के आदि पुरुष ईश्वर के सदृश नील वर्णा हो, भगवान पद्मनाभ के करों में सुशोभित चक्रायुद्ध की तरह चमक-कर वलमपुरी शख की तरह गर्जन करते हुए सारग धनुष की शरवर्षा की भॉति ऐसा बरसो कि सपूर्ण सृष्टि आनदित हो उठे।[1]

उपर्युक्त पद मे वर्ण-साम्य एव धर्म-साम्य की स्वरूप–योजना के साथ ही पावस ऋतु के सौन्दर्याकण के निमित्त अप्रस्तुत–विधान की आयोजना की गई है। गोपियो ने मेघावलियो की श्यामलिमा में अपनी अंतर्वेदना के चित्र देखे है। गोपिया चाहती है कि श्यामवर्ण मेघ अपने अचल मे जल संचित कर उनके हृदय मे व्याप्त श्याम वर्ण कृष्ण की भॉति वर्षा करे। इस स्थल में कृष्ण और मेघ के अमूर्त और मूर्त रूप-विधान में रूप वर्ण एव धर्म-साम्य है। जिस प्रकार प्रलय काल में ईश्वर सपूर्ण सृष्टि की रक्षा करता है उसी प्रकार मेघराज अपने औदार्य का प्रसार करते हुए अपने धर्म को सकुचित किये बिना पाप, पुण्य पर ध्यान न देकर इस पृथ्वी तल पर रसमय वर्षा करे। आण्डाळ के पदो मे जिन गोपिकाओं का चित्रण किया गया है, उनमे उन्होने कृष्ण के रसमय स्वरूपों को आत्मगत किया ही है, इसके साथ ही प्रकृति के उपकरणों मे भी अपने अन्तर मे बसे हुए श्यामवर्ण शक्ति के चित्र देखे है। यही कारण है कि मेघो के गर्जन मे भी उन्हें पांचजन्य के नाद का आभास होता है और दामिनी के तर्जन मे भी शारग धनुष की शरवर्षा के सकेत मिलते है। इस अप्रस्तुत–विधान मे वर्ण-साम्य के साथ ही धर्म-साम्य की विलक्षणता भी दिखलाई देती है। तमिल काव्य के मीमांसको ने वर्षा को आचार्य का प्रतीक भी माना है। तिरुप्पावै के प्रसिद्ध टीकाकार अण्णगराचार्य ने भी वर्षा को आचार्य का ही प्रतीक माना है। अण्णगराचार्य के मतानुसार आचार्य भगवदनुभव रूपी सागर मे डूबकर रसामृत को अपने अतर मे भरकर शिष्यो को सारंग धनुष की भाँति उपदेश दे रहे है। इसमें मीमांसा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्री अण्णंगराचार्य ने अलंकार-विधान की चित्रात्मकता को सजीवता प्रदान करते हुए आध्यात्मिकता

---

१. तिरुप्पावै पद : ४

के संकेतार्थ देने के हेतु इस प्रकार की मीमासा प्रस्तुत की है । किन्तु यदि हम उनके इस आध्यात्मिक सकेत को स्वीकार न भी करे तव भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उपर्युक्त पद मे अलकार को अधिक प्राणवान बनाते हुए गुण-साम्य, धर्म-साम्य एव रूप-साम्य का अत्यधिक कलात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

आण्डाळ ने पावस ऋतु का चित्रण करते समय अपनी तन्मयता का पूर्ण परिचय दिया है। उनके पावस चित्रो मे भी अप्रस्तुत–योजना के चित्र प्रस्तुत है। इस प्रसंग मे तिरुप्पावै के एक पद की एक अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया जा सकता है—

> "वर्षा काल मे सिहनी के साथ निद्रामग्न सिह, जागकर अपने आग्नेय नेत्रो से केसर हिलाते हुए अगड़ाई लेकर गभीर गर्जन करते हुए जैसे गुफा से बाहर निकलता है वैसे ही अतसी पुष्प के सदृश रगधारी हे श्री कृष्ण। तुम अपने शयनागार से निकलकर रत्न जड़ित मनोहर सिहासन पर विराजकर हमारी आकाक्षाओ की पूर्ति करो।"[१]

इस पावस चित्र मे भी अप्रस्तुत–योजना पूर्णतः सयोजित है। इस अप्रस्तुत--योजना में भक्त कवयित्री आण्डाळ की सूक्ष्म कल्पना दृष्टि का प्रसार हुआ है। जिस प्रकार जागृत सिह के आग्नेय नेत्रो में पौरुष प्रतिबिबित हो उठता है ठीक उसी प्रकार गोपियां कृष्ण के पुरुषोचित रूप की कल्पना करती है। श्री कृष्ण के स्वरूप दर्शन को रूपक के माध्यम से प्रकट करते हुए आण्डाळ ने अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है ।

अप्रस्तुत-योजना का विधान निर्मित करते समय आण्डाळ की भक्ति भावना कुंठित नहीं हुई है। उसके पदों मे माधुर्य भाव की सरलतम अभिव्यक्ति हुई है। द्रमिड़ोपनिषत्तात्पर्य-रत्नावलि में भी सद्य-स्नाता पांचाली के रति ग से रजित अंगों को देखकर सखियों के मन में जागृत काम भाव एवं पौरुषे-मद की जागृति के विविध चित्र उपलब्ध हैं।[२] द्रमिड़ोपनिषत्तात्पर्य-रत्नावली में चित्रित पांचाली के

---

१. तिरुप्पावै : पद २३

२. पॉचाली गात्र शोभाहृत हृदय वधूवर्ग पुंभावनीत्य
पत्यो पद्मासहाये प्रणयिनी भजतः प्रेयसी पारतन्त्र्यम् ।
भक्तिः शृंगारवृत्तया परिणमिति मुनेर्भाव बन्ध प्रथिम्ना।
योगात् पागुत्तरावस्थितिरिह विरहो देशिकास्तत्र इतः ॥
"द्रमिड़ोपनिषत्तात्पर्य रत्नावलिः पद ३

सौन्दर्य चित्र को जैसा सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है, आण्डाळ के पदों मे भी एक सखी विशेष की तन-द्युति को देखकर सखियां काम-राग से मानों अवगाहन कर उठती है और उनके मन में पौरुषेय-वृति जागृत हो जाती है तथा वे भी रति रण में विजयिनी नायिका के कामोद्दीपक लावण्यमय अगो को निहारकर लुब्ध हो जाती है। आण्डाळ के अप्रस्तुत योजना में द्रमिडोपनिषत्तात्पर्यरत्नावली में सचित काम भावो की समान अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

"हे निर्दोष गोपो के वंश में उत्पन्न स्वर्णलता देवि ! वल्मीक के फण के सदृश सुन्दर भगवाली। हे वन मयूरी उठकर आओ।"[1]

इस प्रकार के सबोधन चित्रो से अप्रस्तुत-योजना की प्राजलता के ही दर्शन होते हैं। आण्डाळ ने प्रकृति चित्रो मे भी गोपियों के अंग सौन्दर्य की कल्पना की है और उसने कुवलय पुष्प, प्रतिमा पकज, बाल-शुक, रक्तकमल, किसलय, कुलदीपक, आदि उपमानो के माध्यम से गोपियो के वर्ण-लावण्य और अग सौन्दर्य का चित्राकण किया है। यह विधान परंपरागत ही है तथापि इनसे आण्डाळ की सौन्दर्य-दृष्टि की प्रखरता की कल्पना की जा सकती है । उनके पदो में निहित परंपरागत उपमानो का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—

"हे कुवलय नयने। प्रतिमा सी सुभग सुन्दरी ।"[2]
"पकज नयनी"[3]
"बाल शुक सदृश सारिके"[4]
"हे नप्पिन्नै देवि, तुम अपने रक्ताभ कमल सदृश करो से ककण की रुणझुण ध्वनि से कक्ष को निनादित करते हुए प्रसन्न चित्त होकर कपाट खोलो ।"[5]

आण्डाळ ने "मणिदीपक" और मणिवर्ण की योजना प्रस्तुत करते समय मे भी पंरागत उपमानों का ही आश्रय लिया है और उसी परंपरागत अप्रस्तुत-योजना में काव्याभिव्यक्ति की है । यथा—

"गोप वश के अलंकार मणि दीपक।"[6]
"मायावी मणिवर्ण श्री कृष्ण।"[7]

---

१. तिरुप्पावै : पद २३
२. तिरुप्पावै : पद १३
३. तिरुप्पावै : पद १४
४. तिरुप्पावै : पद १५
५. तिरुप्पावै : पद १८
६. तिरुप्पावै : पद ५
७. तिरुप्पावै : पद १६

इस प्रकार तिरुप्पावै ग्रथ में जितने भी पद सकलित किये गये है उनमें परंपरागत प्रयोगशील उपमानों की आयोजना ही हुई है। कलात्मक दृष्टि से यदि आण्डाल के पदो में निहित काव्य सौन्दर्य और उपमान-योजना की विवेचना की जाय तो सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि आण्डाळ ने परपरागत उपमानों को भी नवीन परिवेश में प्रस्तुत किया है । प्रकृति के चेतन अथवा अचेतन उपकरणो मे निहित बाह्य और अन्त.सौन्दर्य को आत्मगत करते हुए कृष्ण और गोपियों के साहचर्य के जो सजल चित्र प्रस्तुत किये है और इन चित्रो की सृष्टि करने के लिये जिन उपमाओ का आश्रय लिया गया है वे परपरागत होते हुए भी आण्डाळ की प्रेमोन्मादिनी कल्पना तूलिका से रगकर ऐसे निखर उठे है कि उनका परिवेष ही नया हो गया है। आण्डाळ के तिरुप्पावै ग्रथ की विशिष्टता ही यह है कि इस ग्रथ के पदों में निहित अप्रस्तुत-योजना मे वस्तु और विधान नवीन है, प्रतीक और प्रयोग नवीन है तथा उपमान भी नवीन रग से प्रकट होकर कृष्ण के लौकिक एवं अलौकिक, पार्थिव एव अपार्थिव राग-सत्य की सजल अभिव्यजना करते है ।

नाच्चियार तिरुमोलि (गोदा श्रीसूक्ति)

आण्डाळ ने आध्यात्मिक सत्य को लेकर कृष्ण के लौकिक एव अलौकिक सौन्दर्य को तिरुप्पावै ग्रथ मे चित्रित किया है । किन्तु नाच्चियार तिरुमोलि ग्रथ मे उनकी लौकिक दृष्टि अधिक प्रखर हो उठी है। और उनका सौन्दर्य-बोध अधिक भास्वर हो उठा है। इस ग्रथ में साम्य-मूलक अलंकारों की सहज आयोजना हुई है और साम्य-मूलक अप्रस्तुत-योजनाओं के द्वारा कृष्ण के लौकिक स्वरूप को अधिक व्यापारशील रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया गया है। प्रभाव-साम्य की विलक्षणता के दर्शन उनके पदों में सहज ही हो जाते है । ऐसे पदो मे जहाँ प्रभाव-साम्य के अलंकारिक विधान द्वारा कृष्ण की सौन्दर्य-माधुरी का चित्रण किया गया है वहाँ आलंबन रूपों मे अनेक रूपता आ गई है । प्रभाव-साम्य का एक अन्यतम उदाहरण इस प्रकार है—

> "हे मन्मथ नाथ। जिस प्रकार स्वर्ग में वास करनेवाले देवताओ को ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ मे अर्पित किया हूआ हविस्, वन विहारी श्रृगालो के सूंघने एवं स्पर्श से अपवित्र हो जाता है उसी प्रकार हे पुरुषोत्तम मै अपने इन पीन उरोजों के किसी लौकिक मनुष्य के स्पर्श की बात का प्रस्ताव सुनकर भी मैं अपवित्र हो जाऊगी, मै जीवित नही रह सकूँगी ।"[1]

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि पद : १-५

आण्डाळ तो माधुर्य रस की उपासिका है। उन्होने कृष्ण के लौकिक स्वरूप की उपासना करते हुए अपने समस्त शेषत्व को ही समर्पित कर दिया है। आण्डाळ के इस समर्पण भाव मे उनकी वैयक्तिकता भी पूर्णतः प्रकट हुई है। वह अपने उन्नत उरोजो को भी मन्मथ नाथ कृष्ण को ही समर्पित करना चाहती है। किसी भी लौकिक पुरुष का साहचर्य वह स्वीकार नही करती। इस काम प्रसग मे जिन उपमानो को लिया गया है उनके माध्यम से लौकिक एवं अलौकिक रति-राग की अभिव्यजना भी की गई है। आण्डाळ के इस ग्रथ मे साम्यमूलक अलकार योजनाएं उपलब्ध है। कही कही आण्डाळ ने प्रकृति के उपकरणों को लेकर अपने आन्तरिक भावो की जो अभिव्यक्ति की है उसमे कृष्ण का सौन्दर्य रूप ऐसा समरस हो गया है कि उपमेय और उपमानो को मूल भाव से विलग नही किया जा सकता। इस प्रसग मे एक ऐसा दृष्टान्त दृष्टव्य है कि जिसमें साम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना और भी अधिक सहज हो गई है—

> "हे कामदेव मै तुम्हारे चरणो में पवित्र पुष्पों को समर्पित करके त्रिकाल पूजा कर रही हूँ: इतने पर भी यदि मै क्षीराब्धिशायी भगवान की नि.स्वार्थ चरण सेवा करते हुए कृतार्थ नही हो सकी और रुदन करते हुए दुःख के सागर मे डूबी रही तो तुम्हे पाप लगेगा, तुम्हे लांछित होना पडेगा। यदि तुमने मुझे आत्मतुष्टि प्रदान नही की तो तुम्हारा कार्य और तुम्हारा व्यवहार ठीक उसी प्रकार होगा जैसे कि दिन भर कृषकों के हल मे जुते हुए बैलो के साथ दिन समाप्त होने पर कृषक उन्हे भोजन ही न दे अपितु मारकर निष्कासित भी कर दे।"[1]

वास्तव मे आण्डाळ के अन्तर्चेतन मे जो समर्पण भाव था उसी भाव की अभिव्यक्ति उसके इस पद मे हुई है और उसके साथ ही "बैलों की व्यथा" के माध्यम से अप्रस्तुत विधान का निर्माण करते हुए उसने अपने आन्तरिक दुःख को प्रकट किया है। आण्डाळ के काव्य में कही कही अप्रस्तुत योजनाएं अधिक कल्पित हो उठी हैं। ऐसे स्थलों में उन्मुक्तता किन्तु प्रयत्न साध्यता के भी दर्शन होते है। इस प्रसंग मे एक अन्य कल्पित साम्य-योजना प्रस्तुत है—

> "हे कामदेव, तुम इस व्रत से प्रसन्न हो जाओ। अपने धनुष पर मधु भरे पुष्प बाण पर सागर वर्ण भगवान श्री कृष्ण का नाम अकित कर मुझे बकासुर-बध करनेवाले भगवान को लक्ष्य बनाकर बाण

---

१. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १-९

चला दो और विकसित पुष्पों को अपने धनुष में लगाकर गोविन्द नाम को मन मै अंकित कर मझे वेंकटाद्रीश्वर नामक दीप में प्रवेश करा दो।"[1]

उपर्युक्त पद मे अप्रस्तुत-विधान की सफल संयोजना हुई है। आण्डाळ ने जो भी अप्रतुत चित्र प्रस्तुत किये है उनमें साम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना की ही प्रचुरता दिखलाई देती है। इस प्रसग मे एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है—

"हे कामदेव इतना अनग्रह करो कि काले काले जलद सदृश कांतिवाले अतसी पुष्प सदृश प्रियतम नीलोज्ज्वल भगवान कमल सदृश काति-युक्त मुख मे सुशोभित नयनों से मुझपर कटाक्ष करे।"[2]

तथा

"हे बरसनेवाले जलद, सदृशकृष्ण तुम्हारी चेष्टायें एवं मनोहर शब्दावलियो हमें पूर्ण प्रेमोन्मादिनी बना देती है। क्या तुम्हारा सौन्दर्य-मुख माया-मंत्र है ? हे पुण्डरीकाक्ष हमारे क्रीडा-गृहों को विनष्ट मत करो।"[3]

आगे

"हे तरंगायुत महा समुद्र के वर्णवाले।"[4]
"हे नील मणि सदृश कातियुक्त प्रियतम, प्रवाल ओष्टवाले।"[5]
"नील रत्न सदृश प्रियतम"[6]
"सुख सदृश वर्णवाले श्रीधर"[7]
"सागर वर्ण प्रियतम"[8]

इन अप्रस्तुत-योजनाओं मे वर्ण और रूप-साम्य की सघनता के दर्शन होते है। ऐसा प्रतीत होता है कि आण्डाळ ने रास-पति कृष्ण के लौकिक स्वरूप के समग्र दर्शन किये थे और उसका ही यह परिणाम हुआ है कि उसने कृष्ण की सौन्दर्य

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि : पद १-२
२. नाच्चियार तिरुमोलि : पद १-६
३. नाच्चियार तिरुमोलि : पद २-४
४. नाच्चियार तिरुमोलि : पद २-७
५. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ५-१
६. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ५-३
७. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ५-९
८. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ५-११

माधुरी को अत्यधिक प्राजलता, तारल्य दीप्ति और काति एव रसमयता प्रदान करने के लिये मूर्त-अमूर्त उपकरणों को लेकर प्रस्तुत सौन्दर्य का विधान किया है। उसके पदो मे वर्ण और रूप-साम्य की सुन्दर अलकारिक चित्रावलियां परिलक्षित है। आण्डाळ ने सामान्य जीवन के कार्य व्यापार से भी उपमानों का चयन किया है। ऐसे उपमानो में धर्म-साम्य के दर्शन होते है। इसका एक उदाहरण देखने योग्य है—

> "कलश, सूप, बालू आदि से खेलनेवाली हम गोपियो को स्पर्श एव उत्पीडन से सताप मत पहुँचाओ । क्या तुम नही जानते कि अधिक दुखित रहने पर गुड की मधुता भी विपाक्त हो जाती है।"[1]

उपर्युक्त प्रसग मे प्रेम की विवशता और एकनिष्ठता की अभिव्यक्ति के लिये प्रस्तुत उपकरण उपमान व्यजक शक्ति के विविध पक्षो का व्यक्तीकरण करते है। धर्म-साम्य के द्वारा प्रस्तुत विषय का आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे सहज कल्पनाओं सहजतर भावनाओ और सहजतम अभिव्यजनाओ का प्रसार परिलक्षित है। आनभूतिक अभिव्यजना करते हुए आण्डाळ ने अपने भावो को सत्य रूप में प्रकट किया है और अनेक स्थलो मे अप्रस्तुत-योजाओ के सजीव चित्रण के साथ ही अन्तर भावों की मार्मिक अभिव्यजना हुई है—

> "दिव्य विल्लिपुतुर क्षेत्र मे सुशोभित भगवान के स्वर्ण पादो के दर्शन करने की अभिलाषा मे परस्पर स्पर्धी मछलियो के सदृश मेरे नेत्र निद्रा से वंचित हो गये है।"[2]
>
> "हृषीकेश दर्शन न देकर मझे सताप पहुँचा रहे है । इसलिये ही मुक्ता सदृश शुचि स्मित, रक्ताधर एवं उरोज श्रीहीन हो गए है।"[3]

इस अप्रस्तुत–विधान मे आण्डाळ की विरह विदग्धता के दर्शन होते है। आण्डाळ रंगनाथ के वियोग में प्रेमोन्मादिनी और वियोगिनी हो गई है। उसका मर्म घायल हो गया है। इसी उन्माद की अवस्था मे आण्डाळ ने अपनी मर्मस्पर्शी अनभूतियों की अभिव्यंजना की है। इस विरह भाव को चित्रित करने के लिये उसने जिन उपमानो का चयन किया है वे भी इस भक्त कवयित्री की मर्म वेदना का प्रसार करते हुए आन्तरिक दु:ख को सहज रूप मे प्रस्तुत करते है। विरह वेदना से उद्भूत एक अन्य अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

> "हे कोकिल, मेरा शरीर अस्थिपिजर मात्र रह गया है। मेरी तीक्षण

---

१. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद २-५
२. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ५-५
३. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ५-६

बाण सदृश नेत्रो की पलके गिरती ही नही। इस तरह दुख सागर मे मै बैकुठ नामक नाव के अभाव मे भटक रही हूँ। तुम भली भाति जानते हो कि प्रियतम से बिछुडे रहने से कितनी विरह वेदना सहनी पडती है। अतः स्वर्ण-आभा से युक्त गरुड-ध्वजधारी और साक्षात् पुण्य रूप भगवान का यहाँ आवाहन करो।"[१]

आण्डाळ ने नाच्चियार तिरुमोलि नामक ग्रथ के षष्ट दशक के द्वितीय पद में 'ऋषभ-सदृश गोविन्द' की अभिव्यक्ति की है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अप्रस्तुत-विधान की योजना पर तमिल् संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा है। सांस्कृतिक परपराओ से प्रभाव ग्रहण कर आण्डाळ ने नाच्चियार तिरुमोलि मे सकलित जिन पदों की रचना की है उनमें अभिव्यक्त अप्रस्तुत योजना तत्कालीन सास्कृतिक मूल्यो का बोध भी कराती हैं। सपूर्ण पदावलियो मे समर्पण भाव ही दिखलाई देता है। कृष्ण को आण्डाळ ने अपने दैहिक राग का समर्पण कर दिया है। एक पद मे कह उठती है—

"हे धवल शख ! तू श्री कृष्ण के अधरामृत का पान करता रहता है। मै उनके अधरो से उद्भूत सुगंध का परिज्ञान चाहती हूँ। कहो, सुन्दर प्रवाल सदृश प्रियतम का अधर कर्पूर के समान सुसधित है या कमल पुष्प के सदृश गधयुक्त या मधुरतम है।"[२]

स्पष्ट है कि आण्डाळ की उपासना माधुर्य भाव से संबधित है। इसी प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि धवल शंख के सदृश गोपिया भी कृष्ण के अधरों का पान करने के लिये आतुर है। वे पांचजन्य से अधरामृत के स्वर्गिक आनन्द की चर्चा सुनना चाहती है। इस स्थल पर आण्डाळ ने रूप-सौन्दर्य की अलौकिक छटा छहरा दी है। रूप और धर्म-साम्य के सयुक्त अभिव्यंजना इस पद मे हुई है और गोपियो के विरह भाव में आण्डाळ का विरह भाव भी समन्वित सा परिलक्षित होता है।

आण्डाळ ने अपने पदो मे रूप-सौन्दर्य की जैसी गरिमा उद्घाटित की है वैसी अन्यत्र असंभव है। पांचजन्य शख की धवलिमा के दर्शन कर गोपियाँ आनन्द विभोर हो जाती है और आण्डाळ ने इस आनन्द विह्वलता का वर्णन इस प्रकार किया है—

"पूर्णिमा के दिन पर्वत के शिखर से उगते हुए शरद्कालीन चन्द्र

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ५-४

२. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ७-१

के सदृश हे सुन्दर श्रेष्ठ शंख । तुमने भी उत्तरमधुराधीश वासुदेव के हाथ में अपना निवास स्थान बना लिया है ।"[१]

आण्डाळ रूप-सौन्दर्य की चितेरी है । उसने कृष्ण को लौकिक रूप की उपासना की है । अतएव लौकिक सौन्दर्य के प्रत्येक उपकरण उसके आत्मिक भावों को प्रकट करने में समर्थ हुए है । वैसे इस अभिव्यक्ति मे भी परंपरागत अभिव्यंजना के ही दर्शन होते है और इसमे मूर्त-अमूर्त दृश्यविधान के द्वारा अप्रस्तुत-योजना प्रकट की गई है । वास्तव मे रूप और धर्म-साम्य का जैसा सजीव चित्रण भक्त कवयित्री आण्डाळ ने किया है वैसा तमिऴ् साहित्य मे अन्यत्र उतलब्ध नही होता । उसने कल्पित दृश्य-चित्रो के निर्माण किये है और अपने अन्तर्भावो की अभिव्यजना की है । इस प्रक्रिया मे उसने प्रकृति का अवलंबन लिया है और प्राकृतिक उपमानों के माध्यम से अप्रस्तुत-योजनाएं प्रस्तुत की है । प्रकृति सौन्दर्योपकरणों की प्राणवानता माधुर्य रस मे सन्निविष्ट होकर इस प्रकार हुई है ।

"नव विकसित रक्त कमल का मधुपान करनेवाले हस के समान अरुण नयन, श्याम सुन्दर श्री वासुदेव के सुन्दर करो मे आनन्द निद्रा का भोग करनेवाले हे शंख राज, तुम्हारा ऐश्वर्य सर्वोत्कृष्ट है ।"[२]

ऐसे स्थलो मे जहॉ पर प्रकृति के उपकरण आण्डाळ के माधुर्य भाव को जागृत कर सकते है वहॉ पर रूप-विधान के साथ ही रूप-साम्य की योजनाए भी देखने को मिलती है । उपर्युक्त चित्र मे आण्डाळ का सहज सौन्दर्य बोध निहित है ।

आण्डाळ ने रूप-साम्य की विविध सयोजना करते हुए प्रतीको का आश्रय भी लिया है और यह प्रतीक आण्डाळ के माधुर्य भाव को सत्य रूप मे प्रकट करते हुए अप्रस्तुत-योजना की एक स्वस्थ परपरा प्रदान करते है । इस प्रसग में आण्डाळ के पद में अभिव्यक्ति एक प्रकृति सौन्दर्य चित्र दर्शनीय है—

"आकाश में फैले हुए नील वर्ण वितान के सदृश दिखाई देनेवाले हे जलधरो ! निर्मल तीर्थ प्रवाह से युक्त श्री वेकटाचल में स्थित मेरे प्रियतम क्या इस तरफ़ आये है ।"[३]

---

१. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ७-३

२. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ७-७

३. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ८-१

इस पद मे आण्डाळ ने वर्ण-आयोजना करते हुए वर्ण-दीप्ति का सुन्दर चित्र चित्रित तो किया ही है, इसके साथ ही अपनी तन्मयता का भी परिचय दिया है। आकाश मे विचरण करनेवाली नीलवर्ण मेघावलिया आण्डाळ को सहस्र फण का आभास देती है। स्पष्ट है कि आण्डाळ ने अपने माधुर्य भाव को प्रकृति उपकरणो के साथ समरस कर दिया था। उसे प्रकृति के प्रत्येक उपकरण मे अपने उपास्य देव का ही सौन्दर्य दिखाई देता है। यही कारण है कि वह प्रकृति के अन्तःसौन्दर्य को इतने सहज रूप में चित्रित कर सकी।

आण्डाळ ने प्रकृति को मात्र सात्विक रूप में नहीं देखा। माधुर्य भाव की रसमयता ने प्रकृति के उपकरणो मे भी रग-राग बिखेर दिया था। प्रकृति भी कामोन्दोलन की परिहारकर्त्री हो गई थी। उसने प्रकृति सौन्दर्य से कामरंग का सचयन करते हुए एक स्थल पर अपनी रागात्मक अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

> "हे बादल, कामाग्नि मेरे शरीर के अन्तः भाग में प्रविष्ट होकर मुझे दग्ध कर रही है। मै अर्ध रात्रि में एकान्त मे हूँ। दक्षिण पवन की शीतलता से मेरा शरीर कांप रहा है और मैं दु ख भोग रही हूँ।"[१]

और—

> "विद्युत छटा से शोभित हे जलधरो! श्री महालक्ष्मी जी का आश्रय-भूत वक्षवाले वेंकटनाथ भगवान से मेरी यह बिनती कहियेगा कि मेरे ये संपुष्ट बाल उरोज केवल उनके शरीर से परिरंभन के लिये उत्सुक है।"[२]

आण्डाळ ने इस स्थल पर माधुर्य रस की उद्भावना तो की है, इसके साथ ही अपना सूक्ष्म भावोन्मेष भी प्रकाशित किया है। स्थूल साम्य का निर्वाह करते हुए भी आण्डाळ अपने व्यक्तित्व मे सौन्दर्य हीनता का चित्रण चित्रित कर अपनी विरह वेदना और दुख की घनीभूतता का चित्रण ही उपर्युक्त उपमानो द्वारा करती है। यह आण्डाळ का आत्मनिवेदन है। किन्तु इसे ही माधुर्य भाव की समरसता भी कहा जा सकता है।

आण्डाळ ने अपने आत्मराग की अभिव्यंजना के लिये जिन उपमानो का चयन किया है, ये अप्रस्तुत-चित्र को पूर्णतः प्रकट कर देते है। एक स्थल पर वह कह उठती है—

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ८-२

२. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ८-३

"वर्षाकाल में शिथिल होकर गिरनेवाले अर्क पत्र की तरह शीघ्र पतित होने वाली को इस अवधि में क्या आप एक अनुग्रहपूर्ण सदेश नही भेजेगे ।"[1]

"हे बादलो, मच्छड़ों से खाये हुए कपित्थ फल के सदृश मेरे प्रियतम ने मदिर मे प्रवेश कर मेरा सर्वस्व का अपहरण कर लिया है।"[2]

स्पष्ट है कि इस रूप-सौन्दर्य की योजना मे आण्डाळ ने अपने मन की वेदना ही प्रकट की है। रूप-सौन्दर्य की प्रतियोगिता मे जो तत्त्व।(अप्रस्तुत) नायिका से दूर रह गये थे वे भी उसे विरह सतप्त देखकर गर्वोन्नत हो रहे है। वास्तव मे सौन्दर्य के इस गुणात्मक विकास में आण्डाळ ने जिन अप्रस्तुत-योजनाओं को सयोजित किया है उनसे उसके अन्तर्दुख का आभास ही होता है। विरह की व्याकुलता और वियोगजन्य सतप्तता का एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है—

"तिरुमालिरुमसोलै क्षेत्र मे सर्वत्र सिन्दूर चूर्ण सदृश इन्द्रगोप कीट ही उड़ रहे है। मन्दर पर्वत द्वारा मथित क्षीर सागर से उद्भूत सार-तत्त्वो के रूप मे सर्वोत्कृष्ट प्रियतम सुन्दर वाहु वाले "सुन्दरवाहु भगवान" से मैं कैसे बच सकती हूँ।"[3]

उपर्युक्त अंश में प्रभाव और रूप-साम्य का घनत्व ही दिखलाई पड़ता है। इन संयुक्त चित्रावलियो को प्रस्तुत करते हुए आण्डाळ ने अपनी सूक्ष्म कला दृष्टि का परिचय दिया है। आण्डाळ ने यह स्वीकार किया है कि काव्य मे विरह भाव ही सत्य है, विरह-भाव को ही आदि सत्य माना है और इसी भाव की अभिव्यक्ति के लिये उसके ऐसे काव्योपकरण सग्रहीत किये है जिनसे विरह भाव की अभिव्यक्ति तो होती तो है, इसके साथ अप्रस्तुत-विधान भी अपने आप निर्मित हो जाते है। इस प्रसंग में एक अन्य संयुक्त चित्रावली दृष्टव्य है—

"वाटिका के हे काकण पुष्पो। कला फल ! अतसी पुष्पो ! मयूर ! कोकिल ! तुम सब पंच महा पातकी हो। तुमको मेरे प्रियतम का वर्ण सौन्दर्य किस उद्देश्य से प्राप्त हुआ है।"[4]

वास्तव में इस स्थल मे आण्डाल ने जिन उपकरणो का सचयन किया है वे

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ८-८
२. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ८-९
३. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ९-१
४. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ९-४

उसके अंतरतम की विरह संतप्तता का ही परिचय देते हैं। भगवान श्री कृष्ण का वर्ण रूप भी श्यामल है और काकण पुष्प, कलाफल, अतसी पुष्प, कोकिल और मयूर का वर्ण रूप भी श्यामल है। इन वर्ण-साम्यमूलक दृश्य-चित्रों को देखकर आण्डाळ ने इन उपकरणो की श्यामलिमा मे अपने प्रियतम के वर्ण-सौन्दर्य के ही दर्शन किये है। वास्तव में श्यामल रग के प्रति आण्डाळ के मन में जो आकर्षण उत्पन्न हो गया है और कृष्ण के श्यामल वर्ण रूप का जो विराटत्व उसके हृदय में एकाकार हो गया था वही विराटत्व इन उपकरणो को देखकर जागृत होता है। वह स्वय अपने लौकिक सौन्दर्य मे श्यामलिमा का आभास नही पा रही है और इसीलिये ऐसे उपकरण कि जिनमे उसके प्रियतम समरस हो गए है वे उसे आत्मतुष्टि प्रदान न कर उसकी विरह सतप्तपा को ही जागृत करने लगे। सत्य तो यह है कि श्यामल रंग, आण्डाळ के हृदय मे ही समरस हो गया है। उसके लौकिक रूप मे ही एकाकार हो गया है और उसकी दृष्टि मे विस्तार पा गया है। अतएव दृष्टि श्यामलिमा के कारण उसे प्रकृति का चेतन और अचेतन उपकरण भी श्यामल दिखलाई देता है। उन उपकरणों मे भी उसे प्रियतम की तन-कांति और रूप-द्युति दर्शन होते हैं। आण्डाळ ने इसी प्रकार की साम्यमूलक अप्रस्तुत योजनाएं प्रस्तुत करते हुए अपने विरह भावों की अभिव्यक्ति तो की ही है, इसके साथ ही काव्य सौन्दर्य की एक अनोखी छवि भी छहरा दी है। इस प्रसग मे एक अन्य उदाहरण देखने योग्य है। आण्डाळ पुहुपो के जीवन्त सौन्दर्य को निहार करके कह उठती है—

> "यूथिकापुष्प ! मुझे श्री सुन्दरबाहु भगवान धवल मुस्कान की स्मृति दिला रहे है। लताए मेरा परिहास करती दिखाई दे रही है। इनका परिहास ऐसा प्रतीत होता है मानों यह कह रहा हो कि तुम मुझसे विलग नही हो सकते।"[1]

और—

> "हे सुन्दर काकण पुष्पो ! अतसी पुष्पो ! तुम मेरे प्रियतम की शोभा का स्मरण दिलाकर शोक सतप्त कर रहे हो। मुझे इस विरह से मुक्ति का मार्ग बतलाओ।"[2]
>
> "पुष्पित वनों से भरे तिरुमालिरूम सोलै में शोभायमान कमलाक्ष मेघश्याम भगवान के दिव्य मूर्त्ति सदृश पुष्पोविष्ट हे भ्रमर। हे

---

१. **नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ९-२**
२. **नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ९-३**

कमल पुष्पो !! मुझे इस दुख से मुक्ति का मार्ग दिखलाइये।"[1]

ऐसे स्थलो मे आण्डाळ की विरह भावना और भी अधिक तीव्र हो जाती है। वह यूथिका पुष्प की धवलिमा मे श्यामल कृष्ण की स्मित का दर्शन करती है और प्रकृति के उपकरणो के समक्ष वह अपना मनोभाविक दौर्बल्य भी प्रकट करने लगती है। सत्यता यह है कि उसका प्रियतम पुष्पो के श्री सौन्दर्य से मुखरित होता था और पत्तियों के आन्दोलन मे काम नर्तन करता था। ऐसी स्थिति में प्रकृति के समक्ष आण्डाळ की अन्तःसत्ता ही अनावृत हो गई है। उसने अलौकिक दृष्टि से ही प्रकृति के दर्शन किये है और यही कारण है कि प्रकृति मे रमा हुआ "काम" उसके अन्तर में रमे हुए "श्यामल-काम" को साहचर्य प्रदान कर उसे कामोद्दीप्त करते हुए विरहोन्मुख बना दे ता है। आण्डाळ के काव्य मे निहित ये अप्रस्तुत-योजनाए, इस भक्त कवयित्री की अन्त.राग की भास्वरता का प्रकटीकरण तो करता ही है, इसके साथ ही प्रकृति के अन्त. और बाह्य राग को भी प्रकट कर आण्डाळ के श्यामल-राग" के समानान्तर ला देती है। यह समानान्तरण-क्रिया ही आण्डाळ की अप्रस्तुत योजनाओ की आदि आत्मा है, आदि सत्य है।

आण्डाळ ने परंपरागत उपमान-योजनाओ को लेकर अपने विरह भाव की अभिव्यक्ति की है। उत्तर भारत के कृष्ण भक्ति काव्य मे भी इसी प्रकार के परंपरागत उपमान-योजनाओ के माध्यम से अपने भक्ति भावो की अभिव्यक्ति भी हुई है। अन्य भक्त कवियों के अनुकूल महाकवि घनानद ने भी परपरागत उपमानों का प्रयोग करते हुए अपने काव्य भावो की अभिव्यजना की है। उत्तर भारत के कृष्ण भक्त कवियो ने युद्ध को रूपक मानकर प्रिय के मिलन के सकेत प्रस्तुत किये है।[2] आण्डाळ ने भी इसी प्रकार की अप्रस्तुत योजनाओ के माध्यम से अपने विरह और मिलन भावो की अभिव्यक्ति की है। यह अभिव्यक्ति इस प्रकार प्रकट हुई है—

> "हे कोडल पुष्पो ! नीलवर्ण श्री कृष्ण कहाँ है ? क्या उन्होंने तुम सबको युद्ध के उपकरणो से सज्जित कर मुझ पर आक्रमण करने हेतु भेजा है। मै तुम सबसे पीड़ित हूँ। मै किसके पास जाकर अपनी विरह-व्यथा सुनाऊँ।"[3]

---

१. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद ९-५

२. घनानन्द-कवित्त-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पद : ७६

३. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १०-१

उपर्युक्त पंक्तियों में आण्डाळ की प्रेमानुभूति अत्यधिक द्रवित हो उठी है और इसके लिये उसने जिन उपकरणो का चयन किया है वे सभी आण्डाळ के विरह भाव की ही अभिव्यक्ति करती है। पुष्पों को युद्ध अभियान के लिये सज्जित कर भेजने का जैसे कल्पनात्मक चित्र आण्डाळ ने प्रस्तुत किया है वैसा तमिल काव्य मे अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तल मे आण्डाळ का आन्तरिक और बाह्य रूप "श्याम-सत्य" से रगा हुआ है। इसीलिये उसने इन भावों की अभिव्यक्ति परपरागत उपमानो के माध्यम से की।

लाक्षणिक उपमान तथा व्यजनामूलक साम्य की स्थापना आण्डाळ की अप्रस्तुत-योजना की मुख्य विशेषताए है। निम्नलिखित प्रतीकात्मक उपमान में दिव्य ज्योति भाव व्यक्त हुआ है—

> "हे ऊपर विकसित पुष्पो ! समस्त लोकों को पार कर दिव्य ज्योति रूपी परमपद में शोभायमान वेद स्वरूप श्रीमन्नारायणण के दाहिने हाथ मे स्थित सुदर्शन ज्योति के सदृश क्या मुझे सतप्त किये बिना कैवल्यनिष्टो की गोष्टी मे पहुँचा सकते हो।"[1]

उपर्युक्त पद मे आण्डाळ के आध्यात्मिक दृष्टि का आभास मिलता है। इस अश मे आण्डाळ ने "ऊपर विकसित पुष्पो" से श्रीमन्नारायण और कैवल्य" से एकाकार होने की भावना का प्रतिपादन किया है। जिन स्थलों में आण्डाळ की विरह भावना अधिक विदग्ध अधिक शोक संतप्त, अधिक घनीभूत हो गए है उन स्थलों मे उसने प्रकृति से उद्दीपन चित्रों का आकलन किया है किन्तु इन उपमानों के माध्यम से जिस अन्त:सौन्दर्य की विवेचना की गई है उनसे आनुभूतिक तरलता का भी बोध होता है। उपर्युक्त प्रसग मे नाच्चियार तिरुमोऴि मे संकलित १०-३ पद को लिया जा सकता है। इस पद मे आण्डाल की प्रभानुभूतिया पूर्णरूपेण अनावृत हो गई है। एक अनावृत सौन्दर्य-विधान प्रस्तुत है—

> "हे बिब लता देवी ! तुम अपने सुन्दर फलों से मेरे प्राणो का सहार मत करो।[2]
>
> "हे यूथिका पुष्प, तुम अपने मंद हास से मत सताओ।"[3]
>
> "हे मयूरगण ! श्री कृष्ण रूप सदृश अपना रूप दिखाकर मनोहर

---

१. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १०-३
२. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १०-३
३. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १०-४

नृत्य करनेवाले, तुम्हारे चरणो में पडती हूँ ।"[१]

"पंख फैलाकर नृत्य करने वाले हे सुन्दर मयूरो, तुम्हारे नृत्य को देखने की क्षमता मुझमे नही है ।"[२]

उपर्युक्त पदों मे आण्डाळ की विरह भावना के दर्शन तो होते ही है, इसके साथ ही श्रीमन्नारायण में एकाकार होने की उत्कठ अभिलाषा भी दिखलाई पड़ती है । वह श्रीमन्नारायण के निकट जाना चाहती है, किन्तु उसमे इतनी क्षमता नही है कि वह अनावृत प्रियतम के सौन्दर्य का रूप दर्शन कर सके । यही कारण है कि वह मयूरो को सबोधित करते हुए कहती है "तुम्हारे नृत्य को देखने की क्षमता मुझमे नही है ।" सत्य तो यह है कि वह अनुरक्त-ब्रह्म के निकट रहकर सदा सेवा करना चाहती है, विरक्त ब्रह्म में नही। प्रकृति के उपकरणो में 'बिबलता" "यूथिका पुष्प" 'मयूरगण" आदि मे उसने विरक्त ब्रह्म के रूप देखे थे । इन उपकरणो के सौन्दर्य में उसे विरक्त ब्रह्म सौन्दर्य के ही दर्शन होते थे । किन्तु वह तो श्यामल कृष्ण की अनुरागिनी है, श्यामल ब्रह्म की अनुरागिनी है, अनुरक्त ब्रह्म की परिचायिका है । वह अपनी आत्मा का विराटत्व, अनुरक्त ब्रह्म को ही समर्पित करना चाहती है। अनावृत ब्रह्म सौन्दर्य के दर्शन कर उसके मन में भय की भावना जागृत हो जाती थी किन्तु अनुरक्त ब्रह्म को देख कर उसकी आत्मा मे विराटत्व आ जाता था । वह अनुरक्त ब्रह्म के साथ तरग-रति करती सी प्रतीत होती है और यही वास्तव मे आण्डाळ की आध्यात्मिक दृष्टि है । इसी दृष्टि प्रसार के लिये उसने ऐसे उपमानो का चयन किया है । जो उसके अनुराग को प्रकट कर सके और जो उसे अनुरक्त ब्रह्म में लीन कर सके, एकाकार कर सके ।

आण्डाळ ने प्रतीकात्मक उपमानो के अतिरिक्त साधारण जीवन से गृहीत उपमानों के द्वारा प्रभाव-साम्य की विविध योजनाए प्रस्तुत की है । एक स्थल पर वह कहती है—

"हे बादल !

हे बादल !! बाहर मिट्टी से लेपन कर गर्भभाग से मोम पदार्थ को निकालनेवालों की तरह पहले मुझे गाढ़ालिगन कर, पीछे विरह व्यथा से प्राण संहारक श्री वेंकटाद्रि भगवान से मेरी इच्छा के अनुकूल उनसे गाढ़ालिगन कराकर खूब बरसो ।"[३]

---

१. ना० ति० पद १०-६
२. ना० ति० पद १०-७
३. ना० ति० पद १०-८

और—

"हे सागर !
हे सागर ! जिस प्रकार। (विष्णु ने) अपनी शैय्या रूपी जलराशि का मथन कर अन्दर से सार रूपी अमृत को निकाल दिया था, उसी प्रकार क्या तुम मेरे शरीर मे प्रवेश कर मेरे प्राणों को हरण करनेवाले भगवान विष्णु से उनकी शय्या शेषनाथ के समीप जाकर मेरे दु:खो को कहोगे?"[१]

दुख के आधिक्य के कारण (कृष्ण का सदेशा प्राप्त न होने के कारण) आण्डाळ का कोमल कर भी क्षीण हो गए। उसके लौकिक राग में भी क्षीणता आ गई। उसके मन मे प्रियतम से मिलने की तीव्र अभिलाषा है। वह बादलो को सकेत करती हुई अपनी आन्तरिक भावना को ही व्यक्त करती है। वह कृष्ण का आलिगन करना चाहती है। ब्रह्म मे समर्पित होना चाहती है और इन्ही भावो की अभिव्यक्ति आण्डाळ के पदो मे हुई है। उसके हृदय मे संयोग की भावना इतनी तीव्र हो जाती है कि वह सागर को सबोधित करते हुए कहती है "सागर ही उसकी विरह व्यथा को शेषनाथ से कहे।" उपर्युक्त पदो मे "बादल और सागर" दोनो ही प्रतीकात्मक उपमान है। उसका मन बाह्य रूप बादलो का साहचर्य पाकर विशाल आकाश मे विहार करता सा प्रतीत होता है। और अन्त:रूप, सागर के अन्तर के रहस्यों को अनावृत करना चाहता है। वास्तव मे रागात्मक स्थितियो की परिणति ही इस प्रकार होती है। लौकिक रूप जितना स्वच्छन्द होगा, अलौकिक रूप ब्रह्मेन्द्रियो से उतना ही शासित होगा। आण्डाळ के पदो में जो विरह भाव अभिव्यक्त हुआ है उसमे ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है और इस बोधगम्यता के लिये जो उपमा प्रस्तुत किये गये है वे भी उसकी विरह भावना के ही दर्शन कराते है। आण्डाळ ने परपरागत उपमानो को लेकर दैहिक रूपो की अभिव्यक्ति भी की है। कृष्ण के वियोग के कारण उसका तन अत्यन्त क्षीण हो गया। उसके हाथों की चूड़ियाँ गिर गई। वह चूडियो को पहनना चाहती है। कृष्ण को आत्मसात करना चाहती है। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिये आण्डाळ ने एक अत्यन्त सुन्दर अप्रस्तुत विधान प्रकट किया है—

"हे आभूषण से अलंकृत सुन्दरियो ! क्या मेरी पसंद की ये चूड़िया प्रियतम के करों मे स्थित शखराज के सदृश नही हो सकतो।[२]

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि : पद १०-९
२. नाच्चियार तिरुमोलि : पद ११-१

तथा—

"मेरे प्रिय स्वामी ने मेरे हाथ के कगन को भ्रशित कंगन बनाये"[१]

उपर्युक्त उद्धरणो मे आण्डाळ की विरह भावना के ही दर्शन होते है। इन चित्रो मे आण्डाळ ने जिन विरहानुभूतियो की अभिव्यक्ति की है उनमे कुछ अतिरजना है। भारतीय एव तमिऴ् काव्य साहित्य मे इस प्रकार के अतिशयोक्ति के प्रयोग हुए है किन्तु इन प्रयोगों में कही-कही इतनी अतिरजना बढ़ गई है कि काव्य गुण, काव्य-धर्म , और काव्य-रीति बाधित होने लगी है किन्तु आण्डाळ के इन पदों मे अतिरंजना का जो स्वरूप दिखलाई देता है वह काव्य तत्त्वों का संरक्षण तो करता ही है, इसके साथ ही काव्य-धर्म का निर्वाह करते हुए वास्तविक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति करता है। आण्डाळ की अतिरजना उपहास्पाद नही है।

आण्डाळ ने जहाँ-जहाँ प्रभाव-साम्य के अप्रस्तुत-विधान प्रस्तुत किये है वहाँ ही रूप-साम्य की योजनाएँ भी प्रस्तुत की है। इस प्रकार का एक अन्य चित्र देखने योग्य है—

"वर्षा काल का शीतल पुष्प, करुविळै पुष्प, कमल पुष्प, ये सब मेरे सन्मुख आकर मुझे ऋषीकेश के पास जाने की प्रेरणा देते है।"[१]

इस प्रकार आण्डाळ प्रकृति से प्रिय के मिलन की प्रेरणा पाती है। प्रकृति सकेतदायिनी शक्ति है और आण्डाळ प्रेरणा ग्रहण करनेवाली शक्ति। उसने अपने जीवन को ब्रह्म मे ही लीन करने का अनुष्ठान किया था। इन समर्पण भावों की अभिव्यक्ति जहाँ कही भी हुई है उनमे अपूर्व काव्य एव कला सौन्दर्य निहित है। एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है—

"हे माताओ ! कृष्ण नामक काले देव के दर्शन की अभिलाषा रखने वाली मुझसे पराये का-सा व्यवहार कर अम्रिका रस छिड़कने के सदृश कटुवचन मत सुनाओ।"[२]

तथा—

"यह संसार जैत्र गरुड़-ध्वज भगवान की आज्ञा का उल्लंघन कही कर सकता। माता यशोदा ने अपने पुत्र को कटु नीम सदृश पाला पोसा है।"[३]

---

१. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १२-६
२. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १३-१
३. नाच्चियार तिरुमोऴि : पद १३-७

इन पदो मे उसने परपरागत उपमानो के साथ-साथ तमिल भाषा मे प्रचलित कहावतो को भी लेकर अपनी आतरिक वेदना एव क्षोभ की अभिव्यजना की है। इससे यह स्पष्ट है कि आण्डाळ ने तत्कालीन लोक जीवन को विस्मृत नही किया है और उस लोक सत्य को लेकर अपने भाव को अभिव्यक्त किया है।

आण्डाळ के पदो में काल्पनिक चित्रो की अधिकता दिखलाई देती है। इन काल्पनिक चित्रो मे भी वर्ण-साम्य और रूप-साम्य की सुन्दर सयोजना हुई है। इस प्रसंग मे एक अन्य कल्पना-चित्र प्रस्तुत किया जाता है—

> एक सखी दूसरी सखी से कहती है: "क्या तुमने मेरे ईश्वर को इधर आते देखा है जो मेघोत्पन्न कमल के सदृश शोभायमान अपने नेत्र रूपी बडे जाल से फसाकर अपने साथ ले जाते है।"
>
> सखी उत्तर देती है: "हाँ, वृन्दावन मे देखा जो मोतियो से अलकृत वस्त्र से सुशोभित श्रम बिन्दुओ से अलंकृत होकर करि कलभ के सदृश खेल रहे थे।"[१]

इस पद मे आण्डाळ की जिज्ञासा द्विगुणित हो गई है। वह अस्थिर हो कर एक सखी से प्रियतम का पता पूछती है। सखी भी उसका स्वीकारात्मक उत्तर देती है। वास्तव मे आण्डाळ मे इतनी अधिक तन्मयता है और मिलन की इतनी अधिक उत्कठा है कि वह वियोगिनी नारी के अनुरूप प्रियतम का पता पूछती है और सयोग की आकांक्षा करती है। इस प्रकार की कल्पना चित्रो मे आनुभूतिक रसमयता और भावात्मक तन्मयता के दर्शन होते है।

आण्डाळ के पदों मे कल्पना-चित्रो की भास्वरता के साथ ही अप्रस्तुत-योजना की अत्यन्त सरल सयोजना के दर्शन होते है। एक स्थल पर कहती है—

> एक सखी दूसरी सखी से पूछती है: "क्या तुमने परम प्रिय स्वामी को देखा है जो बाह्य शरीर के सदृश आन्तरिक रूप से भी श्यामल है जो मेरे मन की अभिलाषाओं को विनष्ट करते है और बृहद् श्याम मेघ के सदृश है।"
>
> दूसरी सखी उत्तर देती है: "हाँ, हमने वृन्दावन मे दर्शन किये जो तारागणो से अलंकृत आकाश के सदृश अपने अगणित मित्रो के साथ आ रहे है।"[२]

उपर्युक्त पद में आण्डाळ की सयोग भावना और विरहानुभूति का सजल

---

१. ना० ति० : १४-४।

२. ना० ति० : १४-६।

सामंजस्य हुआ है। वह कृष्ण का पता पूछती है, उसकी आँखो के समक्ष विराट आकाश मे तैरती हुई मेघावलियाँ प्रकट हो उठती है। उसका प्रियतम भी मेघ-वर्णा है। वास्तव में यह प्रभाव-साम्य से उत्पन्न रूप-योजना है। आकाश मे तैरते हुए मेघ की श्यामलिमा को नेत्रों से पी कर वह अपने अतर मे बसे हुए श्यामल कृष्ण के दर्शन पाती है। आण्डाळ का बाह्य और अंतर समान है। श्यामल कृष्ण ने उसे श्यामल-दृष्टि प्रदान की है और उसके हृदय को भी श्यामल रंग से, रंग दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उसका चेतन और अव-चेतन, मन, सयोग और वियोग की तीव्र अनुभूतियॉ ग्रहण कर, अपने अतर में बसे हुए श्यामल कृष्ण के दर्शन करता है। वह वियोगिनी है, उसकी सखियों पर उसके वियोग की छाया है। वृन्दावन के विराट आकाश में अलमस्ती में झूमते हुए चन्द्र की ओर सकेत करती हुई सखियॉ कृष्ण का पता देती है। इस तरह आण्डाळ के पदो मे भक्ति की अपूर्व तन्मयता है। उसके पदो में निहित कलात्मक सौन्दर्य भी अप्रतिम है। रूप-साम्य, धर्म-साम्य, गुण-साम्य, वर्ण-साम्य आदि की अप्रस्तुत-योजनाएँ प्रस्तुत करते हुए आण्डाळ ने अपनी सूक्ष्म कलात्मकवृत्ति का भी परिचय दिया है। उसके पदो मे निहित अप्रस्तुत योजना अत्यन्त स्वस्थ और सुन्दर है।

मीरां के पदों में अप्रस्तुत-योजना :

भक्त कवयित्री मीरा ने विरह भावना से उद्दीप्त हो कर जिन पदों की रचना की है उसमे पूर्णतः कलात्मक सौन्दर्य है। मीरा का आविर्भाव जिस काल में हुआ या उस काल तक काव्यात्मक परंपराओ की स्थिरता प्राप्त हो गई थी। उसने परंपरागत उपमानो को लेकर काव्याभिव्यंजना की है। मीरा के पदो में सादृश्यमूलक अप्रस्तुत-विधान की प्राजल योजनाएँ देखने को मिलती है। उसके पदो मे अलकारगत सौन्दर्य भी है किन्तु उसमें मूलतः रूपक अलकार अत्यन्त स्वाभाविक रूप में प्रकट हुआ है। उनकी पदावलियों मे अनेक स्थल आते है जहॉ उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, दृष्टान्त, उल्लेख, विभावोक्ति और अर्थान्तरन्यास के दर्शन होते है। इन अलकारों का प्रयोग भी अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे हुआ है। मीरा की पदावलियों मे निहित काव्य सौन्दर्य का अनुशीलन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि अलंकार योजनाएँ, काव्योत्कर्ष बढाने मे सहायक सिद्ध हुई है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मत है "मीराबाई की कविता विशेषतः भावमयी होने के कारण उनके काव्यत्व की प्रचुर मात्रा हमें वस्तुतः अपूर्व रसोद्भावना अथवा हृदयग्राही वर्णनों के अतर्गत मिल सकती

है। फिर भी पदावली का मुख्य विषय एक परोक्ष वस्तु "हरि अविनासी" प्रियतम होने से उसके साथ प्रेम एवं सबध की भावोत्तेजना द्वारा स्पष्ट करने के लिये सादृश-योजना का आश्रय भी लेना ही पड़ा है। फलस्वरूप उसमे यत्र तत्र कुछ अलंकारो का विधान भी स्वभावतः हो गया है।"[1]

स्पष्ट है कि भक्त कवयित्री मीरां ने अपने आराध्यदेव के "सौशील्य" तथा "सौलभ्य" गुणो का उल्लेख करते हुए अपने उद्धार और दूसरे अर्थो मे सयोग की अभिव्यक्ति की है। ऐसे स्थलो मे मीरा की पदावलियो में कलात्मक सौन्दर्य स्वभावतः निहित है। अपने आराध्यदेव की वन्दना करते हुए मीरा ने अपनी उपासिका-वृत्ति का परिचय दिया है। एक पद मे कहती है—

> **मण थे परस हरि रे चरण।**
> **सुभग सीतल कवंल कोमल, जगत ज्वाला हरण।**
> **इण चरण प्रह्लाद परस्यां, इन्द्र पदवी धरण।**
> **इण चरण ध्रुव अटल करस्यां, सरण असरण सरण।**
> **इण चरण ब्रह्मांड भेट्यां, नखसिखां सिरी धरण।**
> **इण चरण कालियां नाथ्यां, गोपलीला करण।**
> **इण चरण गोबरधन धार्‌यां, गरब मधवा हरण।**
> **दासि मीरां लाल गिरधर, अगम तारण तरण।।**[2]

मीरां भी, भक्त कवयित्री आण्डाळ के अनुरूप ही वियोगिनी है। वह भी मिलन के लिये आतुर है। कृष्ण के वियोग में वह सुधि विहीन हो गई है। सांवरे कृष्ण के बिना उसे चैन नहीं। इस विराट चेतना में उसे शांति प्राप्त नही होती। वह कोलाहल से भागना चाहती है और प्रियतम की आराधना करना चाहती है। प्रियतम के अभाव में उसकी जीवन-नौका गंभीर सागर में मध्य भाग में पड़ी हुई दुःख और विपत्तियों, प्रेमानुभूतियों और विरहानुभूतियो की उत्ताल तरंगो की आंदोलन और व्याघात से डगमगा रही है। उसके मन मे यह भी आकांक्षा है कि उसका उद्धार हो तथा उसे सॉवरे कृष्ण के दर्शन हो जायँ। वह प्रार्थना करती है—

> **तुम बिन साजन कोई नहीं है, डगी नांव समुंद अड़ी।**
> ० ० ० ०
> **बाण विरह का लग्या हिय में, भूलूं न एक घड़ी।**

---

१. **मीरांबाई की पदावली : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ५४**
२. **मीरांबाई की पदावली : सातवां संस्करण, पद १—श्री परशुराम चतुर्वेदी**

पथ्थर की तो अहल्या तारी, वन के बीच पड़ी।
कहा बोझ मीरां में कहिये, सो पर एक घड़ी।[1]

उसका हृदय वियोग की अनुभूतियो से भर उठा है। विरह बाण शब्द का प्रयोग कर उसने अनुभूतियो की घनीभूतता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। प्रियतम की छबि उसकी आत्मा मे अकित हो गई है और वह प्रियतम को पाने के लिये अस्थिर हो उठी। इस पद मे अलकारिक सौन्दर्य है। "पथ्थर की अहल्या तारी" के कलात्मक सौन्दर्य मे मीरां की वास्तविक काव्यवृत्ति प्रगट हो हुई है। इसमें उल्लेख अलंकार तो है ही, इसके साथ ही अप्रस्तुत-योजना भी स्वभावतः निबद्ध हो गई है। परिणामतः काव्याभिव्यंजना मे कला-त्मकता और सहजता का समन्वय अपने आप हो गया है।

मीरां ने आण्डाळ के अनुरूप परपरागत उपमानो का प्रयोग किया है। अतर केवल इतना है कि आण्डाळ ने भागवत के अतिरिक्त अन्य तमिऴ व संस्कृत साहित्य से रूढ़ प्रसगों का आकलन किया है और उनकी अभिव्यक्ति की है। किन्तु मीरां ने औपनिषदिक एवं महाभारत आदि के परपरागत आख्यानों को लेकर उपमान योजनाएँ निर्मित की हैं और उनके माध्यम से अपने विरह भावों की अभिव्यक्ति की है। इसी प्रकार "द्रोपती की रक्षा", "देवों के लिये हयग्रीव वध", "अजामिल", "गजराज का उद्धार", "गणिका का मोक्ष", आदि परपरागत तथ्यों को लेकर की हुई अभिव्यंजनाओं के सुन्दर पद दर्शनीय है।

भरी सभा मा द्रुपद सुतांरी, राख्या लाज मुरारी।[2]

o o o o

हय को वपु धारे दैत संधारयो सारयौ देवन को काज ॥[3]

o o o o

ग्राह गह्यां गजराज उबारयां अछत करयां वरदान।[4]

o o o o

गणका कीर पढ़ावतां, वैकुण्ठ बसाणी जी।
अरध नाम कुंजर लयां, दुख अवध घटाणी जी।

---

१. मीरांबाई की पदावली : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पद ११८
२. मीरांबाई की पदावरी : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पद १३१
३. मीरांबाई की पदावली : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पद १६३
४. मीरांबाई की पदावली : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पद १३६

अजामेल अघ ऊधरै, जय त्रास णसानी जी ॥[१]

० ० ० ०

भीलण कुब्जा तार्‌यां गिरधर, जाण्यां सकल जहाण ॥[२]

उल्लेख अलंकार की कलात्मकता उपर्युक्त पदांशो में है। मीरां ने जिन दृष्टान्त की ओर संकेत किया है, वे वास्तव में मीरां की दास्यवृत्ति की ओर ही संकेत करते है। इसके साथ ही अप्रस्तुत-योजना के एक सुन्दर पक्ष को भी प्रकट करते है। मीरां ने जन-वृत्ति पर आधारित कथाओं को लेकर अप्रस्तुत विधान को निर्माण किया है। एक अप्रस्तुत योजना दृष्टव्य है—

दास कबीर पर बालद जो लाया, नामदेव की छान छबन्द।
दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनन्द।
भीलणी का बेर सुदामा का तन्दुल, भर मुठ्ठी बुकन्द।
करमाबाई को खींच आरोग्यो, होई परसण पाबन्द।[३]

मीरां जन्म जन्मान्तर से कृष्ण के प्रति आसक्त है। वह पुनर्जन्मवाद में विश्वास करती है। वह अपने पूर्व जन्म के ग्वालिन रूप को पाकर गर्व का अनुभव करती है। उसे इस बात की प्रसन्नता है कि वह पूर्व जन्म में ग्वालिन थी। वह विचार करती है कि जब प्रियतम ने ऊँच और नीच के विभेद के बिना भीलनी को मोक्ष दिलाया, विप्र सुदामा का दारिद्रय दूर किया तो मै भी उतने ही स्नेह की अधिकारिणी हूँ। प्रियतम मेरा भी उद्धार करे। इस भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद में हुई है—

ऊंचे नीच जाने नहीं, रस की रसीलणी।
ऐसी कहा वेद पढ़ी, छिन में विमान चढ़ी।
हरि जी सूँ बांध्यो हेत वैकुण्ठ ये झूलणी ॥[४]

० ० ० ०

बालपणे का मित्त सुदामा, अब क्यूं दूर बसे।

० ० ० ०

मीरां के प्रभु हरि अविनासी सरणे तोरे बसे ॥[५]

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद १४८
२. मीरांबाई की पदावली : पद १३४
३. मीरांबाई की पदावली : पद १३८
४. मीरांबाई की पदावली : पद १८६
५. मीरांबाई की पदावली : पद १६७

रूप साम्य के आधार पर मीरां ने जो अप्रस्तुत-योजना प्रस्तुत की है उसमें उसकी सौन्दर्य दृष्टि का भी पूर्ण समन्वय हुआ है। उपमान-योजना परंपरागत है तथा जिन कथाओ को लेकर काव्य-विधान और अप्रस्तुत-विधान निर्मित किया गया है उनसे सभी परंपरागत काव्य मूल्यो का भी बोध होता है। इस प्रकार यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मीरां ने किसी नये उपमानों का प्रयोग नही किया है। परंपरागत उपमान के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

कुण्डाल झलकां कपोल अलकां लहराई।
मीणा तज सरवर ज्यों मकर मिलन धाई ॥[1]

वैसे ही—

देख्यां रूप मदन मोहन री, पियत पियूख न मटके।
वारिज भवां अलक मंतवारी णेण रूप रस अटके ॥[2]

उपर्युक्त पदांश में कुण्डल अलकां, कपोल अलकां लहराई और तज सरवर ज्यों मकर मिलण धाई के माध्यम से अप्रस्तुत-चित्र को प्रकट करते हुए मीरां ने परपरागत उपमान संयोजन किया है। इसी प्रकार नेत्रो के लिये जिस प्रकार के उपमान लिये गये है उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे परपरागत हैं तथा मीरां के परंपरावादी काव्य मान्यताओ का बोध कराते है।

भौंह कमान बॉके लोचन भारत हियरे कसिके।[3]

o o o

सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बांको चितवन णेणा समाणी।[4]

o o o

णेणा बणज बसावां री, म्हारा सांवरा भांवाँ।[5]

o o o

नैण नीरज में अब बहे रे गंगा बहि जाती।[6]

इन उद्धृत पदो मे मीरां ने नेत्रों के लिये कमल दल, भृकुटि के लिये

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद १२, श्री परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई की पदावली : पद १० श्री परशुराम चतुर्वेदी
३. मीरांबाई की पदावली : पद ७ श्री परशुराम चतुर्वेदी
४. मीरांबाई की पदावली : पद ११ श्री परशुराम चतुर्वेदी
५. मीरांबाई की पदावली : पद १५ श्री परशुराम चतुर्वेदी
६. मीरांबाई की पदावली : पद १८५ श्री परशुराम चतुर्वेदी

कमान, और लोचन के लिये बाण जैसे उपमानो से अलंकृत करते हुए परपरा का ही पालन किया है । उपमान स्योजन के क्षेत्र मे मीरां परपरावादिनी है । इसका कारण यह प्रतीत होता है कि मीरा के आविर्भाव के पूर्व ही काव्य वस्तु, काव्य-धर्म और काव्याभिव्यंजना का प्रचलित शिल्प स्थिर हो गया था। मीरां के काव्य मे इसी प्रचलित शिल्प-योजना का विकास दृष्टिगोचर होता है । अनुभूतियो के प्रसार एव तारतम्य के लिये मीरा ने उपमानों का प्रयोग किया है । ऐसे स्थलो मे प्रकृति मीरां की सहचरी हो गई है और अप्रस्तुत-योजना के सुसयोजन के कारण उपमान-योजना मे भास्वरता, अनुभूतियो मे स्वस्थ प्रसार और भावाभिव्यंजना मे अतीव सरलता आ गई है । इस प्रसंग मे एक पदार्थ दृष्टव्य है—

कमठ दादुर बसत जल में, जल से उपजाई ,
मीन जल से बाहर कीना, तुरत मर जाई ।
काठ लकरी बन परी, काठ घुन खाई ।
ले अगन प्रभु डार आये, भस्म हो जाई ।।

o	o	o

पात ज्यूं पीरी परी, अरु विपत तन छाई ।।[1]

इस प्रकार की भावाभिव्यजना मे आनुभूतिक प्रसार के साथ-ही-साथ अप्रस्तुतों की उचित सयोजना हुई है । विरहानुभूतियों की अभिव्यक्ति जिन पदो मे हुई है उनमे गभीर आत्मवेदना और भावात्मक तीव्रता के भी दर्शन होते है । एक विरहाभिव्यक्ति प्रस्तुत है—

उदक दादुर पीनवत है, जल से ही उपजाई ।
पल एक जल कूं मीन विसरे, तलफत मर जाई ।
पिया बिन पीली भई रे, ज्यो काठ घुन खाय ।।[2]

उपर्युक्त पदांशों में भी भावातिरेक को अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है जो उपहासास्पद नही है। मीरा की आत्मा मे प्रियतम का विराटत्व समा गया है । उसके प्रेम ने सत्य की 'चिरंतनता और उसकी मधुरोपासना मे लौकिक सत्य के ही चरम परिणति दिखलाई देती है । अपने अस्तित्व का ही आधार जानती है और इसी प्रसग मे कहती है—

---

१. मीरांबाई की पदावली : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पद ८९
२. मीरांबाई की पदावली : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पद ११२

"जल बिण कुँवल, चँद बिण रजनी, थे बिन जीवन जाय।"[1]

जल बिण कमल और चन्द बिण रजनी के माध्यम से मीरां ने जिस अप्रस्तुत को प्रकट करने का प्रयत्न किया है उसमें वह पूर्णत. सफल हुई है। अनेक स्थलों में मीरां ने लोक सत्य और लोक जीवन में उपमानो का चयन किया है और उनकी अभिव्यक्ति भी अपने पदो में की है। एक पदाश देखिये––

"दाध्या ऊपर लूण लगायां, हिवड़ो करवत सारयां।"[2]

उपर्युक्त पदाश में जिस अप्रस्तुत के माध्यम से उसने अपने भावावेग को प्रकट किया है वे वास्तव मे लोक जीवन से ही सबद्ध है। विरहानुभूतियों के अभिव्यक्तिकरण के समय कही-कहीं मीरां की पदावलियाँ इतनी शिल्पमयी हो गई है कि उनमें अलंकारों का सहज संयोजन भी हो गया है। यह अलंकृत प्रयत्न साध्य नही, स्वाभाविक है जो मीरा की वास्तविक अनूभूतिया की अभिव्यंजना करती है।

मीरा ने स्वच्छन्द हो कर अपनी विरहानुभूतियों की अभिव्यजना की है और उसमे अलकृति भी अत्यन्त सहज स्वाभाविक ढंग से हो गई है। इस प्रसंग में मीरां ने के कुछ पदांश प्रस्तुत किये जा सकते है––

"विरह भवंगम डस्यां कलेजा मां लहर हलाहल जागी।"[3]
"प्रीतम पतंग डस्यो कर मेरो, लहरि लहरि जिव जावै हो॥[4]
"विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावे जड़ी घस लावे।"[5]
"गायां गायां हरि गुण निसदिन, काल व्याल री बांची,
श्याम बिण जग खारां लागां जगरी बातां कांची॥[6]

उपर्युक्त पदों मे साग-रूपक के साथ-ही-साथ अन्य अलकारो की भी सुन्दर संयोजना हुई है। मीरा गोविन्द के रग मे रंगना चाहती है। गोविन्द को ही अपनी आत्मा समर्पण करना चाहती है और आत्मविश्लेषण करते हुए आत्म ज्ञान प्राप्त करना चाहती है। वह गोविन्द रूपी वस्तु को नाप तोलकर खरीदना चाहती है।

---

१. मीराबाई की पदावली : पद १०१, श्री परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई की पदावली : पद ८३, श्री परशुराम चतुर्वेदी
३. मीरांबाई की पदावली : पद ८१, श्री परशुराम चतुर्वेदी
४. मीरांबाई की पदावली : पद ८२, श्री परशुराम चतुर्वेदी
५. मीरांबाई की पदावली : पद ७४, श्री परशुराम चतुर्वेदी
६. मीरांबाई की पदावली : पद १९, श्री परशुराम चतुर्वेदी

यह कल्पना मीरा की साधिकावृत्ति की परिचायिका है। मीरा की अप्रस्तुत-योजनाएँ पूर्णतः अलंकृत प्रतीत नही होती। यत्र तत्र अलंकार संयोजित हो गए है किन्तु इनमे अनुभूतियो की ही प्रधानता दिखलाई देती है। इसका मूल कारण यह है कि मीरा ने न तो शिल्पगत प्रयोग ही किया है और न वह अभिव्यजना शिल्प के प्रति आस्थावान ही है। वह प्रेमोन्मादिनी है। प्रेम की ही विराटता मे अपने अंत के एकान्त को विलीन करना चाहती है। इसीलिए उसकी अभिव्यजना में अनुभूतियों की प्रधानता अधिक है, भावावेग और भाव प्रसार अधिक है, शिल्प और अलंकार का प्रयोग कम है। साग-परक का एक अन्य उदाहरण भी विचारणीय है जिसमे अप्रस्तुत-योजना को अधिक प्राजल बनाने की चेष्टा की गई है—

> "माई री म्हा लियां गोविन्दां मोल।
> थे कह्यां छाणे म्हां कां चोड़ढे, लियां बजन्ता ढोल।
> थे कहयां मुँहोघो म्हां सस्तो, लिया री, तराजां तोल।
> तण वारां म्हां जीवण वारां, वारां अमोलक मोल।[१]

अमूर्त को मूर्त रूप देने में मीरा ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। उसने निराकार सत्य को भी ऐसे रूप मे प्रस्तुत कर दिया है कि वह पूर्णतः पार्थिव रूप मे प्रकट हो गया है—

> "नंद जसोदा पुत्र री प्रगट्याँ, प्रभु अविनासी।[२]

इस प्रकार की अलंकार-योजना के कारण मीरा की पदावलियाँ विशेष आकर्षणशील हो गई है। एक अन्य पदावली इस प्रकार है कि जिसमे मकर, नटवर, चन्द्र, सागर, काल आदि अप्रस्तुत—विधान के माध्यम से परंपरागत जीवन मूल्यों की सजीव व्याख्या हुई है यह चित्र अप्रकट प्रस्तुत करने मे पूर्णतः समर्थ हुए है—

> "मोर मुकुट मकराकृत कुँडल अरुण तिलक सोहां भाल।"[३]
> "बदन चंद परगासतां मंद मंद मुस्कान :"[४]
> "श्याम नाम का झांझ चलास्यां।"
> भव सागर तर जास्यां हो माई

१. मीरांबाई की पदावली : पद २२ श्री परशुराम चतुर्वेदी।
२. मीरांबाई की पदावली, पद ६ श्री परशुराम चतुर्वेदी
३. मीरां की पदावली : पद ३ श्री परशुराम चतुर्वेदी।
४. मीरांबाई की पदावली : पद १३ श्री परशुराम चतुर्वेदी।

चरण कंवल लपटास्यां हो माई ।"[1]
"भौ सागर मझधारां बूड्यां, चारी सरण ल्ह्यां ।"[2]
"भौ सागर मझधार अधारां थे बण धणो अकाण ।।"[3]
"गुण री सागर ।"[4]

उपर्युक्त पदाशों मे अप्रस्तुत–उपमानो के माध्यम से कृष्ण के सौन्दर्य को यथार्थ रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया गया है । वास्तव में मीरा अपार्थिव सौन्दर्य की कवयित्री है और इसी सौन्दर्य का अनुगायन उन्होने अपने पदो मे किया है । सौन्दर्याभिव्यजना के समय उपमेय अधिक भास्वर और उपमान अधिक प्रांजल हो उठे है ।

मीरां के पदों में जहा कही दार्शनिक चिन्तन आया भी है तो वह पार्थिव सत्य से उद्भूत है। ऐसी स्थिति मे उनके पदों में जो उपमान प्रस्तुत हुए हैं और इसके साथ ही दार्शनिक सत्य को भी भौतिक मूल्यों के साथ प्रस्तुत करते हुए मीरा ने अप्रस्तुत–चित्रो को भी ऐसा सरलीकृत कर दिया है कि दृश्य ही रूप-चेतना का आभास देने लगता है ।

मीरा की काव्याभिव्यंजना मे अनुभूतियो का प्रसार और भावो का आवेग अधिक दिखलाई देता है । इसका परिणाम यह भी हुआ है कि कही-कही अप्रस्तुत पूरी तरह प्रकट नही हो सके। किन्तु यहां आवेग शैथिल्य होने पर वहाॅ पर उपमान-आयोजना अधिक प्रभावशाली हो गई है।

उदाहरण के लिये—

नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आंच ढुलावै ।
बन पिया जोत मंदिर अंधियारो दीपक दाय न आवै ।[5]
"श्याम बिना जियड़ो मुरझावै जैसे जल बेली ।"[6]

उपर्युक्त पंक्तियो में भावावेगो की अधिकता के साथ कही-कही आवेग-शैथिल्य के भी दर्शन होते है। ऐसे स्थलो में मीरा की प्रेमाभिव्यंजना अधिक सशक्त और प्रभावशाली हो गये है।

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद ३५ श्री परशुराम चतुर्वेदी ।
२. मीरांबाई की पदावली : पद १३८ श्री परशुराम चतुर्वेदी ।
३. मीरांबाई की पदावली : पद ६२ श्री परशुराम चतुर्वेदी ।
४. मीरांबाई की पदावली : पद १२८ श्री परशुराम चतुर्वेदी ।
५. बीरांबाई की पदावली : पद ७४ श्री परशुराम चतुर्वेदी ।
६. मीरांबाई की पदावली : पद ८०, श्री परशुराम चतुर्वेदी ।

मीरां ने प्रेमाभिव्यक्ति में वैयक्तिक चित्रों को प्रस्तुत करते हुए कही-कही अप्रकट धर्म-साम्य को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वह गोविन्द के प्रेम में उन्मादिनी है। वह गिरधरनागर की विराट आत्मा में विलीन हो जाना चाहती है और यही कारण है उसने भौतिक प्रतीक के लिये और उसकी अभिव्यंजना इस प्रकार की है कि अप्रकट सत्य और अरूप सौन्दर्य भी दृष्टिगत होने लगा। इस दृश्य-बोध को आलंकारिक भाषा में धर्म-साम्य और रूप-साम्य के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है। मीरां ने इस प्रकार अनेक चित्र प्रस्तुत किये है जिनमें उसके अन्तः की रागचेतना का आवेगमय प्रवाह सन्निहित है। कही-कही कल्पनासाम्य की चित्रावलियाँ भी देखने को मिलती हैं। एक कल्पित साम्य-विधान इस प्रकार है—

"लूण अलूणो ही भलो है, अपने पियाजी को साग।
देखि विराणै निवाण कूं है, क्यूं उपजावै खीज।
कालर अपणो ही भलो है, जामे निपजै चीज।
छैल विराणो लाख को है, अपणे काज न होई।
ताके संग सीधारतां है, भला न कहसी कोई।
वर हीणो अपणो भलो है, कोढ़ी कुष्टी कोई।"[1]

० ० ० ०

"चौमास्यां री बावड़ी, ज्यां कूं नीर णा पीवां।
हरि निर्झर अमृत झरया म्हारी प्यास बुझावां।"[2]

ऐसे अप्रस्तुतों मे कल्पना-साम्य, धर्म–साम्य, रूप–साम्य और गुण–साम्य की सुन्दर संयोजना हुई है। मीरां की पदावलियों में जो भाव वेग अभिव्यक्त हुआ है तथा जो उपमान अलंकृत रूप मे प्रस्तुत हुए है उन्हें गुण, धर्म, रीति, आदि अन्वितियो मे अलग अलग रूपों मे वर्गीकृत नही किया जा सकता। इसका कारण यह है कि मीरा गुण-शक्ति, धर्म-शक्ति और रीति-शक्ति को समरूप में ग्रहण किया है। इस समन्वय के कारण ही अनेक प्रकार के अप्रस्तुत सहज रूप मे समन्वित हो गए। अतएव गुण, रीति धर्म और कल्पना के आधार पर उनके अप्रस्तुतो को अलग अलग रूपो में खण्डशः नही किया जा सकता।

मीरां ने अमूर्त को मूर्त रूप में प्रस्तुत करते हुए यथार्थ सत्य और पार्थिव चेतना को ऐसे समन्वित रूप मे प्रस्तुत किया है कि मूर्त और अमूर्त अन्योन्याश्रित होते हुए भी अपने अस्तित्वों को अलग-अलग सरक्षण करते हैं। यथा—

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद २६ श्री परशुराम चतुर्वेदी।
२. मीरांबाई की पदावली : पद २८ श्री परशुराम चतुर्वेदी

"गज से उंतरके खर नहिं चढ़स्यां, ये तो बात न होई।"[1]
"असवां जल सींच सींच प्रेम बेल बूयां।
दध मय घृत काढ़ ल्यां डार दया छूयां।"[2]

स्पष्ट है कि मीरां ने श्याम के रंग में रगकर अत्यन्त चमत्कारपूर्ण अप्रस्तुतों की आयोजना की है। वह अपनी संपूर्णता को श्यामल रंग मे रगना चाहती है। उसने अपने प्रियतम के लिये सुख की सेज सजा दी है और उसके अप्रस्तुत की अभिव्यक्ति "श्याम मिलण सिंगार" और सुख की सेज बिछावा" द्वारा होती है। वह श्याम के दर्शन करना चाहती है और अपने अतृप्त लोचनों को तृप्त करना चाहती है। ऐसे स्थलों में प्रभाव-साम्यता के भी दर्शन होते है। यथा—

राणाजी थे जहर दियो म्हे जाणी।
जैसे कंचन दहत अग्नि में, निकसत बारावाणी।
लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।"[3]
० ० ० ०
तरकस तील लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी॥"[4]

इस प्रकार की प्रभाव-साम्यता में प्रभाव शक्ति अधिक है तथा अलंकार-योजना भी बाधित नहीं है। मीरां की प्रेमानभूतियाँ अधिक सहज ढंग से प्रस्तुत हुई है और वे उसकी आन्तरिक वेदना को ही प्रकट करती हैं—

मीरा ने अपनी दार्शनिक चिन्तन दृष्टि का भी परिचय दिया है। वह जीव और ईश्वर में तादात्म्य स्थापित करना चाहती है। वैष्णव सिद्धान्तवादियों का मत है चेतन अचेतन, परमात्मा का ही शरीर है और जीव तथा ईश्वर में तादात्म्य स्थापन करना कैंकर्य भाव की साधना करना है। मीरां की काव्य-धारा में विरह की अनुभूतियाँ अभिव्यक्त तो हुई है इसके साथ ही काव्य सौन्दर्य रूप में भी प्रस्तुत हुआ है। उसने जिन उपमानो के प्रयोग कियें है उनमे सौन्दर्य, सत्य रूप में प्रकट हुआ है। वह अपने और कृष्ण के संबध को जीव और परमात्मा के तादात्म्य रूप में देखना चाहती है। इस भाव की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद २५ श्री परशुराम चतुर्वेदी।
२. मीरांबाई की पदावली : पद १७ श्री परशुराम चतुर्वेदी।
३. मीरांबाई की पदावली : पद ३८ श्री परशुराम चतुर्वेदी।

"तुम बच हम अंतर नांहि, जैसे सूरज घामा।[1]
"तुम आया बिन सुष नहीं, मेरे पीरी परी जैसे पान।"[2]

उपर्युक्त पदों मे जीव और ईश्वर के तादात्म्य स्थापन के साथ ही विरहाकुल शरीर की कृशता का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है और अप्रस्तुत को अधिक सहज ढंग से प्रकट करने का प्रयास किया गया है।

मीरां ने प्रकृति के उपकरणो को लेकर उसके सौन्दर्य की अभिव्यंजना की है, उसके साथ ही प्रकृति के अप्रस्तुत और अप्रकट सौन्दर्य को भी बोधगम्य बना दिया है। उसके प्रकृति चित्रों मे अतीव सौन्दर्य और सहज प्राजलता इस रूप में प्रकट हुई है—

"तोड़त जेज करत नहीं सजनी जैसे चमेली के फूल।[3]
"हरि बिनु मथुरा ऐसी लागै, शशि बिन रेन अंधेरी।"[4]
"चातक स्वाति बूंद मन मांही, पिव पिव उकलाणे हो।'
सब जग कूडां कंटक दुबिया, दरघ न कोई पिछाणे हो।"[5]

साधारण जीवन से गृहीत तथा आसपास की प्रकृति उपमानों के प्रयोग का व्यापक रूप मीरा के पदों मे मिलता है। दूध क्षण में गरम और क्षण में ठडा होता है। वैसे उतावलेपन से बहने वाला स्रोत शीघ्र नष्ट हो जाता है। इन सामान्य घटनाओ को लेकर सुन्दर चित्रण निम्न लिखित पदो मे चित्रत है—

नगर ढंढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय।
षीर न षोवे आरी रे, मूरषत कीजै मित्त॥

o o o

तुम गजगीरी कौं चूतरौरे, हम बालू की मीत!

o o o

एक थाणे रोपिया रे, इक आंबो इक बूल।
वाकौ रस नीको लगै रे, वाकी भागै सूल।
ज्यूं डूगर का बाहला रे, यूं ओछा तण सनेहा।
बहता वहैजी उतावला रे, वे तो लटक बतावे छेह॥[6]

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद ११४ श्री परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई की पदावली : पद १२४ श्री परशुराम चतुर्वेदी
३. मीरांबाई की पदावली : पद ५४ श्री परशुराम चतुर्वेदी।
४. मीरांबाई की पदावली : पद ४८ श्री परशुराम चतुर्वेदी।
५. मीरांबाई की पदावली : पद ७३ श्री परशुराम चतुर्वेदी
६. मीरांबाई की पदावली : पद ५९ श्री परशुराम चतुर्वेदी।

स्पष्ट है कि मीरा ने अपने भावो की अभिव्यंजना के लिये प्रकृति के उपकरणों का चयन भी किया है और उन प्रकृति चित्रों के माध्यम से अपने भावावेगों की अभिव्यक्ति भी की है। मीरा के भावावेग प्रकृति के कारण अधिक सजीव हो उठे हैं। एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है जिसमे सागर के माध्यम से भावाभिव्यंजना की है और परंपरागत उपमानों का नियोजन किया गया है। यथा—

यो संसार विकार सागर बीच घेरी
नाव फटी प्रभु पाल बांधो, बूड़त है बेरी ।[१]
छोड़या म्हों बिस्वास संगाती, प्रेम री बाती जलाय ।
बिरह समुंद में छोड़ गया छो, नेह री नाँव चलाय ।।[२]

उपर्युक्त अप्रस्तुत-योजना मे दर्द दिवाणी मीरा ने इन उदाहरणो अपनी अतर्वेदना को अधिक सजीव रूप मे प्रस्तुत किया है। इन उदाहरणो मे संसार–विकार–सागर, नाव–फटी प्रेम की बाती जलाय, और विरह-समुद्र मे छोड़ गया आदि शब्दावलियों को योग कर मीरा अपनी अन्तर्पीड़ा को अभिव्यक्त किया हैं। उपर्युक्त उदाहरणों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मीरा के काव्य में परपरागत उपमान ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं किन्तु नये उपमान–योजना के कारण कही-कही मीरा की चमत्कार दृष्टि का भी परिचय मिलता है।

यथा—

"हरी म्हों दरदे दिवाणी म्हारां दरद न जाण्यां कोय ।
घायल री गत घायल जाण्यां हिवड़ो अगण संजोय।
जौहर की गत जौहरी जाणै, क्यां जाण्यां जिण कोय ।
दरद की मारयां दर दर डोल्यों वैद मिल्यां नहिं कोय ।।[२]

धर्म-साम्य स्थापन करते हुए मीरा ने इस सादृश्य बयान को चमत्कारपूर्ण बना दिया। कल्पना के समावेश के कारण ये परंपरागत विधान अधिक प्रवाह-शील हो गए है। एक अन्य कल्पनाजन्य अभिव्यक्ति प्रस्तुत है—

रोगी अंतर वैद बसत है, वैद ही ओखद जाणै हो ।
विरह दरद उरि अंतरि मांहि, हरि बिनु सब सुख कानै हो ।

---

१. मीरांबाई की पदावली पद ६३ श्री परशुराम चतुर्वेदी ।
२. मीरांबाई की पदावली पद ६४ श्री परशुराम चतुर्वेदी
३. मीरांबाई की पदावली : पद ७० श्री परशुराम चतुर्वेदी

दुग्धा कारण फिरै दुखारी, सुरत बसी सुत मानें हो।
चातक स्वाती बूंद न मोही, पीव पीव उकलाणै हो ॥[1]

और

उमग्यां इन्द्र चहुं दिस बरसां दामण छोड़यां लाज
धरती रुप नवां नवां धरया इन्द्र मिलण के काज ॥[2]

काल्पनिक–साम्य विधान में सौन्दर्य-दृष्टि की ही प्रधानता होती है। मीरां ने जो कल्पना-चित्र प्रस्तुत किये है उसमे उसकी सौन्दर्य दष्टि और भी अधिक प्रखर हो उठी है। उसने आभूषण को चित्रित करते समय सांग-रूपक अलकार की योजना कर अपनी विलक्षण सौन्दर्य दृष्टि का परिचय दिया है। एक कल्पना-चित्र इस प्रकार है—

वाली घड़ावुं बिट्टल बर केरी, हार हरी नो मारे है ये रे।
वित्तमाला चतुर्भुज चुड़लो, शिद सोनी घरे जइये रे।
झांझरिया जगजीवन केरा, कृष्णजी कड़ला ने कांबी रे।
बीछिया घूघ रा रामनारायण ना अणवट अंतरजामी रे।
पेटी घड़ावुं पुरुषोत्तम केरी, त्रीकम नाम नू तालू रे।
कूची कराव करुणानंद केरी, तेमां घरेणु मारुं घालूं रे।"[3]

उपर्युक्त पद मे "काम" के विविध रूपो की अभिव्यजना की गई है। इन रूपकों में मूलत: कृष्ण भक्तकवियों द्वारा व्यक्त विचारो का ही पिष्ट पेषण हुआ है। आन्तरिक वृत्तियों की अभिव्यंजना के लिये दूर स्वान, लोभ की डोरी, कसाई रूपी क्रोध, विषय वासना का लालची बिला, अभिमान का ऊँचा टीला आदि का प्रयोग कर मीरा ने गुण और धर्म—साम्य मूलक अप्रस्तुतो की आयोजना की है। यह अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

मन की मैल हियते न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, बांधि मोहिं चण्डाल।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे लिये गोपाल।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै छुआ रत से, राम नाम न लेत।

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद ७३ श्री परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई की पदावली : पद १४३ श्री परशुराम चतुर्वेदी
३. मीरांबाई की पदावली : पद १४१। श्री परशुराम चतुर्वेदी

आपहि आप पुजाय के रे, फूले अंग न समात ।
अभिमान टीला किये बहु कहु, जल कहां ठहरात ।[1]

मीरां ने कालिय नाग को मृत्यु का ही दूसरा रूप माना है और चातक, पतंग, मीन, दीपक की बाती आदि रूपको के द्वारा अपने आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति की है। ऐसे स्थलों मे मीरां की अभिव्यक्ति और भी अधिक तरल हो उठी है और अभिव्यंजना मे सहज शिल्पमयता आ गई है।

कमल दल लोचनां थे नाथ्यां काल भुजंग ।[2]
चन्द को चकोर चाहै, दीपक पतंग दाहै ।
जल बिना मरे मीन ऐसी प्रीत प्यारी है ।।[3]

और

जाना ज्युं पीली पड़ी रे, अन्न नहीं खाती ।
हरि बिन जिवड़ो यूं जलै रे, ज्यूं दीपक संग बाती ।।[4]
"लगन लगी जैसे पतंग दीप से वारि फेर तन दीजे ।।"[5]

इन पदांशों का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मीरां की प्रेमाशक्ति वासना से उद्भूत नही है। वह वासना विहीन होकर गिरधर नागर मे एकाकार होना चाहती है। आण्डाळ के पदो मे वासना की अतिशयता के दर्शन होते है । इसका मूल कारण यह प्रतीत होता है कि आण्डाळ ने गिरधर को अपनी विवस्त्र भौतिकता ही समर्पित कर दी । वासना और विलासिता के अतिशयता के कारण उसके पदो में स्थूल लाग अभिव्यक्त हुआ है, किन्तु मीरा ने गिरधर को सारी लौकिकता सर्मपित की है। उसके आवेगो मे संयम है और उसके समर्पण में सात्विकता। यही कारण है कि मीरां और आण्डाळ की अभिव्यक्ति मे इस तरह की वस्तुगत विविधता दिखाई देती है।

प्राकृतिक तथा लौकिक जीवन मे जो विषमता है उस वैषम्य को मीरां की तीक्षण सौन्दर्य दृष्टि ने पहचान लिया है । यही कारण है कि उसके पदों में वास्तविक सौन्दर्य का सहज अभिव्यक्तीकरण हुआ है। इस प्रसंग मे एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है—

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद १५८ श्री परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई की पदावली : पद १६८ । ,,
३. मीरांबाई की पदावली : पद १७४ ,,
४. मीरांबाई की पदावली : पद १८५ ,,
५. मीरांबाई की पदावली : पद १९१ ,,

"दीरघ नेण मिरघ कूँ देखां बण बण फिरतां मारां ।
उजलो बरण बागलागलां पावां, कायल बरणां कारां ।
नद्‌यां नद्‌यां निरमल धारां, समुंद करयां जल खारां ।
मूरख जण सिंगासन राजां, पण्डित फिरतां द्वारां ।।[1]

तादत्म्य भाव की अभिव्यक्ति तद्‌गण अलंकार के माध्यम से ही की गई है। रूप–साम्य तथा प्रभाव–साम्य का सुन्दर समन्वय करते हुए मीरां ने जिन प्रेमानुभूतियो की अभिव्यक्ति की है उनमें सहजता और सहज आकर्षण है। आण्डाळ के पदो मे भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति हुई है। अन्तर केवल यह है कि मीरां के पदो मे जो उपमान प्रस्तुत किये गए हैं वे उसकी तन्मयता का परिचय करते है किन्तु किन्तु आण्डाळ के पदों मे अभिव्यक्त उपमान उसकी "सर्वाग तन्मयता" का बोध कराती है। मीरां के पदों मे रूप-विधान का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया गया है। एक रूप-साम मूलक चित्रावली इस प्रकार है—

"मुरली कर लुकुट लेऊं, पीत वसन धारुं
काछी गोय भेष मुकुट, गोधन संग चारुं ।
हम भई गुलफाम लता, वृन्दावन रैनां ,
पशुपंछी मरकट मुनी, श्रवन सुनत बैनां ।।[2]

कृष्ण के रूप सौन्दर्य का चित्रण करते समय मीरा ने "दूज के चॉद" का भी आरोपण किया है।": हो गये श्याम, दुइज के चदा'[3] के माध्यम से कृष्ण के आकर्षणशील सुन्दर स्वस्थ स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार संसार की अस्थिरता और सासारिक गतिशीतला का चित्रण करते हुए मीरा ने संसार को चिडियों का खेल कहकर संबोधित किया। वह संसार को "चहर री बाजी" मानती है। इस प्रकार की अस्थिरता का चित्रण करते हुए मीरां ने अपनी सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण दृष्टि का भी परिचय दिया है।

मीरा ने मनुष्य जन्म की महिमा का गान करते हुए उसका सदुपयोग करने का निर्देश दिया है। ऐसे स्थलों मे वह प्रकृति का ही आश्रय लेती है। धर्म-साम्य के माध्यम से यह विकार प्रकट हुआ है—

बिरछा जो पात टूटया, लाया णा फिर डार ।
भो समुन्द अपार देखां अगम ओखी धारा ।।[4]

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद १९० श्री परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई की पदावली : पद १८४ । "
३. मीरांबाई की पदावली : पद १८० "
४. मीरांबाई की पदावली : पद १९६ । "

इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में मीरां की लौकिक दृष्टि अधिक एकांतिक हो उठती है। जहाँ कही प्रेमाभिव्यंजनाओं को स्वस्थ विहार करने का अवसर मिला है वहाँ ये अभिव्यंजनाएँ अधिक रात और व्यापक हो उठी हैं। एक विरहाभिव्यक्ति दृष्टव्य है–

अब तो बात फैल गई जैसे बीज बट की,

o o o

अब चूकौ तो और नाहीं, जैसे कला नट की।
जल के बुरी गांठ परी, रसना गुन रटकी।

o o o

मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी।[1]

रूप–साम्य की आयोजना करते समय जहाँ कही मीरां ने कल्पना का आश्रय लिया वहाँ उसकी प्रेमाभिव्यंजना अत्यधिक सहज एवं सरल हो गई है। उसकी कपल्नाएँ मनोहारिणी है। उसकी विरहानुभूतियों में अतीव तन्मयता है और उसकी कल्पनाशक्ति में हृदयो को आकृष्ट करने की क्षमता है। प्रकृति उसके साथ निरंतर रही और प्रकृति निरीक्षण के माध्यम से मीरां ने अपनी प्रेमानुभूतियों की अभिव्यंजना की है। ऐसे क्षणों में प्रकृति के उपकरण सचेतन उपमान के रूप मे प्रस्तुत हुए है। उसकी प्रकृति निरीक्षण में भी प्रेम-वृत्ति की ही प्रधानता दिखलाई देती है। वह गा उठती है—

"सहस गोप बिच श्याम विराजे, ज्यों तारा बिच चाँद।"[2]

आण्डाल द्वारा प्रयुक्त उपमान :

उपमेय	उपमान
श्री कृष्ण, वेंकटाद्रिश्वर आदि प्रियतम के नाम तथा उनके रंग	सागर वर्ण, दीप, जलज अतसीपुष्प कमल, नीलमणि, बरसनेवाला बादल, तरंगायुत समुद्र, पुण्य, ऋषभ, कट्टनीम, मेघोत्पन्न कमल, करिकलभ, वराह, नीर भरी बदली, बाल सिह, नील मेघ, निद्रा से जागृत सिंह॥
नयन	छोटी किकणी, कमल, बाण, मछली, रक्त कमल, जाल, कुवलय, पुष्प, चन्द्र-सूर्य॥

१. मीरां माधुरी : पद १२६ पृष्ठ ४९ (श्री ब्रजरत्नदास' द्वितीय संस्करण
२. मीरांबाई की पदावली : पद १३९, श्री परशुराम चतुर्वेदी।

उपमेय	उपमान
श्रीकृष्ण का हाथ	उगते हुए शरदकालीन चन्द्र, हस, रक्त कमल ।।
अधरामृत	मधुपान ।।
मुखड़ा	माया मत्र, रवि चन्द्र
भौह	धनुष, शार्ङ्ग धनुष ।।
अधर	प्रवाल, कपूर, कमल
चरण	कमल, सोना ।।
श्री कृष्ण का केश समूह	भ्रमर
स्तन	हविस्
भग	वल्मीक के सर्प का फण
सुन्दर गोपी	प्रतिमा, बाल शुक
गोपियो का समूह	गर्व भंग हुए राजाओ का समूह
गोदा	हल मे चलनेवाले बैल, अर्क पत्र,
चूड़ियाँ	शंख
यशोदा	किसलय, कुल दीपक
साधारण मनुष्य	श्रृगाल
भगवान की चरण सेवा	बैलों को चारा पानी देना
सुदर्शन चक्र	ज्योति पुज
कृष्ण के उत्पीड़न से अप्रसन्नता	गुड़ भी कडवा होना
कटुवचन	घाव पर नमक छिड़कना बाण छेदना
शरीर	अस्थि--पिजर, सोना
दु.ख	सागर
भव	सागर
शंख	चन्द्र मण्डल
वर्षा	शार्ग धनुष की शर वर्षा
बिजली	महालक्ष्मी
बादल	वेंकटाद्री भगवान, नील वर्ण वितान
विरह	अग्नि
इन्द्रगोप कीट	सिन्दूर वर्ण

उपमेय	उपमान
सिन्दूर वर्ण	प्रियतम
कला पुष्प, अतसी, कोकिल	प्रियतम का श्याम वर्ण
यूथिका पुष्प	प्रियतम की मुस्कान
भ्रमरों का समूह, सरोवर, कमल पुष्प,	भगवान की दिव्य मूर्ति
कोमल पुष्प	सैनिक
ऊपर विकसित पुष्प	दिव्य ज्योति
बिम्ब लता	प्रियतम
मयूर, गज	प्रियतम का रूप
मिट्टी का लेपन	आलिंगन
मोम निकालना	प्राण संहार
सागर मथन	प्राण हरण
शीतल पुष्प, करुविळै पुष्प, कमल पुष्प,	प्रियतम का स्मारक
पुष्प	बाण

मीरां द्वारा प्रयुक्त उपमान :

श्री कृष्ण, गोविन्द, प्रियतम, गिरधर नागर	पुण्य, कामदेव, दुइज का चंदा, सजीवनी , कमल, खरीदी वस्तु, गज, गूदड़ी, अमृत का झरना, वैद्य, चन्द्र, सुदृढ़ चबूतरा, जौहरी, गाय का बछड़ा, बादल, स्वाति, नक्षत्र की बूंद हीरा, ज्योति, जल, सर्प, दीपक, सूरज, छड़ी, घुंघरू, कमरबंद, ताला, झांझ ।।
चरण	कमल, अमृत
भौंह	कमान, कमल
लोचन	बाण, कमल दल
अलक	मछली
बदन	चन्द्र, कमल
सुख	सेज
(स्याम) प्रीति	घुंघरू, घी, तरकस, वट वृक्ष, नटवर, बेलि, अमर रस, चमेली का फूल, बत्ती, आग ।

उपमेय	उपमान
काल	सर्प
अन्य देवता	गधा, वर्षा ऋतु के बावड़ी, सागर, बेरी का कॉटा
द्वेष	भट्टी
राणा	करील वृक्ष
प्रियतम के दर्शन	अमृत का प्यासी
विष	आग
विरहोन्माद	तपकर निकाला गया सोने की दमक, मदोन्मत्त हाथी ॥
लोक लाज	पानी बहाव
सर्प	नौलड़ी हार
मथुरा	रात
तुच्छ प्रेम	दूध, ऊंचाई से बहनेवाला स्रोत
विरह	समुद्र, पीलिया रोग, विष, सर्प, सर्प, लकड़ी (घुन खाई हुई।) आग
मीरा	घायल, गाय, चातक, लता, मछली, कमल, रात, पतग, धूप
विरह दशा	पीला पत्ता
गुण	सागर
गोप	तारे
चारों तरफ हरियाली	इन्द्र से मिलने जानेवाली धरती
हृदय	दीपक की बत्ती
मनुष्य का जन्म	वृक्ष का पत्ता
हरि गुण	रस्सी की गाँठ

मीरां और आण्डाळ की अप्रस्तुत-योजना : तुलनात्मक-अध्ययन

मीरां और आण्डाळ ने दोनों ही भक्त कवयित्रियों ने भावोत्कर्ष और भाव प्रसार के लिये अप्रस्तुत-योजनाओ का संयोजन किया है। दोनों की अप्रस्तुत-योजनाओं में परंपरागत उपमानों की आयोजना हुई है । दोनो ने काव्याभिव्यजना

को अलंकृत करने की दृष्टि से अतिशयोक्तियों के प्रयोग किये हैं किन्तु वे उपहासास्पद नही हुए है। वास्तविक उपमानों तथा अमूर्त भावनाओ के मूर्तीकरण मे मीरां की अपेक्षा आण्डाळ ने अधिक विराट चेतना का परिचय दिया है। वैसे तो रूपक निर्वाह मीरा ने भी किया है और रूपकों के प्रयोग के कारण उनकी अप्रस्तुत-योजनाओ मे आलंकारिक चमत्कार आ गया है, किन्तु उनके उपमान अमूर्त की सजीवता को प्रकट नही करती। भावाभिव्यंजना की जैसी तरलता और भक्ति की जो तन्मयता मीरां के पदों मे अभिव्यक्ति हुई है वैसी अभिव्यक्ति आण्डाळ के पदों मे नही। रूपकों के प्रयोग के समय आण्डाळ की काव्य-दृष्टि वाधित हो गई और काव्य-वैलक्षम्य उनके पदो मे दिखलाई नही देता। मीरां के पदों मे जो अप्रस्तुत-योजनाएँ हैं उनमें भावात्मक चित्रात्मकता अधिक है किन्तु आण्डाळ के पदों मे जो उपमान प्रकट हुए है उनमें बौद्धिक चमत्कार अधिक है। इस उक्ति वैचिय के कारण आण्डाळ के पदों में भावात्मक चित्रमयता कम और उक्तिगत विचित्रता अधिक है। आण्डाळ ने जिन परंपरागत उपमानो के प्रयोग किये है उनमें वेद शास्त्रो मे वर्णित उक्तियों का प्रभाव भी लक्षित है किन्तु मीरां के उपमान-संकलन लोक-जीवन से गृहीत हुए है और इसीलिये उसका क्षेत्र अधिक सार्वजनीन है। मीरां और आण्डाळ ने प्रकृति के क्षेत्र से भी उपमानो के चयन किये है। ऐसे उपमानो मे प्रकृति सौन्दर्य सहज ही समन्वित हो गया है। उदाहरण के लिये जलद, कमल, बिजली, सुख, नक्षत्र, किसलय विविध पुष्प आदि का वर्णन करते हुए जिन उपमानो की आयोजना की गई है वे मी॰। और आण्डाळ के सूक्ष्म काव्य दृष्टि का परिचय कराते है। ये दोनों कवयित्रियाँ रंगो की चेतनता को स्वीकार करती है। प्रकृति के विविध रंगो ने उनके आतरिक सत्य को अभिव्यक्त किया है। यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति से जिन उपमानों के चयन किये है उनमे अधिक सजीवता और सरलता है। मीरा और आण्डाळ ने साधारण जीवन के उपकरणों को भी उपमानो का रूप देकर अपनी लोकानुगामी सौन्दर्य-दृष्टि का परिचय दिया है। उदाहरण के लिये इमली का रस, घाव तर नमक छिड़कना, दूध का उफान, पतंग, दीपक, गाय आदि उपमानो को लेकर साधारण जीवन के प्रति आसक्ति भाव ही प्रदर्शित किया गया। उन्होने चपलता, सौन्दर्य, अनुराग, कोमलता और यौवन जैसे अमूर्त रूपो को सजीव प्रतिमानो के माध्यम से मूर्त रूपों में प्रस्तुत कर दिया है। आण्डाळ के पदो मे उद्दीपन चित्रों के भी दर्शन होते है। पक्षियो, पुष्पो और मेघावलियों के माध्यम से प्रियतम के गुण रूप और धर्म-साम्य की आयोजना करते हुए आण्डाळ ने अपनी सौन्दर्य-दृष्टि को अत्यधिक व्यापक बना दिया।

मीरां और आण्डाळ परपरावादी हैं। अतएव इनके पदो में जहाँ कही पुनरुक्ति दोष भी आ गया है इसका मूल कारण यह है आण्डाळ ने अपने पदों की रचना कृष्ण भक्ति में डूबकर की है। परिणामतः प्रत्येक पद मे गिरधर नागर के रूप-सौन्दर्य, गुण-सौन्दर्य, धर्म-सौन्दर्य आदि का स्वरूप ही देखने को मिलता है। अतः पुनरुक्ति दोष का आना स्वाभाविक है। हम इसी प्रकार मीरां के पदो में भी पुनरुक्ति दोष के दर्शन करते है। इसका मूल कारण भक्ति की तन्मयता और चित्त की एकाग्रता है। कला विधान की ओर दोनों ही कवयित्रियों ने विशेष ध्यान नही दिया। किन्तु मीरा और आण्डाळ के पदों मे जो कलात्मकता दिखलाई देती है वह कला-साधना का रूप नही है, भक्ति की तन्मयता का रूप है। मीरां और आण्डाळ दोनों ने मूलतः अपनी विरहानुभूतियों की अभिव्यक्ति की है। अतएव कहीं-कही भाव-साम्य भी दिखलाई देता है। उन्होने कृष्ण की उपासना माधुर्य भाव से प्रेरित होकर की है। अतएव माधुर्य भाव का उन्मेष उनके पदों में हुआ है। मीरां गिरधर नागर की उपासना कर अमर हो गई और आण्डाळ रंगनाथ की उपासना कर दिव्यत्व मे विलीन हो गई। कृष्ण भक्त होने के कारण मीरा और आण्डाळ की उपासना में माधुर्य भाव का प्रसारण ही अधिक हुआ है। सांस्कृतिक दृष्टियो की विविधता मीरा और आण्डाळ के पदों मे अवश्य दिखलाई देती है, किन्तु दोनो ने जिन सांस्कृतिक उपमानो को लेकर आन्तरिक भावों की अभिव्यंजना की है उनमे पूर्ण रूपेण समानता है।

---

६. मीरां और आण्डाळ के पदों में प्रतीक-योजना

भारत वर्ष मे प्रतीक-योजना की परंपरा ऋग्वेद तथा अथर्ववेद काल से चलती आ रही है। मनुष्य के मन में अनुभूतियों और भावनाओं का उदय तो तो सहज रूप में होता है और कभी-कभी उसके हृदय में इतने सघन भावों का जन्म होता है कि वह साधारण अभिव्यक्ति में उन भावो को प्रकट कर ही नही पाता। ये सघन भाव अप्रत्यक्ष रीति से प्रकट होते है। मानवीय चेतना इस प्रकार की अभिव्यक्ति करने मे सक्षम नहीं थी। हृदय जिन भावनाओं को जन्म देता था, मस्तिष्क उनके अभिव्यक्तीकरण के लिये कुछ नये विधान और बिम्ब रूप तैयार करने लगता था। किन्तु इन बिम्बों के माध्यम से मस्तिष्क नये शब्द रूप और भाव रूप निर्मित नही कर पाता था। "इसीलिये सूक्ष्म एवं अर्धस्पष्ट भावों की अभिव्यक्ति के लिये मानव ने प्रतीको की कल्पना की और उन्हे जन्म दिया। विद्वानों का कथन है कि मानव सभ्यता के विकास मे प्रतीको का उतना ही योग है जितना हमारे जीवन के विकास में वायु अथवा प्रकाश का। साराश यह कि प्रतीक कोई वस्तु अथवा चित्र नही होता है वरन् विराट् रचनात्मक प्रक्रिया में पड़ने वाला एक विन्दु है जो किसी पदार्थ को एक निश्चित वस्तु के रूप में परिचित कराता है।"[1]

दार्शनिक विचारों को प्रकट करने के लिये वैदिक काल मे ही हमारे मनीपियो ने प्रतीको का आश्रय लिया था। ऋपियों ने, मुनियो, सन्तो एवं आळ्वार भक्त, नायनमार तथा अन्य भक्तो ने ब्रह्म का चित्रण करने के लिये सूर्य चन्द्र आदि प्रतीको का आश्रय लिया है। प्रतीकों का प्रयोग भारतीय दर्शन ग्रन्थो मे भी उपलब्ध होता है और तमिल् वेद मे भी प्रतीक विधान के दर्शन होते है। डा० जनार्दन मिश्र ने भारतीय प्रतीक विद्या की विवेचना करते हुए लिखा है कि "यह सृष्टि कहाँ से आती है, कहॉ चली जाती है, कैसे बढती घटती जाती है, इसके भीतर कोई शक्ति काम करती है या नही इत्यादि प्रश्नो के जो उत्तर भारतीय ऋषियो और मुनियो ने ढूंढ निकाले उन्हे इन्होंने दर्शन और तत्व ज्ञान की सज्ञा दी। वे ही सिद्धान्त भारतीय प्रतीक विद्या के आधार है। उन सिद्धान्तों पर ही भारतीय प्रतीको का निर्माण हुआ है।"[2]

---

१. हिन्दी सन्त साहित्य : डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
२. भारतीय प्रतीक विद्या : डा० जनार्दन मिश्र पृष्ठ २

प्रतीकों का विश्लेषण करते हुए अनेक प्रतीकवादियो ने अनुभव और अनुभवजन्य ज्ञान की विवेचना की है। अनुभवजन्य ज्ञान शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के माध्यम से गृहीत होता है। इन उपकरणों से जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसमे इतनी अधिक सूक्ष्मता होती है कि उसे अभिव्यक्त नही किया जा सकता। यह ज्ञान कलात्मक रूपो मे ही प्रकट होता है और कलाकार अपनी कलाओं मे इस परिज्ञान की नियोजना करता है। पाश्चात्य विचारक बादलेयर ने इस कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को शीघ्रगामी माना है। उसका मत है कि अभिव्यक्ति की यह क्रिया इतने शीघ्र हो जाती है कि इसमे अनुभूति और अभिव्यक्ति को समान गतिशीलता प्राप्त नही होती और ये दोनो ही प्रक्रियाएँ मूल प्रक्रिया के दो रूप हो जाते है। इस अखड प्रक्रिया को विभाजित नही किया जा सकता।

प्रतीक-विधान का विश्लेषण करते हुए यह तथ्य हमारे सामने उपस्थित हो जाता है कि प्रतीकों का उद्भव केवल कल्पना के द्वारा नही होता। कल्पना का आश्रय लेकर जिन प्रतीको की सर्जना की जाती है उनमे प्रभविष्णु का अभाव होता है और ये सत्य भी नही होते। अतः निष्कर्ष रूप में यह कह सकते है कि प्रतीको का जन्म यथार्थ सत्य के द्वारा हुआ है। जीवन का साहचर्य पाकर इन प्रतीको मे जीवन्त शक्ति अधिक आ जाती है, सजीवता और प्राणवत्ता बढ जाती है और इनके माध्यम से अर्थ एव व्यक्तित्व की स्थापना होती है। इस प्रतीक दर्शन ने संपूर्ण भारतीय सस्कृति और चिन्तनशील को प्रभावित किया। उत्तर भारत की मीरा की काव्य-धारा मे प्रतीकों की यही शास्त्रीयता अभिव्यक्त हुई है। उसने कल्पना का आश्रय ही नही लिया और जहाँ कही काल्पिनक प्रतीकों का निर्माण हुआ भी है वहाँ उन प्रतीको के आदि स्रोत सत्य और यथार्थ के परिवेश मे ही है। सामान्य रूप से मीरा ने सामान्य जीवन और दृश्य-यथार्थ से प्रतीकों का चयन किया है और अपने भावो को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। इसी प्रकार दक्षिण भारत में आण्डाळ की काव्य धारा मे भी कल्पना की अपेक्षा सत्य का उन्मेष अधिक है। उसने सत्य का आश्रय लेते हुए प्रतीकों का निर्माण किया है और अपनी भावाभिव्यजना की है। मीरां और आण्डाळ के प्रतीक-विधान में तात्त्विक समानता भी देखने को मिलती है। इन दोनों ही भक्त कवयित्रियों के पदों में धार्मिक प्रतीको के प्रयोग अधिक हुए, और इन कवयित्रियो ने जिन प्रतीको के प्रयोग किये है उनमें अतिशय प्रभावशीलता भी है। धार्मिक सत्य से उद्भूत प्रतीकों की प्रभावशीलता भी अधिक होती है और यही कारण है कि मीरां और आण्डाळ के धार्मिक प्रतीकों को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

प्रतीकों का प्रयोग ऊपरी दृष्टी से दो प्रकार का होता है। प्रथम बाह्य अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में और द्वितीय आभ्यान्तरिक अर्थ सम्बन्धों की अभिव्यक्त करने हेतु। बाह्य अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यक्ति अपने विचार, अपनी इच्छा, अपने भावों को व्यक्त करता है और आभ्यान्तरिक अर्थ सबंधों की अभिव्यक्ति के माध्यम से किसी सूक्ष्म मूल्यगत साम्य के आधार पर अन्योक्ति द्वारा अर्थ का बोध कराता है। प्रथम कोटि के प्रतीकों का प्रयोग साधारण से साधारण, व्यावहारिक जीवन के कार्य व्यापारो मे होता है और द्वितीय प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग धार्मिक विश्वासों को प्रकट करने के लिये किया जाता है। पाश्चात्य विचारक कालेरिज ने प्रतीकों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए अपना मत व्यक्त किया है "प्रतीको की यह विशेषता है कि वह व्यक्ति में विशेष सत्ता का अथवा विशेष मे किसी सामान्य सत्ता का अथवा सामान्य मे किसी सर्व व्यापी तत्त्व का आभास देता है और सबसे ऊपर नश्वर वस्तु में अनश्वर की झलक पैदा करता है।"[१] स्पष्ट है कि प्रतीक विधान बाह्य अभिव्यक्ति को भी प्रभातिव करता है और आभ्यान्तरिक अभिव्यक्ति को भी। पाश्चात्य विचारक मालार्मेने प्रतीक की व्याख्या करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि जो बोधगम्य हो और तथा जो पूर्ण अबोधगम्य हो उसमें प्रतकीत्व नही है। प्रतीकों का प्रयोग रहस्यात्मकता और दुरूहता को व्यक्त करने के लिये किया जाता है। सत्य की अलौकिक सृष्टि की जो प्रतिच्छवियाँ हम देखते है तथा जिस अलौकिक सत्य के विषय मे सुनते है और परिज्ञान के द्वारा जिस सत्य का अनुभव करते है उसकी अभिव्यक्ति काव्य मे भी व्यक्त हुई है तथा एक निश्चित लक्ष्य को लेकर समन्वित हो गई है।

मेरी धारणा है कि प्रतीक स्वय रहस्य नही होता। वह परिज्ञान से परे किसी सत्य की अभिव्यक्ति भी नही कर सकता और न तो अप्रकटनीय सत्य अथवा रहस्य प्रतीकों का रूप ही धारण कर सकते है। किन्तु 'रहस्य' और "प्रकट" से प्रतीको का घनिष्ट संबध होता है। प्रतीक अपने आभ्यान्तरिक जगत मे छिपे हुए रहस्यों का अलंकृत अभिव्यक्तीकरण करता है। प्रेषणीयता काव्य का प्रधान तत्त्व है और प्रतीक-विधान के बिना प्रेषणीयता की शक्ति शिथिल पड़ जाती है। प्रतीकों द्वारा रहस्यात्मक तत्त्वों की अभिव्यंजना अनेक शैलियो मे की गई है। लौकिक जीवन के रूप में परमतत्त्व की कल्पना भी प्रतीको के माध्यम से हुई है। पति-पत्नी, स्वामी-सेवक और माता-पुत्र आदि सबंधों मे परमतत्त्व का आभास पाते हुए भक्त सन्तो ने इन लौकिक प्रतीको के प्रयोग

---

१. हिन्दी सन्त साहित्य—डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

किये है। हिन्दी काव्य में लौकिक प्रतीको का यही रूप देखने को मिलता है। तमिल् भक्ति धारा में आळ्वार तथा नायन्मारों ने भी इन प्रतीकों के विविध प्रयोग किये है। मीरां और आण्डाळ की काव्य धारा में इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। आळ्वार भक्त सन्तो ने दाम्पत्य-प्रेम अथवा कान्ता विषयक रति मे इन प्रतीकों का प्रसार किया है। दाम्पत्य भाव को प्रकट करने वाले प्रतीको को अपनाकर अपने अन्तर के माधुर्य भाव तथा अनुरंजन भाव को प्रकट करते हुए अपने आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति सत्य रूप मे की है। दार्शनिक चिन्तन अथवा आध्यात्मिकता को जब दाम्पत्य भाव अथवा कान्ता विषयक रति के प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है तब दार्शनिक सत्य की दुरूहता भी अधिक सरल हो जाती है और दार्शनिक चिन्तन इतना बोधगम्य हो जाता है कि उसे सहजतापूर्वक ग्रहण किया जा सकता है। यही कारण है कि जिस काव्य धारा मे माधुर्य भाव की प्रधानता होती है तथा कान्ता विषयक रति भाव निहित होता है उसमें प्रभावशीलता अधिक होती है। वह मानवीय चेतना को पूर्णतः प्रभावित करती है और संपूर्ण जन जीवन को अनरजनशीलता के कारण आनंद का बोध कराती है। मीरां और आण्डाळ की काव्य धारा में दाम्पत्य भाव अथवा कान्ता विषयक रति भाव का प्रकाशन अधिक हुआ है। इसी का परिणाम है कि मीरां के पदों को पढ़कर हम आनन्द विभोर हो उठते है और आण्डाळ के भी पदों को पढ़कर हमें आनन्द बोध प्राप्त होता है। माधुर्य भाव में अलौकिक दिव्यता का सन्निवेश होता है और यही अलौकिक आनन्द, दिव्य प्रेम का बोध कराता है। मीरां ने जिस रूप में कृष्ण की उपासना की है, आण्डाळ ने भी उसी रूप में कृष्ण की भक्ति की है। कृष्ण के वियोगमे मीरां की विरह वेदना अत्यधिक तरल हो उठी है। वियोगात्मक अनुभूतियों में माधुर्य भाव का ही अभिव्यक्तीकरण हुआ है। आण्डाळ ने भी विरह भाव की अभिव्यक्त की है। ऐसे विरहाभिव्यजना मे माधुर्य भाव पूर्णतः प्रकट हो उठा है। मीरां और आण्डाळ के पदों मे जहा कहीं संयोग की अभिव्यंजना हुई है। वहाँ अनुरंजक तत्त्व और भी अधिक सघन हो उठे हैं। इन कवयित्रियों के आनुभूतिक अभिव्यंजना में यत्र तत्र आध्यात्मिकता के भी संकेत मिलते है। सन्त कवियों की तरह आळ्वार भक्तों के पदों में वात्सल्य, दाम्तत्य और सख्य भावों को प्रदर्शित करनेवाले प्रतीकों के साथ ही सांकेतिक परिभाषिक, संख्यामूलक और नियात्मक प्रतीकों की संयोजना भी देखने को मिल जाती है।

मीरां और आण्डाळ ने अपने पदों में प्रायः सभी प्रकार के प्रतीकों का

संयोजन किया है। किन्तु सर्वत्र ही कान्त-कान्ता भाव की अभिव्यक्ति ही हुई है। अतएव सांकेतिक प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक और रूपात्मक प्रतीक पूर्णतः स्वतंत्र रूपों में प्रकट होकर आभ्यान्तर भावों की अभिव्यक्ति करते है।

प्रतीकों की शास्त्रीयता पर यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि मीरा और आण्डाळ के पदों में यत्र तत्र सांकेतिक, पारिभाषिक और रूपात्मक प्रतीकों की समन्वित सयोजना हुई है। जब गगन मंडल में परतत्व के होने की कल्पना की जाती है और उस भाव की अभिव्यति प्रतीकों के माध्यम से की जाती है तब उस अभिव्यक्ति मे साकेतिकता सहज ही आ जाती है। ऐसे प्रतीकों को इस सदर्भ मे सांकेतिक प्रतीक के नाम से अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार जब जीवन की सामान्य वस्तुओं के माध्यम से अनन्त की कल्पना की जाती है और लौकिक प्रतीकों का आश्रय लेकर अलौकिक सत्य को प्रकट किया जाता है उस समय पारिभाषिक प्रतीकों की सृष्टि हो जाती है। पारिभाषिक प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्मिक चिन्तन और विचार का प्रतिपादन किया जाता है। उदाहरण के लिये सूर्य चन्द्र, गंगा, यमुना, शंख भेरी, मेघ आदि प्रतीकात्मक शब्द अनन्ता का ही बोध कराते है और अनन्त के अमूर्त स्वरूप को प्रकट करते है। इसी प्रकार रूपात्मक प्रतीक अप्रस्तुत-विधान को प्रकट करते हैं। मीरां और आण्डाळ के पदों मे साकेतिक और पारिभाषिक प्रतीकों के प्रयोग अत्यल्प है किन्तु रूपात्मक प्रयोग ही अधिक हुए हैं।

मीरा ने जहाँ कही प्रतीकात्मक शब्दावली का आश्रय लिया है वहाँ अपनी भक्ति भावना को अत्यधिक कलात्मक ढग से प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में

बड़े घर तालो लागां री, पुरबला पुन्न जगाबांरी
झीलरयां री कामण म्हांरो, डाबरां कुण जावांरी
गंगा जमणा काम णा म्हारे, म्हां जावां दरियावांरी,
हेल्या मेल्या कामणा म्हारे, पेठ्या मिल सरदारां री,
कामदारां सूं काम णा म्हारे, जावा म्हा दरबारां री,
काथ कथीरसूं कम णा म्हारे, चढ़स्यां घणरी साच्यॉरी
सोना रूपां सूं काम णा म्हारे, हीरा रो वौपारारी
भाग हमारो जाग्यांरे, रतणाकर म्हारी सीर्‌यां री।
अमृत प्यालो छाडयां रे, कुण पीवां नीरा री॥[1]

प्रस्तुत प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति में 'वडे घर तालो लागां री" "गंगा

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद ८४, श्री परशुराम चतुर्वेदी

मीरां के एक प्रतीकालत्मक शब्दावली से युक्त अभिव्यक्ति इस प्रकार है—जमणा कामणा म्हारे" , हेत्या, मेल्या कामणा म्हारे" आदि पदाशों में जो अभिव्यक्ति हुई है वह उसके पूर्व जन्म के कार्य व्यापारो से सबंधित है। वह स्वयं ही विराटता का अनुभव करती है। उसका सबध न तो झील से, न छोटे तालाब से और न गंगा जमुना से वरन् उसका संबध विशाल सागर से। तात्पर्य यह है कि मीरा ने झील, तालाब और गगा, जमुना आदि प्रतीकात्मक शब्दों के माध्यम से लौकिक एव दैविक लघुता का प्रतिपादन किया है। वह तो कृष्ण की विराटता और उनके दिव्यत्व मे ही लीन होना चाहती है। विराटता के प्रति अगाध प्रेम है और उन्होने माधुर्य भाव से उस विराटता की उपासना की है। इस प्रकार के प्रतीकात्मक शब्दो के माध्यम से मीरां ने कृष्ण के विराटत्व को प्रतीक के रूप मे प्रस्तुत करने के लिये रूपात्मक प्रतीको का आश्रय लिया। उनके पदों मे वर्णित उपकरण लौकिक लघिमा का बोध तो कराते ही है इसके साथ ही "सागर" के प्रतीक स्वरूप द्वारा कृष्ण के दिव्यत्व की विराटता का बोध भी कराते है। इस लघु और विराट के वास्तविक स्वरूप को बोध कराने के लिये रूपात्मक प्रतीक का आश्रय लिया गया है।

इसी प्रकार 'सोना, रूपां सूँ कामणा म्हारे' तथा 'चढ़स्या घणरी साच्यारी' के द्वारा कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव ही प्रकट किया गया है। इसी स्थल पर वह कहती है कि उसे सोने और चाँदी से काम नही है, वह तो हीरे का व्यापार करती है। इन प्रतीकों में चाँदी और सोना लौकिक उपकरणों की ओर संकेत करते है जिनके प्रति मीरां आस्थावान नही है। हीरा कृष्ण के रूप का प्रतीक है। इस प्रकार की प्रतीकात्मक अभिव्यजनाओं में मीरां का माधुर्य भाव पूर्णतः तरल होकर प्रकट हो उठा है। प्रतीकात्मक शास्त्रीयता, को ध्यान मे रखकर यदि उपर्युक्त उद्धरण का विश्लेषण किया जाय तो इसमे साकेतिक, पारिभाषिक और रूपात्मक प्रतीकों का संयोजन ही दिखाई देगा। इसी प्रकार "सूली ऊपर सेज पिया, गगन मंडल मे बास पिया का" आदि के द्वारा कृष्ण के दिव्यत्व को ही प्रकट किया गया है तथा सोना" "चादी एवं "हीरा" आदि प्रतीकात्मक शब्दो के माध्यम से पारिभाषिक प्रतीक योजना की निर्मिति हुई है। रूपात्मक प्रतीक योजना तो मीरा के पदो मे अनेक स्थलों में दिखलाई देती है।

भक्त कवयित्री आण्डाळ ने भी मीरा के समान ही सामान्य उपयोग के उपकरणो के माध्यम से प्रियतम के सान्निध्य और साहचर्य की मधुर भावना प्रकट की है। तिरुप्पावै के एक पद मे प्रतीकात्मक संयोग और माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

"अनिच्छुक जन को भी अपने वश में करने का सामर्थ्य, सर्व गुणज्ञ हे प्रभु, हे गोविन्द, तुम्हारी स्तुति करूं। (पुरुषार्थ रूपी) व्रतोपकरण प्राप्त करने के उपरान्त हमारे अपेक्षित उपहार ये है—सारी सृष्टि द्वारा प्रशसा के योग्य चूडी, ककण, कर्णकुण्डल, कर्णपुष्प, पगनूपुर इत्यादि अनेकानेक आभूषणो को हम तुमसे प्राप्त कर पहनेगी।"[1]

उपर्युक्त पद मे जिन आभूषणों की चर्चा की गई है तथा जिस उद्देश्य से इन आभूषणो को प्राप्त करने की बात कही गई है उसमे प्रतीकात्मक सदर्भ है। आण्डाळ ने कृष्ण की उपासना माधुर्य भाव से की है। अतएव उसने कृष्ण को पति के रूप मे स्वीकार कर सामान्य उपकरणो को भी माधुर्य का उद्भावक माना है। इन आभूषणो के द्वारा वह सौन्दर्यवती होकर श्यामल कृष्ण के विराटत्व मे समरस होना चाहती है। अतएव ये आभूषण और ये उपकरण रूपात्मक प्रतीक का विधान प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार आण्डाळ ने अपने माधुर्य भावों को व्यक्त किया है। ये आभूषण साधन मात्र है, साध्य तो प्रियतम गोपाल है। आण्डाळ मार्गशीर्षव्रत के लिये अपेक्षित वस्तुएँ माँगती है—

"जगत् को कपाने योग्य ध्वनिकारी तुम्हारा पाचजन्य सदृश धवल शख, अत्यधिक भारी भेरी, मगलाशासन करने के लिये गायक (वैतालिक) मंगल दीप, विजय पताका और शुभ-वितान आदि हमें कृपा करके प्रदान करो।"[2]

प्रस्तुप अभिव्यक्ति मे अनेक प्रतीकात्मक रूपो द्वारा विचार प्रकट किये गये है। पारिभाषिक, रूपात्मक प्रतीकों की अत्यन्त सुन्दर आयोजना इस पद में हुई है। आण्डाळ ने भेरी के द्वारा पारतंत्रय ज्ञान का, वैतालिक सात्विक सहवास का, मंगल दीपक भगवत्शेषत्व के ज्ञान की प्रज्जलित करने वाला भागवत्शेषत्व का, ध्वजा शेषत्व लक्षण कैंकर्य का, वितान उस कैंकर्य फल का भोक्ता "मै" रूपी अहंकार निवृत्ति का प्रतीक है। स्पष्ट है कि आण्डाळ के

---

१. उन्तन्नै पाडिप्परै कोण्डु याम्पेरुम् सम्मानम् नाडु पुगलुम् परिसिनाल् नन्राह सूडकमे तोळ्वळैये तोडे सेविप्पुवे पाडकमे येन्रनैय पल्कलनुम्यामणिवोम् ।। तिरुप्पावै पद : २७

२. ञालत्तै येल्लाम् नडुंग मुरल्वन पालन्न वण्णत्तुन् पाञ्चसन्नियमे पोल्वन संगकल् पोय्प्पाडुडैयनवे सालप्पेरुम्परैये पल्लाण्डिसैप्पारे कोलविळक्के कोडिये वितानमे ।। तिरुप्पावै २६

पदों में जो शब्द प्रयुक्त हुए है वे पारिभाषिक शब्द है, तथा जिस शेषत्व के परिज्ञान के लिये लौकिक विधान निर्मित किया गया है वह रूपात्मक प्रतीक विधान है।

आण्डाळ ने अपने तिरुप्पावै ग्रंथ में का सपूर्ण सार-पद मे स्पष्ट कहती है—

"हे गोविन्द हम आज मात्र व्रतोपकरण तुमसे प्राप्त करने नही आयी है। हमारे तो तुम्हारे साथ जनम-जनम का सबध है।"[1]

उपर्युक्त पद्याश इस तथ्य की पुष्टि करती है कि आण्डाळ ने इन व्रतोपकरणों में जिन वस्तुओ को लिया है वे वास्तव मे आध्यात्मिक उपकरण है। अतएव इन उपकरणो मे बाह्यार्थ के साथ-ही-साथ आध्यात्मिक अर्थःभी संलग्न है। इन्ही गूढ़ार्थ की ओर आण्डाळ ने सकेत किया है। वास्तव मे ये ही पारि पारिभाषिक और रूपात्मक प्रतीक है। आण्डाळ के अनुरूप ही मीरा ने भी अपने पदो में प्रतीकों के माध्यम से इसी भाव की अभिव्यक्ति की है। कर्मशिथिल जीवात्मा किस प्रकार परमतत्त्व को प्राप्त करती है और किस प्रकार विराटता में एकाकार हो जाती है, इस बात का प्रतिपादन ही मीरा ने पदो यत्र तत्र हुआ है। भक्त सन्त कवियों ने निर्गण तत्त्व की उपासना करते हुए ऐसे हीउपकरण एकत्रित किये हैं और अपने भावो की अभिव्यक्ति की है। मीरा के पदों मे यही माधुर्य भाव इस रूप मे अभिव्यक्त हुआ है—

म्हाँ गिरधर रंग राती, सैयां म्हां ।
पंचरंग चोला पहर्‌या सखी म्हां, झिरमिट खेलण जाती ।
वां झिलमिट मां मिल्यौ सांवरो, देख्यां तण मण राती ।"[2]

यहाँ पर "पंच रग चोला" के माध्यम से जल, पृथ्वी, आकाश, वायु और अग्नि की ओर संकेत किया गया है। लंबा ढीला-ढाला कुरता शरीर का प्रतीक है तथा "झिरमिट" शब्द से भी इसी केलि का अर्थ व्यंजित होता है। झिरमिट एक प्रकार की क्रीड़ा है जिसमे सपूर्ण तन को इस प्रकार ढक दिया जाता है कि कोई उसे पहचान ही नही सके। तात्पर्य यह है कि कर्म के आवरण से जीवात्मा की योनि और लौकिक शरीर रूपी आवरण से संपूर्ण लौकिकता ही आवृत है। स्पष्ट है कि माधुर्य भाव से कृष्ण से उपासना करते हुए मीरा ने अनेक ऐसे प्रतीकात्मक संकेतों की सर्जना की है जिनसे जीवात्मा और परमतत्त्व का भेद,

---

१. इऱ्ऱैप्पऱै कोळ्वानेऱ्ऱु काण् गोविन्दा। ऍऱ्ऱैक्कु मेलेल् पिरविक्कुम् उन्तन्नोडु उऱ्ऱोमे यावोमुनक्के नामाट्सेय्वोम् मऱ्ऱैनक्कामङ्गळ् माऱ्ऱेलोरेम्पावाय्॥ तिरुप्पावै २९

२. मीरांबाई की पदावली पद २३, श्री परशुराम चतुर्वेदी॥

अभेद रूप में प्रकट होने लगता है। "सुख की सेज बिछाना" का वास्तविक अर्थ प्रियतम से मिलने की तीव्र उत्कंठा है। इसी पारिभाषिक प्रतीक का अर्थ यह भी है कि मीरां अपनी संपूर्ण पार्थिवता को एकरस कर कृष्ण के विराटत्व में एकाकार करना चाहती है। मीरां यही कहती है कि उसका प्रियतम उसके ही हृदय मे बसा है जिसके कारण वह निरंतर ही कृष्ण के दर्शन करती रहती है। कृष्ण के मिलन के लिये वह शृंगार करती है और सुख की सेज बिछाकर रति केलि के लिये आतुरता से कृष्ण की प्रतीक्षा करती है। इस भाव की अभिव्यक्ति निम्न लिखित पद मे हुई है—

म्हांरा हिरदां बस्तां मुरारी, पल पल दरसण पावौ ।।
स्याम मिलण सिंगार सजावाँ सुख री सेज बिछावां ।।[1]

आण्डाळ ने भी कृष्ण की उपासना माधुर्य भाव से की है। अतएव उनके पदो मे आत्मरति के ही दर्शन होते है। वह ऊर्ध्व मुखी के पुष्पो को भगवान की ज्याति मानती है और उसी ज्योति को संबोधित करती हुई आत्म निवेदन करती है—

> "समस्त लोको को पार कर दिव्य ज्योति रूपी परमपद में शोभायमान वेदस्वरूप श्रीमन्नारायण के दाहिने हाथ में स्थित सुदर्शन के तीव्र ज्योति सदृश हे ऊर्ध्व मुखी पुष्पो। मुझे दग्ध किये बिना क्या कैवल्य निष्टों की गोष्ठी मे पहुँचा सकते हो।"[2]

स्पष्ट है कि आण्डाळ ने प्रकृति के सौन्दर्य के माध्यम से गिरधर नागर की परम ज्योति के दर्शन किये है। वह उसी ज्योति से निवेदन करती है। दूसरे अर्थो मे परमतत्त्व से ही निवेदन करती है और उसके निवेदन मे माधुर्य भाव सहज ही आ गया है। आण्डाळ के पदों में जो प्रतीक रूप प्रस्तुत हुए है वे पूर्णत: स्पष्ट है और उन प्रतीक रूपों के माध्यम से उसके परमतत्त्व का आध्यात्मिक विश्लेषण किया जा सकता है।

मीरां के पदों मे भी "तादात्म्य स्थापन" का भाव प्रकट हुआ है। वह

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १५, श्री परशुराम चतुर्वेदी।

२. मेल्तोनि्ऱ्पूक्काळ् मेलुलहंकळिन्मीदुपोय मेल्तोन्ऱुम् जोदि वेदमुदलवर्व-लंकैयिन्
मेल्तोन्ऱुमाळियिन् वेसुडर पोल्चुडादु एम्मै मार्रोलैप्पट्टवर कूट्टत्तु वैत्तक्कोल्किर्ऱिरे। नाच्चियार तिरुमोलि : पद १०-२

कृष्ण के साथ तादात्म्य स्थापित करती हुई आनदित हो उठती है और कह उठती है कि "तुम बिच हम बिच अन्तर नहि जैसे सूरज घामा।"[१] स्पष्ट है कि मीरा ने स्व-अस्तित्व और पर-अस्तित्व (अखण्ड ज्योति) को अन्योन्याश्रित माना है। वह स्व–अस्तित्व को विराट चेतन से विलग नही करती। इन दोनों तत्त्वों की समरसता हो गई है। इस भाव की अभिव्यक्ति "सूरज घामा" के माध्यम से की गई है। जिस प्रकार सूर्य से धूप को विलग नही किया जा सकता उसी प्रकार उस विराट अस्तित्व से स्व–अस्तित्व को भी विलग नही किया जा सकता। इस प्रतीकात्मकता ने मीरा के आन्तरिक समरस भाव की अभिव्यक्ति की है।

मीरां और आण्डाळ दोनो ही भक्त कवयित्रियो ने कोकिला और बादल के माध्यम से प्रियतम को सदेश भेजा है। ये दोनो आचार्य अथवा भागवत के प्रतीक माने जाते है। जिस प्रकार मेघ स्वय खारे सागर जल को ग्रहण कर आकाश में विचरण करता हुआ नीलिमा का स्पर्श पाकर मधुरिम रस वर्षण करता है वैसे ही आचार्य और भगवत्भक्त शास्त्रो मे निहित कठिन आध्यात्मिक अर्थो की व्याख्या और उनका अभ्यास करते है। यह व्याख्या भी मेघ वर्षण की तरह मधुर होती है और उनके उपदेश अत्यधिक रोचक होते है। जिस प्रकार मेघ अनन्त आकाश मे विचरण करता रहता है उसी प्रकार भगवत्भक्त भी देशाटन करते रहते है। यदि जलकणों से मिट्टी प्लावित न हो तो पृथ्वी दग्ध और उत्ताप हो जाती है वह विभिन्न प्रकार की पीड़ाओ से आक्रान्त रहती है, उसी प्रकार भवत्भक्तो के अभाव में संपूर्ण सृष्टि अराजक और अनियत्रित हो जाती है। मेघ को आचार्य का प्रतीक मानकर अण्णगराचार्य ने अपनी तिरुप्पावै टीका ग्रंथ मे निम्न लिखित श्लोक का उद्धरण दिया है, वह विशेष रूप से दृष्टव्य है—

> "लक्ष्मीनाथाख्यसिन्धौ शठरिपु जलदः प्राप्य कारुण्य नीरं
> नाथा द्रवभ्यर्विचत्तदनु रघुवराम्भोजचक्षुर्झराभ्याम्
> गत्वां तां यामुनाख्यां सरितमय यतीन्द्राख्यपद्मा करेन्द्रं।
> संपूर्णः प्राणिसस्ये प्रवहति सततं देशिकेन्द्रभ्रमोघै:[२]

अर्थात् शठकोप स्वामी नामक मेघ ने लक्ष्मीनाथ भगवान रूपी समुद्र में डूबकर कृपा रूपी जल पाकर उसको श्रीमन् नाथमुनि नामक महापर्वत पर

---

१. मीरांबाई की पदावली पद : ११४, श्री परशुराम चतुर्वेदी।
२. द्राविडवेददिव्यप्रबन्ध टीका : अण्णंगराचार्य, पृष्ठ ३५

बरसाया। वहाँ से दो प्रवाह निकले । श्री राममिश्र स्वामी और पुण्डरीकाक्ष स्वामी जो यामुनाचार्य नामक महानदी मे मिल गये। यह नदी श्री रामानुज नामक अति विशाल एवं अगाध सरोवर में प्रविष्ट हुई। इसमें चौहत्तर (पीठाधिपति) पानी प्रवाहित करने के द्वार है जिनसे निकलकर भगवत्कृपा रूपी जल ससार के सस्मत प्राणरूप सस्यों को प्राप्त कर रहा है। अतः यह अर्थ ठीक रूप से स्थापित किया गया कि आचार्य को मेघ का प्रतीक मानना और मेघ को आचार्य का प्रतीक मानना उचित है। वास्तव मे यह परंपरा पुरातन है और सपूर्ण भारतीय संतो की पदाभिव्यजना मे अभिव्यक्त हुई है। मीरां और आण्डाळ के पदों मे मेघ के द्वारा संदेश प्रसारित करने की अभिव्यक्ति हुई है। मीरां ने मेघ को सदेशवाहक माना है आचार्य नही किन्तु तमिल संत साहित्य मे आचार्य को जिस रूप में प्रकट किया गया है, मीरां ने मेघ को अशतःउस रूप में प्रकट किया है। आचार्य का अर्थ परमतत्त्व को प्राप्त करने के हेतु दिशा-दृष्टि प्रदान करने वाला उपकरण है। उसी प्रकार सदेशवाहक भी प्रियतम के पास आत्मसदेश ले जाने वाला उपकरण है। ऐसी स्थिति मे मीरा का संदेशवाहक और आण्डाळ का आचार्य तात्त्विक रूप मे समान ही है। मीरा ने संदेश वाहक मेघ को संबोधित करते हुए व्यक्त किया है—

मतवारो बादर आए रे, हरि को सनेसो कबहुं न लाये रे।
दादर मोर पपइया बोले, कोयल सबद सुणाये रे ।
इक कारी अंधियारी बिजरी, चमकै, विरहणि अति डरपाये रे।
इक गाजे बाजै पवन मधुरिया, मेंहा अति झड़ लाये रे ॥[1]

यहा पर हरि गिरधर नागर है । मतवारो बादर सदेशवाहक है। दादर, पपइया, कोयल उस दिव्यत्त्व के अनुगायक है और अधियारी बिजली, गाजे बाजे पवन, परमतत्त्व को प्राप्त करने के मार्ग मे उपस्थित व्यवधान है। स्पष्ट है कि मीरां ने मेघ को संबोधित करते हुए लौकिक और अलौकिक शक्तियों का अनुशीलन भी किया है। लोक सृष्टि बाधक बनती है, किन्तु मेघ परमतत्त्व तक आत्म-पुकार पहुचाने के हेतु उद्यत हैं। इस पद में जो उद्दीपक उपकरण हैं वे परमतप्त की प्राप्ति में बाधा उपस्थित करने वाले है । इसी प्रकार आण्डाळ ने भी अपने पदों मे आचार्य के रूप मे मेघ को संबोधित किया है। वह प्रियतम को पाने की आतुरता में दुखी हो उठती है और कह उठती है—

"आकाश मे फैले हुए नीलवर्ण वितान के सदृश दिखाई देनेवाले हे

---

१. मीरांबाई की पदावली, पद ८१, श्री परशुराम चतुर्वेदी ॥

> बादलो, निर्मल वारि-धाराओ से बहुत श्री वेकटाचल विहारी, मेरे प्रियतम भगवान क्या इस तरफ आये है। क्या अश्रु प्रवाह के कारण विनष्ट हो रही मेरी स्त्रीत्व-भावना तथा मेरे तथा मेरे स्त्रीत्व के अर्थहीन अधःपतन के कारण क्या उनका गौरव कलकित नही होगा।'[1]

इस पद में नीलवर्ण बादलों के वितान के माध्यम से आण्डाळ ने अपनी विरहोन्मुखी भावाभिव्यजना की है। आण्डाळ ने शेषनाग के फणों को वितान के रूप मे देखा है और इसी अर्थ की व्यंजना इस पद में की गई है। जहाँ तक प्रतीकार्य की ग्रहणशीलता का प्रश्न है ऐसा प्रतीत होता है कि आण्डाळ के इस प्रकार के पदो मे प्रतीकार्य को पूर्वोक्त विशिष्ट अर्थ मे लेना प्रयत्न साध्य ही है। किन्तु इतना निश्चित ही है कि आण्डाळ ने प्रकृति के प्रत्येक उपकरण को सबोधित किया है और उसके सबोधन आलोचको को प्रतीकार्थो के अन्वेषण हेतु क्षेत्र प्रदान करते है।

मीरां और आण्डाळ ने पक्षियों के माध्यम से भी सदेश का प्रसारण किया है। यह प्राचीन परंपरा है किन्तु इसका पालन दोनो ही भक्त कवयित्रियों के द्वारा किया गया है। यही पक्षी, आचार्य एवं संदेशवाहक का पद प्राप्त कर लेता है और भगवान का साक्षात्कार कराने मे समर्थ होता है। इस सदर्भ में अण्णा-गराचार्य कृत तिरुप्पावै टीका में उद्धृत निम्न लिखित श्लोक को यहाँ भी उद्धृत किया जा सकता है—

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः
तथैव ज्ञान कर्मभ्यां प्राप्यते पुरुषोत्तमः ॥[2]

उक्त श्लोक में पक्षी को आचार्य के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार पक्षी दोनों पंखों को फैलाकर उड़ता हुआ आकाश में विहार रकता है उसी प्रकार ज्ञान एवं अनुष्ठान की सहायता से मानव भगवान को प्राप्त कर सकता है। स्वयं ज्ञान और अनुष्ठान हीन व्यक्ति इन्हीं आचार्य भक्तों को, माध्यम बनाकर भगवान तक संदेश प्रसारित करता है। अनेक अध्यात्म ज्ञान के मर्मज्ञों ने दूत

---

१. विण्णीलमेलाप्पु विरित्ताप्पोल् मेगंकाळ् तेण्णीरपाय्वेकटत्तु ऍन्तिरुमालु-म्पोन्दाने
कण्णीर्कळ् मुलैक्कुवट्टिल् तुळिसोरच्चोर्वेनै पेण्णीर्मैयीडळिक्कुमिदु तमक्कोर् पेरुमैये। नाच्चियार तिरुमोलि ८-९

२. द्राविडवेददिव्यप्रबन्ध टीका : अण्णंगराचार्य, पृष्ठ २१ ना० ह्व०

वर्णन से इसी प्रकार के अर्थों की ओर संकेत किया है। आळ्वार अपने ही आचार्य, गुरुभ्रातृ तथा शिष्य अथवा भक्त को पक्षी के रूप में संबोधित करते हैं और इन्हीं के माध्यम से ईश्वर का साक्षात्कार करते है।

विरहावस्था में नायिका भावापन्न आळ्वार भक्त अपनी दशा को परमात्मा के पास प्रस्तुत करने के लिये तथा अपनी विरहोन्मादिनी स्थितियों के साक्षात्करण के लिये किसी एक पक्षी का आश्रय लेती है। यही पक्षी आचार्य का रूप धारण कर लेती है। इस प्रसग मे नाच्चियार तिरुमोऴि का एक पद दर्शनीय है जिसमें पक्षी को आचार्य के रूप में देखा गया है—

> "वृक्षो से भरे उपवनो मे निवास करने वाले हे कोकिल। अतुलित यश पूरित एवं नील मणि के सदश कान्तियुक्त, रत्न जड़ित मुकुटधारी प्रिय पति कृष्ण के प्रेम एवं विरह में ही मेरे करों के कंगन स्खलित हो गये हैं। अर्थात् इन करों में इतनी शक्ति नही है कि वे कंगन धारण कर सके। क्या ऐसा होना उचित है। हे प्रवाल सदृश अधरवाले मेरे प्रियतम को शीघ्र इधर आने के लिये बार बार उन्हीं का नामोच्चारण करो।"[1]

स्पष्ट है कि आण्डाळ के पदों में जिस विरह भाव की अभिव्यक्ति हुई है वह उसकी आन्तरिक वेदना को ही प्रकट करती है। सत्य तो यह है कि आण्डाळ ने अपने अन्तर को अप्रकट नही रहने दिया। वह उस विराटत्व को अपनी सपूर्णता अर्पित करना चाहती है और समर्पण भाव की अभिव्यक्ति उसकी विरहानुभूतियों में हुई है।

मीरां के पदों में भी विरह भावो की अभिव्यक्ति हुई है। वह भी प्रियतम के विराटत्व में समाहित होना चाहती है। वह भी आण्डाळ के अनुरूप अपनी संपूर्णता को सर्मपित करना चाहती है और उसकी विरहानुभूतियाँ उस अनन्त में विलीन होना चाहती है जो उसके प्रियतम की ही अनन्तता है। इसी भाव की अभिव्यक्ति निम्न लिखित पद में हुई है—

> **प्रीतम कूँ पतियां लिखूं, कउवा तू ले जाइ।**
> **जाइ प्रीतम जी सूं यूं कहै रे, थांरी विरहणि धान न खाइ।**
> **मीरां दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाइ।**
> **वेगि मिलो प्रभु अंतरजामी, तुम बिनि रह्यो ही न जाइ।।**[2]

---

१. नायच्चियार तिरुमोऴि पद ५-१

२. मीरांबाई की पदावली, पद ८४, श्री परशुराम चतुर्वेदी।

यदि मीरां और आण्डाळ के प्रतीक-विधान पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि मीरा की अपेक्षा आण्डाळ की प्रतीक योजनाएँ अधिक प्रांजल है। आण्डाळ ने 'नीराडुदल' (जल क्रीड़ा) और 'कूडलिलै़त्तल" (कूडल खेल) दोनो को प्रतीकात्मक रूप में लिया है और इन्ही क्रीड़ाओं के माध्यम से अपनी विरहानुभूति को प्रकट किया है। आण्डाळ मार्गशीर्ष मास में प्रातःकाल अपनी सखियों को जलक्रीड़ा करने के लिये बुलाती है। तमिऴ् साहित्य में जल क्रीडा को "नीराडुल" ओर "सुनैयाडुदल" आद शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। वास्तव में ये प्रतीकात्मक शब्द हैं जिनके अर्थगत व्यंजना तमिऴ् साहित्य में हुई है। आण्डाळ परंपरावादिनी है। उसने प्राचीन दार्शनिक मान्यताओं को लेकर अपने आत्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। वह कृष्ण के सम्मिलन के लिये जलक्रीड़ा के बहाने सखियों को एकत्रित होने का आवाहन करती है। सभी सखियाँ जागृत हो जाती है और गोपियाँ कृष्ण के पास पहुँचती है। कृष्ण का सान्निध्य पाकर आनन्द विह्वल होउठती है। इस आनन्द भाव की अभिव्यक्ति करते हुए आण्डाळ ने परमतत्त्व की प्राप्ति के लिये जिन प्रतीको का आश्रय लिया है वे वास्तव मे आध्यात्मिक प्रतीक है। तिरुप्पावै के ग्रंथ में इस प्रकार के आध्यात्मिक प्रतीको के अनेक प्रयोग हुए है।

माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति के लिये जिन प्रतीकात्मक शब्दों के प्रयोग किये गये हैं उनमें "कूडलिलै़त्तल" का विशेष मूल्य है। इस शब्द में भी प्रतीकात्मक अर्थ संलग्न है। विरह से पीड़ित नायिका पृथ्वी के धरातल पर अनेक वृत्तमयी रेखाओं का अंकन करती है और प्रियतम का स्मरण करती हुई उन अंकित बहुवृत्त रेखाओं को युग्म मे विभाजित करती है। संपूर्ण विभाजन के उपरान्त अन्त में यदि एक युग्म की रेखायें शेष रह जाती है तो उसका यह अर्थ व्यंजित किया जाता है कि उस प्रियतम के दर्शन होंगे, किन्तु यदि एक ही रेखा शेष रह जाय तो प्रियतम के दर्शन नहीं हो पायेंगे। नाच्चियार तिरुमोऴि की चौथी श्रीसूक्तियो मे इस शब्द की व्यंजना इसी रूप में की गई है। इन प्रतीकात्मक शब्दों से जिस अर्थ की ओर संकेत किया गया है वह अर्थ वास्तव में परमतत्त्व का ही बोधक है।

भारतीय भाषाओं के अधिकांश कवियों ने सार तत्त्वों का ही चयन किया है। उन्होंने सभी संप्रदायों, मतों एवं दर्शनों से सार और सत्य तत्त्वों का अनुशीलन और परिज्ञान प्राप्त किया है। इन आध्यात्मिक गृहीत भावो को पारिभाषिक और प्रतीकात्मक शब्दावली के माध्यम से व्यक्त किया गया है और कहीं-कहीं तो इन पारिभाषिक शब्दावलियाँ एवं प्रतीक योजनाओं में अपने विशिष्ट साम्प्रदायिक अर्थो को भी व्यक्त किया है। अतएव मीरांबाई की कुछ

प्रामाणिक रचनाओं मे यदि कहीं प्रसंगवश निर्गुणोपासक संतो की शब्दावली भी दीख पड़े तो इसके कारण उनकी सगुणोपासना के विषय मे किसी विशेष अन्तर की कल्पना करना ठीक नहीं। हो सकता है कि उन पर किसी प्रकार सतमत का प्रभाव पड़ गया हो, किन्तु उसे गहरा समझ बैठना कदाचित सत्य से दूर होगा।[1]

निष्कर्ष

इस मीरां और आण्डाळ की प्रतीक-योजना के विवेचन से स्पष्ट है कि प्रतीक अतीन्द्रिय और ईश्वरीय अनुभूति को व्यक्त करने का एक अपर्याप्त पर लाचारी का एकमात्र साधन है। वह साध्य नही है, क्योंकि साध्य को भाषा से पकड़ा ही नही जाता। प्रतीक के सहारे रहस्यानुभूति की झाई जरूर पकड़ में आती है और जिस कवि का अनुभव जितना ही गहरा होगा उतना ही उसकी प्रतीक-योजना में साभिप्रायता और ऋजुता होगी। आण्डाळ और मीरां दोनों ने जिन प्रतीकों का आश्रय लिया, वह सामान्य जीवन के सहज पदार्थ है। उन प्रतीको को समझने में कोई कठिनाई नही। निर्गुण साहित्य या तान्त्रिक साहित्य के प्रतीकों को समझने में जो कठिनाई होती है, वह यहाँ नही है। उसका मुख्य कारण यह है कि योग की क्रिया या ज्ञान के धरातल पर प्रतीको का उपयोग न करके इन दोनों कवयित्रियो ने शुद्ध भाव से द्रुत चित्त की अवस्था को व्यक्त करने के लिये प्रतीको का उपयोग किया है। आण्डाळ और मीरां के काव्यों में प्रतीक निर्मल मुकुर का काम देते हैं और इसीलिये वे आध्यात्मिक अर्थ की प्रतीति के लिये सबसे प्रमाणित हुए है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मीरां और आण्डाळ के पदों में प्रतीक-योजनाएँ अत्यन्त प्रांजल रूप में अभिव्यक्त हुई है। प्रियतम के साक्षात्करण के लिये मीरा और आण्डाळ ने समान रूप से प्रतीकात्मक और पारिभाषिक शब्दावलियों के प्रयोग किये हैं। यही प्रतीकात्मक शब्द परमतत्त्व का साक्षात्करण कराते हुए आनन्द-भावों की सर्जना कर माधुर्य रस की सृष्टि करते हैं।

---

१. मीरांबाई की पदावली: पृष्ठ ४०, सातवां संस्करण, श्री परशुराम चतुर्वेदी।

७. मीरां एवं आण्डाळ का भाषा-प्रयोग एवं काव्यत्व

बोलचाल और सैद्धान्तिक भाषाओ के माध्यम से मानवीय चेतना अपनी विचाराभिव्यक्ति करती है। किन्तु बोलचाल और काव्य की भाषा में सैद्धान्तिक एवं शास्त्रीय अन्तर है। बोलचाल की भाषा मे प्रयुक्त शब्दावलियो का अर्थ प्राय: अभिधार्थ के रूप मे लिया जाता है, किन्तु काव्य भाषा मे बौद्धिक चेतना एवं राग चेतना का समान रूप से कलात्मक एवं भावनात्मक अभिव्यक्तीकरण होता है। व्यक्ति–चेतन–दृश्य (सृष्टि) से इन्द्रिय चेतना के द्वारा प्रातिभ ज्ञान प्राप्त करता है और इस प्रत्यक्ष-संकलन में रागात्मकता सहज ही समन्वित हो जाती है। आन्तरिक अनुभूतियाँ प्रकट होने लगती है और अर्जित प्रातिभ ज्ञान की अभिव्यक्ति अनुभूतियों एव सवेदनाओं के रागात्मक परिवेश में होने लगती है। यही कारण है कि काव्याभिव्यंजना मे भाव और अर्थ का उन्नयन परिलक्षित होता है। काव्याभिव्यंजना मे प्रभविष्णुता और व्यापकता की शक्तियाँ सहज निबद्ध होती है और काव्य के माध्यम से भाव एवं अर्थ का स्वरूप व्यक्ति-चेतन को अधिक प्रभावित करता है। कल्पना विधान का प्रकृत-रजन अथवा अतिरंजन स्वरूप भावनाओ को अधिक उदात्त बना देता है।

भाव प्रकाशन का एक मात्र मूल साधन शब्द है। जिस कृतीकार का शब्द भंडार जितना समृद्ध होता है, उसके अभिव्यक्तीकरण मे उतनी ही अधिक श्रीसमृद्धि होती है। प्रयोग की दृष्टि से भाषा शास्त्रियो ने शब्द भडार को मुख्यत: चार प्रकारों मे विभाजित किया है। पाश्चात्य काव्य-शास्त्री अरस्तु ने भी शब्द भडार का विभाजन किया है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिको ने शब्द भंडार को तत्सम, तद्भव देशज, और विदेशी रूपो में विभाजित का भाषा कर अध्ययन किया है।[1]

---

१. प्राचीन आर्य भाषा के साहित्यिक रूप अर्थात् संस्कृत के विशुद्ध शब्द तत्सम कहलाते हैं। प्राकृत वैयाकरण जिन प्राकृत शब्दों को संस्कृत शब्द-समूह में नहीं पाते थे उन्हें देशी अर्थात् अनार्य भाषा के मान लेते थे।

हिन्दी भाषा का इतिहास, धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ७०

हिन्दी के जो शब्द मध्ययुगीन भाषाओं में होकर आये हैं वे हिन्दी के लि

दूसरी और पाश्चात्य काव्य-शास्त्री अरस्तु ने संपूर्ण शब्द भंडार को आठ रूपों मे इस प्रकार विभाजित किया है—

१ प्रचलित शब्द
२ अप्रचलित शब्द
३ लाक्षणिक शब्द
४ आलंकारिक शब्द
५ नवनिर्मित शब्द
६ व्याकुचित शब्द
७ संकुचित शब्द
८ परिवर्तित शब्द

आण्डाळ व अन्य आळ्वारों की शब्द योजना :

तमिऴ् भक्ति काव्य के विकास में आळ्वार भक्त कवियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। इन कवियों की भाषा "प्राचीन संघकाल" की भाषा के शुद्ध रूप मे पाई जाती है। इन आळ्वार भक्त कवियों ने भावाभिव्यंजना के लिये तत्कालीन प्रचलित शब्दावलियों के प्रयोग किये है। भाषा को गेयता और गीतमृता प्रदान करने का श्रेय आळ्वार भक्त कवियों को ही है। भारतीय भाषाओ मे केवल तमिऴ् भाषा ही ऐसी भाषा है जिसमें सस्कृत के तत्सम अथवा विदेशी शब्दों के समयोग का अनुपात सबसे कम रहा है। शब्द समूह की दृष्टि से तमिऴ् भाषा स्वयमेव अत्यधिक समृद्ध है। भक्ति के प्रचार एवं सार में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग तमिऴ् में धीरे धीरे होने लगा था। संस्कृत के अतिरिक्त अन्य विदेशी शब्दों का प्रयोग तमिऴ् के प्राचीन साहित्य में नही हुआ है । इसका कारण है यह है कि तमिल प्रदेश विदेशी आक्रमणों से सदा ही अछूता रहा है। बौद्ध, जैन धर्मो के भिक्षुओं ने तमिलं भाषा के प्रचार और प्रसार में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इन धर्मो का प्रसार तमिऴ् प्रदेश में व्यापक रूप से हो गया था।

आर्यभाषा के शब्दों के समान ही है। प्रायः जिन शब्दों की व्युत्पत्ति का पता नहीं लगता और जो संस्कृत या प्राकृत के मूल से मिलने नहीं जान पड़ते, देशज कहलाते हैं।

हिन्दी व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु, पृष्ठ ३३

इन धर्मो को श्रीहत करने के लिये एवं उनके सार को बाधित करने के लिये आळ्वार और नायन्मार भक्तो ने अनेक प्रकार के प्रयत्न किये थे। आळ्वार भक्तो ने जिन पदों की अभिव्यजना की थी उनके लीला-प्रधान पदो मे सामान्य रूप से तमिऴ् के ठेठ शब्दो का प्रयोग हुआ है। भक्ति तत्त्वों के प्रकाशन में सस्कृत के शब्दों का आश्रय लिया गया है, परन्तु उन पर तमिऴ् का रंग इस प्रकार चढ़ाया गया है कि उनका मूलरूप प्रायः अदृश्य हो गया है। कही-कही तमिऴ् का रग इतना अधिक व्यापक हो गया है कि संस्कृत शब्दों की आदिरूपता का परिचय नही मिलता।

आळ्वार भक्त कवियों की अभिव्यंजना शैली में एकरूपता और एकस्वरता पायी जाती है। उनकी कृतियो के व्यवहृत शब्द समूह को तीन रूपों मे विभाजित किया जा सकता है।

(१) तमिऴ् के ठेठ शब्द
(२) संस्कृत के तत्सम शब्द
(३) संस्कृत शब्दों का तमिऴ् रूप

प्रस्तुत अध्याय की सीमा सस्कृत के तत्सम शब्द और सस्कृत शब्दों के तमिऴ् रूप विश्लेषण तक ही सीमित है। तमिल के ठेठ शब्दो पर विचार नही किया गया है। तमिऴ् भापीय शब्दावलियों का भाषा शास्त्रीय विश्लेषग इस स्थल पर प्रयोजनहीन है। तमिऴ् भाषा में संस्कृत शब्दो की प्रकृति विशेष परिवर्तन किये बिना ही शव्द के अंत मे तथा आदि मे प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। इस जोड़े से परिवर्तन से प्रकृति मे कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता।

आण्डाळ द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्द :

आण्डाळ ने सस्कृत शब्दो के तत्सम शब्दो का प्रयौग प्रधानतः दो मुख्य उद्देश्य से किया है।

(१) प्रतिपाद्य (लीला, सिद्धान्त आदि) के अनुरूप अभिव्यक्ति को परिष्कृत करने के लिये
(२) व्यक्तिवाचक संज्ञाओं, आराध्यदेव तथा स्थान विशेष के सूचनार्थ

आण्डाळ के पदों में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य नही मिलता। प्रत्येक पद में एक या दो संस्कृत के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। कई पद तो ठेठ तमिऴ् के है और इनमें किसी भी अन्य भाषा का मिश्रण नहीं मिलता। नीचे आण्डाळ ठेठ तमिऴ् पद उद्धृत है।

ऊडल कूडलुणर्दल पुणर्दलै नीडु निन्र निर्‌ै पुकलाय्च्चियर्
कूडलैक् कुलर् कोदै मुन् कूरिय पाडल् पत्तुम् वल्लार्कु इल्लै पावमे ।।[१]
कालै कवुविडुकिन्र कयलोडु वालै विरवि
वेलै पिडित्तेन्नैमार्कलोट्टिल् ऍन्न विळैयाट्टो
कोलच्चू सिर्राडै पलवुङ कोण्डु नी येरियिरादे
कोलङ करियपिराने कुरीन्दिडैक् कूरै पणियाय् ।।[२]

ऊपर के पदों मे संस्कृत शब्दों के बिना विशुद्ध तमिल् रूप ही विशेष रूप से दृष्टव्य है।

प्रतिपाद्य के अनुरूप संस्कृत के तत्सम शब्द :

आण्डाळ की कृतियों में प्रतिपाद्य के अनुरूप प्रायः सरल तत्सम शब्दों का पारिभाषिक रूप में प्रयोग किया गया है। इन संस्कृत शब्दो के मिश्रण से माधुर्य का अभाव कहीं भी नही हुआ है। देखिये—

मारकलित तिंगळ् मदि निरैन्द नन्नाळाल्
नीराडप् पोदुवीर् पोदुमिनो नेरिल़ैयीर्
सीरमल्कु मायप्पाडिच् सेल्व सिरुमीर्काळ्
कूर्वेर् कोडुम् तोलि़लन् **नन्दगोपन् कुमरन्**
एरान्दै कण्णि **यसौदे** यिलम् **सिंगम्**
कार्मेणिच् सें कण कदिर्मयम् **पोलमुकत्तान्**
नारायणने नमक्के पर्‌ै तरुवान्
पारोर् पुकलप् पडिन्तेलो रैम्पावाय् ।।[3]

और

अंगण मा आलत् **तरसर् अबिमान**
बंगमाय् वन्दु निन् पळ्ळिक् कट्टिर् कील्
संग मिरुप्पार् पोल् वन्दु तलैप् पेंय्दोम्
किंकिणी वाय्च् सेंय्द तामरैप् पूप्पोल्
सें गण सिरुच् सिरिदे येंन्मेल् विळियावो

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि़ पद ४–११
२. नाच्चियार तिरुमोलि़ पद ३–५
३. तिरुप्पावै पद १

तिगलुम् आदित्यनुम् ऍल.ुन्दार् पोल्
अंगणिरण्डुम् कोण्डेङ्कल् मेल् नोक्कुदियेल्
ऍगण्मेर् साप मिलिन्देलो रेम्पावाय्[1]

इस प्रकार के अनेक उद्धरण आण्डाळ की रचनाओं से निकाले जा सकते है। इन पदों मे अधिकतर संस्कृत शब्द तमिल ध्वनियो के अनुरूप, रूप विपर्यय करके संयोजित किये गये है।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को सूचित करने के लिये प्रयुक्त तत्सम शब्द :

वर्ण्य विषय के अनुसार कृष्ण, यशोदा, नन्दगोप, विष्णु, रगनाथ, बलराम, प्रभृति नामो के प्रयोगो में अधिकतर शब्दो के मूलरूप को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है। वैसे ही तीर्थ स्थल, भगवान के अस्त्र-शस्त्र तथा पांचजन्य शंख आदि को उल्लेख करते समय तत्सम शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। इन स्थलों पर तत्सम शब्दों के कारण काव्य-शैली चमत्कृत हो उठी है और आण्डाळ अपने आराध्यदेव के अनेक सजीव चित्र प्रस्तुत करने में सफल हुई है—

तडवरैयिन् मीदे शरत्कालचन्द्रिन्
इडैयुवाविल् वन्दु ऍलुन्दाले पोल् नीयुम्
वडमदुरैयार् मन्नन् वासुदेवन् कैयिल्
कुडियेरि वीर्रिरुन्दाय् कोलप् पेरुम् संगे।[2]

और

वारणमायिरम् सूल वलम् सेय्दु
नारणनम्बि नडक्किन्रानेन्रदिर्
पूरण पोर्.कुडम् वैत्तुप् पुरमेंगुम्
तोरणम् नाट्टक् कणाक्कण्डेन तोलिनान्[3]

और

वंगक् कडल कडैन्द मादवनै केसवनै[4]
० ० ०
सेम्पेर् कल्लडिच् सेल्वा, बलदेवा[5]

---

१. तिरुप्पावै पद २२
२. नाच्चियार तिरुमोलि : ७–३ ॥
३. नाच्चियार तिरुमोलि : ६–१
४. तिरुप्पावै पद : ३०
५. तिरुप्पावै पद : १७

कुणुगुँ नारिक् कुट्टेर् रैक् **गोवर्दननै** कण्डीरे[1]

० ० ०

मिनुँग निन्रु विळैयाड **वृन्दावनत्ते** कण्डोमे[2]

उपर्युक्त स्थलों के व्यक्तिवाचक शब्दो मे सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग किया गया है। आलम्बन के सजीव चित्रण मे आण्डाळ के ठेठ शब्दों का ही प्रयोग सर्वत्र किया है। शब्द समूह की दृष्टि से तमिल़ भाषा पूर्ण समृद्ध है। वर्ण्य विषय के कारण ही आण्डाळ को सस्कृत शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आण्डाळ ने प्रतिपाद्य के अनुरूप संस्कृत शब्दो को तमिल़ भाषा की ध्वनि एव वैयाकरणिक व्यवस्था के अनुकल किया है किन्तु व्यक्तिवाचक सस्कृत शब्दों के प्रयोग तत्सम रूपो मे हुआ है, विकृत रूप नही। संस्कृत गर्भित तमिल़शब्द रूप, काव्य शैली की शोभा को नष्ट कर देता है। आण्डाळ ने सस्कृत ज्ञान से पूर्णतया अभिज्ञ होने पर भी शक्ति मे गरिमा लाने के लिये ठेठ तथा अपने काल में प्रचलित काव्य-भाषा के लिये उपयुक्त शब्दो को ही अपनाया है। इसके अतिरिक्त तमिल़ भाषा मे मधुरता लाने के लिये अपने काल मे अप्रचलित और प्राचीन शब्दावली को चुन-चुनकर प्रयोग किया है। आऴ्वार भक्त कवियों की भाषा में भी यह आश्चर्यजनक समानता दिखलाई देती है। कहीं भी तुक-योजना के लिये अथवा गेयता की उद्भावना के लिये शब्दों का विकृत प्रयोग आण्डाळ की रचनाओं में देखने को नही मिलता।

आण्डाळ की रचनाओं में प्रयुक्त तत्सम शब्दों की सूची :

तमिल भाषा मे संस्कृत के तत्सम शब्दों को अपनी ध्वनियों में ढालकर आत्मसात करने की विशिष्टता है। "प्रकृति" मे परिवर्तन के बिना शब्द के आदि तथा अन्त में प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

(१) "र", "ल", "य", मे प्रारम्भ होनेवाले संस्कृत के तत्सम शब्दों के आगे स्वरागम होता है।

अरंगनात < रंगनाथ
इरावणन् < रावण
इरामन् < राम
असोदै < यशोदा
अरवम् < रव

---

१. २ नाच्चियार तिरुमोऴि १४–२

(१-१) "थ" का "त" होना, शब्द के अन्त में "न्" या "म्" जुड़ जाना आकारान्त का ऐकारन्त हो जाना तमिऴ् ध्वनि के अनुरूप है। इन अवस्थाओं में प्रकृति का रूप नहीं बदलता।

(२) मूल प्रकृति में परिवर्तन हुए बिना शब्द के अन्त में तमिऴ् ध्वनियों के अनुरूप व्यंजनान्त के आगम के उदाहरण इस प्रकार है—

नन्दगोपन्	नन्दगोप
परमन्	परम
उत्तमन्	उत्तम
मायन्	माय
दामोदरन्	दामोदर
नारायणन्	नारायण
केशवन्	केशव
बालकन्	बालक
नायकन्	नायक
नरन्	नर
सिसुपालन्	शिशुपाल
वामनन्	वामन
देवादिदेवन्	देवादिदेव
कुलम्	कुल
सकटम्	शकट
नामम्	नाम
अम्बरम्	अम्बर
सेवकम्	सेवक
गुणम्	गुण
माणिक्कम्	माणिक्क

(२-२) तमिऴ् मे अघोष महाप्राण तथा घोष महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण नहीं होता। महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर केवल अघोष तथा घोष ध्वनियों का ही उच्चारण होता है।

संग	शंख
दूपम्	धूप (म्)
मादवी	माधवी
अबिमान बंग	अभिमान भंग

सगम्	सघ
मादव	माधव
मन्मत	मन्मथ
बेद	भेद
सेतुबन्दम्	सेतुबन्ध
बट्ट	भट्ट
मदुसूदन्	मधुसूदन
बोग	भोग
निदि	निधि
दवळ	धवळ
बुवनि	भुवन ("इ" मध्य स्वरागम यहाँ हुआ है)
विदि	विधि
परिदि	परिधि
मदु	मधु
कुंबकरुणनन्	कुंभकर्ण (यहाँ "उ" मध्य स्वरागम हुआ है)

(२-१-२) दो स्वरों के बीच में या दो घोष ध्वनियो के बीच मे अघोष ध्वनियाँ घोष बन जाती हैं—

नीदि	नीति
गदि	गति
विदान	वितान
मदुरे पदि	मथुरा पति
अच्चुदन	अच्चुत

।२-१-३। आद्यावर्ति मे घोष ध्वनियाँ का अघोष होना भी कही-कही पाया जाता है—

तुवरापदि	द्वारकापति
तरणि	धरणि

३ आण्डाळ की रचनाओं में अनेक संस्कृत के तत्सम शब्द मूल रूप में प्रयुक्त किये गये है।

नारायण, शार्ग, शर, मुनि, मूर्ति, मल्ल, मणि, पुण्य, गण, मन, कीर्ति, चक्र, तोरण, बलदेव, मद, पंचशयन, अमर, विमला, आदित्य,

शाप, पाचजन्य, गोविन्द, काम, कामदेव, केशव, कमल, मण्डल, अलकार, अनग़देव, तत्त्व, पुराण, तुरग, मंत्र, देश, त्रिविक्रम, करि, वेद, कोमल, देव, देवकी, वसुदेव, कालिय, वारण, विमल, नमोनारायणाय, कलश, कुकुम्, मंगल, कर्पूर, इन्द्र, तीर्थ, दवि, सुन्दर, शरण, देव, वृन्दावन, उदय, तारागण, ईश (न्)।

विशेष : "श" का उच्चारण तमिल मे अधिकतर "स" के रूप में हुआ करता है। केवल संस्कृत ज्ञान से अभिज्ञ जन सही रूप से इसका उच्चारण कर पाते है।

(३-१) आकारन्त व्यक्तिवाचक संज्ञाये ऐकारान्त हो जाती है—

यशोदे	यशोदा
वनमालै	वनमाला
यमुनै	यमुना
विनतै	विनता
मालै	माला
वेदनै	वेदना

(३-१-२) कभी-कभी अन्त का दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है—

योगि	योगी

(३-१-३) कही-कही "ण्ठ" का "न्द" हो जाता है—

वैकुन्द	वैकुण्ठ

संस्कृत शब्दों का परिर्वातत तमिल़ ध्वनि रूप :

(४) "ष" ध्वनि का "ट" वर्ग में परिर्वातत हो जाना तमिल़ मे सर्वत्र पाया जाता है—

विट्टुचितन्	विष्णुचित
विडम्	विष
उरोडम्	रोष। (आदि स्वरागम भी हुआ है)
इट्टम्	इष्ट
इरुडिकेसन	हृषीकेश (प्राण-ध्वनि का लोप हुआ है और स्वरागम भी हुआ है)

(५) पूर्व सावर्ण्य तथा पर सावर्ण्य के उदाहरण इस प्रकार है—

कप्परम	कम्प

वण्णन्	वर्ण
कण्णपुर	कृष्णपुर
सम्मानम्	सन्मान
बत्तविलोचन	भक्त विलोचन
नट्टम्	नाट्य

(६) "ज" का "स" होना भी सर्वत्र पाया जाता है—

सोदि	ज्योति
तेसम्	तेजस्
अरमन्	राजा (यहाँ आदि स्वरागम के कारण दीर्घ स्वर ह्रस्व हुआ है)
सलम्	जल

(६–१) "स" का "ज" भी हो जाता है—

कजन	कंस

(७) आदि स्वरागम के साथ प्रकृति में परिवर्तित रूप का कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

इलक्कु	लक्ष्य
सिरमम्	श्रम
सिरीदरा	श्रीधर
अरक्कन	राक्षस
निरुत्तम्	नृत
उरोडम्	रोपम्

(८) मध्य स्वरागम का उदाहरण प्रायः कम मिलता है—

इन्दिरा गोप	इन्द्र गोप

(९) कुछ अनियंत्रित रूप यहाँ नीचे दिये जाते हैं—

मार्कलि	मार्गशीर्ष
कुमरन्	कुमार (यहाँ मध्य स्वर का लोप हुआ है)
सिगम्	सिह
सिगासन्	सिहासन (प्राण ध्वनि के स्थान पर "ड" का आगम दृष्टव्य है)
सीर	श्री
मुगम्	मुख

किरिसै — क्रिया
परबनापन — पद्मानापन
बिच्चै — भिक्षा
अरि — हरि
अवि — हवि (तमिऴ् मे "ह" का उच्चारण "अ" के रूप में होता है)
कोदूकलम् — कौतूहल
सेवित्तल् — सेवन
मन्दिरम् — मन्त्र
सुवर्कम् — स्वर्ग
कोवलर् — गोप
मयिल् — मयूर

यहाँ मध्य स्वरागम के साथ "र" का "ल" मे परिवर्तन दृष्टव्य है। अनेक विद्वान "मयिल" को तमिऴ् का अपना शब्द मानते है। इसी प्रकार "कुयिल" को तमिऴ् का मूल शब्द मानते है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार भी दी जाती है—

कोकिल < कोयिल < कोयल < कुचिल्
पकय < पंकज (ज का य हो जाना अपभ्रंश में भी पाया जाता है।
तवत्तवर < तपस्वी
कन्दरम् < गन्ध
वळै < वलय (य का लोप हुआ है और उसके स्थान पर स्वरागम है)
किकिणि < किकिणी
(इसे तमिऴ् एवं अन्य भाषाओं में अनुरणानात्मक शब्द मानना समीचीन होगा।)
तरिक्किलान् — धारण (यहाँ इलान् "प्रत्यय नकारात्मक को सूचित करता है)
सेत्तुवि — सेवन
तरै — धरा (घोष महाप्राण अघोष हो गया है अन्त्य आकारान्त ऐकारान्त बन गया है।)
वासकम् — वाचक

संकरप्		संकल्प ("ल" का "र" हो जाना तमिऴ् ध्वनि के अनुरूप ही है।)
शररकाल चन्दिरन		शरद्काल चन्द्र (द का र् हो जाना और चन्द्र में मध्य स्वरागम दृष्टव्य है)
शामम्		स्याम (मध्य स्वरागम के साथ पर वर्ण के कारण पूर्व वर्ण भी उसी वर्ण का हो गया है)
वलि		बली ("ब" का "व" हो जाना कहीं-कहीं पाया जाता है)
वदै	<	वध
कडम्ब	<	कदम्ब
पाण्डि वड	<	पाण्डीर वट
वट्टम	<	वर्त्त (कई विद्वान् "वट्टम" को तमिऴ् का मूल शब्द मानते है)
अमुदम्	<	अमृत
सेम	<	क्षेम
मद	<	मत्त
पवल	<	प्रवाल
दरुमम्	<	धर्म
सदुरन्	<	चतुर ("च्" का उच्चारण "स्" के रूप में होता है।)
नारण	<	नारायण (मध्य स्वर तथा व्यंजन का लोप हुआ है)
पूरण	<	पूर्ण (यहां मध्य स्वरागम हुआ है)
पाप्पन सिट्टर्	<	ब्राह्मण शिष्य (इसमे ध्वनि परिवर्तन विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है "ब" का प" हुआ है। ह्म का प्प होना, ष्य का ट्ट हो जाना तमिऴ् ध्वनियो के अनुरूप है।)
कण्ण	<	कृष्ण (परवर्ण के कारण पूर्ववर्ण परिवर्तित हुआ है)
पीतक	<	पीतांबर

गरुल	<	गरुड (यहाँ ड का ल हो जाना दृष्टव्य है)
तव	<	तप

आण्डाळ की भाषा के सबध में कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत मे बोलचाल की भाषा मे प्रचलित अनेक सस्कृत शब्दो का आण्डाळ ने स्वतंत्रता-पूर्वक प्रयोग किया है। यही कारण है कि भक्त कवियों ने वर्ण्य विषय के अनुसार इन प्रचलित शब्दो का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग किया और अपनी भाषा को व्यावहारिक रूप देने का सफल प्रयास किया है। केवल आवश्यक स्थलो पर जहाँ इन शब्दों का प्रयोग करना कवियों को अनिवार्य हुआ है वहाँ पर तमिऴ की पार्श्वभूमि को ध्यान मे रखते हुए स्वीकार किया गया है। तमिऴ भक्त कवियों ने तत्कालीन प्रचलित शब्दों के अतिरिक्त तत्सम संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग किया है। जिस मधुर तमिऴ में भक्त आऴ्वार व नायन्मार कवियों ने अपने-अपने आराध्यों की परम पावन लीलाओं का गान किया उसमे अनेक शब्दों को सादर स्थान दिया गया है। यह आदर्श उत्तर, दक्षिण की सांस्कृतिक एकता तथा भावात्मक एकीकरण और सहिष्णुता का एक ज्वलत उदाहरण है। आजकल तमिऴ प्रदेश मे संस्कृत शब्दो के बहिष्कार के प्रति जो आन्दोलन चल रहा है, उससे तमिल की ही हानि है। सस्कृत शब्दो के मिश्रण से भाषा की मधुरता कितनी बढी है, यह आण्डाळ तथा अन्य आऴ्वार भक्तों की रचनाओ मे देखा जा सकता है। आण्डाळ ने सस्कृत शब्दों के प्रयोग मे हिचक नही दिखाई है। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी भाषा उत्थान के प्रयास में संस्कृत तथा अन्य भाषाओ के प्रति घृणा की भावना प्रकट नही की गई है। आऴ्वार भक्त कवियो ने कुछ थोडे से सस्कृत शब्दो का प्रयोग किया है। प्रायः सभी कवियों द्वारा प्रयुक्त सस्कृत शब्दो मे थोड़े बहुत अन्तर के साथ एकरूपता विद्यमान है। आण्डाळ की रचनाओं मे अनुरणात्मक शब्दों का प्रयोग अत्यधिक कम मात्रा में मिलता है। कही-कही अनुरणात्मक शब्दों के द्वारा भावनाओ के तथा विभिन्न स्थितियों के चित्र खीचे गये है। आण्डाळ ने इसके लिये बोलचाल के शब्दो का सहारा लिया है। ध्वनि व्यंजकता पर आधृत अनुरणात्मक शब्द उनके पदों में कही-कही मिलता है—

कलक्कलिय कालोच्चि, कीचु कीचु, सिल्लेन्रलॅ येन्मिन्, एल्ले, किकिणि, अम्मने अम्मने, आरे, तदैत्तादे, अट्टुदल, तट्ट, तित्तित्तुरुक्कुमो, कळरि, अन्दो, आल्, कलकलप्प, आवावेन्रु।

आण्डाळ ने अभिव्यक्ति को स्वाभाविक बनाने और जन साधारण तक पहुँचाने के प्रयास में कही भी शब्दों को मनमाने ढग से तोड़ने व परिवर्तन का कार्य नही किया। ग्राम्यत्व दोष कही भी नही पाया जाता। भाषा की दृष्टि से आण्डाळ की रचनाएँ उत्तम कही जा सकती है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ :

आळ्वार भक्त कवियो के मुहावरों एव लोकोक्तियों के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य उक्ति को विदग्ध बनाना है। आण्डाळ ने भाषा को अलकृत बनाने के उद्देश्य से मुहावरों का प्रयोग नही किया है। गोपियो की झुंझलाहट, दीनता, विवशता, क्षोभ आदि को व्यक्त करने के लिये ही सबल माध्यम के रूप में मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त नारी हृदय की विवश-भावनाएँ, उपालंभ और व्यंग्य के रूप में मुहावरों के द्वारा व्यक्त हुई हैं। खीझ तथा कुण्ठा भी इन्ही के माध्यम से मुखर हो उठी है।

आण्डाळ के इन मुहावरों के प्रयोग में वैदग्ध्य और वक्रता नही है। विरहानुभूति में विवशता एक-एक शब्द में उभर पड़ती है। आण्डाळ द्वारा प्रयुक्त मुहावरों की एक लघु सूची यहाँ प्रस्तुत की जाती है—

नेय्युन्नुदल (घी खाना) ति० २
पालुण्णुदल् (दूध खाना) ति० २
नीराडुदल (जल क्रीडा करना) ति० ३
कण् वळरुम् (निद्रा करना) बढ़ाना। ति० ३
शरमलै पोल् (शरवर्षा की तरह) ति० ४ !
कै काट्टि (हाथ दिखाकर) ति० २
कुडल विळक्कम् (पेट् को प्रकाशित करना) ति० ५
कण् पडुप्प (निद्रा मग्न होना) ति० ३
मन्दिरप्पडुदल् (मंत्रमुग्ध होना) ति० ९
तुयिलेल् दल (शयन से उठना) ति० १९
किल्लिक् कलैदल् (नोच नोचकर फेकना) ति० १३
अरै परै वाय् नेर्दल् (वचन देना) ति० १६
वायाल् मारुदल (मुख से मत रोकना) ति० १६
कोलि अलैत्तल् (बांग देना) पुकारना। ति० १८
तुरे पडितल (घाट) स्नान करना ना० ति० १-१
पिरिवुआर्रुदल (वियोग सहन करना) ति० १९

आर्र पडॅतल् (अपने पास रखना) ति० २१
वलि तोलैन्दु (पराक्रम से विफल होना) ति० २१
अडि पणिदल (शरण में आना) ति० २१
कल्ल पोर्रि, अडि पोर्रि (चरण की जय करना) ति० २४
वेंळ्वर्रैप्पदन मुन्नम् (फौ फटने के पूर्व) ना० ति० १–२
तलैपुकल् (यशोगान करना ना० ति० १–७
तलैयल्लाल् कैमारुदल् (अपने सिरको तुम्हारे पैरों पर रखकर कृतज्ञता प्रकट करना) ना० ति० ५–६
संगम् इरुत्तल् (जत्था बनकर रहना) ति० २२
तलैप्पेय्दल् (निवास पर आना) ति० २२
नालयलारुम् अरिदल् (अड़ोस पड़ोस के लोग भी जानना) ना० ति० ११–२
तनिवलि पोगुदल् (अपने मार्ग पर चलना) ना० ति० १२–३
कै कण्ड योगम् (तुरन्त मिलनेवाला फल) ना० ति० १२–५
२. कट्टियुम् कैत्तल् (जीभ कड़वी हो जाने पर) गुड़ भी कड़वा लगना) ना० ति० २–८
पुण्णिल् पुळि पेय्दार् पोल् (घाव पर इमली रस छिड़कना) ना० ति० १३–१
वेलाल् तुण्णम् पेय्दार् पोल् (वेल् अस्त्र से छेड़ने की तरह) ना० ति० १३–२
वेम्पेयाग वळर्त्तल् (कटु नीम सदृश पालना अर्थात् दूसरों के अप्रिय बनाने के लिये पालना) ना० ति० १३–७

मीरांबाई की भाषा :

मीरांबाई की भाषा के संबंध में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मीरां की भाषा विशुद्ध व्रज भाषा नहीं थी। "मीरांबाई की पदावली उनके फुटकल पदों का एक संग्रह मात्र है और उसके प्रत्येक पद की भाषा एक ही प्रकार की नहीं है। उसमें बहुत से पद ऐसे हैं जो राजस्थानी मे है और कुछ की भाषा व्रज भाषा वा गुजराती कही जा सकती है। किन्तु अधिकांश में राजस्थानी, व्रजभाषा, गुजराती, कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ी बोली एवं पूरबी तक का न्यूनाधिक सम्मिश्रण है। कई स्थलों पर राजस्थानी के अतिरिक्त व्रज भाषा के भी विकारी

रूपों के प्रयोग हुए हैं। व्रजभाषा, पंजाबी, गुजराती तथा खडी बोली की विभक्तियों का भी व्यवहार है।"[१]

उपर्युक्त विचार आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने गभीर चिन्तन कर, मीरांबाई के पदो का शुद्ध पाठ संपादन करने के उपरान्त व्यक्त किया है। इसी प्रसंग में डा० धीरेन्द्र वर्मा के विचार भी विशेप रूप से द्रप्टव्य है—

"मीरा की भापा राजस्थानी थी। अत: मीरा के नाम मे प्रचलित पदों की भापा मे राजस्थानीपन पर्याप्त है। किन्तु व्रज तथा गुजरात मे रहने के कारण इन प्रदेशों मे प्रचलित बोलियों की छाप भी पर्याप्त है। जो हो मीरा की रचना विशुद्ध व्रजभाषा कभी भी सिद्ध नही होगी।"[२]

डा० प्रभात ने अपने शोध-प्रबन्ध "मीरांबाई" मे मीरांबाई की भाषा पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि "मीरां के पदो की भापा मे प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी और प्राचीन व्रजभाषा के रूपो का मिला-जुला प्रयोग है। मीरां की भापा मे क्रिया-रूप प्राय: व्रजभाषा के ही हैं। अत. इसकी भापा का मूल ढाँचा व्रजभाषा के अधिक निकट है, वैसे प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के प्रयोग भी काफी है।"[३]

ऊपर के विवेचन से कहा जा सकता है कि मीरा की भाषा जन साधारण की भाषा रही। राजस्थानी, व्रजभाषा तथा गुजराती के शब्दो का प्रयोग उन्होंने बहुलता से किया है। गुजराती मिश्रित व्रजभापा का एक उदाहरण इस प्रकार है—

> भली बु बनी वृषभान नदनी प्रात सभी रण जीत आवैं।
> मख पर स्वेद अलक लर छूटी मधुरी चालि गजगति लजावती।
> मोहन छैल छबीले नागर सुरत ही डोरिया झरत गावे।
> दोउ सुभट रणषैल महारस त्रासत मदन ठौर नहि पावि।
> हरी के नख रुचि उदय विराजीत विन तारावली हार देखावत।
> मीरां प्रभु गिरीधर छवी निरखत वदन कोटि रवि जोति लजावत ॥[४]

---

१. मीरांबाई की पदावली, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ६७
२. व्रजभाषा व्याकरण, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ३०
३. मीरां स्मृति ग्रंथ, जगदीश प्रकाश गुप्त, पृष्ठ १४४
४. मीरांबाई, डा० प्रभात, पृष्ठ ४५३

शुद्ध गुजराती भाषा में—

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी।
जल जमुनामां भरवां गयांतां हती नागर माथे हमनी रे।
काचे ते तातणे हरि जीए बोधी चेम खेंचे तेम तेमनी रे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर शामली सुरत शुभ एमनी।[1]

राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा का एक पद इस प्रकार है—

पिया अब घर आज्यो मेरे तुम मोरे हूं तोरे।
मैं जन तेरा पंथ निहारूं, मारग चितवत तोरे।
अवध बदीती अजहूं न आये, दुतिमना सूँ नेह जोरे।
मीरां कहे प्रभु कबरे मिलोगे, दरसन बिन दिन दोरे।।[2]

राजस्थानी के अनेक पद पदावली में मिलते हैं। दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

मुझ अबला ने मोटी नीरांत थइ रे।
छामलो घरेणु मारे सांचु रे।
वाली घड़ावुं बिट्ठल बर केरी, हार हरी नो भारे हैये रे।
चित्र माला चतुरभुज हूड़लो, शिद सोनी घरे जइये रे।
झांझरिया जग जीवन केरा, कृष्णा जी कड़ला ने कांबी रे।
बोंधिया घूंघरा रामनारायण ना अणबट अन्तरजामी रे।।[3]

और

स्याम म्हां बांहडिया जी गइयां।
भो सागर मझधारां बूडयां, थारी सरण लहयां।
म्हारे अवगुण पार अपारा थे बिण कूण सक्यां।
मीरां रे प्रभु हरि अविनासी, लाज बिरद री बह्यां।।[4]

पंजाबी भाषा का पुट निम्न लिखित पदो में मिलता है—

लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर।
तिपत पड्यां कोइ निकटि न आवै, सुख में सबको सीर।

---

१. मीरांबाई की पदावली पद : १७३
२. मीरांबाई की पदावली पद : ९५
३. मीरांबाई की पदावली पद : १४१
४. मीरांबाई की पदावली पद : १३८

बाहरि घाव कछू नहिं दीसै, रोम रोम दी पीर।
जन मीरां गिरधर के ऊपर सदकै करूं सरीर॥१

और

हो कानां किन गूँथी जुल्फां कारियां
सुधर कला प्रवीन हाथ न सूँ, जसुमतिजू ने सबारियाँ।
जो तुम आओ मेरी बारवरियां जरि राखूँ चंदन किवारियां।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर इन जुलफन पर वारियां॥२

खड़ी बोली मिश्रित भाषा का रूप इस प्रकार है—

मै तो गिरधर के घर जाऊं।
गिरधर म्हांरो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
रैण पडै तब ही उठि जाऊं, भोर गये उठि आऊं।
रैण दिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ ज्यूँ वाहि रिझाऊं।
जो पहिरावे सोई पहिरूं, जो दे साइं खाऊं।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिनि पल न रहाऊं।
जहां बैठावै तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊं।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊं।३

व्रजभाषा मे रचित पदो मे से दो पद नीचे दिये जाते है—

प्रभु सो मिलन कैसे होय।
पांच पहर धंधे में बीते, तीन पहर रहे सोय।
मानुख जनम अमोलक पायो, सोतैं डार्यो खोय।
मीरां के प्रभु गिरधर भजीये होनी होय सो होय॥४

और

आवत मोरी गलियन में गिरधारी
मै तो छुप गई लाज की मारी।
कुसुमल पाग केसरिया जामा, ऊपर फूल हजारी।
मुकुट ऊपर छत्र विराजै, कुंडल की छवि न्यारी।
केसरी चीर दर्याई को लैंगो, ऊपर अंगिया भारी।

---

१. मीरांबाई की पदावली पद : १९२
२. मीरांबाई की पदावली पद : १६२
३. मीरांबाई की पदावली पद : २०
४. मीरांबाई की पदावली पद : १५९

आवत देखी किसन मुरारी, छिप गई राधा प्यारी ।
मोर मुकट मनोहर सोहै, नथनी की छवि न्यारी ।
गल मोतिन की माल बिराजै, चरण कमल बलिहारी ।
ऊभी राधा प्यारी अरज करत है, सुणजे किसन मुरारी ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी ।[1]

मीरा की भाषा मे जहाँ तक शब्द-समूह का संबंध है, मीरा ने सस्कृत शब्दो के द्वारा भाषा को समृद्ध और परिष्कृत किया है। उनके पदों मे तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्द अधिक सख्या मे पाए जाते है। अन्य कृष्ण भक्ति कालीन कवियो की भाँति मीरां के पदों मे शब्दो के लोचयुक्त रूप प्रचुर मात्रा मे आए है। इसके अतिरिक्त अपने काव्य मे सयुक्त वर्णों को परिष्कृत करके "अमिलित रूप" मे अधिक मात्रा में प्रयुक्त किया है। मीरा की भाषा के इन विविध रूपो के लिये आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सपादित "मीरांबाई की पदावली" को प्रामाणिक पाठ-शोध के रूप में स्वीकार किया गया है।

तत्सम शब्द :

हरि, चरण, कोल, जगत्, ज्वाला, इन्द्र, पदवी, ध्रुव, ब्रह्माण्ड, गोपी, लीला, गोवर्धन, अगम, प्रणाम्, मधुर, कुण्डल, रस, वजन्ती माल, भक्त, गोपाल, प्रभ, नन्द, पीटाबर, लोचन, चन्दन, द्रम, कदम, मकट, कुटम्ब, कुल, वाणी, धन, लोक, नटवर, नन्द, चचल, माधुरी, प्राण, सुख, विधि, राम, सखी, प्रीत, पुरातन, श्याम, धूल, जग, गोविन्द, गंगा, गन, भोग, नाथ, तोरण, जन्म, नीर, अमृत, कर, साधु, भजन, निन्दा, नरक, कोटि, कचन, राजा, अमर, भस्म, कमल, गुणहीन, आदि, अत, सागर, स्वाति, जल, अहल्या, आनन्द, स्वामी, ध्यान, अबला, भव, अप्ट, सुदामा, वैकुण्ठ, त्रास, मेघ, क्रोध, भोजन, मुख, त्याग, कला, रजनी, सप्त, अन्तर, बाहु, कलश, दीपक, बुद्धि, पशु, फल, कुल, पतित-पावन, पाताल, पण्डित, नाद, मनोहर ॥

मीरा की रचना मे अर्ध तत्सम तथा तद्भव शब्दो की बहुलता है। यहाँ कुछ शब्दों का सकलन किया जाता है—

परस, सीतल, कंवल, नखसिखा, मण, मुगट, मोर, णेण, मूरत, मकराकृत, मोहण, विसाल, वछल, हिवड़ो, आसा, अविनासी, जण, व्रजवणतां, आणष, जसोदा, णन्द, पुन्न, कट, दरसण, अखियन, भौह, बान, हियरे, जतन, ओखद,

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १७१

विथा, रतन, मगण, गिरवर, जमणा, कान्ह, दीठ, लाज, निसिदिन, भगति, रैण, पुरानी, जमुना, सोना, सिणगारो, सील, बरत, ग्यान, मारग, जिव, सरीर, लाख, सुपणा, सिरी, णीद, सीस, साकत, तीरथ, भाग, (भाग्य) अम्रित, दुरजन, मिरदंग, अगनि, गाण, सालगराम, करपा, सबद, विरह-विथा, घरि, पीर, मूरषन, षिण, भीत, मोच्छ, प्रीतम, वेद, ओखद, परभात, कोयल, काठ, भसम, भवंगम, म्रिछछाला, मारग, सूरज, पंछी, जोसी, संदेसा, सुष, आसा, तीरथ, किर्पानिधान, करम, अरध, कीरत, जम, मकुति, मानख, अमोलक, विन्द्रावन, किसोर, कुइन, किसन, मूरत, मुधि, नेह, छिन, सिगासन, मूरख।

मीराबाई के पदो मे मुहावरो के प्रयोग के संबध मे डा० सावित्री सिन्हा के विचार द्रष्टव्य है—'मीरांबाई की रचना मे वैदग्ध्य और वक्रता नहीं है। मीरां या तो रोना जानती है या प्रेम विह्वल रहना। ऐसी स्थिति में उपालम्भ और शिकवों का अवसर नही रह जाता। उनका अपनत्व और अह पूर्ण रूप से मिट चुका है। जिस व्यक्ति मे राग तत्त्व का अनुपात जीवन के और सब अगो की अपेक्षा अधिक रहता है और सव अभावों और परिस्थिति जन्य परिसीमाओं से चाहे समझौता कर ले पर एक असहाय विवशता को आह्लाद में परिवर्तित कर लेना उसके वश की बात नही होती। मीरा की विरहानुभूतियों में यह विवशता एक-एक शब्द में उभरी पड़ती है। दैन्य और विवशता की स्थिति मे भी मुहावरों के प्रयोग से भाषा की शक्ति प्राप्त होती है। मीरां की भाषा में इसी प्रकार की शक्ति निहित है।[1]

मीरांबाई के काव्य में लोकोक्तियों के प्रयोग बहुत कम हुए हैं। "दीपक जाण्या पीर णा पतंग जल्या जल खेह"। मी० पद० १०५) लागी लगन छूटन की नाही (१०८) "बांह गहे री लाज" आदि दो चार लोकोक्तियाँ ही उनके पदों में मिलती हैं। परन्तु मीरां के पदों में मुहावरो का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसमें मीरा की भाषा सजीव व प्रांजल हो उठी है। नीचे मीरां से प्रयुक्त मुहावरो का संकलन दिया जाता है—

देस्यूँ प्राण अंकोर, अरज करै, णेण रस अटकै, तन मन धन वारां, बलि जाई, बोल बनाय, पर हाथ गयां बिकाय, सब लया सीस चढ़ाय, हिवड़ा अणी गढ़ी, हाथ बिकानी, रंग रांच्यांरी, तराजां तोल लिया, बजन्ता ढोल लियां, मोल लियां, रंग राती, तण मण राती, मग जोवां,

---

१. **व्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प : डा० सावित्री सिन्हा पृष्ठ १०८**

चढ़े ते चौगणो रंग, निरमे निसाबा घुरास्यां, अपणे घर का परदा कर ले, लगन लगाई, बाट जोवै, आंच ढुलावै, गणतां गणतां घिस गयां रेखां, पंथ निहारूं, वार निहारूं, पंथ बुहारूं, दाध्या ऊपर लूण लगायां, कंठणा सार्यां, करवत सार्यां, चित्त वार्यां, सुख घडियारी जोवां, णेरा लड़्या, अंसुवन की माला पोवै, डगर मझारा, ऊभी मार्ग जोय, पेटां करवत अैण, मग जोवां, भेंट करूं, सौ पर एक घड़ी, डगर बुहारूं, सरीर सदकै करूं, माटी के मिल जासी, बैर चितार्यां, प्रेम का फन्दा डारो, पल भरि रह्यो न जाय,[1]

मीरां के काव्य में विदेशी शब्दों का प्रयोग राजस्थानी भाषा ध्वनियों के अनरूप परिवर्तित होकर हुआ है। इन विदेशी शब्दों में अरबी और फारसी के प्रचलित शब्द कम मात्रा में इनके काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि मीरां मुसलमानी संस्कृति से प्रभावित प्रदेश मे नही रही। कुछ उदाहरण यहाँ नीचे दिये जाते हैं[2]—

फारसी शब्द :

खूबी :	चार दिना की करले खबी, ज्यूं दाड़िमदा फूल।[1]
गुलाल :	उड़त गुलाल लाल बादला रो रंग लाल, पिचकां उड़ावां रंग-रंग री झरी, री।[2]
प्याला :	जहर का प्याला राणा भेज्या[3]
जादू :	जंतर मंतर जादू टोना, माधुरी मूरति बसिके।[4]
चाकर :	म्हाणे चाकर राखा जी, गिरधारी लाला चाकर राखां जी[5]
दरद :	हेरी म्हा दरदे दिवाणी म्हारां दरद न जाण्यां
दिवाणी :	न काय।[6]

---

१. **मीरांबाई की पदावली, पद संख्या :** ५, ५, १०, ११, १२, १३, १३, १३, १४, १४, १७, २२, २२, २२, २३, २३, ३०, ३५, ३८, ४९, ६३, ७४, ७७, १११, १२५, १२५, ८३, ८३, ८३, ८३, ८६, ८६, ८६, ८६, १०२, १०२, १०३, ११२, ११८, १२३, १९२॥

२. **मीरांबाई की पदावली : पद संख्या** (१) १९८, (२) १४८, (३) ४१, (४) ७, (५) १५४, (६) ७०,

दर दर : दरद की मार्‌यां दर दर डोल्यां वेद मिल्या नहि कोय।[1]

अरबी शब्द :

सदके : जन मीरां गिरधर के ऊपर सदके करूं सरीर।[2]

हाजिर : मै हाजिर नाजिर कब की खड़ी।[3]

जहर : जहर का प्याला राणा भेज्या।[4]

अमल : यो तो अमल म्हारो कबहुं न उतरे।[5]

तलब : अष्ट करम की तलब लगी है दूर करो दुखभार[6]

अरज : ऊभ्या ठाठी अरज करूं छूं करतां करतां भोर[7]

बार बार चारी अरजा करसूँ रैण गवा दिनजावां[8]

मीरां के पदो में प्रयुक्त कुछ अनुरणात्मक और देशज शब्द इस प्रकार है—

अनुरणनात्मक

झाझरिया,[9] ठामं ठाम,[10]

देशज :

ओड़यिा, झलर, हेड्या, भेड्या,[11]

मीरां वं आण्डाळ की भाषा का पुनरीक्षण :

आण्डाळ की भाषा अधिक परिनिष्ठित एव साहित्य की कलात्मकता के धरातल पर खरी उतरती है। उसकी भाषा में ग्रामीणत्व दोष नहीं है। पदों में कही भी ऐसे प्रसग नही आए जिन्हें श्लीलरहित कहा जाय। आण्डाळ ने शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है किन्तु यह भाषा प्रचलित ही है। वह भाषा की गतिशीलता पर विश्वास करती है और उसी के आधार पर अपनी शब्दावलियों का निर्माण करती चलती है। उसकी काव्य भाषा मे सगीतात्मकता की समाविष्टि अधिक हुई है।

मीरां की भाषा को पूर्णतः परिनिष्ठित नही कहा जा सकता। उसके पदों में भाषा का जो रूप दिखलाई देता है वह मिश्रित है। मीरां ने सगीत माधुरी

---

(१) ७०, (२) १९२, (३) ११८, (४) ४१, (५) ४०, (६) १३५, (७) ५, (८) ६९, (९) १४१, (१०) १४४, (११) मीरांबाई, डा० प्रभात, पृष्ठ ४५६

मीरांबाई की पदावली ७-१६

मीरांबाई: डा. प्रभात पृष्ठ ४५६-१७

मे डूबकर पदों की रचना की है। अतएव परिनिष्ठित शब्दों को भी लय रूपों में ढाल दिया गया है। यही कारण है कि परिनिष्ठित शब्द भी अपने मूल रूप मे प्रयुक्त नही हुए है। मीरा ने जिन शब्दावलियों का चयन किया है उनमे साहित्यिक शब्दो का प्रयोग कम हुआ है किन्तु लौकिक शब्दों के प्रयोगो के कारण उसके पदो में सहज ही स्वर माधुरी आ गई है। मीरा ने विरह और मिलन के भावावेग मे जिस प्रकार की रागात्मक अभिव्यंजना की है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी भाषा प्रयत्न साध्य नही अपितु सहज है। आण्डाळ की विरहानुभूतियों की अभिव्यंजना मे भी इसी प्रकार का रूप दिखलाई देता है। यदि दोनों कवयित्रियों द्वारा प्रयुक्त मुहावरो का तुलनात्मक परीक्षण किया जाय तो यह पूरी तरह स्पष्ट होता है कि मीरां के पदो मे बोधगम्य मुहावरों का प्रयोग अधिक हुआ है, लोचयुक्त शब्दावलियाँ भी अधिक हुई है और सयुक्त वर्णों के अमिलित रूप भी उसके पदों में अधिक पाये जाते है। आण्डाळ ने सस्कृत शब्दावलियों को तमिऴ ध्वनियों के अनुरूप बनाकर ग्रहण करने का प्रयास किया है। उसने कही भी शब्दो को विकृत नही किया। अतएव आण्डाळ के विषय मे यह कहा जा सकता है कि वह शब्द प्रयोगों के विषय मे सचेत है। मीरां ने अलमस्ती मे पदो की रचना की है और यही अलमस्ती उसके शब्द सचयन एवं शब्द प्रयोगों में भी दिखलाई देती है। मीरा के पदों मे अमिलित शब्दों के प्रयोग अत्यन्त अधिक हुए हैं। आण्डाळ के लिये भावना एवं भाषा दोनो प्रधान रही है किन्तु मीरां में भावना प्रधान रही है। भाषा को गौण व साधन मात्र माना है। जहाँ आण्डाळ ने अपनी कृतियो को संघकाल की प्राचीन तमिऴ की तुलना में अत्यन्त मधुर और उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया है वहां मीरा ने भाषा की अलकृति की ओर किंचित् भी ध्यान नही दिया। तात्पर्य यह कि आण्डाळ कला चेतना के प्रति सचेत रही और मीरां कला-विधान के प्रति अचेत। आण्डाळ ने प्रतिपाद्य को अनुकूल भाषा द्वारा प्रभविष्णु बनाने का प्रयास अधिक किया है, दूसरी ओर मीरां ने भावाभिव्यंजना को प्रभविष्णुता प्रदान की है और इसीलिये मीरां के पदों में पुनरुक्ति दोष अधिक आ गए है।

अत में मीरां एवं आण्डाळ के अभिव्यजना-शिल्प का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि आण्डाळ प्रत्यक्ष रूप से कला के प्रति सचेत रही और मीरां अप्रत्यक्ष रूप से कला के प्रति जागरूक-सी प्रतीत होती है। दोनों के पदों में भावों का तरल उन्मेष हुआ है। दोनों के पदो में भावों के प्रसार के लिये अनुकूल शब्दावलियों के प्रयोग किये गये हैं और दोनों के पदों. रागात्मकता का प्रांजल प्रसार हुआ है।

वर्ण-योजना, शब्दालंकार

अभिव्यक्ति मे अर्थ-समृद्धि का योग होता है और सामान्य रूप से शब्दावलियों के साथ ध्वनि विन्यास भी निबद्ध रहता है। "शब्दो मे एक प्रकार का पारस्परिक आकर्षण रहता है। पत्ते-पत्ते मिलकर मर्मर ध्वनि उत्पन्न करते है। तरगों के पारस्परिक आघात से कल-कल नाद उत्पन्न होता है। इसी प्रकार शब्दो के मिलने से काव्य मे एक अपूर्व सगीत ध्वनि उत्पन्न होती है।"[1] जिन रचनाकारो का अभिव्यजना-शिल्प समृद्ध होता है वे शब्दो के माध्यम से अन्तर्निहित अर्थ को मुखरित कर देते है और शब्दावलियो का पारस्परिक सगठन भी अन्तर सगीत को झंकृत करता हुआ आन्तरिक भावनाओ को प्रकट करने लगता है। वास्तव मे शब्दो की मुखरता, ध्वनि शक्ति पर ही आधारित रहती है और ध्वनि-शक्ति प्रधानत: दो रूपो मे प्रकट होती है—

१ काव्य के रस, भाव तथा गति के अनुकूल मृदुल तथा कर्कश शब्दो के प्रयोगो के माध्यम से

२ शब्दालकारो के सामजस्य द्वारा

वृत्तियों, अनुप्रासो तथा वर्ण–विन्यासो की वक्रता मे अभिव्यंजना–शिल्प की चमत्कारिक वृत्ति का प्रकटीकरण होता है। आचार्यो का मत है कि वर्ण-योजना, प्रस्तुत विषय के अनुकूल ही होनी चाहिये। यदि मात्र वर्ण-साम्य के आधार पर वर्ण-योजना को ध्वनित करने का प्रयास किया गया तो उसका परिणाम यह होता है कि अभिव्यजना-शिल्प, औचित्य पर आधारित रहता है। औचित्य के कारण ही वर्ण विषय मे काव्यत्व की समाविष्टि होती है और काव्य मे निहित प्रसाद गुण का सरक्षण भी होता है।

आळ्वार भक्त कवियो ने अपने प्रतिपाद्य को ध्यान में रखते हुए काव्याभिव्यंजना की है। उनके काव्य में प्रतिपाद्य–विषय की एकरूपता दिखलाई देती है किन्तु उनके शिल्प मे विविधता एव भिन्नता के भी दर्शन होते है। सभी भक्त कवियो ने सगीत के वैभव को ध्यान मे रखते हुए काव्याभिव्यजना की है। उनकी कविता मे सगीत तत्त्व का विशद प्रसार हुआ है और कही तो संगीत-योजना इतनी शास्त्रीय हो गई है कि उनकी पदावलियों में शास्त्रीय सगीत के स्वरूपो का स्पष्टत: बोध होने लगता है। लोक गीतों की ध्वनिया और स्वर-माधुरी भी उनके काव्य मे समाविष्ट है। अत: उनका काव्य सगीत–योजना के पूर्णत: अनुकूल है। यदि शास्त्रीय सगीत के तत्त्वो को ध्यान मे रखते हुए आळ्वार

---

१. प्रदीप : पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पृष्ठ २३४

भक्तो की काव्याभिव्यंजना का परीक्षण किया जाय तो यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि उनकी काव्याभिव्यंजना वर्ण-संगीत पर ही आश्रित है।

आण्डाळ के पदों में भी वर्णसंगति एवं वर्ण-योजना का प्रसार परिलक्षित है। आण्डाळ ने भी वर्ण-योजना की ओर विशेष ध्यान दिया है और वर्ण-योजना की सफल संगति के कारण ही उसके पदों में माधुर्य गुण सहज ही आ गया है। कही-कही तो आण्डाळ वर्ण संगति के प्रति अधिक सचेष्ट दिखलाई देती है। ऐसे स्थलों मे भाव तत्त्वो का प्रसार अंशतः बाधित-सा प्रतीत होता है।

मीरां के पदो मे सगीत माधुर्य के दर्शन होते है। मीरां तो संगीत-प्रवीणा है। उसने सगीत की शास्त्रीयता का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया है। राज परिवार के वातावरण में भी उसकी इस प्रवीणता का विकास ही अधिक हुआ है। साधु संतों के साहचर्य ने उसकी संगीत माधुरी की कलात्मकता को और भी अधिक गतिशील बना दिया है। मीरां के पदो में शास्त्रीय संगीत के दर्शन तो होते ही हैं इसके साथ ही लोक-स्वर-माधुरी का समन्वय भी उसके पदों में सहजता से हुआ है। मीरां और आण्डाळ की संगीत निपुणता को ध्यान में रखते हुए यदि लोक-संगीत की माधुरी की सम्यक् समाविष्टि और प्रसार का परीक्षण किया जाय तो यह तथ्य उद्घाटित होता है कि मीरां के पदो में लोक-संगीत की माधुरी की जो सहज समाविष्टि हुई है वह आण्डाळ के पदो मे नहीं है। दूसरा कारण यह है कि मीरा को अप्रत्यक्ष रूप से लोक-संगीत के संस्कार शास्त्रीय संगीत के साथ समन्वित रूप में मिले थे किन्तु आण्डाळ ने लोक-संगीत की माधुरी का समन्वय शास्त्रीय संगीत के साथ नही किया।

सामान्य रूप से आळ्वार भक्तों की काव्याभिव्यक्ति मे वर्ण-योजना और वर्ण–संगति का लक्ष्य प्रधान रूपो मे दिखलाई देता है।

१. भावाभिव्यजना के अनुरूप भाषा निर्माण

२. भाषा में लय और सगीत तत्त्व का समावेश

३. भाषा का अलकरण

इन्ही तीनो तत्त्वों का विकास आळ्वार भक्तो की काव्याभिव्यजना मे हुआ है। आण्डाळ आलवार भक्तिन है और उसके पदों मे भी इन्ही तत्त्वों का सहज विकास देखा जा सकता है।

आण्डाळ की वर्ण-योजना :

आण्डाळ की वर्ण–योजना का परीक्षण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि

आण्डाळ ने भाषा में संगीत और लय की समाविष्टि भावो के अनुकूल की है। आलंकारिक चमत्कार के प्रकाशन के लिये वर्ण-योजना का प्रकटीकरण प्रायः नही हुआ है। बहुत कम ऐसे स्थल है जहाँ पर वर्ण-योजना आलकारिक वक्रता से प्रेरित दिखलाई देती है। वैसे आण्डाळ के विषय मे यह निश्चित रूप से कहा नही जा सकता कि उसकी सृष्टि में काव्य के बाह्य उपकरणों के महत्त्व सदा साधन रूप में रहा है। किन्तु ऐसे स्थलों मे भी उसकी चेतना जागृत रही है और भावों के अनुकूल ही वर्ण-योजना का संगठन करती रही। आण्डाळ ने वर्ण-योजना का सफल विन्यास करते हुए अनेक ध्वनि-चित्रो को प्रत्यक्षीकृत किया है। इस प्रसंग में दधिमंथन के समय गोपियो की चूड़ियो से उद्भूत झंकृति का एक चित्र इस प्रकार है—

कीसु कीसुन्रेन्गु मानैच्चात्तन् कलन्दु
पेसिन पेच्चरवम् केट्टिलैयो पेय्प्पेण्णे
कासुम् पिर्प्पुम् कलकलप्पक् कैपेर्त्तु
वास नरुङ्कुल्लाच्चियर् मत्तिनाल्
ओसै पडुत्त तयिररवम् केट्टिलैये
नायक पेण्पिळ्ळाय् नारायणन्मूर्त्ति[1]

उपर्युक्त पद की अर्धाली में पछियों के कलरव को चित्रित किया है और और दूसरी अर्धाली मे पिशाच शब्द का प्रयोग कर गति चित्र को भास्वर बना दिया है। आण्डाळ के पदो में तमिल छन्दो का पूरी तरह आश्रय लिया गया है। आद्यानुप्रास और तुकादि का प्रयोग हुआ है और उनके प्रत्येकपद में इस अलंकार को देखा जा सकता है—

आलि मलैकण्णा। ओन्रु नी कै करवेल
आलि युल्पुक्कु मुकन्दुकोडु आर्त्तेरी
ऊलि मुदल्वनुरुवम् पोल् मेय् करुत्तु
पालि्न्तोळुडैप् परबनाबन कैयिल्
आलि पोल् मिन्नि वलम् पुरि पोल् निन्रदिन्दे
तालादे सार्गमुदैत्त सरमलै पोल्
वाल् वुलकिनिल् पेय्दिडाय् नांगळम्
मारकलि नीराड मकिल्न्देलोरेम्पावाय्[2]

---

१. तिरुप्पावै पद : ७
२. तिरुप्पावै पद ४

इस पद मे वर्षा के बिम्ब निर्माण के लिये "आलि" शब्द पुनरुक्ति प्रकाश के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार पुनरुक्ति प्रकाश का एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है—

ओरुत्ति मकनाय् पिरन्दु ओरिरविल्
ओरुत्ति मकनाय् ओळिनु वळर[1]

आण्डाळ ने तमिल छन्द-विधान को ध्यान मे रखते हुए अपनी काव्याभिव्यजना की है। निम्नलिखित पद मे आण्डाळ की कामजन्य विवशता, शारीरिक कृशता एव भावाकुलता को पुनरुक्तिप्रकाश एवं वीप्सा के द्वारा स्पष्ट किया गया है तथा भाषा को प्रवाहशीलता प्रदान की गई है——

तामुकक्कुम् तम् कैयिल् संकमे पोलावो
यामुकक्कुम् मेन् कैयिल् संकमुमेन्दिलैयीर्
तीमुकत्तु नागणैमेल् सेरुम् तिरुवरंगर्
आमुकत्तै नोक्क राल अम्मने अम्मने[2]

पुनरुक्ति प्रकाश और छेकानुप्रास से मिश्रित वर्ण—योजना के द्वारा आण्डाल ने अपनी विरह वेदना को व्यक्त किया है। निम्नलिखित उद्धरणो से इस कथन की पुष्टि की जा सकती है कि आण्डाळ की काव्याभिव्यजना में अलंकार सौन्दर्य पूर्णतः निहित है—

नाणियिणियोर् करुमभिल्लै नालयलारुम् अरिन्तोलिन्दार
पाणियादेन्ने मरुन्दु सेय्दु पण्डु पण्डावक वुरुदिराकिल्[3]

इस पद मे "पाणियादु" शब्द विचारणीय है। इसका अर्थ बिना देरी किये अथवा अविलब होता है। आळ्वारों मे केवल आण्डाळ और पेलियाळ्वार ने इसका प्रयोग किया है। आण्डाळ ने पुष्पों के उद्दीपन के लिये भी वीप्सा का प्रयोग किया है—

सुन्दरतोळुडैयान् सुललैयिल् निन्रुयुदुंकोलो[4]

आण्डाळ प्रकृति के विविध उपकरणों से अपने आराध्य देव श्री रगनाथ से मिलन की प्रार्थना करती है। ऐसे समय उसकी जो अभिव्यक्ति हुई है उसमे भावात्मक तादात्म्य के साथ-ही-साथ वर्ण—योजना का संगीत माधुर्य भी देखने

---

१. तिरुप्पावै पद २५
२. नाच्चियार तिरुमोलि पद १२—२
३. नाच्चियार तिरुमोलि पद १२—२
४. नाच्चियार तिरुमोलि पद ९—१

को मिल जाता है। आण्डाळ के पदों में वर्ण-मैत्री का एक अत्यन्त विशद रूप दिखलाई देता है। उसके पदो में आन्तरिक वेदना की जो अभिव्यंजना हुई है उनमे अलंकारिक सौन्दर्य पूर्णत. निहित है।

पैम्पोलिल् वाल् कुयिलकाल्। मयिल्काळ्। ओण् करुविळैकाळ्।
वॅम्बक्कलड् कनिकाळ्। वण्णप् पूवै नरु मलर्काळ्।
ऐम्पेरुम् पादकर् काळ् अणिमालिरुम् सोलै निन्र
एम्पेरुमानुॅडैय निरम् उडक्कलुक्कैन सेय्वदे।।[1]

आण्डाळ के समस्त पद वर्ण–मैत्री तथा अनुप्रास से युक्त है। अनुप्रास के प्रयोग से काव्य का सौन्दर्य अधिक बढ जाता है। सगीत के प्रति जागरूक चेतना ने भाषा के प्रवाह मे अधिक योग प्रदान किया है और इसका परिणाम यह हुआ कि आण्डाळ के पदो मे आलकारिक माधुर्य सहज ही समन्वित हुआ है। इस प्रसग में आण्डाळ की निम्नलिखित पक्तियाँ प्रस्तुत है जिनमे काव्यगुणो का विकास हुआ है—

तू मणि माडतु सुरुम् विळक्करिय
तुपम् कमळ तुयिलनै मेल् कण् वळरुम्
मामान् गकळे। मणिक्कदवम् ताल् तिरवाय्
मामीरवळै येल्प्पीरो उम्मकळ् तान्
ऊमैयो अन्रिच् शेविडो अनन्दलो
एमप् पेरुन्तुयिल् मन्दिरप् पट्टालो
मा मायन् मादवन् वैकुन्दनेन्रेन्रु
नामम् पलवम् नविन्रेलोरेम्पावाय्[2]

उपर्युक्त पद मे स्वरों की आवृत्तियाँ तथा लघु और कोमल वर्णो के संकलनो के द्वारा लय का माधुर्य प्रकट किया गया है। आण्डाळ के पदोमें स्वरों की जितनी सुन्दर आयोजना हुई है उतनी सुन्दर आयोजना तमिळ साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नही है। पुनरुक्ति प्रकाश के द्वारा काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित करने की क्षमता आण्डाळ मे है। आण्डाळ के निम्नलिखित पद मे पुनरुक्ति प्रकाश और छेकानुप्रास के द्वारा संगीत तत्त्वों का सुन्दर प्रयोग करने का प्यास किया गया है और अन्तर् संगीत तथा बहि:सगीत मे समरसता उत्पन्न की गई है।

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि पद ९–२
२. तिरुप्पावै पद : ९

मल्ँये मल्ँये मण्पुरम् पूसि उळ्ळाय् निन्र्
मेलुकूरिनार् पोल् ऊरु नल्वेकटत्तुल् निन्र्
अल्कप्पिरानार् तम्मे येन्नेजतकप्पडत्
तल्व निन्रु एन्नै तदैतुक्कोण्डु ऊर्रवुम् वल्लैये।[1]

इस पद मे "तदैतुक्कोण्डु" शब्द प्रयोग द्वारा आण्डाळ ने प्रियतम के प्रेमालिगन की अभिलाषा अत्यन्त सजीव चित्रण मे प्रस्तुत किया है। उसने अपने पदों में ऐसे शब्दो की समाविष्टि की है जो ध्वन्यात्मक तो है ही, इसके साथ ही रूप चित्रात्मक भी है। आण्डाळ की एक और अभिव्यक्ति उसकी कला मर्मज्ञता और उसकी आन्तरिक सौन्दर्य का परिचय देती है

कडले कडले उन्नै कडैन्दु कलकुरुत्तु
उडलुल पुकुन्दु निन्रु ऊरलरुत्तवर्कु एँन्नैयुम्
उडलुल पुकुन्दु निन्रु ऊरलुरुक्किन्र मायर्कु एँन्
नडलैकलेल्लाभ् नाकणैक्के सेन्रुर्त्तिये॥[2]

इस पद मे आण्डाळ ने वीप्सा और पुनरुक्ति प्रकाश के सम्मिश्रणद्वारा अपने आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति की है। वेदना की अतिशयता को प्रकट करने की क्षमता भी उनकी शब्द-योजना मे है। आण्डाळ ने जितने भी ध्वन्यात्मक अथवा रूप चित्रात्मक चित्र प्रस्तुत किये है उनकी विशेषता यह है कि वे इन चित्रों के माध्यम से अपने आन्तरिक सत्य को उद्घाटित कर देते है। निम्न लिखित पंक्तियों में इसी प्रकार का एक शब्दरूप देखने योग्य है—

पल्दिन्रिप् पारकडल्वण्णनुक्के पणि सेय्दु वाल्प्पेराविडिल् नान
अल्दु अल्दु अलमन्दु अम्मा। वलंग आर्वुम् उनक्कुरैक्कुड्कण्डाय्॥[3]

उपर्युक्त पंक्तियो में कोमल वर्ण की आयोजना तो हुई ही है इसके साथ ही चित्रों को इतने सजीव रूप में उपस्थित किया गया है कि वे वास्तविक चित्र को सामने रख देती है। एक अन्य अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

एँल्कमलप्पूवलकर एँम्मानानार् एँन्नुडैय
कल्लवळैयैत् तामुम् कल्ल् वळैये याक्किनरे॥[4]

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि पद १०–८
२. नाच्चियार तिरुमोलि पद १०८
३. नाच्चियार तिरुमोलि पदपद १–९
४. नाच्चियार तिरुमोलि पद पद११–२

यहाँ "कलल वळै" मे दो प्रकार के अर्थ समन्वित है। (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध कगन, (२) भ्रशित कगन

इस तरह आण्डाळ के पदो मे "श्लेष" का प्रकाशन यत्र-तत्र हुआ है। आण्डाळ ने अलकारिक सौन्दर्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये छेकानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश को इतना समरस बना दिया है कि वह अपने आतरिक भावो को शब्दालंकारो की आयोजना करते हुए व्यक्त कर देती है। निम्नलिखित पद मे पुनरुक्तवत्आभास अलकार की सुन्दर आयोजना हुई है—

तैयोरु तिकंळुमु तरैविळक्कितु तण् मण्डल मिट्टु मासिमुन्नाल्
ऐय नुण् मणर् कोण्डु तेरुवणिन्दु अल्किनुक्कू अलंकरित्त अनंगदेवा[१]

इस पद मे भी "अल्किनुक्कु" और "अलकरित्त" के द्वारा काव्य सौन्दर्य मे अलकारिकता को समावेश किया गया है। अर्थ पुनरुक्तवत् दिखाई पड़ने पर भी यहाँ पुनरुक्ति नहीं है। सौन्दर्य को बढाने के लिये "अलकृत किया हुआ" ही इसका अर्थ होगा ओर इसी पद निर्देश के आधार पर आण्डाळ ने इस प्रकार के पदो की अभिव्यक्ति की है। एक अन्य काव्याभिव्यजना भी इस प्रकार है—

नाळै वदुवै मणमेन्रु नाळिट्टु
पालै कमुकु परिसुडैप्, पन्दर्कील्
कोळरि मादवन गोविन्दनेन्बानोर,
काळै पुगुदक् कनाकण्डेन तोललि नान्॥[२]

यहाँ पर "वदुवै" और "मणम्" विवाह के लिये पर्यायवाची शब्द-सा दिखाई देने पर भी इनमे सैद्धान्तिक अन्तर ही दिखलाई देता है। "वदुवै" विवाह के पूर्व "लघ्न समारोह" को कहा जाता है और "मणम" विवाहोत्सव को। पुनरुक्ति प्रकाश के कुछ और उदाहरण इस प्रकार है—

"सिर्रम् सिरु कालै वुन्दु श्रंच् सेवितु उन"[३]

और

कोर् एरु उळक्क उळक्कुण्डु तळन्दुम् मुरिन्दिुम् किडप्पेनै
आरा अमुदम् अनैयान् तन् अमुदम् वायिल् ऊरिय।[४]

---

४. नाच्चियार तिरुमोलि पद १-२
१. नाच्चियार तिरुमोलि पद ६-२
२. तिरुप्पावै पद २९
३. नाच्चियार तिरुमोलि पद ३-४

आण्डाळ की वर्ण-योजना चित्रों की गति प्रदान करने मे पूर्णतः समर्थ है। सखी के साथ हुए उत्तर प्रत्युत्तर मे भी नाटकीय तत्त्वो का समावेश है—

ऍल्ले इळङ्किळिये। इन्नमुरंकुदियो
सिल्लन्रलै येन्मिन् नंगैमीर पोदर्किन्रेन्
वल्लेयुन् कट्टुरैकळ् पण्डे उन वायरिदुम्
वल्लीर्कळ् नींकळे नाने तानायिडुक
ओल्लै नी पोदायुनक्केन्न वेरुडैयै
ऍल्लारुम् पोन्दारो पोन्दार् पोन्देण्णिक्कोळ्
वल्लानै कोन्रानै मार्रारै मार्रळिक्क
वल्लानै मायनैप् पाडेलो रेम्पावाय्॥[1]

यहाँ इस पद मे दो क्रिया कलापो का चित्रण किया है। एक सोती हुई सखी को जगाना है और दूसरा सखी को लेटे-लेटे करवटे बदलते रहना। ये दोनों ही चित्र मन्थर गति से चित्र-योजना को पूरी तरह से सजीव बना देते है और इसके साथ जगाने आई सखियो की गति मे भी पौरुषेय आ गया है। निम्नलिखित पद मे वीरता का उपयुक्त वातावरण तथा तद्जन्य उष्णिम् भावनाओ की अभिव्यक्ति वर्ण मैत्री के साथ नाद सौन्दर्य द्वारा सभव हो सकी है—

ओरुत्ति मकनाय् पिरन्दु ओरिरविल्
ओरुत्ति मकनाय् ओळिचु वळर
तरुक्किलानाकित् तान तींगु निनैन्द
करुत्तैप् पिळैप्पित्तु कंजन वयिरिल्
नेरुप्पेन्न निन्र नेडुमाले! उन्नै
अरुत्तितु वन्दोम् परै तरुदियाकिल्
तिरुतक्क सेल्वमुम् यामू पाडि[2]

यहाँ सजातीय और संयुक्त वर्णमेल दृष्टव्य है। ओजगुण प्रदान करने मे ये सहायक सिद्ध हुए है। इस वर्ण-योजना मे नादात्मक सौन्दर्य का फूट देकर आण्डाळ उसके सौन्दर्य को द्विगुणित कर देती है। यहाँ वर्णमैत्री के साथ वर्ण संगीत द्वारा निर्मित लय भी ध्यान देने योग्य है।

आण्डाळ ने सिह के साथ उसके विभिन्न उपादानो से अधिक श्रेष्ठ और तेजमय बनाकर एक माधुर्य चित्र अकित किया है। भक्ति के उल्लास मे आण्डाळ

---

१. तिरुप्पावै पद १५
२. तिरुप्पावै पद २६

ने कृष्ण और गोपिकाओ की आन्तरिक भावनाओ को पूरी तरह स्पष्ट किया है। इस प्रसग मे एक अन्य चित्र दर्शनीय है जो वर्णसगति और वण मैत्री के साथ ही आन्तरिक प्रेमानुभूतियो को पूरी तरह अभिव्यक्त कर देती है—

मारि मलै मुलै जिल् मन्नि किडन्दुरंगुम्
सीरिय सिंगमरिवुरिर्ंत् तीविलित्तु
वेरि मयिर्पों ग एँप्पाडुम् पोन्दुँदरि
मूरि निमिन्दु मुलंगिप् पुरप्पट्टु
पोदरुमा पोल् नी पूवैप् पू वण्ण उन
कोयिनिन्रु इंगणे पोन्दरुळि कोप्पुडैय
सीरिय सिंगासनत्तिरुन्दु याम् वन्द
कारियमारायदरुलेलो रेम्पाय्[1]

आण्डाळ की वर्ण योजना के विषय मे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसके पदो मे अलकरण और संगीतात्मकता का इतना सहज समन्वय हुआ ही है कि इसके साथ ही भाव पक्ष भी पूरी तरह से समृद्ध होकर सामने आया है। यद्यपि शब्दालकारो का प्रयोग आण्डाळ की रचना मे कम हुआ है तथापि पुनरुक्ति प्रकाश के प्रयोगो की सरलता और आद्याप्रास तथा वर्ण व्यजना से यही प्रमाणित होता है कि उन्हें शब्द प्रयोगों का तथा व्यजक शक्तियो के उपयोग का पूरा-पूरा ज्ञान है और आण्डाळ ने उनका प्रयोग अत्यन्त सुन्दर ढग से किया है। कही भी ऐसे स्थल नही आते जहा कि उनका सौन्दर्य-विधान शिथिल पड़ गया हो और प्रतिपाद्य विषय का प्रसार मे व्यवधान उपस्थित हो गया हो। मीरा के पदों में भी यद्यपि भाव तत्त्वो का सहज प्रसार हुआ है तथापि उसके पदों मे उतनी अधिक कलात्मकता नही जितनी कि आण्डाळ के पदो मे दिखलाई देती है। किन्तु आण्डाळ ने जिस कान्ता भाव की अभिव्यक्ति अपने पदो मे की है उसका सहज सुन्दर प्रसार भी किया है और उसकी अलकार-योजना कहीं भी शिथिल नही पड़ने पायी है। आण्डाळ के विषय मे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसने अपने कान्ता-भाव को कलात्मक रूप मे प्रस्तुत किया है और यह कलात्मक रूप पुनरुक्ति प्रकाश और आद्यानुप्रास का परिवेश ओढ़े हुए है। कही भी कृत्रिमता का दर्शन नही होता। तमिल साहित्य मे आण्डाळ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसके पदो मे अन्य आळ्वार भक्तो की व्याभिव्यंजना की अपेक्षा अधिक सहजता,अधिक भावोन्मेष और अधिक कलात्मकता परिलक्षित है।

---

१. तिरुप्पावै । पद २४

मीरां की वर्णयोजना :

मीरां के काव्य मे वर्ण–योजना के प्रसग मे यह कहा जा सकता है कि उनके पदो मे संगीत तत्त्व का सम्यक् समन्वय हुआ है। मीरा ने लोकगीतो की ध्वनियाँ ली है और अपने पदों मे ऐसा अलकृत किया है कि भाव प्रसार मे किसी भी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नही होता। नृत्य के ताल के साथ अभिव्यजन सहज स्वाभाविक रूप से पदो मे हुई है। भावो के अभिव्यक्त करनेवाले मोहक शब्द अपने आप अभिव्यक्त हो जाते है और उनका लालित्य और भी बढ़ जाता है। मीरा की वर्ण–योजना को दो रूपो मे विभाजित किया जा सकता है।

(१) लय और संगीत तत्त्व का समन्वय

(२) भावाभिव्यंजना के अनुकुल भाषा का प्रयोग

अनुप्रास तथा अन्य अलकारो के प्रयोग मे मीरा की शुद्ध अलकारिक दृष्टि का परिचय नही मिलता। उसकी वर्ण–योजना सहज और अकृत्रिम रूप से पदो मे समन्वित अर्थ को साकार करने मे लिये प्रयुक्त हुई है और इससे ऐसा भी प्रतीत होता है कि वह अभिव्यजना की सहजता को ही काव्याभिव्यंजना का आवश्यक धर्म मानती है। उसके पदो मे कलात्मक जागृति के प्रति सचेष्टता का भाव दिखलाई नही देता। अनायास ही पदो मे पद–माधुर्य, वर्ण मैत्री और अलंकारिक कलात्मकता आ गई है। निम्न लिखित पद मे पुनरुक्ति प्रकाश और वर्ण मैत्री के द्वारा कृष्ण की त्रिभंगी रूप–माधुरी का चित्रण हुआ है—

निपट बंकट छब अटके
म्हारे णेण निपट बंकट छब अंटके।
देख्यां रूप मदन मोहेन री, पियत पियूख न मटके
वारिज भवां अलक मंतवारी, णेण रूप रस अंटके
टेढयां कर टेढे करि मुरलि टेढयां पाग लर लटके॥[1]

इसी तरह टेक का प्रयोग भी भावों के प्रसार के लिये हुआ है। टेको की पुनरावृत्तियाँ भाव के प्रसार में बाधक नही हुई है। एक अन्य पद में मीरा नृत्य की मद्राओं का चित्र प्रस्तुत करते हुए वर्ण–योजना का एक सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है—

सांवरियो रंग राचां राणां सांवरियो रंग राचां।
ताल पखावज मिरदंग बाजा साधां आगे णाच्यां॥[2]

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद १० श्री परशुराम चतुर्वेदी
२. मीरांबाई की पदावली पद ३७

पुनरुक्ति प्रकाश के माध्यम से भाव के प्रकाश मे तीव्रता लाना ही मीरां का उद्देश्य रहा है । इस वृत्ति के रूप अनेक स्थलो मे देखने को मिलते है । प्रेम की सहजता का रूप पुनरुक्ति प्रकाश और वीप्सा का सहज समन्वय के द्वारा और भी अधिक भास्कर होता है। इस प्रकार का एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है—

हरि थे हर्या जण री भीर।
द्रोपता री लाज राख्यां थे बढ़ायां चीर।
भगत कारण रूप नरहरि धर्यां आप सरीर।
बूडतां गजराज राख्यां, कट्यां कुजर भीर।
दासि मीरां लाल गिरधर, हरां म्हारी भीर॥[1]

उपर्युक्त पद के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पक्तियो मे आद्यानप्रास सयोजित है। "री" "रे" और अरी आदि शब्द खण्डों के प्रयोगो मे सगीत माधुरी एव नाद सौन्दर्य और भी अधिक ललित हो उठा है। इस प्रसग मे एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमे "रे" के प्रयोग ने पद लालित्य की श्रीवृद्धि हुई है—

मतवारो बादर आए रे, हरि को सनेसो कबहुं न लाए रे।
दादर मोर पपइया बोले, कोयल सबद सुणाये रे।
(इक) कारी अंधियारी बिजली चमकै, बिरहणि अति डरपाये रे
(इक) गाजै बाजै पवन मधुरिया मेहा अति झड़ लाये रे।
(इक) कारी नाग बिरह अति जारी, मीरां मन हरि भाये रे।[2]

और

मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, चरण कवल चितलायां।[3]

और

लेतां लेतां राम नाम रे, लोकडियां तो लाजां मरै छै।
हरि मंदिर जांता पांवलिया रे दूखे, फिर आवे सारो गाम रे[4]

और

मीरां के प्रभु बस कर लीने, सप्त ताननि की फांसु री।[5]

---

१. मीरांबाई की पदावली पद ६१
२. मीरांबाई की पदावली पद ८१
३. मीरांबाई की पदावली पद १४२
४. मीरांबाई की पदावली पद १५७
५. मीरांबाई की पदावली पद १६७

इस तरह मीरा ने अपने पदो मे ऐसे शब्दो के प्रयोग अनेक स्थलों मे किये है जिनसे काव्य का माधुर्य और पद लालित्य अत्यधिक बढ गया है। इसी प्रसग मे होली से सबधित एक अन्य पद भी प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमे लालित्य के साथ ही भाषा मे मपृणता और लय मे माधुर्य है। पद इस प्रकार है—

होरी खेलत है गिरधारी,
मुरली चैग बजत उडफ न्यारो, संग जुवति व्रजनारी।
चन्दन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुं, देत सबन पे डारी।
छल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा, प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तंह दै दै कल करतारी।
फागु जू खेलत रसिक सांवरो बाढयो रस व्रज भारी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, मोहन लाल बिहारी।[1]

पुनरुक्तिप्रकाश के प्रयोग के कारण मीरा की पदावली मे कही-कही माधुर्य इतना अधिक हो गया है कि कलात्मकता का भ्रम होने लगता है, किन्तु यदि गभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि मीरा के पदो मे जहॉ कही कलात्मकता के दर्शन होते है वहॉ वे सहजवृत्ति से प्रेरित है न कि कलात्मक वत्ति से। दधि विक्रय का जैसा सजीव चित्र मीरा ने प्रस्तुत किया है वैसी ही सजीवता आण्डाळ के पदों मे भी दिखलाई देती है। आण्डाळ ने राग चित्रो को मुखरित कर दिया है और मीरा ने गति चित्रो को स्वर दान दिया है। इस प्रसंग मे दधि-विक्रय का एक चित्र प्रस्तुत है।

कोई स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरे मटकिया डोले।
दधि को नांव बिसर गई ग्वालन 'हरिल्यो हरिल्यो' बोलै।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोले।
कृष्ण रूप छकी है ग्वालनी, औररहि औरै बोले॥[2]

मीरां के पदो में यत्र-तत्र पुनरुक्तिदोप देखने को मिलते है जैसे—

मेरे मन में ऐसी आवै मरुं जहर विष खाय।[3]

अभिव्यक्ति मे अत्यधिक तीव्रता और भास्वरता लाने के लिये मीरा ने

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १७५
२. मीरांबाई की पदावली पद १७८
३. मीरांबाई की पदावली पद १७५

शब्दों की पुनरुक्तियाँ की है। इन चित्रावलियों में मल भावना के अनुरूप ही सहजता और प्रवहमान है। मीरा का एक अन्य पद इस प्रकार है—

हेरी म्हां दरदे दिवाणी म्हारां दरद न जाण्यां कोय।
घायल री गत घायल जाण्यां, हिवड़ो अगण संजोय।
जौहर की गत जौहरी जाणै, क्यां जाण्यां जिण खोय।
दरद की मार्यां दर दर डोल्यां, वैद मिल्या न नहिं कोय।
मीरां के प्रभु पीर मिटावां जब वैद सावरो होय॥[1]

इसी प्रकार निम्नलिखित पद ध्वन्यात्मक शब्द-योजना द्वारा चित्र को अधिक सजीवता प्रदान करने का प्रयास किया गया है—

माइं री म्हां री म्हां लियां गोविन्दां मोल।
थे कह्या छाणे म्हां कां चोड्डे, लियां बजन्ता ढोल।[2]

मीरा के पदो मे शब्दालकार अत्यन्त उन्नत रूप मे हुए है। श्लेष का प्रयोग भी कही-कही मिल जाता है। निम्न लिखित पद मे प्रयुक्त "वड़ भागण" शब्द मे श्लेष है—

सुन्दर श्याम सुहावण, देख्यां जीजै हो।
मीरां के प्रभु राम जी, बड़ भागण रीझै, हो॥[3]

मीरा ने प्लुत ध्वनि का भी प्रयोग किया है। उसके अनेक ऐसे पद है जहाँ पर "री" का प्रयोग प्लुत ध्वनि का रूप है। ऐसे पदो मे मन की विवशता, हृदय का भवावेग और चित्त की आहुलता स्पष्ट दिखलाई देता है—

आली री म्हारे णेणां बाण पड़ी।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत हिवडा अणी गढ़ी।
कब री ठाढ़ी पंथ निहारूं, अपने भवन खड़ी।
अटक्यां प्राणा सांवरो, प्यारो, जीवण मूर जड़ी।
मीरां गिरधर हाथ बिकाणी, लोग कहां बिगड़ी॥[4]

मीरां ने अपनी आत्मशक्ति और आत्म तत्त्व के प्रकाशन के लिये अनेक स्थलो पर ऐसी शब्दावलियो का प्रयोग किया है जिनसे उसके अन्तर्भावों का

---

१. मीरांबाई की पदावली पद ७०
२. मीरांबाई की पदावली पद २२
३. मीरांबाई की पदावली पद १६
४. मीरांबाई की पदावली पद १४

प्रकटीकरण यथार्थ रूप में हो जाता है। निम्न लिखित पद में आत्मीयता का सूचक शब्द "गुमानी" और "मनड़ो" फस्यो" का प्रयोग हुआ है—

हेरी मा नन्द को गुमानी म्हारें मनड़े बस्यो।
गहे 'द्रुमडार कदम को ठाडो, मृदु मुसकाय म्हारी ओर हंस्यो।
पीतांबर कट काछनी काछे, रतन जटित माथे मुकुट कस्यो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, निरख बदन म्हारो मनड़ो फंस्यो॥[1]

मीरा के पदों में "ट" वर्ग की ध्वनियों का प्रयोग अधिक हुआ है। अनेक काव्य शास्त्रियो ने इस ध्वनि वर्ग को कर्कश माना है। डा० आशा गुप्ता ने तो यहाँ तक कहा है कि "ट" वर्ग की कर्कशता से लोगोका कान फट जाते है।[2] मेरा मत इससे पूर्णतया विपरीत है। मेरी धारणा है कि भाव प्रकाशन के लिये सपूर्ण ध्वनियों की सहज आवश्यकता होती है। यदि अभिव्यक्ति के समय "ट' वर्ग की ध्वनियो की वर्जित करते हुए काव्याभिव्यंजना की जाय तो प्रयत्न साध्यता के कारण काव्य मे भाव प्रसार की गति मे व्यवधान उपस्थित होगा। अतएव भाव प्रसार सहज नही रह सकेगा। काव्याभिव्यजना जो अत्यन्त सहज होती है उनमें अन्य वर्गो की ध्वनियो के साथ ही "ट" वर्ग की ध्वनियाँ भी सहजतर रूपो मे समन्वित हो जाती है और ऐसी ध्वनियां भावो के समुचित परिवेश के कारण मधुर होती है। इसकी बात यह है कि "ट" वर्ग की ध्वनिया मे उतनी ही अधिक मधुरता होती है जितनी कि अन्य वर्ग की ध्वनियो में है। उदाहरण के लिये "टेरत टेरत" "ठमक ठुमक ढरकावै" आदि में नाद की मधुरता और भावो का लालित्य सन्निहीत है। अतएव "ट" वर्ग की ध्वनियों को कर्कशता का सबोधिन देना अबोधता का सूचक है। तमिल काव्य मे "ट" और "ण" मधुर ध्वनि मानी गई है। इन ध्वनियो को भी भावों के प्रांजल परिवेश से अलंकृत किया गया है। उदाहृण के लिये "निपट बंकट छब अटके म्हारे णेण निपट बकट छब अटके"[3] आदि में "ट" "ण" ध्वनि माधुर्य सान्निहित है। "ट" वर्ग के अन्तर्गत "ड़" पर मुग्ध होकर जायसी की काव्य कला की मीमांसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्पष्ट कहा है कि "सदेसड़ा" शब्द में स्वार्थ

---

१. मीरांबाई की पदावली पद लस में ८
२. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत में डॉ० आशा गुप्त पृष्ठ २९८
३. मीरांबाई की पदावली पद १० १०
४. मीरांबाड़ की पदावली पद १

"डा" का प्रयोग भी बहुत उपयुक्त है। ऐसा शब्द उस दशा में मुँह से निकलता है जब हृदय प्रेम-माधुर्य, अल्पता, तुच्छता आदि मे से कोई भाव लिये हुए होता है।"[1]

मीरा के पदो मे "ट" वर्ग की ध्वनियाँ सहज स्वाभाविक ढग से नियोजित हो गई हैं। उनमे अत्यधिक माधुर्य है—

प्रभुजी थे कठ्यां गयां नेहड़ा लगाय।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत हिवडां अणी गढ़ी।
स्याम म्हां बांहडियां जी गह्यां।
स्याम सुन्दर पर वारां जीवड़ा डारां स्याम।
जोशीड़ा णे लाख बधायां रे आइयां म्हारो स्याम।
प्रीतम दयां संगेसड़ां म्हारो धणों णेवाजां हो।
नीदडी आवां णा शारों रात कुण विध होय प्रभात।
जणम जणम रो काण्हड़ो म्हारो प्रीत बुझाय।
घायड़ री गत घायड़ जाण्या हिवड़ो अगण संजोय।
म्हारा पियां म्हारे हीयड़े बसता ना आवां ना जाती॥[2]

निष्कर्ष :

मीरां और आण्डाळ के पदो मे उत्तर और दक्षिण भारत के भक्त कवियो की परंपराओ का प्रभाव पडा है। इन दोनो ही कवयित्रियों के पदो मे भक्ति की भावनाओं का पूर्ण उन्मेष हुआ है। मीरां के पदो में अलंकारो का प्रयोग प्रयत्न-साध्य नही। उसके पदो मे जहाँ कही अलकारो की कलात्मकता दिखलाई देती है वह भी अत्यन्त सहज रूपों में समन्वित हुई है। उसके पदों मे संगीत तत्त्वों का पूर्ण प्रसार हुआ है। संगीत तत्त्वों के समन्वय के कारण मीरां के पदो मे स्वर-माधुरी अपने सहज रूपों मे आ गई है। मीरां ने अपने आराध्यदेव की भक्ति में पार्थिवता से परे होकर अपार्थिव एवं आत्मसत्य की अभिव्यजना की है। उसके पदों में कही-कही कलात्मक सौन्दर्य के साथ ही वर्ण-योजना, नाद योजना और वर्ण–मैत्री का जितना सुन्दर समन्वय हुआ है उससे उसके पदो के माधुर्य का अनुमान किया जा सकता है। मीरां और आण्डाळ की भाषा को यदि ध्यानपूर्वक देखे तो यह तथ्य हमारे सामने उपस्थित होता है कि उसके पदों

---

१. जायसी ग्रंथावली : भूमिका
२. मीरां स्मृति ग्रंथ : पद : ११, १५, २२, २७, ४४, ७९, ८१, १९, १०॥

मे लोक शब्दावली का समावेश भी हुआ है। लोक सगीत और लोक-माधुरी के उचित प्रसार के कारण मीरा के पदो मे पद लालित्य है किन्तु इसे कलात्मक प्रयत्न साव्यता नही कहा जा सकता।

भक्त कवयित्री आण्डाळ के पदो मे भी मीरा के समान ही पद लालित्य है। उसके पदो मे आद्यानुप्रास, वीप्सा, श्लेष एव पुनरुक्तिवत् आभास आदि का इतना प्रसार हुआ है कि कही कही कलात्मक जड़ता भी आ गई है किन्तु इससे भावों का प्रसार रुका नही। भावोन्मेष की वत्ति कही बाधित नही हुई है और पदो के लालित्य की श्रीवृद्धि ही अधिक हुई है। आण्डाळ के पदो मे सगीत की शास्त्रीयता के भी दर्शन होते है। मेरा विचार है कि आण्डाळ का प्रत्येक पद सगीतात्मक शास्त्रीयता पर आधारित है किन्तु इससे–काव्य के सहज गुणों के उन्मेष में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न नही हुई है।

अत मे, मीरां और आण्डाळ की वर्ण-योजना एव शब्दालकार के प्रयोगो के विषय मे इतना कहना पर्याप्त होगा कि इन दोनों कवयित्रियों के पदो मे सभी अलकारिक तत्त्व विद्यमान है। भक्ति भावना के प्रसार मे कही भी व्यवधान– उपस्थित नही हुआ और दोनो का कला पक्ष प्राजल रूपो मे परिलिक्षित है।

---

८. सामाजिक परिवेश में आण्डाळ तथा मीरां

पूर्ववर्ती विवेचन से यह स्पष्ट है कि ये दोनो कवयित्रियाँ समाज बाह्य, पारलौकिक भक्ति मे निमग्न साधिकाएँ थी । लोक मगल की भावना इनमे थी, पर यह भावना ईश्वर मे अर्पित होने के सहज परिणाम रूप मे थी, ईश्वर प्राप्ति के साधन के रूप मे नही। दोनो ही अपने को ईश्वर मात्र से नबद्ध मानती है, सामाजिक दृष्टि से वे अपने को मनुष्य की सगिनी स्वीकार करने को प्रस्तुत नही। दोनो का आध्यात्मिक विवाह पहले स्वप्न मे होता है और वही इनका वास्तविक विवाह है । बाद मे आण्डाळ का विधिवत् विवाह श्री रंगनाथ से होता है और उनके वैष्णव पिता इसी विवाह को लौकिक अनुष्टान का रूप भी देते है जब कि मीरा का अनुष्टानमय लौकिक विवाह भोजराज के साथ होता है और भोजराज की विवाहिता होने पर भी वह अपने को गिरधर की परिणीता पत्नी मानती है । वह लौकिक पति के मरने पर भी अपने को आध्यात्मिक प्रियतम की सगिनी के रूप मे देखती है। उन्हे कहानी की चिन्ता नही । सासारिक सपर्क के धरातल पर दोनो कवयित्रियो को केवल सत समाज से नाता है। सन समाज से दोनों को ईश्वरीय प्रेम की प्रेरणा मिलती है । सन्त समाज मे ईश्वरीय सकीर्तन का अवसर प्राप्त होता है । इस कारण उन्हे इतर समाज से कोई रुचि नही है। पर इस उपेक्षा का अभिप्राय उस इतर समाज के प्रति द्वेष भी नही है। वस्तुत उस इतर समाज से आध्यात्मिक अनुभव के ऊँचे धरातल पर ऊँची पहुँची हुई इन साधिकाओं का कोई प्रेषणीय सवध ही नही है । वह समाज और उसका परिवेश इनके लिये एक छाया के रूप में है। यह छाया इनके काव्य मे अगर अपने सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त है तो आध्यात्मिकता से ओतप्रोत रूप मे अपने मे सार्थक होकर नही ।

इसलिये सामाजिक अनष्ठानो का और उत्सवो का, सामाजिक विश्वासो, और मांगलिक अभिप्रायो का जो भी चित्रण इनके काव्य मे मिलता है, वह परम उद्देश्य के रूप मे नही, काव्य के प्रयोजन में नही, वातावरण के रूप मे नही बल्कि आध्यात्मिक अनष्ठान और मगल बोध के प्रत्यायक साधन के रूप मे है । ये वर्णन इसलिये शक्तिशाली एव मनोरम है, क्योकि ये एक दिव्य दष्टि से अनुभावित है । सास्कृतिक इतिहास की दष्टि से इनका महत्व एक सूचना

के रूप मे भी हो सकता है तो वह एक आनुषगिक फल होगा, मुख्य नही। वस्तुत: ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि एक तो समाज के रूप मे या सामाजिक मगल विधि के रूप मे इनके काव्यो मे ये वर्णन वर्णित नही हुए है और दूसरे यह कि यदि छाया रूप मे समाज या उसके मागलिक अनष्ठान का अश इनके काव्य मे आया भी है तो वह नितात एकागी है, वह सीमित है। इस कारण जो वर्णन उनके काव्य मे इस प्रकार मिलते है उनसे सास्कृतिक इतिहास के लिये कोई निष्कर्ष निकालना कभी भी सभव नही होगा। यह अवश्य है कि दूसरे स्थानों मे प्राप्त सास्कृतिक स्थिति की पुष्टि के लिये इस सामग्री का उपयोग किया जा सकता है।

सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालने की बात यह है कि आण्डाळ के काव्य मे श्री रगनाथ के प्रति, तत्कालीन लोक मर्यादा के ढांचे मे रहते हुए भी विवाहिता स्वकीया भाव मे है और इसका मुख्य कारण उस काल की स्वस्थ सास्कृतिक दृष्टि है जो आध्यात्मिकता को लौकिकता से अविगत देखती है जब कि मीरा का विवाह लोक की स्वीकृति की उपेक्षा करता है क्योकि मीरा का युग आध्यात्मिक अनुभव की अलौकिकता को स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत नही था। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आण्डाळ और मीरा दोनो के सामाजिक चित्र आगे दिखाया जायगा, बहुत सजीव और व्यारेवार है। इसका कारण यह है कि लोक की चिन्ता न करते हुए और ईश्वर में अभिभूत होने के कारण ये कवयित्रियाँ लोक मगल से एकाकार है। ईश्वर से विवाहिता होने के कारण दोनो लोक मगल की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं।

मीरां और आण्डाळ ने लोकाचार और लोकानुगामी प्रवत्तियो को लेकर उनकी अभिव्यक्ति अपने पदो में की है। उनके पदों मे वैवाहित सस्कार, समाजिक जीवन, स्नान-विधान, व्रत, प्रात काल के दृश्यो में सामाजिक जीवन, कन्याओ के खेल, अलकार विधान, त्योहार आभूपण आदि का विधान व्यक्त हुआ है।

वैवाहिक संस्कार :

मीरा और आण्डाळ के पदो में उनके युग की सामाजिक परपराओं के दर्शन होते है। वैवाहिक संस्कार के समय जिन उपकरणो का प्रयोग सामान्य रूप से किया जाता है उन्ही उपकरणों की नियोजना करते हुए मीरां और आण्डाळ ने सांस्कृतिक परंपराओं को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

आण्डाल ब्राह्मण परिवार मे पली हुई कन्या है। उसने स्वप्न विवाह के चित्रण मे ब्राभ्रण परिवार मे होने वाले वैवाहिक सस्कारो का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। दक्षिण भारत मे आज भी विवाह का वही विधान, वही वैवाहिक सस्कार प्रचलित है। विवाह के दिन विवाह-मडप तोरण से अलकृत किया जाता है। कदली, पूँग आदि से मंडप को चारो ओर से आवृत किया जाता है और इन वृक्षो का उपयोग वैवाहिक सस्कार की शुभता का सूचक होता है। विवाह के पूर्व दिन वर का "जानुवास" (वरात) निकालकर वधूगृह ले जाते है। वधू पक्ष बारात का भव्य स्वागत करते है और इसी का चित्रण आण्डाळ नाच्चियार तिरुमोलि में अत्यन्त सफल ढग से किया है। वह एक स्थल पर बारात का चित्रण करती हुई कहती है—

> "श्रीमन् नारायण सहस्त्रो गजों से परिवृत होकर नगर मे पधार रहे है। मार्ग मे सर्वत्र तोरण सुशोभित है। सभी लोग स्वर्ण कलश लिये अगुवानी कर रहे है।"[1]
>
> "कदली पूँग आदि से विवाह मडप अलकृत था।"[2]

आण्डाळ ने वैवाहिक सस्कारो को अत्यधिक सफलता पूर्वक अलकृत शब्दावलियो मे चित्रण किया है। आण्डाळ ने विवाह के पूर्व दिवस होने वाले तिलकोत्सव[3] और द्वितीय दिवस सपन्न होनेवाले पाणिग्रहण सस्कार[4] का उल्लेख किया है। तिलकोत्सव के दिन वर के साथ आनेवाले बारात के सदस्य गण बधू की माता से प्रार्थना करते है कि उनकी सुपुत्री के साथ अपने पुत्र का सुपाणिग्रहण सपन्न कर दे। उस काल में वैदिक रीति अथवा पद्धति के अनुसार वर पक्ष के लोग वधू पक्ष से प्रार्थना करके विवाह करते थे किन्तु वर्तमान समय में इस पद्धति का अत-सा हो गया है और ठीक विपरीत रूप देखने को मिलता है। आजकल इस परपरा को प्रधान न मानकर गौण रूप में माना जाने लगा है। किन्तु आण्डाळ ने अपने पदो मे उस समय की पद्धति की ओर संकेत करते हुए व्यक्त किया है कि—

> "इन्द्रादि देवगण पधारे। उन्होने मेरे माता पिता से प्रार्थना की कि

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि ६–१
२. वही ६–२
३. वदुवै, मणम् : नाच्चियार तिरुमोलि ६–२
४. नाच्चियार तिरुमोलि पद ६–३

वे अपनी सुपुत्री के साथ श्रीमन् नारायण का सुपाणिग्रहण सस्कार सपन्न कर दे ।[१]

दक्षिण भारत मे विवाह के अवसर पर बधू को मत्र वस्त्रो से सुसज्जित करने का अधिकार ननद को ही है । मत्र वस्त्र का तात्पर्य यह है कि वधू को विवाह के अवसर पर बधू को पहनाये जाने वाले मगल वस्त्र। आज भी इस परंपरा के दर्शन होते है और विवाह के अवसर पर ननद वधू को मंत्र वस्त्रो से सुसज्जित करती है । इसी तथ्य की ओर सकेत करते हुए आण्डाळ ने अपने पद मे व्यक्त किया है—

"स्वय गिरिजा ने ही विवाह के सुअवसर पर अपने हाथो से मगल हार और मगल वस्त्र पहनाए ।"[२]

दुर्गा आण्डाळ की ननद है और उसी ने कृष्ण और आण्डाल के पाणि-ग्रहण के पूर्व आण्डाळ को मंत्र वस्त्रो से सुसज्जित किया था। इस अवसर पर यह उल्लेखनीय है कि श्री कृष्ण और दुर्गा का जन्म एक साथ ही हुआ था, और कस ने जब दुर्गा को वसुदेव की सतान समझकर वध करना चाहा तो वह अतर्धान हो गई थी। अतः तमिल मे उसको 'अतरि' भी कहा गया है।

दक्षिण भारत मे विवाह के अवसर पर वर वधू के हाथ को मगल सूत्र से एक साथ बॉध दिये जाने का विधान है। तदुपरान्त मत्रोच्चारण करके पुरोहित आशीर्वाद देते है तथा अग्नि परिक्रमा के पूर्व समिधो द्वारा आहुति दिलाई जाती है । आण्डाळ ने अपने ही पाणिग्रहण का चित्रण करते हुए तत्कालीन सास्कृतिक परंपराओं का चित्रण प्रस्तुत किया है । इसी को "काप्पु-नाण् कट्टुदल" कहते है । वह एक स्थल पर कहती है—

"वेदाभ्यासी अनेक ब्राह्मणो, ने चतुर्दिक तीर्थो से जल लाकर हमारे (वर वधू) ऊपर प्रोक्षण कर दिया और माधव के हाथ के साथ मेरे हाथ बॉध दिये गये । गजगामी गोपाल ने मेरे हाथ पकड़कर अग्नि परिक्रमा की ।"[३]

इस प्रकार के वैवाहिक विधान से तमिलनाड के सास्कृतिक जीवन पर भी प्रकाश पडता है । तमिलनाड मे फूफा के लड़के साथ ममेरी लडकी का विवाह स्थिर किया जाता है और फूफा का लडका इस विवाह का अधिकारी भी होता है । इसी का उल्लेख आण्डाळ ने अपने पदो मे किया है—

१, २, ३ नाच्चियार तिरुमोलि : ६–३, ६–३, ६–४

मेरे फुफेरे लडका, प्रियतम मधुसूदन ने मोतियो से अलकृत मडप मे आकर मेरा पाणिग्रहण किया ।[1]

इसी प्रकार सप्त पदी के उपरान्त सम्पन्न होने वाले अश्मारोहण और लाज होम का चित्रण भी आण्डाळ ने किया है । वह इस प्रसग को चित्रित करते हुए कहती है—

मेरे जनम जनम के रक्षक प्रभ श्रीमन् नारायण ने मेरे चरणो को अपने कर कमलो से पकड़कर सिल पर रखा ।[2]

तथा—

मेरे भ्राताओं ने मुझे और प्रियतम को अग्नि कुड के आमने-सामने खड़ा कर हम दोनो के हाथ को मिलाकर लाज होम कराया ।[3]

विवाहोपरान्त वर वधू को नगर के निवासियो से परिचित कराने के उद्देश्य मे नगर परिक्रमा का विधान भी तमिल समाज मे प्रचलित है । आण्डाळ ने इसी विधान की ओर सकेत करते हुए कहा है—

हम दोनों को हाथी पर प्रतिष्ठित कर दिया गया और नगर की अलंकृत वीथियों को परिक्रमा कराने के उपरान्त हमे सुगंधित जल से स्नान कराया गया ।[4]

इस प्रकार के वैवाहिक प्रसगों मे आण्डाळ ने जिन सास्कृतिक तथ्यो की ओर सकेत किया है वे वास्तव मे तमिल समाज के अत्यन्त आवश्यक विधान है और इन्ही विधानो का चित्रण आण्डाळ ने किया है ।

मीरां के पदो में भी कही-कही वैवाहिक संस्कारो का चित्रण हुआ है, किन्तु वह अत्यल्प है । मीरां ने आण्डाळ के समान स्वप्न विवाह के विधान की तरह राजस्थान के राजघरानो अथवा सामान्य परिवारो मे संपन्न होने वाले वैवाहिक विधान का वर्णन किया है । विवाह मडप मे सर्वत्र तोरण बधे रहने का तथा बंधुजनो के मध्य विवाह होने का एवं विवाह के समय दूल्हा घोड़े पर सवार होकर आने का उल्लेख करते हुए कहा है—

---

१. नाच्चियार तिरुमोऴि ६–६
२. वही ६–८
३. वही ६–९
४. वही ६–१०

छप्पन कोटि जहां जण पधारे दूल्हा श्री भगवान।
सुपणे में तोरण बांधियो जी, सुपणे में आयी जान।[१]
'माई में तो सुपणा में परणी गोपाल।
हाथी भी लायो घोड़ा भी लायो और लायो सुखपाल॥[२]

विवाह के अवसर पर वर और वधू दोनों रक्त और पीपवर्ण वस्त्रो से सुसज्जित रहते है। उनके माथे पर मुकुट सुशोभित रहता है। इसी ओर संकेत करती हुई मीराबाई ने यह व्यक्त किया है कि सखी गोपाल ने आकर उससे पाणिग्रहण कर लिया। मैने लाल पीले रग की चूनरी पहनी थी और हाथो मे मेहदी रचा ली थी। इसी भाव की अभिव्यक्ति मीरा के निम्न लिखित पदाशो मे हुई है—

माइ री म्हांने सुपणे में परणी गोपाल
राती पीरी चूनर पहरी, मेंहदी पान रसाल।[3]

और—

रतन जटित शिर पेंच कलंगी केसरया सब साज[४]

विवाह के अवसर पर वधू के अगो मे हल्दी का लेपन किया जाता है और उसके पीत रग से अगो को पीतवर्ण बना दिया जाता है। इसी भाव की अभिव्यक्ति निम्नाकित पद मे हुई है—

माइं महांने सुपणे में परण गया गोपाल।
अंग अंग हल्दी में करी जी सूधे भीज्यौ गात॥[५]

विवाह के अवसर पर मगल गीतो का गायन होता है और विविध रगो से चौक पूरे जाते है। रंगोली से भूमि को अलकृत करने का विधान उस समय भी था और वर्तमान काल मे भी इस विधान का रूप देखने को मिलता है। मीरा ने मंगल गीत और रंगोली की अभिव्यक्ति "मगल गावे नारी और मोती चौक पुरावहुं वाल्हा" के माध्यम से की है। इस प्रकार के सास्कृतिक परंपराओं के दर्शन मीरा और आण्डाळ के पदो मे यत्र-तत्र दिखलाई देते है। दोनो ही भक्त कवयित्रियों ने इन सास्कृतिक चित्रावलियो के प्रस्तुतीकरण के

---

१. मीरांबाई की पदावली पद २७
२. मीरां वृहत् संग्रह —पद्मावती शबनम्
३. मीरां वृहत् संग्रह—पद्मावती शबनम्
४. वही
५. वही

माध्यम से तत्कालीन युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का अत्यन्त महज एव प्रांजल चित्र प्रस्तुत किया है।

शकुन :

मीरा और आण्डाळ के पदो मे तत्कालीन समाज मे प्रचलित शकन विचार तथा विश्वासो के वर्णन पाये जाते हैं। तमिल़ प्रदेश में एक प्रकार की शकुन परीक्षा को "कूडलिल़ैत्तल" कहते हैं। विरह से पीड़ित नायिका मृत्तिका पर अनेक वृत्ताकार रेखायें अकित करती है। इन रेखाओं को युग्म रेखा के रूप मे विभाजित करती है और यदि अंत में एक युग्म रेखाये शेष रह जायें तो ऐसा माना जाता है कि प्रियतम का मिलन अवश्य होगा और यदि एक ही रेखा शेष बचे तो उसका यह अर्थ माना जाता है कि प्रियतम के दर्शन नही होगे। आण्डाळ ने अपने पदो में शकुन परीक्षा करते हुए अपने काव्य भावों को प्रकट किया है। वह एक स्थल पर मृत्तिका पर अकित रेखाओ को देखकर कहती है—

> "हे कूडल, अनेक विशुद्ध चित्त भक्तों से पूजित परमोदार तिरुमालिरूम सोलै पर्वत में निवास करने वाले मेरे साजन अपनी शयन-स्थली पर यदि मुझे चरन सेवा का अवसर मेरे प्रियतम देने वाले हों (तो उसकी सूचना देने के हेतु) तो मिल जाओ।"[1]

प्रस्तुत शकुन परीक्षा आण्डाळ के मिलन की उत्कठा को ही स्पष्ट करती है। तमिल़नाड में प्राय: सर्वत्र यह शकुन परीक्षा प्रचलित थी और काग-शकुन तो आज भी इस प्रदेश मे माना जाता है और उसके प्रति तमिल़नाड के निवासियों का दृढ विश्वास है। "काग शकुन" में यदि प्रात:काल कागा घर के मुँडेर पर बैठकर काँव-कॉव करने लगे तो यह समझा जाता है कि प्रियतम का अथवा अन्य किसी अतिथि का आगमन होगा। आण्डाळ ने भी शकुन विचार को सामान्यीकृत करते हुए काग शकुन की अभिव्यक्ति अपने पदो में की हैं। एक स्थल पर उसने कहा है—

> "प्रात:काल उठकर श्यामल रगवाले पक्षिगण तिरुमालिरूमसोलै के नाथ, द्वारकापति एवं वटपत्रशायी का नामोच्चारण कर रहे हैं। क्या इससे प्रियतम के आगमन की सूचना मिलती है।"[2]

---

१. नाच्चियार तिरुमोलि पद ४–१

२. ना० ति० पद ९–८॥

जिस युग ये आण्डाळ का आविर्भाव हुआ था उस यग मे पक्षियो के द्वारा संदेश भेजने की प्रथा थी। इसी प्रथा को आधार मानते हुए आण्डाळ ने कोकिला को संबोधित करते हुए प्रियतम के आगमन की सूचना देने की प्रार्थना की है और उसी से वह अपना विरह सदेश भी प्रियतम के पास प्रेषित करती है। वास्तव मे शकुन विचार सास्कृतिक परंपराओं की ओर ही सकेत करते है और मीरा ने उन सास्कृतिक मूल्यों का संरक्षण करते हुए अपने काव्यात्मक भावों की अभिव्यंजना की है।

मीरा के पदो में भी इन्ही सांस्कृतिक परंपराओ की अभिव्यक्ति हुई है। मीरां ने इन्ही सास्कृतिक परपराओ के आधार पर अपनी विरह व्यथा को प्रसारित किया है। आज भी राजपुताने मे यह प्रथा प्रचलित है कि यदि प्रातःकाल कागा घर के मुँडेर पर बैठकर काँव-कॉव करता है तो उसका अर्थ यह माना जाता है कि अतिथि का आगमन होगा और कागा भी अतिथि आगमन की सूचना देने के लिये कॉव-कॉव करता है। घर के सदस्य कागा के सदेश का स्वागत करते है और कागा को उड़ाने का प्रयास करते है। यदि कागा उड़ जाता है तो यह धारणा और भी दृढ़ हो जाती है कि अतिथि का आगमन होगा और कागा उडकर आगमन का सदेश प्रेषित करने की सूचना अतिथि को पुनः देगा। मीरा के पदो मे इस शकुन की अभिव्यक्ति अत्यन्त सजल रूप में हुई है। वह कागा को उड़ाने का प्रयास करती है।"कागा उड़ावत दिन गया, बूझू पंडित जोसी, हो।"[1] और "प्रीतम को पतियाँ लिखूं रे, कौवा तू ले जाई॥[2] आदि अभिव्यक्तियाँ मीरां के द्वारा गृहीत सास्कृतिक मूल्यों को ही अभिव्यक्त करती हैं। मीरा ने अगों के फड़कने की अभिव्यक्ति भी अपने पद में की है। वास्तव में भारतीय नारी समाज धर्म और किन्ही अर्थों में अदृश दिव्यत्व के प्रति अडिग आस्थावान होता है और इसीलिये वह शकुन पर विश्वास करता है और अंगो के फड़कने के परिणामो के प्रति सशंकित और उत्कठित हो उठता है। मीरा मे भी नारी सुलभ भावनाए थीं। इसीलिये उसने इस अदृश चेतन के प्रति विश्वास प्रकट करते हुए अग फड़कने के शकुन की परीक्षा कर अपनी अभिव्यक्ति करते हुए कहा है कि—

राम मिलन कब होये फड़के म्हारी आंखड़ी।[3]

---

१. २, मीरांबाई की पदावली पद ११५, ८४

३. मीरा स्मृति ग्रंथ पृष्ठ १६६॥

आण्डाळ का युग और विविध सांस्कृतिक चित्र :

स्नान : दक्षिण भारत मे मार्गशीर्ष महीने को वैष्णव मास कहा गया है। श्री कृष्ण ने गीता मे "मासाना मार्गशीर्षोऽस्मि" का निर्देश दिया है। ब्राह्म मुहूर्त जितना पवित्र माना जाता है उतना मार्गशीर्ष मास को भी माना गया है। इस मास मे उषत् काल मे ही स्नान कर भगवद् आराधना करने की प्रथा प्राचीन काल से ही प्रचलित है। इस मास मे सरोवर मे स्नान करने को "मार्गशीर्ष स्नान" कहा जाता है। आज भी तमिलनाड मे पुरुष एव स्त्री वर्ग सूर्योदय के पूव मार्गशीर्ष स्नान करते है। भक्तो की मण्डिलियाँ ग्राम व नगर की परिक्रमा करती हुई सुपुप्त तन्द्रा को भग करती है। आण्डाळ ने तिरुप्पावै मे मार्गशीर्ष स्नान का चित्रण किया है। वह इस प्रसग का उल्लेख करती हुई कहती है—

> "हे श्री समद्ध व्रजबालाओ, दिव्य आभूपण धारिणयो, स्नानेच्छुक जन, सव आइये। आज मार्गशीर्ष मास के पूर्णमासी का शुभ दिन है।"[1]

आण्डाळ ने तमिलनाड में प्रचलित सास्कृतिक परपराओं के अनेक ऐसे प्रसग अपने पदो मे प्रस्तुत किये है जिनसे सास्कृतिक विधान का सर्वेक्षण किया जा सकता है।

कात्यायनी व्रत : तमिलप्रदेश मे प्राचीन काल से ही मार्गशीर्ष अथवा पौष मास में यह व्रत उत्सव के साथ मनाया जाता है। आण्डाळ ने अपने तिरुप्पावै ग्रंथ मे इस व्रत का उल्लेख किया है। केरल प्रदेश मे यही व्रत "आर्द्रा दर्शन" के नाम से जाना जाता है। इस प्रसग मे कात्यायनी व्रत नामक अध्याय में (परिशिष्ट मे) विशेष विवरण प्रस्तुत किये गये है। आण्डाळ ने इस व्रत का उल्लेख करते हुए तिरुप्पावै ग्रंथ मे लिखा है—

> "चूडी भुज का आभूषण, कर्ण कुडल, कर्णपुष्प, नूपुर आदि अनेकानेक आभूषणों से सज्जित होकर, सुन्दर वस्त्रों से स्वय को अलकृत करे। घृत से पूरित क्षीरान्न को हम सब मिलकर खाये। क्षीरान्न में इतना घृत डाला जायगा कि वह हाथ मे से कुहनी तक वहकर पथ्वी पर सरसने लगेगा।[2]

---

१. तिरुप्पावै पद १

२. तिरुप्पावै पद २८

यही व्रत कन्या व्रत के नाम से भी प्रसिद्ध है । सुन्दर पति की प्राप्ति के लिये कन्याये इस व्रत का पालन करती है ।

प्रातःकालीन दृश्यों में सामाजिक वर्णन :

आण्डाळ ने अपने पदो मे प्रात.कालीन कार्य कलापो का तथा उषःकालीन गरिमा का अत्यन्त सजल चित्रण किया है । उसके पदों मे लोक जीवन के अनेक सकेत भी देखने को मिलते है । उसके व्यावहारिक जीवन को चित्रित करते हुए आण्डाळ ने अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। दक्षिण भारत तो मदिरो की पुण्य भूमि है । प्रातः काल मदिरो की शख-ध्वनि को सुनकर सब जागृत हो उठते है । साधूगण हरि का नामोच्चारण करते हुए ईश्वर की आराधना करने लगते है । इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए आण्डाळ ने अपने पद मे व्यक्त किया है कि"

> हे वाले, पक्षीगण चहचहा रहे है । पक्षी राज के स्वामी (विष्ण) के मदिर से धवल शख की ध्वनि प्रतिगुंजित हो रही है। क्या तुमने उसे नही सुना ।"[१]
>
> "योगी मुनि गण हरि हरि का नामोच्चारण करते जा रहे हैं। इसे स्मरण कर आनदित होकर उठो ।"[२]

प्रातःकालीन गोप-गोपियो के मधुर विलास को आण्डाळ ने अत्यन्त सजीव रूप मे प्रस्तुत किया है । वह दधि मथन का एक चित्र प्रस्तुत करती हुई कह उठती है—

> "सुगधित अलकावलियों वाली गोपियाँ हाथो को आगे पीछे करके दही मथ रही है । दही मथते समय उनके सुन्दर आभूषणो की मधुर ध्वनि ध्वनित हो रही है ।"[३]

इसी प्रकार फौ फटते ही गाय-बछेरू चारो दिशाओ मे चरवण के लिये वन मे विहार कर रहे है । इसका चित्र इस प्रकार है :—

> "हे कौतूहलनी फौ फट गई । पूर्व दिशा किरणो से प्रकाशित हो उठी । गाये घास चरने के लिये चारो दिशाओ मे निकल गई ।"[४]

---

१. तिरुप्पावै पद ६
२. 　वही 　६
३. 　वही 　७
४. तिरुप्पावै पद ८

इसी तरह दूध दही की समृद्धि का चित्रण करते हुए आण्डाळ ने व्यक्त किया है—

"दूध दुहनेवालो के अभाव मे वेदना से पीडित होकर भैसे रभा रही है। अपने बछडे की याद कर और उस पर द्रवित होकर वे अपने पृथुल थनो से दूध की धारा प्रवाहित कर रही है।"२ इससे सपूर्ण घर पंकिल हो उठा है।"[1]

उष.काल के पूर्व ही साधु सन्यासी मंदिर का कपाट खोलने के लिये तथा शख-ध्वनि से संपूर्ण वातावरण को प्रतिगुजित करने के लिये जा रहे है। इस चित्र को आण्डाळ ने और भी अधिक सरस वना दिया है—

"केसरिया रंग से रजित वस्त्र धारी, शुभ्र दन्तवाले तपस्वी अपने मदिर मे शंख ध्वनि से प्रतिगुँजित करने जा रहे है।"[2]

इन दोनों ही सांस्कृतिक चित्रो मे आण्डाळ ने अपनी विलक्षण निरीक्षण वृत्ति का परिचय दिया है। बछड़े की याद, मां का द्रवीभूत हो जाना, पृथुल थनो से दूध धारा का प्रवाहित होना, तथा गृह का पंकिल होना आदि आण्डाळ के प्रेमात्मक सकेत है। वह स्वय मातृत्व का अनुभव करती है। उसका हृदय पृथुल थन के समान प्रेम जल से भर उठा है। प्रेम का जल अन्तर तक की सीमित न रहा। प्रवाह फूट पड़ा और सपूर्ण सृष्टि उस प्रेम जल से पकिल हो उठी। यह चित्र आण्डाळ की आन्तरिक रसात्मकता का बोध कराता है। वह बाह्य रूप से भी उतनी सरस, उतनी ही पवित्र और उतनी ही निर्मल थी। दूसरा चित्र वैराग्य-वसना आण्डाळ के बहिसत्य की शुभ्रता की ओर सकेत करता है। इस प्रकार आण्डाळ ने सांस्कृतिक सत्यो के साथ अपने अन्तर और वाह्य को एकाकार कर दिया था।

कन्याओं का खेल :

आण्डाळ ने अपने युग की अपरिणीता कन्याओ की क्रीडा का अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। मदनोत्सव या वसन्तोत्सव एक विशिष्ट प्रकार का त्योहार है। इस अवसर पर कन्यायें अपने-अपने घर के सामने गोबर से लीप पोतकर सुन्दर चौक पूरती हैं। प्रतिदिन तमिलनाड मे प्रात.काल नारियाँ घर के सामने के भाग मे चौक पूरकर अलकृत करती है। जो घर चौक से

---

१. तिरुप्पावै पद १२
२. वही १४

अलकृत नही होता वहा किसी अशोभनीय घटना का घटन निरूपित किया जाता है। मार्गशीर्ष व पौष मास मे रंगोली पूरने का कार्य अत्यधिक होता है। तमिल् समाज मे इसे 'कोलम' के नाम से अभिहित किया गया है। आण्डाळ ने इस चित्र को अपनी अभिव्यक्ति माध्यम से और भी अधिक अलकृत कर दिया है—

> "हे अनगदेव, मै पौष मास भर तुम्हारे स्वागतार्थ वीथियो को पवित्र कर मडल पूजा के हेतु सुन्दर मडल वेदी बनाकर माघ मास के पूर्व पक्ष मे सुन्दर सिकता कणो से भागो को अलकृत करती हूँ।"[१]

मन्मथ का धर्म ही रजोगुण है। उसे धत्तूर, पलाश, मन्दार शीर्षपुष्प ही अधिक प्रिय है। ये सभी पुष्प फाल्गुन मास मे पुष्पित होते है। आण्डाळ इन्ही पुष्पों से मदन की पूजा करती है और मदनोत्सव का विवरण भी आण्डाळ ने दिया है।

> "दीवारो पर कामदेव को चित्रित कर साथ ही मत्स्य, ध्वज, इक्षु धनुष, चमरी मृग आदि को भी चित्रित करती हूँ। प्रातःकाल, मध्यान्ह एव सन्ध्या काल तीनो कालो में मदनोत्सव के समय मन्मथ की पूजा करती हूँ और पूजा मे मदन को शालिगुच्छ, गन्ना तथा गड़ और तण्डुल का भोग समर्पित कर आराधना करती हूँ।"[२]

इस उत्सव के अवसर पर कन्यायें सुन्दर केलिगृह बनाकर क्रीडा वनाकर क्रीड़ा करती हैं। वालू से निर्मित घरौन्दो का खेल खेलकर आनन्दित होती है।[3] नाच्चियार तिरुमोलि के प्रथम दो दशको में मदनोत्सव के अवसर पर सम्पन्न होने वाले सामाजिक व्यापारो के चित्रण भी आण्डाळ ने किया है और इस प्रकार के चित्रणो मे उसकी तीक्ष्ण अनुशीलन वत्ति का परिचय मिलता है।

घटनर्तन :

तमिल्नाड के ग्रामीण समाज मे घटनर्तन अत्यधिक प्रचलित नत्य है। यह नृत्य तमिल्नाड में आज भी देखने को मिलता है। वास्तव में यह

---

१. नाच्चियार तिरोमोलि पद १–१
२. वही १–७
३. वही दूसरा दशक पूरा

गोप समाज का नत्य है और आण्डाळ ने इस नृत्य की मधुरिमा का चित्रण करते हुए अतीव आनन्द का अनुभव किया है। आण्डाळ अनेक स्थलों मे श्री कृष्ण को "घटनर्तन मे प्रवीण" कहकर संबोधित करती है। जिस प्रकार ब्राह्मणों में अत्यधिक सपन्नता आने पर यज्ञादि करने की प्रथा थी, ठीक उसी प्रकार दक्षिण भारत के अहीर समाज मे अत्यधिक सपन्नता आ जाने पर दूध से भरी घट श्रेणी को सिर पर रख कर दोनो कधों पर तथा दोनों हाथो मे घटों को लेकर नृत्य करने का विधान है। इसी को "घट नर्तन" कहते है। इस नृत्य को तमिऴ् शास्त्रानसार लोक नत्य के ग्यारह प्रकारों मे से एक माना जाता है तथा शास्त्रीय नृत्य मे भी इसकी गणना की जाती है। तमिऴ् काव्य शिलप्पदिकारम् के टीकाकार 'अडियार्कुनल्लार' ने इस नृत्य का उल्लेख किया है।[1]

स्पष्ट है कि आण्डाळ के पदों मे सास्कृतिक जीवन को लेकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चित्र प्रस्तुत किये गये है :-

मीरां के पदों में विविध सांस्कृतिक चित्र :

मीरा का आविर्भाव जिस काल मे हुआ था उस काल में नृत्य और सगीत का अत्यधिक प्रचार रहा। सभ्य समाज मे तथा राज घरानों में एव राज दरबारो मे वारवनिताओं का नृत्य होता था। इसका उल्लेख करते हुए मीरा ने व्यक्त किया है —

भांड भवैया गणिका न्रित करतां,
बेसी रहे चारे जाम रे॥[2]

तत्कालीन समाज मे नारियो को नृत्य सीखना आवश्यक समझा जाता था।

मीरा नृत्य करती हुई कृष्ण की उपासना करती थी। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि मीरां का भी नृत्य की शिक्षा मिली होगी वह नृत्य करते हुए भगवान श्री कृष्ण की आराधना करते हुए गा उठती है—

हरि मंदिर मां निरत करावां घूघरया घमकास्यां
स्याम नाम रा झाझ चलास्यां भो सागर तर जास्यां।[3]

मीरां और आण्डाळ के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने से ऐसा प्रतीत होता

---

१. कुडत्ताडल कुन्रेडुतोनाडल अदनुक् कडैक्कू पवैन्दुरुप्पायून्दु—अडियार्कुनल्लार
२. मीरांबाई की पदावली पद १५७
३. मीरांबाई की पदावली पद ३१

है कि दोनों को ही शास्त्रीय नृत्य और संगीत का पूर्ण ज्ञान था। दोनों का पद राग-ताल में बंधी-सी प्रतीत होते है। दोनो के पदों में राग प्रयोग का निर्देश है। अतएव यह कहा जा सकता है कि दोनो कवयित्रियों मे संगीत की शास्त्रीयता के आधार पर अपने पदो की रचना की थी।

नत्य मे वाद्यों का प्रयोग होता है। मीरा ने अपने युग मे प्रचलित वाद्यो का निर्देश निम्न लिखित पद मे दिया है—

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ़ न्यारो, रंग जुवति व्रजनारी।[1]

इस तरह नत्य और संगीत की प्रवीणता मीरां और आण्डाळ मे थी और यही कारण है कि वे इतने ललित और माधुर्यपूर्ण पदों की सर्जना कर सकी है।

दैनिक जीवन के चित्र और त्योहार :

मीरा के पदों में सांस्कृतिक चित्रों को अत्यन्त प्रांजल रूप में देखा जा सकता है। उसके पदो मे होली महोत्सव का सुन्दर वर्णन देखने को मिलता है। होली तो कृष्ण का सबसे अधिक प्यारा त्योहार है। होली के दिन स्त्रियाँ गगरी सिर पर रखकर कुसुँबी रंग से रगे नये-नये वस्त्रों का धारण कर होली खेलती है। गगरियों में रंग भरा रहता है। पिचकारी से स्त्री पुरुष एक दूसरे पर रग डालकर सब गीत गाती हैं। आनंदित होकर नृत्य करती है, साथ ही चंग, मृदंग एवं डफ आदि वाद्य बजाये जाते है। मीरां ने इसी भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद में की है—

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति व्रजनारी।
चंदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ विहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुं दैत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तहं, दै दै कल करतारी।।[2]

उपर्यक्त पद्यांश तत्कालीन सांस्कृतिक मूल्यो को पूर्णतः स्पष्ट करता है। मीरां ने राजपूताने मे प्रचलित "गणगौर" नामक त्यौहार का उल्लेख भी किया है। किन्तु इसका नामोल्लेख मात्र ही है। जैसे—

---

१. मीरांबाई की पदावली पद ७५
२. मीरांबाई की पदावली पद, १७५

"रे सांवरिया म्हारे आज रंगीली गण गौ छै जी।"[1]

परिधान :

मीरां ने अपने पदों मे राजपुताने में पहनाये वस्त्रो का उल्लेख किया है। उसने "लहंगा" और "चोली" के नामों का उल्लेख किया है ।

आभूषण तथा अन्य श्रृंगार :

काजल :

आण्डाळ के समय मे स्त्रियाँ अपने नेत्रो की शोभा वढाने के लिये काजल का प्रयोग करती थी । आण्डाळ ने नप्पिन्नै को "हे अंजन भूषित विशाल नयने' एवं "नेत्रांजन हम नही लगायेगी" के माध्यम से उसके नेत्रांजन -सौन्दर्य का ही उल्लेख किया है । मीरा ने भी अनेक स्थलो मे काजल का प्रयोग किया है । इसके साथ ही चिबुक पर सौन्दर्य को वढाने के लिसे लगाये जाने वाले टीका का भी उल्लेख किया है । वह व्यक्त कर उठती है—

काजल टीको हम सब त्यागा,
त्याग्यो छै बांधन जूड़ो।।[2]

स्पष्ट है कि मीरा और आण्डाळ के पदों मे सांस्कृतिक चित्रों की उद्भावना तो हुई ही, है इसके साथ ही सौन्दर्य श्री की वृद्धि हेतु जिन उपादानों का प्रयोग किया जाता था उनका उल्लेख भी मीरा और आण्डाळ ने अपने पदों मे किया है ।

वेणी :

तमिलनाड में बेणी को पुप्पो से अलकृत करने की प्रथा अब भी प्रचलित है और प्राचीन काल मे भी इस प्रथा के दर्शन होते हैं। पुष्पो के साहचर्य से वेणी सुरभित हो उठती थी । आण्डाळ ने एक स्थल पर वेणी सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए लिखा भी है कि "केशो को पुष्पों से अलकृत नहीं करेगी।"[3] "कुसुम सुगंधित केशवाली नाप्पिन्ने" ।[4] इस प्रकार वेणी के सौन्दर्य

---

१. मीरां के पदों में सांस्कृतिक चित्र : मीरा स्मृति ग्रंथ, पृष्ठ ६०
२. मीरांबाई की पदावली, पद ३२
३. तिरुप्पावै पद २
४. वही पद १९

का चित्रण तो सहज ही हो गया है। मीरा के युग में भी वेणी गूँथने का एक विशेष रूप प्रचलित था। उसी ओर संकेत करते हुए मीरां ने लिखा भी है कि "काजल टीकी हम सब त्याग्यो, छे बाधन जुडो"[1]

आभूषण :

आण्डाळ ने अपने काल में पहनाये जानेवाले कुछ विशेष आभूषणों के नाम यत्र-तत्र व्यक्त किये है। मार्गशीर्ष व्रत के निमित्त आण्डाळ अपनी सखियो को बुलाते हुए संबोधित करती हुई कहती है—"हे सुन्दर आभषणो से अलकृत सखियो।"[2]

कासु–पिरप्पु :

अहीर कन्याओं के गले मे सुशोभित आभूषणो मे "कासु और पिरप्पु"[3] का विशेष उल्लेखनीय महत्त्व है। "कासु" आभूषण स्वर्ण का बनाया हुआ गोलाकार होता है। उसे स्वण की गुरियो से पिरो दिया जाता है और फिर उस स्वर्ण माला को कासुमालै कहा जाता है। इसी प्रकार "पिरप्पु" भी स्वर्ण से ही बनी हुई अनेक आकार प्रकारो की स्वर्ण माला होती है। यह एक प्रकार का सुमंगल सूत्र है जो सौभाग्य के प्रतीकत्त्व की सरक्षण करता है।

कंगन :

यह भी स्वर्णालिकार होता है और सौभाग्य का चिन्ह माना जाता है। आण्डाळ ने अपने पदों में इसका उल्लेख भी किया है।[4] गोपियाँ नप्पिन्नै से यह प्रार्थना करती है कि वह अपने हाथों के कंगन को ध्वनित और निनादित करते हुए आकर कपाट खोल दे।

सूडकम् :

यह भी एक प्रकार की चूडी होती है। नारियाँ इसे धारण करती है। मख्यतः सुहागिनियाँ इसका प्रयोग करती है।

---

१. मीरांबाई की पदावली पद ३२
२. तिरुप्पावै पद १
३. वही पद ७
४. वही पद १८

तोळ्वळै :

यह भुज का आभूपण है।

तोड्[1]

तोड यह कर्ण कुडल है।

सेविप्पु[1]

यह कर्णपुष्प कहलाता है।

पाडकम्[1]

पग-पैंजनी को पाडकम् कहते है।

इस प्रकार के अलकारो का प्रयोग प्राचीन काल मे निरतर रूप से होता रहा है। वर्तमान समय मे भी इन अलकारो का प्रयोग किया जाता है। आण्डाळ के पदो मे चुड़ी, भुज का आभूषण, कर्ण-कुडल, कर्ण-पुष्प एवं पग-पैंजनी का उल्लेख तिरुप्पावै के पद २७ में मिलता है। फलश्रति मे भी इन अलंकारों का उल्लेख करते हुए आण्डाळ ने गोप बालिकाओ को संबोधित किया है। उपर्युक्त विवरणो मे यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि मीरा और आण्डाळ ने स्वर्णालिकारों को विशेप रूप से महत्त्व दिया है और उनकी सौन्दर्य श्री का चित्रण भी अपनी पदावलियो में किया है। उसने अग प्रत्यंगो मे पहनाये जाने वाले एवं अग-प्रत्यगो को अलकृत करने वाले अलकारों का उल्लेख किया है।

स्तनों में चित्रांलंकार :

आण्डाळ के पदो मे उरोजों को सचित्रित करने वाले अलकारो का उल्लेख भी मिलता है। उन्ही पदों से पता चलता है कि नायिकाएँ प्रियतम के मिलन के पूर्व अपने सुन्दर स्तनों को विविध रंगो से अलकृत कर लेती हैं। प्रियतम के गाढ़ालिगन से यह चित्र धूमिल हो जाते है और रग बिखर जाता है। इसी तथ्य की ओर सकेत करती हुई आण्डाळ कृष्ण मिलन की उत्कंठा मे व्यक्त कर उठती है—

> "हे शीतल बादलो, कमल नयन भगवान के दिव्य चरणों मे मेरा यह नम्र निवेदन सुना देना कि वे एक दिन यहाँ पधारकर मेरा गाढ़ालिगन करके, मेरे स्तनों पर लगे हुए सारे कुंकुम लेप को मिटा दें तभी मेरा जीवित रहना संभव है।"[2]

---

१. तिरुप्पावै पद २७

२. नाच्चियार तिरुमोलि पद ८–७

तमिल् साहित्य मे स्तनो को कुकुम, चदन आदि से सजाने का उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है। प्राचीन काल मे यह प्रथा ही थी कि नायिकाएँ कुकुम चदन आदि से अपने स्तनो का चित्रित करके प्रियतम की प्रतीक्षा करती रहती थी। आण्डाळ ने भी वासकसज्जा नायिका की भाँति प्रियतम से मिलने की उत्कंठा व्यक्त की है और अपने स्तनो को चित्रालकार से विभूपित करने की आकाक्षा भी व्यक्त की है।

तट्टोळि

दर्पण को तट्टोळि कहा जाता है। आण्डाळ ने व्रतोपकरण के रूप मे इसका उल्लेख किया है।[१] इससे इस तथ्य का सकेत मिलता है। कि उस काल मे दर्पण का प्रचलन था।

कुत्तुविळक्कु :

तमिल्नाड मे एक विशेष प्रकार के मणि दीपक को प्रचलित अर्थ मे कत्तुविळक्कु कहा जाता है।[२] यह दीपक अधिक छोटा और अत्यधिक ऊँचा भी होता है। यह पचमखी या षष्ठ मुखी और कही-कही तो अष्ठ मखी भी होता है।

शयन :

आण्डाळ ने शयन कक्ष का वर्णन करते हुए लिखा है कि पचमुखी दीपक चारो ओर प्रज्वलित रहे, गज दत से निर्मित पर्यक पर अति मृदुल एव सौन्दर्य, शैल्य, मार्दव, सुगध व परिशुद्धि से पूरित पंचगणो से युक्त शयन पर आरूढ़ होकर नप्पिन्नै के उन्नत स्तनो पर लेटे हुए हे श्री कृष्ण आओ।[३] इस प्रकार की अभिव्यक्तियो में आण्डाळ ने तत्कालीन अलकारो के स्वरूपो को प्रकट किया है।

मीरां के पदो मे भी अलकारो की योजनाएँ परिलक्षित है। उसने राजपुताने मे प्रचलित अलकारो का निरूपण किया है।

---

१. तिरुप्पावै पद २०
२. वही १९
३. वही १९

वलय :

राजस्थान मे भी स्वर्णवलय को सौभाग्य का चिन्ह माना जाता है। इसी भाव की अभिव्यक्ति मीरा ने निम्न लिखित पद मे किया है—

चित्त माला चतुरभुज चुड़लो शिद सोनी घरे जइये रे॥[1]

कंगन :

यह भी करो में पहनने वाला एक प्रकार का स्वर्ण आभूषण है। गोपियाँ दधि मंथन करती है। उस समय उनके कर कंगनो के मधुर निनाद के वातावरण प्रतिगुँजित हो उठता है। इस भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद मे हुई है—

गोपी दही मथत सुनियत है, कंगना के झनकारे।[2]

टीका :

टीका के सबध मे सास्कृतिक मूल्यों का अनुशीलन करते हुए कु० जगदीश्वरी सिह ने अपना मत व्यक्त किया है कि "टीका एक आभूषण भी होता है जो विवाह के समय कन्या को पहनाया जाता है। यह जड़ाऊ का आभूषण माँग के ऊपर से जाकर पीछे की ओर बालों मे काँटे से अटका लिया जाता है और माथे पर मोती और कुन्द से बना हुआ एक गोल लटकन होता है। उसको टीका कहते है। किन्तु मारवाड मे आजकल इसकी प्रथा नही है और न रही होगी। क्योकि वहाँ पर विवाहिता स्त्रियाँ शीशफूल पहनती हैं। इसी शीशफूल का वर्णन मीरा मे मिलता है। शीशफूल एक प्रकार का आभूषण है जिसके अग्र भाग मे कुन्दन मोती आदि जड़े होते है और सोने का बना रहता है। यह गोल होता है और ऊपर को उठा रहता है। स्त्री जिस वस्त्र से अपने सिर को ढाँकती है वह वस्त्र उस शीश फूल के स्थान पर कुछ उठ जाता है। वह टीके के समान और माथे से मिला नही रहता।"[3]

बाली :

यह कान मे पहनायेजाने वाला एक आभूषण है।[4]

झांझरिया :

यह एक प्रकार का पैर का आभपण है।[4]

---

१. मीरांबाई की पावली पद, १४१
२. मीरांबाई की पदावली पद १६५
३. मीरां के पदों में सांस्कृतिक चित्र : मीरां स्मृति ग्रंथ पृष्ठ १५८
४. मीरांबाई की पदावली पद १४१

कडुलाने कांबी : कडा और पैर का आभपण[1]
बीछिया : यह भी पैर का आभूपण है ।[1]
अणजट : पैर के अँगूठे के छल्ले को अणवट कहते है ।[1]
पेटी : कमरबद को पेटी कहते है ।[1]

निष्कर्ष :

मीरा और आण्डाळ के पदो मे सास्कृतिक चित्र अत्यन्त सजीव रूप मे प्रस्तुत हुए है । यदि तुलनात्मक दष्टि से इन दोनो कवयित्रियो द्वारा प्रस्तुत अलकारो की विवेचना की जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि आण्डाळ ने अलंकारो के चित्रण एवं निरूपण के प्रसग मे अपनी सूक्ष्म निरीक्षण वृत्ति का परिचय दिया है । आण्डाळ का आविर्भाव जिस युग मे हुआ था उस काल मे सामाजिक वातावरण पूर्णतः शान्त और स्थिर था । समाज मे किसी भी प्रकार के आन्दोलन नहीं हो रहे थे और इन युद्ध जन्य आन्दोलनो के अभाव के कारण सस्कृति के विकास को एक निश्चित दशा प्राप्त हो रही थी और सांस्कृतिक विकास भी इस रूप मे हो रहा था कि समाज के प्रत्येक अग मे अतीव स्थिरता आ गई थी । यही कारण है कि आण्डाळ के पदो मे सास्कृतिक मूल्यों की स्थिरता देखने को मिलती है । उसने जिन आभूषणो एव अलकारो को चित्र रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है उनमे अतीव प्राजलता और सौन्दर्य श्री समाविष्ट है । इसके विपरीत मीरां के पदो मे सास्कृतिक चित्रों की स्पष्टता देखने को नही मिलती । इसका कारण यह प्रतीत होता है कि मीरां का आविर्भाव जिस काल मे हुआ, उस समय में सामाजिक आन्दोलन गतिशील थे ,युद्धो का भय व्याप्त था । पारस्परिक साहचर्य न था और सास्कृतिक मूल्य विघटित हो रहे थे। ऐसी स्थिति में मीरां के पदो मे इन सांस्कृतिक मूल्यो की न तो अभिव्यंजना हो सकी और न अलंकारो का निरूपण भी सजीव रूप मे हुआ है । किन्तु मीरां की अभिव्यक्ति समाज से विलग नही थी, संस्कृति से विलग नही थी । अतएव उसके पदों मे यत्र-तत्र सांस्कृतिक छायाभास परिलक्षित है । मीरा और आण्डाळ दोनों ही भक्त कवयित्रियों हैं । और दोनों ने भक्ति के उन्माद में सास्कृतिक मूल्यों का अनुशीलन और सांस्कृतिक चित्रों की अवतारणा की है ।

---

१. मीरांबाई की पदावली १४१

९. मीरां एवं आण्डाळ के काव्य में संगीत योजना तथा छंद-विधान

संगीत एवं काव्य का संबंध :

काव्य और संगीत के अन्योन्याश्रित सबध पर अनेक विद्वान आलोचको ने विचार किया है। सगीत की समाविष्टि से काव्य में रसात्मकता सहज ही आ जाती है और काव्य का आनन्द उपलब्ध होने लगता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि—काव्य के शब्दों के एक विशेष आरोह-अवरोह, सगति-संक्रम का सम्बन्ध तारतम्य है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भाव-भूमि पर पाठक को ले जाते है वहाँ नाद के द्वारा श्रव्यमूर्त-विधान भी करते है। काव्य कला का आधार भाषा है जो नाद का ही विकसित रूप है। अस्तु काव्य और सगीत दोनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है। केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वर व्यजनात्मक स्वरूप है, दूसरे का आधार नाद का आरोह और अवरोह है।"[१]

आचार्य द्विवेदी ने आरोह, अवरोह, संगृति-संक्रम एवं नाद-योजना पर विचार करते हुए काव्य में संगीत का समन्वय आवश्यक माना है। वास्तव मे काव्य और संगीत के समन्वय के द्वारा ही काव्य गुणो का विकास होता है। पाश्चात्य आलोचक आल्फ्रेड आस्टिन का कथन है कि कविता में चाहे और कितने गुण क्यों न हो, यदि वह संगीत रहित और अर्थ सौन्दर्य से हीन है तो वह कविता नही कही जा सकती। इसी प्रकार पाश्चात्य तत्त्वज्ञ तामस कार्लइल ने भी काव्य मे संगीत के सयोजन को आवश्यक मानते हुए यह स्पष्ट कहा है कि सगीतमय विचार ही काव्य है।[२] आचार्य नाथमुनि कविता और सगीत के

---

१. साहित्य का मर्म : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ११

२. A musical thought is one spoken by a mind that has penetrated into the inmost heart of the thing, detected the innost mystery of it. For my own part, I find considerable meaning in the old vulgar distingtion of doetry being metrieal, having music in it, being a song.
T. Carlyle

समन्वित सबध को देव स्तुति तुल्य मानते है । उनके मतनुसार सगीत विहीन प्रबंध, प्रबंध नही कहलाता । उपर्युक्त तत्वज्ञों के मतो को ध्यान मे रखते हुए यदि काव्य और संगीत के समन्वय की प्रक्रिया पर विचार किया जाय तो यह पूरी तरह स्पष्ट होता है कि संगीत काव्य का मधुर परिवेश है। आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल ने काव्य एवं संगीत के घनिष्ट संबध पर विचार करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि "कहते है, काव्य और सगीत कला की उत्कृष्ट सीमा है, साहित्य का सिरमौर है । आखिर काव्य और संगीत मे वह कौन-सा तत्त्व है जो इन्हे प्रतिष्ठा कराता है। यदि कहे सुन्दर सरस शब्दावली, तो यह तो काव्येतर साहित्य के अन्य रूपो में भी संभव है। यदि कोई कहे भावनाओं का चुटीला चित्रण तो यह भी केवल काव्य का या संगीत का मुखापेक्षी नही तब शायद कहना पड़ेगा कि सरस शब्दावली और भावनाओं की सजीव चित्रण जब ताल और स्वर में बंधकर या किसी अन्य ऐसे विधान मे सजकर व्यक्त होते हैं जिनके द्वारा आन्तरिक समन्वय को प्रतिस्थापना हो जाती है और रस का प्रवाह उमडने लगता है तो उसे ही काव्य या सगीत कहते है।"[1] उपर्युक्त विवेचना से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि काव्य मे सगीत का समन्वय नितान्त आवश्यक है । संगीत के समन्वय के कारण उसमे प्रसार तत्त्व अधिक आ जाते है और काव्य अधिक प्रभावशाली हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी काव्य और संगीत के समन्वय पर विचार करते हुए अपना अभिमत व्यक्त किया है कि "काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त-विधान के लिये कविता चित्र विद्या की प्रणाली का अनुशरण करती है, उसी प्रकार नाद सौष्ठव के लिये वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है। नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है । ताल पत्र, भोज पत्र, कागज, आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगो की जिह्वा पर नाचती रहती है । बहुत-सी उक्तियों को लोग उनके अर्थ की रमणीयता इत्यादि की ओर ध्यान ले जाने का कष्ट उठाये बिना ही प्रसन्न-चित्त रहने पर गुनगनाया करते है । अतः नादसौन्दर्य या योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिये कछ-न-कुछ आवश्यक होता है।"[2] काव्य को अधिक व्यापकता एवं प्रभविष्णुता प्रदान करने के लिये संयत समन्वय की योजना निर्धारित की गई है । प्राचीन भारतीय साहित्य में इसके दर्शन

---

१. साहित्य जिज्ञासा : ललिताप्रसाद सुकुल, पृष्ठ ५३

२. चिन्तामणि । प्रथम भाग। : रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १७९

होते है । संगीन समन्वय के कारण ही प्राचीन काव्य साहित्य अक्षुण्ण रह सका है ।

संगीत और लय :

लय, सगीत की आत्मा है । सगीत और काव्य दोनो ही लय पर आश्रित रहते है । लय, स्वर की एकरस गति को कहा जाता है । कवि अपनी भावनाओं को छन्दो के माध्यम से व्यक्त करता है और छन्द, लय के ही आधार पर जीवित नाद विधान है । लयतत्त्व ही छन्द मे प्राण प्रतिष्ठा करता है । वास्तव मे छन्द और लय एक दूसरे के पूरक है । हमारी छन्द-योजना ही अपने मूल मे लय बद्ध है ।[1] आन्तरिक भावनाएँ अभिव्यक्त होने के पूर्व राग-वृत्तो का निर्माण करती हे । यह रागवृत्त व्यक्त होकर छन्द का रूप धारण कर लेते है और छन्दो के समावेश के कारण ही काव्य मे लयात्मकता स्वाभाविक गति से समन्वित हो जाते हैं । मीरां के पदों में सगीत की आयोजना हुई है । उसके पदों ये लयतत्त्व का सुन्दर विकास देखने को मिल जाता है। लय और छन्द के समन्वित समावेश के कारण मीरां के पद इतने व्यापक हो सके है । इसी प्रकार आण्डाळ ने अपने पदों मे लय और छन्द का सुन्दर समन्वय किया है । दोनों ही कवयित्रियो के पदो मे निहित लय-लालित्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी अनुभूतियाँ छन्द के बन्धनों मे सहज ही बाध गई है और उसकी भावनाएं लय के प्रागण में आरोह, अवरोह का नाद प्रकट करती हुई नृत्य कर उठी है । इस प्रसंग मे आण्डाळ के पद दृष्टव्य है—

> **वारणमायिरम् सूल् वलम् सेय्दु**
> **नारण नम्बि नडक्किन्ऱान्ऱेदिर**
> **पूरण पोर कुडम् वैत्तु पुरमेंगुम्**
> **तोरणम् नाट्टक् कनाक् कण्डेन् तोलि् नान्॥**[2]

और—

> **कर्पूरम् नारुमो कमलप् पू नारुमो**
> **तिरुप्पवळप् सेव्वाय् तान् तित्तित्रुक्कुमो**
> **मरुप्पोसित्त मादवन् तन् वाय् सुवैयम् नार्ऱमुम्**
> **विरुपुर्ऱुक् केट्क्किन्ऱेन् सोल्लालि् वेण संगे॥**[3]

---

१. साहित्य के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत : डा० उषा गुप्ता, पृष्ठ ८६

२. नाच्चियार तिरुमोलि् पद ६–१ ३. वही ७–१

स्पष्ट है कि आण्डाळ ने अपने पदों में संगीत, लय और छन्द का सहज समन्वय किया है और उसी का परिणाम है कि उनके पदो में इतने अधिक व्यापकता के तत्त्व भर गये है। मीरा ने भी भावो के आवेग मे पदों की रचना की है। वह नृत्य करती हुई नये-नये पदो के गायन करती जाती है। उसकी पद-किंकिणियो से निनादित ध्वनि-राशि ही मीरां के अन्तर में निहित काव्य रचना की वृत्ति को आन्दोलित करती है और यह आन्दोलन छन्दो के बन्धन मे बंधकर व्यक्त रूप मे पद का रूप धारण कर लेते हैं। मीरां के पदों मे सगीत और छन्द के समन्वय की जो सहजता दिखलाई देती है उसका मूल कारण भी यही है। इस प्रसग मे मीरा का एक पदाश प्रस्तुत किया जा सकता है—

> रंग भरी राग भरी राग सूँ भरी री।
> होली खेल्या स्याम संग रंग सूँ भरी, री।
> उड़त गुलाल लाल बादलां रो रंग लाल।
> पिचकां उडावां रंग-रंग री झरी, री।
> चोवा चंदन अरगजा म्हा, केसर णो गागर भरी री।[1]

विलबित लय का प्रयोग मीरा और आण्डाळ दोनों ने समान रूप से किया है। इसका प्रयोग उन्ही स्थलो मे अधिक हुआ है जहा पर भावनाएं वेदनासिक्त हुई है। आण्डाळ ने वेदना की अतिशयता मे जिन पदों की रचना की है उनमें लय का सहज विकास देखा जा सकता है। इस प्रसंग में आण्डाळ की निम्नलिखित पदांश दृष्टव्य हैं—

> "कडले कडले उन्नै कडैन्दु कलक्कुरुत्तु"[2]
> "मलैये मलैये मण् पुरम् पूसि उळ्ळाय् निन्र्।"[3]
> "वण्ण वाडै कोण्डु एन्नै वाट्टम् तणिय वीसिरे।"[4]

और—

> पू मकन पुकल् वानवर पोर् रुदल् कामकन् अणि वाणुदल् देवकी
> मा मकन् मिकु सीर् वसुदेवर् तम् कोमकन् वरिल् कूडिडु कूडले।"[5]

---

१. मीरांबाई की पदावली पद, १४८
२. नाच्चियार तिरुमोलि पद १०–४
३. नाच्चियार तिरुमोलि पद, १०–६
४. वही १३–१
५. वही ४–३

उपर्युक्त पदांश का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आण्डाळ के पदो में लय और संगीत की समन्वित अयोजना हुई है। बेदना के क्षणों मे आण्डाळ का भावावेग छन्दो के बन्धन मे बधकर इतनी तरल और तल युक्त हो गये है कि लय का प्रसार अत्यधिक सजीव हो उठा है। इसी प्रकार मीरा के पदों में भी लय का अखण्ड प्रसार देखा जा सकता है। इस प्रसंग में निम्नलिखित काव्य पंक्तियो उद्धृत की जा सकती है।

पिया कब रे घर आवे
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल सबद सुणावे
घुंमट घटा ऊलर होइं आई, दामिन दमक डरावै
नैन झर आवे
कहा करू ं कित जाऊं मोरी सजनी, वेदन कूण बतावै।
विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।
जड़ी घस लावै।[1]

और—

होली पिया बिन लागां री खारी।
सुनो गांव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
सूनी बिरहन पिव बिन डोलो, तज गया पीव पियारी।
विरहा दुख मारी।
देस विदेस णा जावां म्हारो अणेशा भारी।
गणतां गणतां घिस रेखां, आंगरियां री सारी।
आयां ण री मुरारी।[2]

मीरां के पदो मे कही-कही संगीत की शास्त्रीयता का अभाव सा प्रतीत होता है। इस अभाव की ओर संकेत करते हुए डा० सावित्री सिन्हा ने अपना मत व्यक्त किया है—

मीरांबाई की रचनाओ ने शास्त्रीय संगीत सबधी कोई विशेषता नही प्राप्त होती, परन्तु लोक गीत शैलियो का जो शुद्ध रूप उसमे मिलता है, उसे देख कर आश्चर्य होता है। होली के पदो मे जिस प्रकार की लय और मात्राओं

---

१. मीरांबाई की पदावली पद, ७४
२. वही ७७

की योजना की गई है, उसे उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागो मे प्रचलित होली गीतों की शैली मे आसानी से बाधा जा सकता है।"[1]

डा० सावित्री सिन्हा के उपर्युक्त मत से असहमति नही हो सकती। किन्तु मीरा के पदो मे लोक तत्त्वो का सुन्दर प्रसार हुआ है। होली गीतो की शैली मे मीरा ने भी होली गीतो की रचना की है। एक होली गीत प्रस्तुत है—

फागुन के दिन चार रे होरी खेल मना रे।
बिनि करताल पखावज बाजे अणहद की झणकार रे।
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम रोम झनकार रे।
खेल मना रे।[2]

इसी प्रकार मिर्जापुरी कजली की शैली पर भी मीरा के पदो को बाँधा जा सकता है। कजली के स्वर-योजना मे बधा हुआ एक पद इस प्रकार है—

म्हारा ओलगिया घर आया जी।
तन को ताप मिटी सुख पाया हिलमिल मंगल गाया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणदं आया जी,
मगन भई मिलि प्रभ अपणां सूं—भी कादरद मिटाया जी,
कि अरे रामा चंद कूँ देख कुमुदनीफूले, हरखि भई मेरी काया जी।[3]

इसी प्रकार आण्डाळ के पदो के सबध मे भी कहा जा सकता है कि शास्त्रीय-सगीत के तत्त्वो का निर्वाह उसके पदो मे भी नही हुआ है। तमिल मे प्रचलित प्राचीन लोक गीत का शुद्ध रूप ही आण्डाळ के पदों मे पाया जाता है। उत्तर प्रत्यत्तर के रूप मे लोक-गीत की शैली मे लिखा हुआ आण्डाळ का एक एक पद प्रस्तुत है—

एल्ले इळंकिळिये इन्नमुरंकिदियो
(प्रत्युतर) **सिल्लेन्रलैयेन्मिन् नंगैमीर पोदरकिन्रेन्**
वल्लै युन कट्टुरैकळ् पण्डे उन वायरिदुम्
(प्रत्युतर) **वल्लीर्कळ् नीगळे नाने तानायिडुक**
ओल्लै नी पोदा युनक्कॆन्न वेरुडैये
(प्रत्युत्तर) **एॅल्लारुम् पोन्दारो (सखी) पोन्दार पोन्दॆण्णिक्कोळ्**

---

1. **ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना-शिल्प : डा० सावित्री सिन्हा, पृष्ठ ३६२**
2. **मीरांबाई की पदावली : पद १४१**
3. **मीरांबाई की पदावली : पद १५०**

वल्लानै कोन्ऱानै मार्ऱारै मार्ऱलिक्क
वल्लानै मायनैप् पाडेलो रेम्पावाय् ॥[1]

और एक स्थल मे—

एक गोपी दूसरी से पूछती है—

मालाय्पिरन्द नम्बियै माले सेय्युम मणाळने
एलाय्प् पोय्कळुरैप्पानै इंगे पोदक्कण्डीरे ।"

उस प्रश्न का उत्तर दूसरी सखी इस प्रकार देती है—

मेलाल् परन्द वेयिल काप्पानै विनदै सिरुवन् सिरकेन्नुम्
मेलाप्पिन् कील् वरुवानै वृन्दावनत्ते कण्डोमे ।"[2]

इसी प्रकार सपूर्ण स्वप्न-विवाह सबंधी पद लोक गीत पर आधारित है ।

आण्डाळ और मीरां की भजन-कीर्तन शैली :

मीरां और आण्डाळ के पदो मे भजन एव कीर्तन शैली का सम्यक समावेश हुआ है । आण्डाळ और मीरां बार-बार कीर्तन और भजन तथा गायन की महिमा एवं प्रभाव की ओर संकेत करती है और सपूर्ण समाज को भगवदनुभव करने के लिये आह्वान करती है । वे यही उपदेश करती है कि भगवद् भजन, कीर्तन तथा गायन करते हुए अपना समय व्यतीत करना चाहिए। निम्नलिखित पद मे सब गोपिया भगवान के लोकरजनकारी गुणो पर मुग्ध होकर उनका स्त्रोत्र करती है—

अन्रिवुलकळन्दाय् अडि पोर्रि
सेन्रन्गुत् तेन्निलंगै सेर्रायय् तिरल् पोर्रि
पोन्रच् शकट मुदैत्ताय् पुकल् पोर्रि
कन्रु कुणिला वेरिन्दाय् कलल पोर्रि
कुन्रु कुडैयाय् वेडुत्ताय् गुणम् पोर्रि
वेन्रु पगैकेडुक्कुम् निन् कैयिल् वेल् पोर्रि
एन्रेन्रुन्सेवकमे येत्तिप् परैकोळ्वान् इन्रियाम्वन्दोमिरंकेलो रेम्पवाय्[3]

कीर्तन की महिमा पर प्रत्येक दशक के अन्त मे फलश्रुति के रूप में

---

१ तिरुप्पावै पद १५ ॥
२. ना० ति० १४–३ ॥
३. तिरुप्पावै पद २४

कहने की परपरा को आण्डाळ ने भी अपनाया है । इसका उद्देश्य सब अपने जैसे भगवदनुभव प्राप्त कर आनन्द उठावें । तिरुप्पावै के अन्तिम पद की फलश्रुति देखिये—

> "सघ तमिल के इन तीसो पदो का इसी प्रकार सही रूप मे जो अध्ययन व मनन करते है, वे रक्त नयन, श्री मुख, चतुर्भुज श्रिय पति से सर्वत्र दया प्राप्त कर आनन्दित होगे ।"[1]

और एक भजन मे भगवान के नामस्मरण मे होनेवाले विश्व कल्याण पर सबका ध्यान आकृष्ट करती है—

> "विश्व रूप धारण करके तीनो लोको को नापनेवाले पुरुषोत्तम की स्तुति करते हुए व्रतानुष्ठान कर प्रातःकाल स्नान करेगी तो देश भर मे अतिवृष्टि व अनावृष्टि के बिना प्रतिमास तीन बार वर्षा होगी । उन्नत शालि सस्यो के मध्य मछली सानन्द उछलेगी । विकसित कुवलय पुष्प मे मद पान से मस्त भ्रमर निद्रा करेंगे। हृष्ट पुष्ट ग्वालो के गोशाला मे प्रवेश कर गैयो के पीन पयोधर से दुहने पर अति उदार ये गाये दूध से घड़ो को भर देगी । इस भाँति (देश) सर्वत्र अविच्छिन्न ऐश्वर्य से समृद्ध हो जायगा ।"[2]

शुद्ध आचरण की और समाज को सचेते करती हुई आण्डाल कहती है—

> "वर्जित काम कदापि नहीं करेगी ।
> कटुवचन नही सुनाएगी ।
> सत्पात्रो को यथा शक्ति दान व भिक्षा देगी ।
> इस भाँति उज्जीवनार्थ ये सब कर आनन्दित होगी ।"[3]

इसी भाति मीरा भजन की महिमा पर कहती है—

> **आली म्हांणे लागां वृन्दावण नीकां।**
> **घर घर तुलसी ठाकुर पूजां, दरसन गोविन्द जी कां ।**
> **निरमल नीर बह्या जमणा मां भोजन दूध दही कां।**
> **रतण सिंघासण आप विराज्यां मुगट धर्‌यां तुलसी कां।**
> **कुंजन-कुंजन फिर्‌या सांवरा, सबद सुण्या मुरली कां।**

---

१. तिरुप्पावै पद ३०
२. वही ३
३. वही २

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सबद सुण्या मुरली कां।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिणा नर फीकां।।[1]

उपदेश के रूप में कहती है—

लेतां लेतां रामनाम रे, लोकडियां तो लाजां भरे छे।
हरि मंदिर जांता पांवलिया रे दूखे, फिर आवै सारो गाम रे।
झगड़ो थाय त्यां दौडी वे जाय रे, मूकी ने घर ना काम रे।
भांड भवैया गणिका थ्रित करतां वेसी रहे चारे जाम रे।
मीरां प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित हाम रे।।[2]

जीवन मुक्ति के बारे मे उपदेशात्मक पद देखिये—

राम नाम बिन मुकुति न पावां, फिर चौरासी जावां[3]

संगीत संबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख :

भजन कीर्तन शैली के अतिरिक्त मीरां और आण्डाळ के पदो मे आत्म-विषयात्मक उल्लेख सबंधी पद जिन्हे वे सदा गाया करती है, मिलते है—

आण्डाळ :

"गोपियो का दुखप्रद, तथा गोकुल के दीप सदृश गोपाल से प्रेम कर, श्री विल्लिपुत्तूर के स्वामी श्री विष्णुचित्त की, धनुष को मात करनेवाली भ्रुवो से युक्त पुत्री गोदा द्वारा रचित इन गाथाओ का अध्ययन करने वाले दुख सागर मे नही डूब सकते।"[४]

इस प्रकार के आत्मविषयक उल्लेख प्रत्येक दशक के अन्त मे गोदा के पदों मे देखा जा सकता है।

मीरा :

म्हांणे चाकर राखोजी, गिरधारी ताता चाकर राखो जी,
चाकर रहस्यूं बाग लगास्यूं नित उठ दरसण पास्यूं।
ब्रिन्दावन री कुंज गलिन मां, गोविन्द गास्यूं[५]

---

१. मीरांबाई की पदावली : पद १६०
२. मीरांबाई की पदावली : पद १५७
३. मीरांबाई की पदावली : पद १५६
४. नाच्चियार तिरुमोलि : पद १३।१०
५. मीरांबाई की पदावली : पद १५४

कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हे तो, गुण गोविन्द का गास्यां
जिण मारग साध पधारे, उण मारग म्हे जास्यां ॥[1]

साधो संगत हरि गुण गास्यां, और णा म्हारी लार[2]

मीरा दासी गिरधर नागर, चेरी चरण धरी री।[3]

नृत्य संबंधी उल्लेख :

आण्डाळ के पदो मे केवल अपने आराध्य देव नट नागर की नृत्यमद्राओं की चित्रावलियॉ चित्रित है । कही भी क्रियात्मक नृत्य के साधक के रूप मे उल्लेख नही मिलता । परन्तु मीरां मे यह विशेष रूा से उल्लेखनीय है कि भक्ति के आवेश में प्रेम विभोर होकर एव अपना सयम खोकर भगवान के सामने वह नृत्य मग्न हो जाती है। अनेक विद्वानों ने दक्षिण देश के सांस्कृतिक जीवन के वास्तविक मूल्याकन किये बिना यहॉ तक लिखने का प्रयास किया है कि देवदासी की प्रथा दक्षिण मे प्रचलित थी। आण्डाळ भी उन्ही देवदासियो की भॉति मंदिरो मे नृत्य करती थी। यह नितात गल्त धारणा है कि आण्डाळ मंदिरो मे जाकर मूर्ति के सामने नृत्य करती थी। परन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि उसको परिवार के व्यक्तियो ने यहॉ तक श्री विल्लिपुत्तूर के मदिर तक जाने की आज्ञा भी नही दी थी । कारण भी स्पष्ट है कि यदि आण्डाळ वटपत्रशायी के दर्शन करने जाती तो भावावेश मे अपनी सुध-बुध खो बैठती । अतएव वह अपने ही घर के पास स्थित वटपत्रशायी भगवान के दर्शन के लिये तड़पती है—

> "मद गति हसों की विहारस्थली दिव्य विल्लीपुत्तूर क्षेत्र मे सुशोभित भगवान के स्वर्णपादो के दर्शन करने की अभिलाषा मे परस्पर स्पर्धी मछलियो के सदृश मेरे नेत्र निद्रा से वचित हो गये है ।[4]

---

१. वही पद २५
२. वही पद १९७
३. वही पद १४८
४. नाच्चियार तिरुमोलि पद ५–५

आण्डाळ ने अपने नटवर प्रभु की नृत्य मुद्रा का चित्रण निम्नांकित पदो से किया है—

"हे घट नर्तन मे निपुण प्रियतम"[1]

"घट नर्तक गोविन्द ने अपनी नानाविध छेड छाडो मे मेरा सर्वस्व अपहरग कर लिया।"[2]

"मयावी कृष्ण मेरे सामने आकर अपना स्वरूप दिखाकर आकृष्ट कर रहे है।[3]

"अतः आप तट स्थित कदब वृक्ष के कालियनाग के फन पर कूदकर नर्तन के लिये युद्ध-रंग सदृश उस सरोवर के तीर पर पहुँचा दीजिये।"[4]

मीरा की प्रेमानुभूति आण्डाळ से भिन्न है। उसके हृदय की वेदना नृत्य के क्रिया-रूप मे साकार हो गई। वह राजकुल की मर्यादाओ का भी उल्लंघन कर भागवतो के सामने भगवान के लिये नृत्य कर अपनी व्याकुलता और पीड़ा को व्यक्त करने लगी—

"पग बांध घूंघरयां णाच्यारी।
लोग कह्यां मीरां बावरी, सासु कह्यां कुल नासी री।
विष रो प्यालो राणा भेज्यां. पीयां मीरां हांसां री।
तण मण वार्‌यां हरि चरणामां दरसवा अमरित प्यास्यां री।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणा आस्यांरी॥[5]

ताल पखावज मिरदंग बाजा, साधां आगे णाच्यां[6]

० ० ०

साज सिंगार बांध पग घूंघट, लोक लाज तज नाची।[7]

० ० ०

---

१. "कुडत्तैयेडुत्तुतेरविट्टुक् कूत्ताड वल्ल वेकोदे' ।ना० ति० ३–७
२. "कुडमाडु कूत्तन गोविन्दन कोमिरै सेय्दु एम्मै ।ना० ति. १.–७
३. "मायवन वन्दुरुक्काट्टुकिन्रान. ।"ना० ति० १२–३
४. "नीर् करै निन्र कडम्बैयेरिक् कालियनुच्चियिल्" ना० ति० १२–८
५. मीरांबाई की पदावली पद, ३६
६. वही पद ३७
७. वही पद १९

म्हां गिरधर आगां नाच्यारी
णाच णाच म्हां रसिक रिझावां, प्रीत पुरातन णांच्यारी।
स्याम प्रीत रौ बांधि घुंघर्यां मोहण म्हारो सांच्यारी।
लोक लाज कुलरा मरज्यादां जगमां जकणा शख्यांरी।
प्रीतम पल छब णा बिसरावां, मीरां हरि रंग राच्यांरी।[1]

मीरा का नृत्य उसकी हृतंत्री की झनकार है।" उनकी आत्मा की अनुभूति भावो की भाषा मे आलापित हो कर गा उठी है। वेदना की तीव्रता मे सच्चे हृदय की तत्री से निकले हुए हमारी अन्तरात्मा को थिरका देने वाली इन सगीतमय उद्गारो द्वारा मीरां ने जिस अनुपम दिव्य सगीत की सृष्टि की है वह अजर अमर शास्वत और चिरतन।"[2]

मीरां और आण्डाळ के पदों में राग-रागिनियां :

मीरां के पदो की प्रामाणिकता विवादग्रस्त हो गई है। अव तक प्राप्त पद सकलनों में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित "मीराबाई की पदावली" को शुद्ध पाठ-सपादित कृति मानता हूँ। उसमे प्रत्येक पद के ऊपर राग-रागि-नियो का उल्लेख है। आचार्य ललिता प्रसाद शुकुल का विचार है कि "जिस हस्त लिखित प्रतियों के आधार पर मीरा के पदो का सकलन किया गया है उसमें भी पदो के ऊपर राग रागिनियो का उल्लेख नही है। अस्तु मीरा ने अपने पदों का किस रूप अथवा किन राग रागिनियों मे गायन किया इसके विपय में निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता।"[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि मीरा के पदो के लिये विभिन्न राग-रागिनी का प्रयोग परवर्ती काल मे किया गया होगा। मीरा की पदावली मे प्रत्युक्त विभिन्न राग-रागिनियो की सूची इस प्रकार है—

तिलग, ललित, हमीर, कान्हरो, त्रिवेणी, गूजरी, नीलावरी, कामोद, मुल्तानी, मालकोस, झिझोटी, परमंजरी, गुनकली, माड, धानी, पीलु वरवा, पूरिया कल्याण, खम्माच, अगना, पहाडी, पीलु, जौनपुरी, सोहनी, बिहागरा, विलावल, सोरठ, सूखसोरठ, श्याम कल्याण, रामकली, दरबारी, मवार, विहाग, पूरियाधनाश्री, जोगिया, होली, सावन, सावनी, कल्याण, सारग, बागेश्वरी, आनन्द भैरो, भैरवी,

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १७
२. हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत—डा० उषा गुप्ता, पृष्ठ
३. वही पृष्ठ २०९

देस, टोडी, विलावल, आसावरी, अलैया, प्रभावती, प्रभाती, सिध भैरवी, भीम पलासी, कोशी, कलिगड़ा, नट विलावल, मलार, परज, सूहा, कनडी, छाया टोडी, काफी, हंस नारायण, झझोटी, मारू, दुर्गा, धमार, विहाग, शुद्ध सारंग, छाया नट, हमीर, रागश्री ।।

मीरां के पदो मे प्रयुक्त इन राग-रागिनियो पर विचार करने पर यही पता चलता है कि ये राग-रागिनियाँ शृगार तथा करुणा प्रधान है। गिरधारी के प्रति उसके उद्वेलित हृदय की बिरह व्यथाएँ ही इन राग-रागिनियो के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। कालावधि को ध्यान मे रखकर गाये जाने वाले निम्नांकित "प्रभाती" में मीरां का गोपी भाव तथा माधुर्य भक्ति सहृदय को झंकृत कर देता है—

जागो बंसी वारे ललना, जागो मेरे प्यारे।
रजनी बीती भोर भयो है, घर घर खुले किंवारे।
गोपी दही मथल पुनियल है, कंगना के झनकारे।
उठो लाल जी भोर भयो है, सुर नर ठाढ़े द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, जब जब सबद उचारे।
माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर प्रसरण आयां कू तारे।।[1]

वैसे ही गोपी भाव मे तन्मय होकर गाये जाने वाले "काफी राग" मे "आवत मोरी गलियन मे गिरधारी, मैं तो छुप गई लाज की मारी" मे कौन अपनी भाव मुद्रा को आनन्द विभोर नही कर पाता। वैसे सयोग काल मे "होली" "कान्हरो" विरह काल मे "सावन", "कल्याण" आदि रागों का प्रयोग शृगार भावना एव विरह वेदना को तीव्रतर कर देता है। सावन राग का एक पदाश देखिये :

मतवारो बादर आए रे, हरि को सनेसा कबहूं न लाये रे।
दादर मोर पपइया बोले, कोयल सबद सुणाये रे।[2]

वर्षा वर्णन के अनुरूप मलार राग का प्रयोग हुआ है—

बरसां री बदरिया सावन री, सावन री मण भावन री,
सावन मां उमंग्यो म्हारो मणरी, भणक सुण्या हरि आवनरी,
उमड़ घुमड़ धण मेघां आयां, दामण घण झर लावण री,

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १६५
२. मीरांबाई की पदावली पद ८१

बीजां बूंदां में आयां बरसां सीतल पवण सुहावण री,
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, बेला मंगल गावन री ।।[1]

आण्डाळ तथा अन्य आळ्वारो के पदो मे प्रयुक्त राग रागिनियों के सबध मे भी एक मत नही है। आचार्य नाथमुनि ने चार हजार मे से प्रथम हजार के पद, पेरिय तिरुमोलि, तिरुवाय मोलि, इन तीनो को "इसेप्पा" अर्थात् "संगीत पर आधारित पद" कहा है। "कोयिलोल्गु" के अनुसार आचार्य नाथमुनि इन पदो को देव गान मे गाये जाने वाले पद मानते है। इन पदो का उस काल में प्रचलित तमिल् राग और ताल में ही गायन होता था। इनमें तिरुवाय्मोलि के पदो के लिये उस काल मे प्रचलित राग और ताल के उल्लेख प्राप्त हुए है। स्वयं शठकोप आळ्वार कहते है—

"पण् आर् पाडल् इन कविकळ् यानाय्त् तन्नैत् तान् पाडित्
तेन्नावेन्नु मेन्नाम्मान् तिरुमालितिरुम् सोलैयाने ।"[2]

अर्थात्, स्वयं मेरे प्रियतम भगवान मेरे शरीर को साधन बनाकर अपने विषय में ही मधुर सगीत एव रागताल से भरी गीतम्ता से गा रहे है।

तमिल राग को पण् कहते है। उसी प्रकार शठाकोप का प्रिय शिष्य मधुर कवि ने भी तमिल सगीत के विषय मे कहा है—

नाविनाल् नविर्रि्र् यिन्ब मेय्दिनेन्
मेत्रि नेनवन् पोन्नडि मेय्म्मैये
तेवु मर्ररि येनकुरुकूर नम्बि
पावि निन्निसै पाडित् तिरिवेने ।[3]

अर्थात्, यह सत्य है कि मैने अपनी जिह्वा से श्री शठकोप की स्तुति करके आनन्द पाया है और आपके पावन चरणों का आश्रय भी प्राप्त किया है। आपके अतिरिक्त मै दूसरे देव को नही जानता। अब मै मधुर स्वर से श्री शठकोप स्वामी मे रचित पदो क गान करता हुआ देशाटन करता रहूँगा।

पेरिय तिरुमोलि के लिये प्राचीन तमिल (राग) और ताल के उल्लेख मदुरै तमिल् सघ की हस्त लिखित प्रतियों मे मिलते है। पेरिय तिरुमोलि के निम्नांकित पदो के आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि वे सब पद तमिल् राग मे माने योग्य ही रचे गये थे।

---

१. मीरांबाई की पदावली पद, १४६
२. तिरुवाय् मोलि पद, १०।७।६ (३९६१)
३. कण्णि नुण् सिरुताम्बु : मधुरकवि रचित पद २ प्रथम हजार

"इन इसैयात् सोन्न सेम् सोल् मालै।"[1]

(मधुर सगीत मे रची गई गीत माला)

"पण् आर पाडल्"[2]

(राग सहित गीत)

"पण्णुल् आर् तरप् पाडिय पाडल्"[3]

(राग से युक्त इन दसों गीतो को)

"पण्कळ् अकम् पयिन्र सीर पाडल्"[4]

(राग सहित गाये जानेवाले अच्छे गीत)

इसी प्रकार प्रथम हजार के लिये भी राग, ताल के उल्लेख मिलते है। पेरियाळ्वार के पद रागमय है। इसका उल्लेख श्री वेदान्त देशिक ने अपने प्रबन्ध सार मे किया है--

पट्टनादन पण् इयल् नानूर्रेलु पत्तुमून्रुम्[5]

(अर्थात् भट्ट नाथ से राग सहित रचित चार सौ तिहत्तर पद)

अत. प्रथम हजार के सभी पद राग, ताल के अनुरूप रचित मधुर गीत ही है, इसमे कोई सदेह नही। आधुनिक काल मे प्रथमतः दिव्य प्रबन्ध के प्रत्येक पद को श्री अप्पावु भुदलियार ने राग ताल दिया है।[6] प्राचीन तमिल् टीकाओ से पता चलता है तमिल् पण् (राग), ताल के साथ दिव्य प्रबन्ध के पद गाये जाते है।

"वण् कुरिंजि इसै तवरूम् आलो"[7]

यहॉ टीकाकारो ने "कुरिंजि" को तमिल् राग कहा है। इस प्रकार पेरिय तिरुमोलि के पदों मे प्राप्त कुछ तमिल् पणों (रागो) का नाम उसके ताल के साथ नीचे दिया जाता है।

---

१. पेरिय तिरुमोलि, तिरुमंगे अल्विार रचित, पद २।८।१० (११२७)
   वही पद ९।२।१० (१७६७)

२. वही पद १।९।१० (१०३७)

३. वही पद ४।१।२।१० (१२६७)

४. वही पद ६।९।१० (१५६७)

५. प्रबन्ध सारम् पद १५

६. इयर्पा (मरै कंपनी द्वारा प्रकाशित) भूमिका भाग पृष्ठ ४

७. तिरुवाय्मोलि, नम्माळ्वार पद सं, ३८६९

	पण्	ताल
१-१	इन्दळमु	ओन्बदोत्तु (नव ताल)
१-२	मुदिर्द कुरिजि	एलोतु (सप्त ताल)
१-३	पळन्दक्करागम्	,,
१-४	तक्करागम्	नडैयोत्तु
१-५	सेतिरुदु	एलोत्त
१-७	नेवळम्	,,
१-८	सीकामरम्	इडैयोत्तु
१-१०	मेगरागक् कुरिजि	एलोत्तु
२-३	पुरनीर्मै	ओन्बदोत्तु
२-४	नट्ट पाडै	मिडन्तोत्तु
२-८	नट्ट रागम्	नडैयोत्तु
२-१	पऴन्दक् करागम्	मुडुकिन् इडैयोत्तु
३-१	तोडि	एलोत्तु
३-५	पचमम्	,,
३-६	पचुरम्	,,
४-४	पलम् पचुरम्	ओन्बदोत्तु
४-६	पालैयाल्	,,
४-७	कोल्लि	इडैयोत्तु
५-१	सेन्तिरुत्ति	एलोत्तु
५-३	कब्वाणम्	,,
५-५	पियन्दे	इडैयोत्तु
५-७	नाट्टम्	ओन्बदोत्तु
५-१०	वियाऴक् कुरिजि	मलुमुडित्तल्
६-५	कुरडि	एलोत्तु
७-१	गान्दारम्	,,
७-३	तक्कोसि	नडैयोत्तु

केवल सात दशको के लिये रागो का उल्लेख प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों में मिलता है। खोज करने पर सभी दिव्य प्रवन्ध के पदो के लिये रागों के नाम प्राप्त कर सकते है। आजकल आण्डाळ के पद निम्नलिखित राग-रागिनियों में कर्नाटक सगीत (दक्षिणी शास्त्रीय संगीत) के अनुरूप गाये जाते है। वे राग इस प्रकार है।

तिरुप्पावै के पद	राग	ताल
१	बिलहरि	अठताल
२	बन्दुवरालि	आदि ताल
३	,,	त्रिपुटताल
४	काम्बोदि	अठताल
५	तोडि	रुपक ताल
६	भूपाळम्	आदि ताल
७	भूपाळम्	आदि ताल
८	,,	,,
९	मोहन	,,
१०	असावेरी	,,
११	सहाना	त्रिपुटे ताल
१२	केदार गौळम्	आदि ताल
१३	अठाणा	रुपक ताल
१४	सारग	आदि ताल
१५	सौराष्ट्र	अठताल
१६	यमुना कल्याणी	आदि ताल
१७	यमुना कल्याणी	रुपक ताल
१८	सावेरी	आदि ताल
१९	श्री राग	,,
२०	देशिय	,,
२१	,,	,,
२२	भैरवी	,,
२३	अठाणा	,,
२४	पियाकडै	,,
२५	शंकरामरण	,,
२६	अरबी	,,
२७	आनन्द भैरवी	,,
२८	धन्यासी	,,
२९	कल्याणी	,,
३०	सुरुट्टि	रूपक ताल

नाच्चियार तिरुमोलि :

दशक	राग	ताल
पहला	सावेरी	आदि ताल
दूसरा	यमुना कल्याणी	त्रिपुट ताल
तीसरा	सेचुरुट्टि	अठताल
चौथा	केदार	,,
पाँचवाँ	आनन्द भैरवी	आदिताल
छटा	कल्याणी	रूपक
सातवाँ	वराली	रूपक
आठवाँ	दुसावन्ती	रूपक
नौवाँ	कल्याणी	रूपक
दसवाँ	काम्बोदी	त्रिपुतेताल
ग्यारहवाँ	सावेरी	,,
बारहवाँ	नादनामक् क्रियै	आदि ताल
तेरहवाँ	भैरवी	आदि
चौदहवाँ	कल्याणी	रूपक

आण्डाळ ने अपने पदों मे शृगार रास के अनुकूल ही राग-योजना की सृष्टि की है । कालावधि को यान मे रखकर ही राग विभाजन किया गया है और राग विभाजन मे छन्द योजना पर ध्यान देकर तदनुकूल ही राग की शास्त्रीयता मे उन पदों को बाँधा गया है । एक उदाहरण देखिये—पौ फट गई। चारों तरफ चिडियाँ चहचहा रही । सखी को एक गोपी जगा रही है। भूपाळ राग जिसे उत्तरीय सगीत मे प्रभाती कहते है—मे यह पद हृदयग्राही बना है—

पुळ्ळुम् सिलम्बिन काण् पुळ्ळरैयन् कोयिलिल्[1]

o o o o

कीचु कीचु ऍन्रु ऍगुम् आनैसात्तम् कलन्दु[2]

विरह सबधी गीतो के लिये तुसावन्ती, काम्बोदि, सावेरी, नादनामक्रियै. भैरवी का प्रयोग किया गया है तथा सयोग के पदो मे कल्याणी, यमुना कल्याणी आदि रागिनियाँ प्रयुक्त हुई है। इन पदो मे दीर्घ पक्तियाँ तथा छन्दो के अनुकूल तालो का प्रयोग किया गया है । इनका स्पष्ट उल्लेख प्रत्येक पदो के

---

१. तिरुप्पावै ६

२. तिरुप्पावै पद, ७

सामने किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि आण्डाळ के सभी पदो की रचना गायन के लिये ही हुई यह प्रत्येक दशक के अन्तिम पद की फलश्रुति से यह सिद्ध किया जा सकता है। राग प्रयोग में समय तथा ऋतु सिद्धान्तो का निर्वाह और सम्यक् रूप मे किया गया है। प्रातःकालीन क्रिया कलापों तथा लीलाओं के वर्णन में भूपाल, मोहन, असावेरी, सहाना, केदार, गौरी, सारग, कल्याणी, सावेरी आदि राग प्रयुक्त हुए हैं। चीरहरण लीला के वर्णन सेचुरुट्टी मे तथा सन्ध्या कालीन प्रतीक्षा में नादनामक्रियै, भैरवी का प्रयोग हुआ है। वर्षा के बादलों के कारण दुखिता गोपी की उक्तियाँ दुसावन्ती राग में सुनिबद्ध की गई है।

उपरिलिखित प्रायः सभी रागो की प्रकृति कोमल, स्निग्ध अथवा करुण है जो उनके प्रतिपाद्य के अनुकूल ही प्रतीत होता है।

आण्डाळ और मीरां के काव्य में छन्द–योजना :

आण्डाळ की पद योजना पर विचार करते हुए प्रथमतः यह तथ्य उद्घाटित होता है कि उन्होने सम्पूर्ण पद रचना गेयता को प्रधान रूप से दृष्टि मे रखकर की है। आण्डाळ ने अनेक छन्दों को राग रागिनियाँ और तालों मे बाँधकर नियोजित किया है। कही भी मुक्त छन्दात्मक रचनाएँ नही हुई है। इन छन्दों के विधान मे शुद्धता और सरलता का सहज आयोजन है। छन्द रचना के लिये विशिष्ट नियमों का पालन करना पड़ता है। प्रत्येक छन्द किसी-न-किसी नियम से परिचालित होता है। ये नियम प्रत्येक भाषा की प्रकृति और उच्चारण पद्धति के अनुरूप अलग अलग होते है। आण्डाळ की छन्द योजना के अध्ययन के पूर्व तमिऴ् छन्द शास्त्र का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

तमिऴ् का छन्द–शास्त्र :

तमिल छन्दो के पाँच मुख्य अग होते है। वे असै, सीर, तळै, अडि, तोंडै।

(१) **असै** (मात्रा रूप)

असै दो प्रकार के होते है।

१ नेर असै २ निरै असै

(१-१) एक लघु या गुरु वर्ण अकेले या व्यजन के साथ आये तो वह **नेर असै** कहलाता है।

(१-२) दो लघु या एक लघु और गुरु वर्ण अकेले या व्यजन के साथ आये तो निरे असे कहलाता है।

उदाहरणार्थ :

य, ना, अम्, राय्, पुल्, तार्क्कु : नेर असै

मड, सिरे, लुयर्त्, सिरैप् : निरै असे

(२) सीर : (सामान्यतः गण रूप)

(२-१) साधारण रूप से "सीर" के चार भेद होते हैं—

दो असै : इयर सीर् या अकवर् सीर्

तीन असै : वेण् सीर् या उरिच् सीर्

चार असै : पोदुच् सीर्

(२-२) दो "असे" वाले "सीर" के दो भेद होते है —

माच् सीर्, विळच् सीर्

इनका लक्षण इस प्रकार है—

असै	उदाहरण	सीर का नाम
	ऽ ऽ	
नेर नेर	ते मा	माच् सीर्
	। । ऽ	
निरै नेर	पु ळि मा	,, ,,
	ऽ । ऽ	
नेर निर	कू वि ळ म्	विलच् सीर्
	। । । ऽ	
निरै निरै	क रु वि ळ म्	,, ,,

(२-३) तीन असैवाले सीर् के भी दो भेद होते है—

कायच् सीर् और कनिच् सीर्

इनका लक्षण इस प्रकार है;

असै	उदाहरण	सीर का नाम
	ऽ ऽ ऽ	
नेर नेर नेर	ते माङ काय्	कायच् सीर
	। । ऽ ऽ	
निरै नेर् नेर	पुळिमाङ्काय्	,, ,,
	ऽ । ऽ ऽ	
नेर् निरै, नेर्	कूविळङ्काय्	,, ,,
	। । । ऽ ऽ	
निरै निरै नेर्	करुविळङ्काय्	,, ,,

असै	उदाहरण	सीर का नाम
	ऽ ऽ । ।	
नेर् नेर् निरै	तेमाङ्कनि	कनिच् सीर्
	। । ऽ । ।	
निरै नेर् निरै	पुळिमाङ्कनि	कनिच् सीर
	ऽ । ऽ । ।	
नेर् निरै निरै	कूविळङ्कनि	कनिच् सीर
	। । । ऽ । ।	
निरै निरै निरै	करुविळङ्कनि	कनिच् सीर्

अत: प्रधान रूप से चार सीर है।

माच् सीर्, विळच्, सीर्, कायच् सीर, कनिच् सीर ॥

(३) **तलै**

दो सीर की सन्धि में प्रथम सीर के अन्तिम असै और दूसरे सीर की पहली असै के मेल को तलै कहते हैं।

तले चार प्रकार का होता है।

(१) माच् सीर्, विळच् सीर्, कायच् सीर् और कनिच् सीर् के साथ दूसरे सीर के मेल में क्रमश: निरै, नेर, नेर असै का अना **वेण् तलै** कहलाता है।

(२) माच् सीर् के साथ नेर, विळच् सीर और निरै का आना **आसिरियत् तलै** कहलाता है।

(३) काय् सीर पर निरै का आना **कळितलै** कहलाता है।

(४) काय् सीर् पर नेर का आना **वंजित् तलै** कहलाता है।

(४) **अडि :**

यह हिन्दी के चरण या पाद के अनुरूप ही है।

दो सीरवाला	: कुरळ अडि
तीन सीरवाला	: सिन्दडि
चार सीर्वाला	: अळवडि
पाँच सीरवाला	: नेंडिलडि
छः सीर्वारा	: कळिनेनिलडि

उदाहरणार्थ :

विडुमिन् मुर्रउम् (कुरळ अडि)

परिवदि लीसनैप् पाडि (सिन्दडि)

उयर्वर् वुयर्नल मुडैयव नेवनवन् (अळवडि)
पत्तुडैयडियवरक् केलियवन् पिर्कलुक्करिय (नेडिल्डि)
वळवे लुलकिन् मुदलाय् वानो रिर्यै यरुविनैयोन् (कळिनेडिल्डि)

(५) तोंडै :

"एदुकै", "मोनै", अन्तादि" को नोड कहते है ।

(५-१) ऍंदुकै :

आद्यानुप्रास को ऍंदुकै कहते है ।

आद्यानुप्रास मे ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक चरण का प्रथम वर्ण एक ही मात्रावाला होता है और द्वितीय वर्ण मे अनुप्रास हो तो वह आद्यानुप्रास यानी ऍंदुकै कहलाता है। प्रथम वर्ण और द्वितीय वर्ण के मध्य, व्यंजन के आने पर भी वह "ऍंदुके" ही होता है।

जैसे १ वारण
नारण
पूरण
तोरण
२ आवेरु
पाळ्वेरु

और

काय्माण्ड
पूमाण्ड

(५-२) सभी चरणों मे एक ही ऍंदुकै (आद्यानुप्रास) हो तो उसे **"ओरुविकर्पम्"** कहते है ।

(५-३) प्रथम दो चरणो में एक एदुकै और शेष दो चरनो मे दूसरा एदुकै हो तो उसे **"इरुविकर्पम्"** कहते है ।

(५-४) यदि चरणो में कई "एदुकै" हो तो उमे **"पलविकर्पम्"** कहते है

(५-५-१) मोनै (अनुप्रास)

अनुप्रास को मोनै कहते है। एक ही वर्ण एक ही क्रम से एक से अधिक बार आवे तो मोनै कहा जाता है। यदि 'अडि' ये मोनै हो तो **"अडिमोने"** और सीर में मोने हो तो **"सीर मोने"** कहते है।

वीडुमिन् मुरैवुम् वीडु सेयदुम् मुयिर्
वीडुडै यानिडै वीडिसै मिने। यहाँ अडि मोनै है ।
उयर्वर् उयर्नल उडैयवन् यवनवन् यहाँ सीर मोनै है ।

सजातीय वर्ण के एक ही क्रम ये आने पर भी मोनै कहलाता है :

सजातीय वर्ण :

अ	आ	ऐ	औ
इ	ई	एँ (ह्रस्व) ए (दीर्घ) य	
उ	ऊ	ओं (ह्रस्व) ओ (दीर्घ)	
ड	न		
च	त		
म	व		

उदाहरणार्थ : इननुणर् एदिर्निकल्

(सजातीय वर्ण) इ, ए, मे यहाँ सीर् मोनै है ।

(५–५–२) **अन्तादि** (अन्त्यादि)

छन्द के अन्तिम वर्ण या असै या सीर अगले छन्द के प्रारभ मे आना अन्तादि कह लाता है। छन्द का अन्तिम वर्ण या असै या सीर अगले छन्द के आदि में आना ।

(उ-ण) चरण का अन्तिम शब्द तोलुदेलेन् मनने
अगले छन्द के प्रारभ मे **म**ननक मलमर

(विशेष) तिरुवाय् मोलि (नम्माळ्वार रचित) के किसी भी छन्द में इस अन्तादि को देख सकते है ।

(६) तमिल् के प्रधान छंद :

तमिल् के छन्दो को चार प्रधान वर्गीकरण मे रखा जा सकता है। वे—वेंण्बा, आसिरियप्पा, कलिप्पा, वजिप्पा

(६–१) वेंण्पा

(क) "इयर् सीर्" चार और "काय् सीर" चार के अतिरिक्त दूसरा प्रयुक्त नही होता ।

(ख) "वेंण तलै" एक ही प्रयुक्त होता है ।

(ग) दो से लेकर कई "अडि" इसमे होते है । उनमें अन्तिम अडि तीन सीरवाला होता है, शेष चार सीरवाला होता है ।

(घ) "ओरु विकर्पम्" अथवा "इरुविकर्पम्' इसमे प्रयुक्त होता है ।

(६–२) आसिरियप्पा :

इस छन्द मे 'कनिच् सीर" प्रयुक्त नही होता । अधिकतर इयरसीर का प्रयोग किया जाता है । अन्य सीर् का प्रयोग कम होता है।

(ख) आसिरियत् तळै अधिक होते है, अन्य तलै कम आते है ।

(ग) तीन अडि से लेकर कई चार सीरवाले (अळवडि) इसमे आते है। इसको अकवर्पा कहते है ।

(६–३) कलिप्पा :

कायृच् सीर अधिक और अन्य सीर् मिश्रित रूप मे आते है । माच् सीर दो, कनिच् सीर दो इसमे प्रयुक्त नही होते ।

(अ) कलित् तऀै तथा अन्य तलै का भी प्रयोग होता है ।

(इ) इसमें अडि चार सीरवाले होते है ।

(उ) तरवु, तालिसै, अरागम्, अम्बोदरगम्, स्वतत्रशब्द, सुरतिक्म्, इनमे से एक विषय के अनुरूप प्रयुक्त होता है । तरवु के आने पर वह छन्द "तरवु कोच्चकक् कलिप्पा" कहलाता है ।

(६–४) वंजिप्पा :

(क) सभी सीर इसमे आते है ।

(ख) सभी "तलै" में वजि तलै का प्रयोग अधिक होता है ।

(ग) इसमे अडि दो सीरवाले होते है । उनमे तीन से लेकर कई अडि आते है। इसका अन्त स्वतंत्र शब्द के साथ आसिरिय सुरद-कम् मे होगा ।

(७) अन्य छन्दः

अन्य छन्दो मे 'सन्दकंळ्" "तुरै", "विरुत्तम्" प्रधान होते है ।

(७-१) "सन्दम्" प्रधानतया ताल और लय पर आधारित है ।

(७–२) आसिरियत् तुरै :

इसमे कई सीर होते है । पूर्व अडि में आये सीर बादवाले अडि मे भी आ सकते है ।

(७–३) कलित्तुरै :

पॉच सीर्वाले चार अडि का होता है ।

(७–४) वंजित्तुरै :

दो सीरवाले चार अडि का होता है ।

वृत्तम् : आसिरियवृत्तम् :

इसमें कलि नेंडिलडि चार होते है ।

कलिवृत्तम् :

चार सीर्वाला चार अडि इसमें होते है ।

वंजिवृत्तम् :

तीन सीर्वाला चार अडि इसमें होता है ।

आण्डाळ के पदों में प्रयुक्त छन्दों का विवरण :

१. कोच्चक्क् कलिप्पा :

तिरुप्पावै के तीसों पद कोच्चकक् कलिप्पा नामक छंद में रचित है। इसमें आठ अडि होते हैं। प्रत्येक अडि चार सीर्वाला होता है। सभी अडियों में आद्यानुप्रास एँदुकै के कारण "ओरुविकर्पम्" कहलाता है। इसमे वेण्तळै का प्रयोग हुआ है। अतः यह छन्द वेण्तळै मे प्रत्युक्त आठ अडिवाला, चार सीरो से युक्त ओरुविकर्प कोच्चकक् कलिप्पा कहलाता है।

उदाहरण :

मारकऴित्	तिकळ्	मदि निरैन्द	नन्नाळाल्
नीराडप्	पोदुवीर्	पोदुमिनो	नेरिळै यीर्
सीर्मल्कुम्	आय्पाडिच्	सेल्वच्	सिरुमीरकाळ्
कूरवेल्	कोडुन्तोलिलन्	नन्दगोपन्	कुमरन्
एरान्द	कण्णि	यशोदै	यिळम्सिगम्
कारमेणिच्	सेकण	कदिरमयम्	पोल्मुकत्तान्
नारायणने	नमक्के	परै	तरुवान्
पारोर्	पुकऴप्	पडिन्तेलो	रेम्पाव्य्[1]

नाच्चियार तिरुमोऴि में अनेक प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक छन्द प्रयोग को उदाहरण के साथ नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

२. छः सीरवाला कलिनेडिलडि आसिरिय वृत्तम्

इसमे चार अडि (चरण होते हैं) छः सीर्वाले होने के कारण प्रत्येक अडि कलिनेडिलडि कहलाता है। चार कलिनेडिलडि के प्रयोग के कारण यह आसिरियवृत्तम् कहलाता है।[1]

तैयोरु	तिकलुम्	तरै विळक्कित्	तण्मण्	डलमिटटु	मासिमुन्नाल्
ऐयनुण्	मणर्कोण्डु	तैरुवणिन्दु	अऴकिनुक्	कलकिरित्त	अनंगदेवा
उय्यवुम्	आम्कोलो	वेन्रुसोल्लि	उन्नैयुम्	उम्बियै	युम्तोल देन्
वेय्यदोर्	तळलुमिल्	चक्करक्कै	वेकट	वर्कुएँन्नै	विदिक्किर्रियै

३. सात सीर्वाला कलिनेडिलडि आसिरियवृत्तम् :

ऊपर वर्णित छन्दों से केवल एक सीर् इस छन्द मे अधिक होता है। शेष पूर्ववत् ही है।

---

१. तिरुप्पावै पद १

२. ना० ति० १–१ ॥ ३ना० ति० २–१ ॥

उदाहरण :

नाम मायिरम् एत्त निन्र् नारायणा नरने उन्नै
मानि तन्मक नाकप् पेर् राल् एमक्कु वादै तविरुमे
कामन् पोदरु काल मेन्रु पकुनिनाळ् कडै पारित्तोम्
तीमै सेय्युम् सिरीदरा एगळ् सिरिल् वन्दु सिदैयले

४. आठ सीरवाला कलिनेडिलडि आसिरिय वृत्तम् :

यह भी पूर्वछन्दानुरूप ही है । इसमे आठ सीर होंगे । शेष आसिरिय वृत्तम् सदृश है ।

उदाहरण :

मर्रिरुन्दीरकट्कु अरियलाका मादवनेन्बदरेन्वु तन्नै
उर्रिरुलेनुक्कु उरैप्पदेल्लान् ऊमैयरोडु सेविडर वार्तै
पेर्रिरुन्ताळै योळियवे पोयप् पेरलुतोरुत्तायिल् वळर्न्द नम्बि
मर्पोरुत्तामर कळमडैन्ड मदुरैप्पुरत्तु एँन्नै उय्त्तिडुमिन् ॥

५. तरवु कोच्चवक् कलिप्पा :

कलिप्पा छन्द की परिभाषा छन्द शास्त्र के विवरणो मे दी गई है ।

उदाहरण :

करुप्पूरम्	नारुमो	कमलप्पू	नारुमो
तिरुप्पवळच्	मेव्वाय्	तान्	तित्तित्तिरुक्कुमो
मरुप्पोसित्त	मादवन् तन्	वाय्सुवैयुम्	नार् रमुम्
विरुप्पुर्रुक्	केट्किन्रेन्	सोल्लाळि	वेणसगे

६. कलिवृत्तम् :

यह छन्द चार सीर वारा तथा चार अडि से युक्त है ।

तेळ्ळि	यार्पलर्	कैतोल्ुम्	तेवनार्
वळ्ळल्	मालिरुम्	सोलै	मणाळनार
पळ्ळि	कोळ्ळु	मिडतु	अडि कोट्टिड
कोळ्ळु	माकिल् नी	कूड्डि	कूडले

७. कलिनिलैत् तुरै :

यह कलिवृत्तम् चार सीर्वाला छन्द है ।

---

३. ना० ति० २–१
४. ना० ति० १२–१
५. नाच्चियार तिरुमोलि ७–१
६. नाच्चियार तिरुमोलि ४–१
७. नाच्चियार तिरुमोलि ९–१

उदाहरण :

सिन्दुरच्	सेम्पोडिपोल्	तिरुमालिरुम्	सोलैये गुम्
इन्दिर	गोपकळे	एल् ुन्दुम्	परन्दिट्टनवाल्
मन्दिरम्	नाट्टि अन्रु	मदुरक् कोल् ुम्	सारुकोण्ड
सुन्दरत्	तोळुडैयान्	मुललैयिल् निन्रु	उय्दुङ्कोलो

आण्डाळ ने कुल सात प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वर्णनात्मक प्रतिपाद्य के व्यक्तीकरण के लिये उन्होने "कलिप्पा" का प्रयोग किया है। छन्द और छन्द -शैली दोनो प्राचीन संघ काल के अनुरूप ही हैं। 'कलिप्पा" प्रधान छन्दो मे से है। शेष विरह मिलन सबंधी वर्णन "आसिरिय वृत्तम्" आदि छंदों मे रचे गये है। कलिप्पा जैसे प्रधान छंदों की अपेक्षा इन छन्दो मे काव्य-कार को व्यक्तीकरण में अधिक स्वतत्रता रहती है। अन्य आळ्वारो की भाँति ही आण्डाळ के पदों मे छन्दों का निश्चित विधान मिलता है।

मीरां की छन्द–योजना :

मीरा की छन्द-योजना पर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मत विशेप रूप से दष्टव्य है। उनकी धारणा है कि "पदावली के अन्तर्गत आये हुए पदो को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि मानों उनकी रचना पिगल के नियमादि को दृष्टि में रखकर नही की गई थी अथवा उनके विशेष रूप से गाने योग्य होने के कारण पीछे से, उनमें, सगीत की सुविधाओं के अनुसार परिवर्तन कर दिये गये है। पिगल की दृष्टि से नाप-जोख करने पर पदावली का कदाचित् कोई भी पद नियमानुसार बना हुआ प्रतीत नहीं होता। किसी मे मात्राएँ बढ़ती हैं तो किसी मे घट जाती है, किसी मे दो तीन तक शब्द बढ़ जाते है तो कही यति भग का दोष पड़ जाता है कि किसी पक्ति का किन्ही पंक्तियो की किन लक्षणो की दृष्टि मे रखकर परीक्षा की जाय।'[1]

कृष्ण भक्त कवियों के सदृश मीरा बाई ने भी प्रचलित कई छन्दों का प्रयोग जाने या अनजाने किया है। यद्यपि इन छन्दों के प्रयोग मे दोष आ गए है तथापि मात्राओं की सख्या तथा अन्य साम्यों के द्वारा छन्दो का अस्तित्व निरूपित किया जा सकता है। मीरांवाई की पदावली मे प्रयुक्त प्रधानछंद निम्न प्रकार हैं :—

सार छन्द, सरसी छन्द, विष्णुपद, दोहा, समान सवैया, शोभन, ताटक, कुण्डल, अतिवरवै, सखी, मनहर, कवित्त, उपमान, जातिक छन्द, दण्डक छन्द

---

१. मीरांबाइं की पदावली, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ ५६–५७

सार छन्द :

सार छन्द मीरा का अत्यधिक प्रिय छन्द है। इसका प्रयोग अधिक मात्रा मे हुआ है। इसमे कुल २८ मात्राएँ होती है, १६ और १२ मात्राओ के मध्य यति होना आवश्यक है। इसके अत मे दो गुरू आते है।

> **लोग कह्यां मीरां बावरी, सासु कह्यां कुल नासी री,**
> **विष रो प्यालो राणा भेज्यां, पीवां मीरां हांसां री।**[1]

इन सार छन्द के पदो मे निरर्थक शब्दो के प्रयोग के कारण छंद दोषयुक्त हो जाता है।

सरसी छन्द :

इसमे १६ और ११ के विश्राम से २७ मात्राएँ होती है। अत मे एक गुरु और लघु आते है। इस छन्द का प्रयोग भी मीरां के पदो मे बहुलता से मिलता है।

> **दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही सोर छै जी,**
> **मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरणों में म्हारो जोर छै जी**[2]

इसी प्रकार—

> **तनक हरि चितवां म्हारी ओर। टेक।**
> **हम चितवां थे चितवो णा हरि, हिवड़ो बड़ो कठोर।**
> **म्हारी आसा चितवनि थारी, और णा दूजा दोर।**
> **ऊभ्यां ठाढी अरज करूं छूं, करतां करतां भोर।**
> **मीरां रे प्रभु हरि अविनासी, देस्यूं प्राण अकोर।।**[3]

इन पदो मे भी निरर्थक शब्दो के कारण जैसे छै जी, छन्द सदोप हो गया है।

विष्णुपद :

इसमे १६ और १० के विश्राम से २६ मात्राए होती है। अत मे गुरु और लघु आते हैं।

> **सांवरो णाम जपां जग प्राणी, कोटयां पाप कट्यांरी।**
> **जनम जनम री खतां पुराणी णाम स्याम मट्यारी।**
> **मीरां रे प्रभु हरि अविनासी, तण तण स्याम पटयारी।**[4]

---

१. मीरांबाई की पदावली पद ३६
२. मीरांबाई की पदावली पद १४५
३. मीरांबाई की पदावली पद ५
४. मीरांबाई की पदावली पद २००

इस छन्द के प्रयोग मे भी "री" के प्रयोग और लघु और गुरु के कारण छंद मे दोष आ गया है ।

दोहा :

दोहा के विषय मे चरणो मे तेरह और सम चरणो में ग्यारह मात्राएँ होती है और चरण के आदि मे जगण नही होना चाहिए । इसमें भी निरर्थक शब्दो (रे, री) के कारण मात्राओ की सख्या बढ गई है ।

चोंच कटाऊं पपइया रे, ऊपरि कालर लूण
पिव मेरा मै पीव की रे, तू पिव कहै सकूण ।।[1]

समान सवैया :

इस छन्द मे १६ और १६ बीच विश्राम देकर ३२ मात्राएं होती है और अन्त मे भगण आता है ।

आंबा की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग जग केरी हांसी ।
विरह की मारी मै बन बन डोलूँ, प्रान तजूँ करवत ल्यूँ कासी ।।
मीरां रे प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मै तेरी दासी ।।[2]

इस पद में गग दोष आ गया है ।

ताटंक छन्द :

यह छन्द १६ और १४ के विश्राम से ३० मात्राओ का होता है ।

उड़त गुलाल लाल बादला रो रंग लाल, पिचकां उड़ावां रंग-रंग री झरी री ।
चोवा चंदवा अरगजा म्हा, केसर णो गागर भरी री,
मीरां दासी गिरधर नागर, चेरी चरण धरी री ।[3]

इसमे मात्रा घटी वढी है ।

कुंडल छन्द :

इस मात्रिक छन्द में १२ एवं १० के विराम से २२ मात्राएँ होती है । अंत मे दो गुरु आते है ।

गोहने गुपाल फिरूं, ऐसी अवात मन में,
अवलोकन बारिज बदन, बिबस भई तन में ।

---

१. मीरांबाई की पदावली पद ८४
२. मीरांबाई की पदावली पद ५६
३. मीरांबाई की पदावली पद १४८

मुरली कर लकुट लेऊं, पीत बसन धारुं।
काछी गोप भेष मुकट' गोधन संग चारूं।[१]

इस पद मे भी नियमो का उल्लघन हुआ है।

शोभन छन्द :

इस छन्द मे कुल २४ मात्राएँ होती है। १४ एव १० के बीच मे यति होती है। अन्त मे गुरु लघु आते है। यदि अन्त मे लघु गुरु आ जाय तो रूपमाला कहलाता है।

लाल गिरधर तरण तारण, वेग करस्यो पार।
दासी मीरां लाल गिरधर, जीवणा दिन च्यारा।[२]

उपमान छन्द :

इसमे १३ और १० के विश्राम से २३ मात्राएँ होती है। अन्त में दो गुरु आते है।

सखियन सब मिल सीख दयां मन एक न मानी हो।
छिन देख्यां कल ना पड़ां मन रोस णा ठानी हो।[३]

सुगीत छन्द :

इसमें १५ और १० के विश्राम से २५ मात्राएँ होती है।

दोपता री लाज राख्यां, थे बढायां चीर।
भगत कारण रूप नरहरि, धर्‌यां आप सरीर।
बूडतां गजराज राख्यां, कटयां कुंजर भीर।
दासि मीरां लाल गिरधर, हरां म्हारी भीर।।[४]

जातक झछन्द :

इसमें २८ मात्राए होती है।

चालां मण वा जमणां कां पीर (टेक)
वा जमणा का निरमल पाणी, सीतल होयां सरीर।
बंसी बजावां गावां कान्हां, संग लियां बलबीर।
मोर मुकुट पीतांबर सोहां, कुंडल झलकणा हीर।[५]

---

१. मीरांबाई की पदावली पद १८४
२. मीरांबाई की पदावली पद १९६
३. मीरांबाई की पदावली पद ८७
४. मीरांबाई की पदावली पद ६१
५. मीरांबाई की पदावली पद १६१

दण्डक छन्द :

इस छन्द मे २३ या ३४ मात्राएं होती है।

कांच कथीर सूं काम णा म्हारे, चढस्यां कणरी सास्यांरी।
सोना रूपा सूं काम णा म्हारे, म्हांरे हीरां री बौपारां।[1]

और—

सावन मां उमंग्यों मणरी, भणक सुण्या आवनरी।
उमड़ घुमड़ घण मेघां आयां, दामण घण झर लावण री।
बीजां बूंदां मेहां आयां बरसां सीतल पवण सुहावण री
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, वेला मंगल गावण री॥[2]

मीरां के पदों में टेक–विधान :

मीराबाई के पदों में प्रयुक्त टेक दो प्रकार के है। एक वे जो मात्र एक ही चरण में समाप्त होते है, और दूसरे वे जो दो चरणों मे समाप्त होते है। मात्रा की दृष्टि से ये टेक १२ से लेकर ५० मात्राओं मे समाप्त हुए है। उदाहरणार्थ :

मण थें परस हरि रे चरण (पद १)
असा प्रभु जाण न दीजै हो (पद १५)
म्हा मोहणरो रूपलुभाणी (पद ११)
बंदे बंदगी मति भूल (पद १९८)
कोई स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरै मटकिया डोले (पद १७८)
हो गये श्याम दूइज के चंदा (पद १८०)
कहां कहां जाऊं तेरे साथ, कन्हैया (पद १७६)
आली सांवरो की दृष्टि, मानूं प्रेम री कटारी हैं। (पद १७४)
स्याम बिण दुख पावां सजणी,
कुण म्हा धीर बंधावां॥ पद १५६।
मुज अबला ने मोटी नीरांत थई रे।
छामलो घरेणु मारे सांचु रे॥ पद १४१)
थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ,
मैं हाजिर नाजिर कबकी खडी। (पद ११८)

---

१. मीरांबाई की पदावली पद २४
२. मीरांबाई की पदावली पद १४६

आवत मोरी गलियन में गिरधारी,
मैं तो छुप गई लाज की मारी (पद १७१)
आज अनारी ले गयो सारी, बैठी कदम की डारी, हे माय ॥

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि मीरा के टेक-विधान मे मात्रा की दृष्टि से एकरूपता नही है । छन्द-विधान की दृष्टि से ये टेक शेष पद के साथ कही-कही सबधित नही है । कही-कही टेक के अतिम वर्ण उसी पद के विभिन्न चरणो के अतिम वर्णो से भी मेल नही खाते ।

निष्कर्ष :

मीरां और आण्डाळ के पदो मे सगीत के समन्वय पर विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि आण्डाळ शास्त्रीय संगीत मे निपुण है, उसमे तमिल-शास्त्र के आधार पर अपने पदों की रचना की है। उसके पदो मे छन्दो के सहज प्रयोगों के कारण रसात्मकता और गीतात्मता सहज ही आ गई है । आण्डाळ के छन्द-विधान मे न कही मात्रा-क्रम टूटता है न कही यति-भंग होती है, न कही छान्दसिक-योजना विकृत हो पाती है। इसके विपरीत मीरां के पदो मे छान्दसिक विशृखलताएँ देखने को मिल जाती है। कहा जाता है कि मीरां को सगीत शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था किन्तु उसके पदो को शास्त्रीय विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखने पर प्रत्येक पद में कही-न-कही छान्दसिक विकृति देखने को मिल जाती है । अतएव यह प्रामाणिक रूप से कहा नही जा सकता कि मीरां की सपूर्ण पदयोजना शास्त्रीय सगीत पर ही आधारित है। मेरी तो यह भी धारणा है कि जिस काल मे मीरा का आविर्भाव हुआ था उस काल मे शास्त्रीय सगीत और लोक सगीत का समान रूप से विकास हो रहा था। साधुओं की संगित करते हुए मीरा ने साधुओ द्वारा गाई जाने वाली अलमस्त स्वर माधुरी को भी आत्मसात किया था । अत: ऐसा प्रतीत होता है कि उसके पदो में शास्त्रीय एव लोक सगीत तत्त्वों का समन्वय हुआ है । मीरा के पदो मे छन्दों के बधन अत्यधिक लोकानुगमी हो गये हैं, यही कारण है कि उनमें लोक सगीत का आनन्द मिलता है । अतएव मीरां के पदों में लोक-धुनों के समन्वय के कारण छांदिक-योजनाओ मे शास्त्रीय नियमों की शिथिलता देखी जा सकती है ।

उपसंहार

भक्ति-साधना की तन्मयता में उत्तर और दक्षिण भारत की जिन दो साधिकाओं ने भक्ति के रस में अपने सर्वस्व को रजित करते हुए लौकिक व्यापारों से मुक्त हो, कृष्ण के देवत्त्व मे आत्मलीन और विलीन हो जाने का स्वरूप प्रकट किया है, उनमे उत्तर भारत की भक्ति-साधिका मीरां और दक्षिण भारत की लौकिक राधा, आण्डाळ का शीर्षस्थ स्थान है। इन दोनो ही भक्त-कवयित्रियों के स्वरों में भक्ति का अजस्र प्रवाह है। मिलन की तीव्रतम आकांक्षा है, आत्मसत्य का आह्लाद है और चिरतन सत्य में एकाकार होने की प्रबल लालसा सन्निविष्ट है।

मीरा का आविर्भाव आज तक के अन्वेषणो के आधार पर पन्द्रहवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। जिस युग मे इस भक्त-साधिका का जन्म हुआ था, उस काल की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ भिन्न थीं। इस युग में सामन्तीय शासन व्यवस्था थी, किन्तु राज्य तंत्रीय, राजनैतिक व्यवस्था के रहते हुए भी धार्मिक और दार्शनिक चिन्तन व्यावहारिक क्षेत्रों में पूर्णतः गतिशील था। सामान्य जनसमुदाय भक्ति-साधना में रत था और साधकों का दार्शनिक चिन्तन भी सामाजिक परिवेश को प्रभावित तो कर ही रहा था, इसके साथ ही चिरंतन भक्तिभाव की साधना भी व्यावहारिक जीवन में परिव्याप्त हो रही थी। मीरां का जन्म धार्मिक आन्दोलनों के काल मे हुआ था। भक्ति-साधना के नये मार्ग प्रशस्थ हो रहे थे किन्तु इस समय भी तंत्र-यानियों का प्रभाव बना हुआ था। परिणाम यह हुआ कि भक्त अथवा साधको ने चिरंतन सत्य को जिस प्रकृत रूप में प्रकट करने की चेष्टा की, वह मूल रूप में ग्राह्य नहीं हुआ। तंत्र-यानियों की साधना विशिष्ट द्वैत की भक्ति-धारा के साथ समरस हो गई और योगियो के तथा संतों के प्रभाव के कारण विशिष्टाद्वैत की साधना-प्रक्रिया में भी रहस्य चेतना अपने आप सम्मिलित हो गई। मीरा ने रहस्य मंडल मे अपने चिरंतन कृष्ण की सत्ता मानी और सपूर्णतः समर्पण भाव से कृष्ण को पति के रूप मे स्वीकार करते हुए चिरंतन मे अपनी भौतिकता को विलीन करने की साधना की। मीरां की भक्ति-भावना मे समर्पण भाव की चरमता के साथ ही रागानुगा भक्ति का संपूर्ण उत्कर्ष हुआ है।

दक्षिण भारत की भक्तिन आण्डाळ का आविर्भाव भी भक्ति के आन्दोलन

के काल में हुआ था। सामान्य रूप से आण्डाळ का जन्म आठवी शताब्दी मे हुआ माना जाता है। आण्डाळ के जन्म के पूर्व से ही जैन और बौद्ध धर्म के आन्दोलन चल रहे थे। शैव और वैष्णव दार्शनिक चिन्तनो का साधनात्मक संघर्ष भी आरभ हो गया था। तंत्र-साधना के प्रसार की परंपरा अत्यन्त प्राचीन है। आण्डाळ का जन्म आळ्वार कुल मे हुआ था और इस कुल के भक्त आरभ से ही वैष्णव थे, अतएव आण्डाळ के दार्शनिक चिन्तन मे वैष्णव धर्म का दार्शनिक सत्य स्वतः समन्वित हो गया, किन्तु आण्डाळ की वैष्णव भक्ति तंत्र-साधना और बौद्ध धर्म के निरीश्वरवाद से निर्मुक्त नही रह सकी। परिणाम यह हुआ कि आण्डाळ की वैष्णव भक्ति पर देवत्व-शून्यता का प्रभाव तो नही पड़ा किन्तु तत्र-साधना की दार्शनिकता से आण्डाळ की भक्ति भावना पूर्णतः अछूती नहीं रह सकी और आण्डाळ की भक्ति-साधना भी रहस्यमयी और रहस्योन्मुखी होती चली गई। आण्डाळ ने भी इतिहासेतर कृष्ण की उपासना की और ममर्पण भाव से भक्ति की साधना की। इस साधिका ने भी स्वयं को कृष्ण की परिणीता के रूप मे स्वीकार किया और वैयक्तिक आत्म सत्य को, राग और चेतन सत्य को कृष्ण के अलौकिक सत्य का ही एक रूप माना। परिणामतः इस कवियित्री की भक्ति-भावना मे भी रागानुगा भक्ति के ही दर्शन होते है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे आळ्वार परंपरा पर पूर्णतः विचार किया गया है। आण्डाळ के जीवन वृत्त का निर्णय श्री० मु० राधवय्यंगार के मत पर आधारित है। आळ्वार भक्त वैष्णव भक्ति मे आरभ से ही निमग्न रहे है। उनके पदो में दास्य, वात्सल्य और कान्ता भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति हुई है। प्रथम तीन आळ्वार, पेयाळ्वार, भूतत् आळ्वार, पोय्गै आळ्वार ने विष्णु की वामनावतार की उपासना की और उसी भक्ति भावना मे अपने पदों की रचना की। आळ्वार परंपरा के काल का स्थिरीकरण, मु० राधवय्यगार के मत के आधार पर ही किया गया है इस आळ्वार परंपरा का विकास निरतर होता गया और तिरुमिलिसै आळ्वार, नम्माळ्वार मधुर कवि आळ्वार, कुल शेखर आळ्वार और पेरियाळ्वार की भक्ति साधना मे दास्य, वात्सल्य और कान्ता भाव की जैसी सजल, सरस, रागमय और अलौकिक उद्भावना हुई वैसे दक्षिण भारत के अन्य भक्तों में परिलक्षित नही होती। पेरियाळ्वार को वात्सल्य रस का रस-राज ही कहा जाता है। इनका चित्त ही विष्णुचित है। इन्होंने कृष्ण की बाल्यलीलाओं का अत्यन्त सजल एवं सजीव वर्णन किया है। वास्त्व मे सूरदास के पदों में वात्सल्य रस की जैसी प्राणवान् उद्भावना हुई है, वैसी ही सजीव उद्भावना पेरियाळ्वार के पदों में भी दिखलाई देती है। पेरियाळ्वार की पुत्री

आण्डाळ भी वैष्णवी है और वह भी कृष्ण की उपासिका है । अन्तर केवल इतना है कि पेरियाळ्वार ने जहाँ कृष्ण की उपासना दास्य भाव से की वहाँ आण्डाळ ने कृष्ण की भक्ति समर्पण और कान्ता-भाव से की । यही कारण है कि पेरियाळ्वार के पदो मे वात्सल्य रस की छलछलाहट और दास्य भाव का अजस्र प्रवाह दिखाई देता है । दूसरी ओर आण्डाळ के पदों में रागानुगा भक्ति अलौकिक कान्ता विषयक व्यापार में प्रकट हुआ है। आण्डाळ के उपरान्त तोण्डर-डिपोडियाळ्वार, तिरुपाणाळ्वार, तिरुमगै आळ्वार आदि भक्तों ने इन्ही भावों से कृष्ण की उपासना की है। आळ्वार साहित्य में नम्माळ्वार, पेरियाळ्वार और आण्डाळ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। दक्षिण भारत की भक्ति-साहित्य में भी इन भक्तों का शीर्षस्थ स्थान प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध आळ्वार साहित्य की मीमांसा करते हुए इनके भक्ति-स्वरूप पर व्याख्या की गई है और इनके पदों में अभिव्यक्त, दास्य, समर्पण, और कान्ता भाव की विशद् विवेचना हुई है। आळ्वार भक्तों के उपरान्त आचार्य परंपरा का विकास हुआ और आचार्यों की परंपरा में नाथमुनि, आलवंदार, रामानुज स्वामी, कूरताळ्वान, पराशर भट्ट, वेदान्त देशिक आदि की प्रमुख रूप से गणना की जाती है । इन्ही आचार्यों ने आळ्वार साहित्य की भक्ति भावना का संश्लेषण विश्लेषण किया है और इस परंपरा के साहित्य में अभिव्यक्त दार्शनिक सत्यों का सिद्धान्तीकरण किया है । विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त आळ्वार साहित्य पर ही आधारित है और वह इन आचार्यों के विश्लेषण का ही परिणाम है । इसी प्रकरण में मीरां और आण्डाळ के जीवन वृत्त को प्रस्तुत किया गया है । आण्डाळ के जीवन वृत्त की प्रामाणिकता के लिये मु० राधावय्यगार कृत आळ्वारकल् काल निलै" को आधार माना गया है । दूसरी ओर मीरां के जीवन वृत्त के लिये आचार्य परशु-राम चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरांबाई की पदावली, हिन्दी परिषद् से प्रकाशित मीरां स्मृति ग्रंथ, और मुँशी देवी प्रसाद लिखित मीरांबाई का जीवन वृत्त आदि ग्रंथों का आधार लिया गया है । दोनों ही भक्त कवयित्रियों के जीवन वृत्त का विश्लेषण करने से निष्कर्ष यह निकलता है कि दोनों ही संपूर्ण रूप से कृष्ण की उपासिका हैं, दोनों का जीवन असामान्य है, दोनों वियोगिनी हैं और दोनो की आत्मा में चिरंतन कृष्ण का निवास है ।

दक्षिण भारत में रागानुगा भक्ति का प्रसार आठवीं शताब्दी के पूर्व ही हो चुका था । आण्डाळ के पदों में रागानुरागा भक्ति का चरम विकास दिखलाई देता है । भगवद् भक्ति का जो स्वरूप आण्डाळ के पदो मे दिखलाई देता है, वही प्रभाव दक्षिण भारत के भक्ति-साहित्य में भी परिलक्षित है । विशिष्टा-

द्वैत का उद्गम आळ्वार साहित्य से ही माना जाता है। अतएव यह स्वाभाविक है कि दक्षिण भारत की भक्ति भावना पर विशिष्टाद्वैती दार्शनिक विचार धाराओं का प्रभाव पड़े। किन्तु यह प्रभाव दक्षिण भारत तक ही सीमित नही रहा, अपितु उत्तर भारत की भक्ति-भावना और रागानुरागा भक्ति पर भी विशिष्टाद्वैतवादी भावना का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित है। मीरा भी वैष्णवी है और उसका आविर्भाव पन्द्रहवीं शताब्दी मे ही हुआ। अतएव मीरा की भक्ति-साधना पर विशिष्टाद्वैत का प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है। संतो के साथ पर्यटन और योगियों की यायावरी इस प्रसार का साधन बनी और उत्तर भारत मे इस भावना का संपूर्ण प्रसार हुआ। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त और रागानुगा भक्ति का प्रसार उत्तर भारत पर पडा ही, इसके साथ ही उत्तर भारत के पॉच रात्र सहिताओं में निहित अवतारवादी भावना भी दक्षिण भारत मे प्रसारित हुई, उसका आळ्वार साहित्य पर भी प्रभाव पडा है। अनेक सिद्धान्त शास्त्रियों ने तीसरी शताब्दी मे पाँच रात्र सहिता का दक्षिण भारत मे प्रसार हुआ स्वीकार किया है। छठवीं शताब्दी आळ्वार साहित्य की आरंभिक रचना का काल है। अतएव यह स्वीकार किया जा सकता है कि दक्षिण भारत की वैष्गव भक्ति पर पॉच रात्र सहिता में निहित भगवत् भक्ति के पॉच रूपो पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा-का समग्र प्रभाव पड़ा है। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि दक्षिण भारत की वैष्णवी भक्ति पर इनका प्रभाव पड़ा है और यही भक्ति धारा दक्षिण भारत ये संपूर्ण भक्ति साहित्य में दिखलाई देती है। उपर्युक्त तात्विक रूपों में विशेष रूप से अर्चावतार अथवा अर्चा रूप का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दक्षिण भारत की साधना पर पड़ा है। आज भी वैष्णवों के जो मंदिर विद्यमान है उनसे इस रूप के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है। यही कारण है, दक्षिण भारत में मदिरों की वहुलता है। आण्डाळ और मीरां पर भगवद् भक्ति के इसी अर्चा रूप का प्रभाव पड़ा है। वे इसी भावना से प्रेरित दिखाई देती हैं। दोनों ही कृष्ण की उपासिका है। आण्डाळ ने मदिरो मे रंगनाथ की उपासना की है और मीरां ने गिरधर गोपाल की। मंदिर ही उनका समरस होने का रंगस्थल है। मीरां और आण्डाळ के पदो में नवधा भक्ति का स्वरूप भी दिखलाई देता है।

नवधा भक्ति अथवा रागानुगा भक्ति के विकास का अन्तिम स्वरूप वियोगानुभूति अथवा विरहानुभूति है। भागवत धर्म में भक्त की आत्मविह्वलता को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। भागवत धर्म के अनुसार भक्त के जिस आत्म विह्वल रूप को भगवद् भक्ति माना है, गया आण्डाळ और मीरां की भक्ति-भावना

से उसी रूप के दर्शन होते है । मीरा और आण्डाळ विरह को साधन मानती है, साध्य नही । उनका चिरंतन सत्य संपूर्ण सृष्टि मे परिव्याप्त है। और उसी चिरतन सत्य मे वे एकाकार होना चाहती है। मीरा और आण्डाळ की लौकिक भक्ति मे भी अलौकिक सत्यता के रूप पूर्णत. प्रकट है। उन्होने अपना समग्र पार्थिव सत्य, पार्थिव रूप और पार्थिव सौन्दर्य कृष्ण के चिरंतन सत्य का ही एक रूप माना है और यही रूप अपार्थिव और अलौकिक है। इन दोनो ही कवयित्रियो के पदो मे प्रेमानुभूति की सजल अभिव्यजनाएँ हुई हैं। उनमे तन्मयता है, भक्ति और श्रद्धा है, अनुभावो का अजस्र प्रवाह है, अन्त त्याग का प्रकटीकरण है । अलौकिक लोकोन्मुखता है और चिरंतन साक्षात्कार है। मीरां और आण्डाळ के पदो मे स्वसवेद्य और परसवेद्य भावों की सहज अभिव्यक्ति हुई है और यही उनके अन्त. का विराटत्व और बाह्य की मधुर सकुलता है ।

मधुरोपासना में राधा तत्त्व को आदि तत्त्व माना जाता है । मीरां और आण्डाळ के पदो मे राधा तत्त्व का सम्यक् विकास हुआ है। आण्डाळ तो स्वयं राधा (नप्पिन्नै) है। अतएव आण्डाळ ने कृष्ण की उपासना सख्य भाव से की है, यह भाव राधा तत्त्व का चरम उत्कर्ष है जो यही भाव चिरतन सत्य भी है। मीरों के पदो मे सख्य भाव के साथ दास्य भाव भी प्रकट हुआ है। दास्य भाव भी राधा तत्त्व के विकास की एक अन्विति है । अतएव यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि राधा तत्त्व का विकास इन दोनो ही कवयित्रियो के पदों मे पूर्णतः हुआ है। मीरा और गोदा ने भागवत धर्म से भक्ति सस्कार ग्रहण किये है और रागानुगा भक्ति तथा नवधा भक्ति से कृष्ण की उपासना की है। मीरां, साधुओं और योगियों के संपर्क मे रही और उनके साहचर्य मे भक्ति के संस्कार ग्रहण किये । परिणामतः मीरां की भक्ति-भावना दास्य भाव में प्रकट हुई, दूसरी ओर आण्डाळ का सपर्क पेरियाळ्वार के अतिरिक्त अन्य यायावर योगियों से नही रहा । जो साधु पेरियाळ्वार के सपर्क मे थे उन्हीं साधुओ से यत्किचित् संपर्क हुआ । परिणामतः दास्य भाव आण्डाळ की भक्ति भावना मे अंकुरित नही हुआ। उसने सख्य भाव से कृष्ण की उपासना की है। दोनों कवयित्रियो की भक्ति-साधना मे कान्ता-भाव अथवा गोपी भाव परिलक्षित है । दोनों ही साधिकाएँ कृष्ण की उपभोग्याएँ हैं और दोनों ने पार्थिव रूप से विरक्त हो कर अपार्थिव सत्य की उपासना की है। वे भौतिक जगत् मे रहती हुई, भौतिक जगत् की सकीर्णताओं से मुक्ति पाने के लिये बेचैन है और यही आत्मिक स्थिरता ईश्वरीय अनुभव की चरम स्थिति है।

मीरा और आण्डाळ के पदो मे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हुई है। वैसे प्रतीक योजना की परंपरा वैदिक कालीन है और भाव-बिम्बों को अभिव्यक्त करने का एक मात्र साधन प्रतीक ही है। दार्शनिक विचारो का प्रकटीकरण भी प्रतीक विधान के द्वारा हो जाता है। तमिऴ वेद से प्रतीक विधान के अनेक ऐसे उदाहरण है जिनके द्वारा दार्शनिक सत्यो का परिज्ञान और अनुभव को आध्यात्मिक प्रक्रियाओं को अभिव्यक्त किया गया है। प्रतीकों से अभिव्यजना अत्यन्त सबल हो जाती है। आभ्यान्तरिक अर्थ पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। प्रतीक रहस्य न होकर प्रकट होते है और इनमे प्रेषणीयता के तत्त्व अत्यधिक होते है। उत्तर और दक्षिण भारत की भक्ति परपरा मे अभिव्यक्तियाँ प्रतीकों के माध्यम से भी हुई हैं। तमिऴ् भक्ति धारा में आऴ्वार तथा नायन्मारो ने प्रतीको का अत्यधिक प्रयोग किया है और अपने अनुरजनात्मक भावो की अभिव्यक्ति की है। इसी प्रकार उत्तर भारत के सन्तो मे विशेष रूप से कबीर के पदों मे प्रतीको के प्रचुर प्रयोग हुए हैं। वास्तव में ज्ञानाश्रयी धारा के प्रायः सभी संतों ने प्रतीकों का आश्रय लिया है। मीरां और आण्डाळ की काव्य-धारा मे दाम्पत्य भाव अथवा कान्ता विषयक रति भाव का प्रकाशन ही अधिक हुआ है। अतएव इनके पदों मे यत्र-तत्र साकेतिक, पारिभाषिक और रूपात्मक प्रतीकों का समन्वित सयोजना हुई है। आध्यात्मिक चिन्तन भी इन्ही प्रतीकों मे दिखाई देता है। प्रतीक विधान की विवेचना करते हुए मीरां और आण्डाळ के काव्य में निश्चित रुपांतरित प्रतीकों मे यहाँ एक ओर शास्त्रीय दृष्टि से प्रतीकात्मक है वहाँ दूसरी ओर आत्म विह्वलता का अत्यन्त सहज अपार्थिव रूप भी देखा जा सकता है। दोनो ही कवयित्रियों ने लोक प्रचलित क्रीडाओ एव शब्दवलियों को लेकर अपनी मधुर भक्ति की अभिव्यक्ति की है। मीरा और आण्डाळ दोनो ही सगुणोपासिकाएँ है। आण्डाळ को तो सगुणोपासिका ही माना जाता है किन्तु मीरां के पदों की विवेचना करते हुए निर्गुणात्मक शब्दावलियों के प्रयोग के कारण अनेक आलोचको ने उन्हे निर्गुणोपासिका सिद्ध करने का प्रयास किया। किन्तु मेरी धारणा है कि मीरा के पदो मे जहाँ कही भी रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक शब्दावलियाँ मिलती हैं वे सन्तो के साहचर्य के कारण ही अभिव्यक्ति मे आ गई है किन्तु ऐसी प्रतीकात्मक शब्दावलियाँ भी सगुण भक्ति से रंजित है और वे सगुणोपासना वृत्ति को ही उद्घाटन करती है, निर्गुणोपासना वृत्ति का नहीं।

मीरां और आण्डाळ के पदों मे अप्रस्तुत का विधान भी दिखलाई देता है। अप्रस्तुत के द्वारा सादृश्य स्थापन और अर्थ-विस्तार होता है। आन्तरिक एवं

आपार्थिव सत्य की अभिव्यक्ति अप्रस्तुत-विधान से की जाती है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति मे एक विशेष प्रकार का कौतूहल आ जाता है। पाठक के मन में जिज्ञासा जागृत हो जाती है और वह अभिव्यक्त सत्य को आत्मसात करने की चेष्टा करने लगता है। आलंकारिक सौन्दर्य, भावना को इतना अलंकृत कर देता है कि भावना, मात्र सहज नही रहने पाती, अपितु उसकी प्रभावशीलता बढ जाती है। उसका प्रभाव प्रत्येक मानस को छू देता है और उसका आत्मीकरण प्रत्येक हृदय को आनन्द की अनुभूति करा देता है। भारतीय काव्य-शास्त्र मे आलकारिक सौन्दर्य की गभीर विवेचना की गई है। उपमालकार को आदि अलंकार माना गया है। इस प्रकार अलकार की प्राचीनता का स्वरूप काव्य-शास्त्रीय परंपरा में स्पष्टतः दिखलाई देता है। अप्रस्तुत विधान मे सामंजस्य स्थापना की इतनी अपूर्व शक्ति होती है कि प्रयोग औचित्य, ध्वन्यात्मकता तथा अन्य आलंकारिक उपकरण इससे पूर्णत. प्रभावित होते है और अभिव्यजना मे कौतूहल एवं चमत्कार स्वाभाविक रूप से आ जाता है और काव्याभिव्यंजना ग्राह्य हो जाती है। मीरां और आण्डाळ के अप्रस्तुत-विधान में प्रभाव-साम्य स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। उन्होंने जिन उपमानों को लेकर अप्रकट सत्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है उनमे सांस्कृतिक मूल्यो की उद्भावना भी हुई है। उनके पदों मे मूर्त के मूर्त उपमान, मूर्त के अमूर्त उपमान, अमूर्त के मूर्त उपमान, और अमूर्त के अमूर्त उपमान की सुन्दर संयोजनाएँ हुई है। आण्डाळ की दोनों ही कृतियाँ तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोऴि में अप्रस्तुत-विधान के अनेक सुन्दर रूप देखे जा सकते है। सादृश्य मूलक अलंकारो की योजना भी सुन्दर रूप से हुई है तथा धर्म-साम्य बोधक, सांकेतिक शब्दावलियो के प्रयोग भी अनेकानेक हुए हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबध में दोनों के ही भक्त कवयित्रियो के अप्रस्तुत विधानो की पूर्ण विवेचना हुई है। आण्डाळ और मीरां ने परपरागत उपमान लिये है और इन उपमानों के माध्यम से लोक जीवन और लोक संस्कृति का सुन्दर उद्घाटन किया है। कही-कही वेदो और शास्त्रो में वर्णित उपमानों के स्वरूप भी देखने को मिल जाते हैं। दोनों ही कवयित्रियों ने प्रकृति के पर्यावरण से भी उपमानों का चयन किया है और प्रकृति सौन्दर्य के विशेष उपकरण, जलद, कमल, तड़ित, नक्षत्र, किसलय आदि के माध्यम से अप्रकट सत्य को प्रकट करती हुई तथा अप्रस्तुत रूप को प्रस्तुत करते हुए जितनी सुन्दर अलंकार-योजना प्रस्तुत की है कि उतनी अभिव्यजना में सहज काव्यात्मक प्रांजलता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता और अप्रस्तुत का प्रस्तुतीकरण अत्यन्त सहज रूप मे हो गया है। मीरा और आण्डाळ

परंपरावादिनी है किन्तु ये परपराये उनके लिये सहज और स्वाभाविक है। अतएव उनकी काव्याभिव्यजना मे अप्रस्तुत-विधान अथवा अलकारिक सौन्दर्य जिस रूप मे भी अभिव्यक्त हुआ है वह अत्यन्त स्वाभाविक एवं प्रकृति रूप है, प्रयत्न साध्य नही। आण्डाळ के पदो मे अप्रस्तुतविधान के जितने स्पष्ट रूप उपलब्ध है उतने स्पष्ट रूप मीरा के पदो मे दिखलाई नही देता। इसका कारण यह भी प्रतीत होता है कि आण्डाळ जिस पारिवारिक वातावरण में निवास करती थी उसके गरिमा-सुरुप पेरियाळ्वार थे। पेरियाळ्वार ने तमिऴ् वेदो और भागवद् धर्मो का गहन अध्ययन किया था। उनके पदो में उपमान-योजना की अत्यन्त सुन्दर और स्वाभाविक सयोजना हुई है। आण्डाळ के प्रेरणा स्रोत उनके पिता ही थे। अतएव पेरियाळ्वार की काव्याभिव्यजना का स्वरूप ही आण्डाळ का पथ प्रदर्शक बना। यही कारण है कि आण्डाळ के पदो में अत्यन्त स्पष्ट रूपो मे अप्रस्तुत-विधान प्रकट हुए है। मीरा को राजकुल में इस प्रकार की वैदिक अथवा भागवतीय परंपरा प्राप्त नही थी। सन्तो का साहचर्य उसे मिला किन्तु उनका उतना प्रभाव मीरा पर नहीं पड़ा जितना कि अपेक्षित था। अतएव मीरा के पदो मे सन्त शब्दावलियाँ तो दिखलाई देती है किन्तु अप्रस्तुतों की सयोजना सुस्पष्ट नही है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे मीरा और आण्डाळ की काव्य-भापा की विवेचना भी की गई है। इन दोनो कवयित्रियो की भाषा के रूपो को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी काव्य-भापा में जो प्रचलित शब्दावलियाँ सहजतर रूपो मे मिश्रित हुई है। आण्डाळ की काव्य-भाषा का स्वरूप अधिक परिनिष्ठित दिखाई देता है। साहित्य की दृष्टि से उसके शब्द प्रयोगो मे कलात्मकता, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता और परिनिष्ठतता, पूर्ण विकसित रूप में दिखलाई देती है। दूसरी ओर मीरा की काव्य-भाषा में आण्डाळ की काव्य-भाषा के अनुरूप न तो पद परिष्कार ही है, और न काव्य-भाषा मे उतना अधिक माधुर्य ही है। उसकी काव्य-भापा मे तत्कालीन ग्राम्य शब्दों का प्रयोग भी हुआ है और भाषा मे शब्द विकृति भी देखने को मिल जाती है। ग्राम्य शब्दावलियो के प्रयोगो के कारण मीरा की काव्य-भाषा में काव्यात्मक प्रवाह, संगीतात्मक माधुर्य और लयात्मक ध्वनि का सहज ही प्रसार हुआ है। यही कारण है कि अमिलित शब्दों के अतिरिक्त लचीली शब्दावलियाँ भी मीरा की काव्य-धारा में सहज ही सम्मिलित हो गई है। आण्डाळ की काव्य-भाषा मे यत्र-तत्र सस्कृत के शब्दो के प्रयोग तमिऴ् ध्वन्यात्मक रूप मे किये गये है। मीरां के काव्य-भाषा मे भी संस्कृत शब्दो के तद्भव रूप देखने को मिल जाते है। दोनो ही

कवयित्रियों की काव्य-भाषा का परीक्षण और अनुशीलन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में प्रचलित शब्दावलियों को लेकर ही दोनों ने काव्याभिव्यंजना की है। यही कारण है कि उनकी काव्याभिव्यंजना मे बोधगम्यता, सहज प्रांजलता और भाव प्रवणता एवं सहज अनुभूत्यात्मक प्रसार है। आण्डाळ की काव्य-भापा में भापा की एक रूपता है किन्तु मीरां की काव्य भापा अनेक रूपिणी दिखलाई देती है। लोकोक्तियाँ और मुहावरों का प्रयोग दोनों की काव्य-भाषा मे प्रचुर मात्रा मे हुआ है।

काव्याभिव्यंजना में यदि आलंकारिक सौन्दर्य समन्वित हो जाता है तो शब्दावलियों मे अधिक चरुता आ जाती है और अर्थ का सौन्दर्य भी अधिक वढ़ जाता है। मीरा और आण्डाळ ने 'शब्दालंकार के प्रचुर मात्रा में प्रयोग किये है और संगीतात्मक व नादात्मक ध्वनियों का सम्यक् समन्वय भी किया है। उनकी शब्दावलियाँ काव्य के रस-भाव तथा गति के अनुकूल मृदुल और कर्कश है तथा शब्दालंकार के सुन्दर सामंजस्य भी हुआ है। आण्डाळ और मीरा के पदों मे वृत्तियों का विकास, अनुप्रासों की प्रांजलता, वर्ण-विन्यासों की वक्रता देखने को मिल जाती है। आण्डाळ के पदों मे वर्ण-योजना अत्यन्त स्वस्थ्य एव सुन्दर रूपों में हुई दिखलाई देती है। किन्तु मीरां के पदो में वर्ण-योजना शिथिल-सी प्रतीत होती है। इसका मल कारण यह प्रतीत होता है कि मीरां को भक्तों अथवा सन्तों की परपराओं से परंपरागत अलंकार-योजना का स्वरूप उपलब्ध नहीं हुआ था। इसके विपरीत आण्डाळ संस्कृत काव्य-शास्त्रीय अलंकारिक सौन्दर्य-विधान से पूर्णतः परचित थी। उसे अलंकार प्रयोग का विधान परंपरा से उपलब्ध हुआ था और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह अलंकार के देवता श्री रंगनाथ की उपासिका थी। दक्षिण भारत में कृष्ण को अलंकारों का ही देवता माना जाता है। अतएव आण्डाळ के पदो मे वर्ण-योजना की वहु विविधता दिलाई देती है। उतनी अधिक विविधता आण्डाळ के पदों मे नहीं। आण्डाळ की काव्य दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म थी किन्तु मीरां की काव्य दृष्टि में अनुभूतिमयता अधिक दिखलाई देती है। अतएव सूक्ष्म निरीक्षणात्मक वृत्ति के कारण आण्डाळ अत्यन्त सहज रूप में अप्रयत्न साध्य होकर भी वर्ण-योजना का सुन्दर सयोजना कर सकी है। दोनो की काव्य-भाषा मे सहजता, स्वाभाविकता और लालित्य है। आण्डाळ के पदों में मीरा के पदों के अनुरूप ही मधुरता है। उसके पदों मे आद्यानुप्रास, वीप्सा, श्लेष एवं पुनरुक्ति का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है। किन्तु मीरा के पदों मे इनका कम प्रयोग हुआ है। किन्तु दोनो की काव्य-भाषा, वर्ण-योजना एवं शब्दालंकारों में पूर्ण कलात्मकता

एवं आलंकारिक, चित्रात्मक, ध्वन्यात्मक तथा अनुभूत्यात्मक प्रसरणशीलता एवं प्राजलता है।

मीरा और आण्डाळ की काव्याभिव्यजना मे प्रयत्न साध्यता बिलकुल नही। जो भी सास्कृतिक चित्र या सामाजिक परिवेश वर्णित है वह भी अत्यन्त स्वाभाविक है। वास्तव में उनका प्रयोग सास्कृतिक मूल्यों का स्थिरीकरण अथवा सामाजिक परिवेश के साक्षात्करण के हेतु नही हुआ है। जो सास्कृतिक मूल्य अथवा उपकरण अभिव्यक्त हुए भी है वे अलौकिक भक्ति के प्रकटीकरण के लिये है, वे साधन है, साध्य नही है। किन्तु इन्ही सांस्कृतिक मूल्यों के कारण उनकी काव्याभिव्यंजना मे प्रेषणीयता हो गई है। इसलिये उनके लौकिक, सांस्कृतिक वर्णनों के आधार पर सांस्कृतिक इतिहास के लिये कोई निष्कर्ष निकालना समीचीन नही होगा मीरा और आण्डाळ के पदों में वैवाहिक सस्कार, लौकिक पक्ष को प्रधानता न देकर सहज स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु इसे सांस्कृतिक इतिहास की अन्वति नही माना जा सकता। आण्डाळ ने वैवाहिक संस्कार, शकुन, स्नान, कात्यायनी व्रत, घट-नर्तन आदि का सहज वर्णन किया है। इसी प्रकार मीरां के पदों में भी अलकारों के अनेक रूप देखने को मिल जाते हैं, काजल वेणी, कंगन आदि के सास्कृतिक चित्र भी है। आण्डाळ के पदो में भी सूडकम्, तोळ्वळै, तोडु, और पाडकम् के रूपों के अतिरिक्त स्तनों का चित्रालंकार का उल्लेख मिलता है। इन सास्कृतिक शब्दावलियों की उद्‌भावना होते हुए भी इन्हें सास्कृतिक दृष्टि से तत्कालीन समाज का ऐतिहासिक सत्य नही माना जा सकता।

मीरां और आण्डाळ के पदों में निहित नाद और ध्वनि के समन्वय को दृष्टि में रखते हुए यदि उनकी काव्याभिव्यक्ति का विश्लेषण किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि आण्डाळ की काव्याभिव्यंजना में शास्त्रीय सगीत की सम्यक् संयोजना हुई है। आण्डाळ ने तमिऴ् छन्द शास्त्र के आधार पर अपने पदों की रचना की है और उनके पदो में ध्वनि और लय का इतना सुन्दर समन्वय हुआ है कि काव्याभिव्यक्ति की रसात्मकता और गीतत्मता अपूर्व हो गई है। आण्डाळ के छन्द-विधान में शब्द क्रम वि शृंखलित नही हुए है और छन्द विधान कही भी विघटित नहीं हुआ है। शास्त्रीय संगीत का विकसित रूप उनके पदों में परिलक्षित है। मीरां के पदों में शास्त्रीय संगीत और लोक सगीत की स्वर माधुरी का समन्वय हुआ है। अतएव संगीतात्मक शास्त्रीयता मे कहीं-कहीं विघटन भी आ गया है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि मीरां और आण्डाळ दोनों ही

वैष्णवी हैं, दोनों ने अलंकारिक सत्य में एकाकार होने की आकांक्षा की और दोनों की काव्याभिव्यजना मे आध्यात्मिक सत्य ही अभिव्यक्त हुआ है। दोनो ही विशिष्टाद्वैतवादिनी है और दोनों की अभिव्यक्तियो मे एकाकारता की भावना, समरसता का स्वरूप, भक्ति का प्रवाह एवं आध्यात्मिक प्रियतम के सामीप्य की आकुलता का प्रकाशन हुआ है। उत्तर भारत की मीरां कृष्ण-प्रिया है और—दक्षिण भारत की आण्डाळ रंगनाथ की प्रेमिका है।

परिशिष्ट—१

तिरुप्पावै एवं नाच्चियार तिरुमोऴि का गद्यानुवाद

तिरुप्पावै

मार्कऴित् तिंगल् मदिनिर ैन्द नन्नाळाल्
नीराडप् पोदुवीर पोदुमिनो नेरिऴ ैयीर्
सीर् मल्कु मायप्पाडिच् सेल्वच् सिरुमीर्काळ्
कूर्वेर् कोडुम्तोऴिलन् नन्दगोपन् कुमरन्
एरार्द कण्णि यसाेै यिळंसिंगम्
कार्मेणिच् सेकण कदिर्मयम् पोल्मुकतान्
नारायणने नमक्के पर ैतरुवान्
पारोर् पुकऴप् पडिन्देलोरेम्पावाय् १

भावार्थ :

श्री समृद्ध, दिव्य आभूषण धारिणी स्नानेच्छुक व्रजबालाओ, सब आइये। आज मार्गशीर्ष मास के पूर्णमासी का शुभ दिन है। तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रु संहारक क्रूर नंदगोप का सुपुत्र, सुन्दर नेत्रा यशोदा देवी का बालसिंह, नीलमेघ सदृश काति युक्त, रक्त नेत्र एव रवि चन्द्र सदृश मुखवाला श्रीमन् नारायण ही हमें हमारे मनोवाछित फल (परै) प्रदान करेगा। हम सब इस मार्गशीर्ष के व्रत में ऐसे अवगाहन करे जिससे ससार के समस्त जनो की प्रशसा का पात्र बन जायँ।

विशेष :

मार्गशीर्ष महीना वैष्णव मास माना जाता है। ब्राह्म मुहूर्त की तरह इस मास के भी सात्विक होने के कारण ही श्री कृष्ण गीता मे कहते हैं "मासानां मार्गशीर्षोऽस्मि" इस संदर्भ मे टीकाकारो का मत है कि गोपवृद्धों ने गोपियों को कृष्ण के साथ न मिलने देने की इच्छा से उन्हे कमरो मे बन्द कर दिया था। पश्चात् ब्रजभूमि मे अकाल की स्थिति उत्पन्न होने पर, मार्गशीर्ष महीने मे जलवृष्टि के निमित्त स्नान करने एवं व्रत करने हेतु उन्हे आज्ञा

दी गई थी । गोपियों के लिये कृष्ण से मिलने का यह शुभ अवसर था, इसलिये ही गोपियां मार्गशीर्ष महीने को शुभ दिन मानती हैं ।

तमिल साहित्य में सश्लेष का प्रतीकार्थ "जल क्रीडा" भी है । इसे सुनैया-डल, पुनलाडल कहते है । स्नानेच्छुक जनों को जलक्रीडा निमित्त बुलाने के पीछे, आण्डाळ का एक स्वार्थ छिपा हुआ है । उसे यह पूर्ण आशा है कि और स्नानेच्छुक जनों के साथ भगवान कृष्ण भी अवश्य पधारेंगे और तब उनके साथ संश्लेष सहज सभव होगा । वस्तुतः स्नान, व्रतादि भगवान से मिलने के साधन मात्र है । साध्य तो भगवान की सेवा ही है ।

भगवान का अवतार-स्थान व्रजभूमि है। दूसरा यह व्रजभूमि भी, दूध, दही आदि से समृद्ध है । यही कारण है कि इस समृद्ध व्रजभूमि मे जन्म लेने वाली बालाओ को गोदा ने श्री समृद्ध बालाएँ कहा है ।

परम साधु नन्द बावा को क्रूर कर्मकारी कहने का तात्पर्य, कृष्ण के रक्षार्थ क्रूर कर्म करने मे संकोच न करने से, लिया जा सकता है, वैसे इसका कोई सात्त्विक आधार नही है ।

श्री कृष्ण सूर्य की तरह तेजस्वी और चन्द्रमा की तरह भक्तो को सासारिक ज्वाला से झुलसते हुए भक्तों को शीतलता प्रदान करनेवाले है । इसलिये ही उन्हें रवि और चन्द्र दोनो विशेषणो से एक साथ ही विभूषित करना उचित ही है । पद्य में आये हुए "परै" का शाब्दिक अर्थ व्रत के समय वजाये जाने वाले उपकरण विशेष हैं । किन्तु गोपियों का लक्ष्य यत्र माँगना मात्र नही है । २१वें पद में "परै" शब्द पुरुषार्थ अथवा मनोवांछित फल (नित्य सेवा) के अर्थ में प्रयुक्त हैं । इस आधार पर ही प्रस्तुत पद मे परै का अर्थ मनोवांछित फल लिया गया है ।

गोपियां तभी जगत् जन की प्रशसा का पात्र वन सकती है जब उनके व्रत करने से अच्छी वृष्टि हो जिससे अकाल का निवारण हो । इसलिये ही आण्डाळ गोपिकाओ को अच्छी तरह "अवगाहन" करने का सकेत करती हैं ।

एल् और एम्पावाय प्रत्येक पद के अन्त में, पद पूर्ति के लिये आया है । गीली मिट्टी से तैयार निर्मित प्रतिमा के प्रति सबोधन के रूप मे तथा वाक्या-लकार के रूप मे इस शब्दाँश का प्रयोग तीसों पदो के अतिम चरण मे हुआ है ।

२. वैयत्तु.....

भावार्थ :

जगत् वासियो, (भगवान से पुरुषार्थ पाने के उद्देश्य से हमसे किये जानेवाले व्रतानुष्ठानो को सुनो । हम क्षीराब्धिशायी भगवान के श्री चरणों

की वन्दना करेंगी । घृत सेवन नही करेंगी, दूध नही पियेंगी, प्रात काल ही स्नान करेंगी, नेत्राजन नही लगायेंगी और केशो को पुष्पो से अलकृत नही करेंगी, वर्जित काम नही करेंगी, कटुवचन नही सुनाएँगी, सत्पात्रो को यथा शक्ति दान व भिक्षा देंगी । इस भाँति उज्जीवनार्थ ये सब (अनुष्ठान) करके आनदित होंगी ।२

विशेष :

पहली गाथा मे परमपद वासी भगवान का स्मरण किया गया और इस पद मे आण्डाळ भगवान के व्यूह रूप का वर्णन कर रही है।

"वासुदेव सर्वस्वम्" अर्थात् भगवान ही सब कुछ है, इसको आधार बनाकर ही गोपियाँ विभिन्न अनुष्ठान करती है । सभवत वे इन अनुष्ठानो के द्वारा अपने को नितान्त कृश एव विपन्न बना देना चाहती है जिससे श्री कृष्ण उनकी विपन्नता पर द्रवित हो सकें ।

३. ओंगि.....

भावार्थ :

हम विश्वरूप धारण कर तीनों लोको को नापनेवाले पुरुषोत्तम की स्तुति करते हुए व्रतानुष्ठान करके प्रात.काल स्नान करेंगी। इससे देश में अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि का निवारण होगा और प्रतिमास तीन वार वर्षा हुआ करेगी । उन्नत शालि सस्यो के मध्य सानन्द क्रीडा रत होंगी । विकसित कुवलय पुष्पो पर उनके मदपान करने से मदोन्मत्त भ्रमर उनीदे रहेंगे । (बलशाली ग्वालो द्वारा) दुहे जाने पर पीन पयोधर, उदार गाये अपने क्षीर से मटकों को भर देंगी । इस प्रकार सपूर्ण देश सपन्न बन जायेगा ।

विशेष :

इस पद मे त्रिविक्रमावतार का वर्णन किया गया है। उभयविभूति नाथ श्रीमन्नारायण के परत्व का स्मरण कर, तदुपरान्त क्षीराब्धिनाथ के व्यूह रूप का स्तोत्र कर, अव इस गाथा मे विभव रूप का स्मरण किया जा रहा है।

गोपियो की मान्यता है कि त्रिविक्रम (वामन) की बन्दना से देश में समुचित जलवृष्टि होगी और जल वृष्टि से ही देश की समृद्धि सभव है। इस पद मे मनोरम प्रकृति चित्र दृष्टव्य है जो आण्डाळ की प्रकृति निरीक्षण विषयक सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है ।

४. आऴि.....

भावार्थ :

हे उदार मना, गंभीर पर्जन्य देव, तुम जलवृष्टि में सकोच न किया करो।

समुद्र में प्रविष्ट होकर खूब जल भरकर गर्जन करते हुए आसमान पर पर चढ़कर, काल के कारणभूत, प्रलय, के आदि पुरुष भगवान के सदृश नील वर्ण धारण कर, विशाल व सुन्दर भुज भगवान पद्मनाभ के हाथ मे सुशोभित चक्रायुध की भाति चमककर वलम्पुरी शंख के सदृश गर्जन कर, शार्ङ्ग धनुष की शरवर्षा की भाँति बरसकर संसारवासियो को आनंदित कर दो जिससे हम भी मार्गशीर्ष व्रत का स्नान सतोष के साथ कर सकें।

विशेष :

इस पद में तीन बाते विशेष दृष्टव्य है।

(१) यहाँ आण्डाळ ने पुष्ट साग रूपक की सफल आयोजना की है। यहाॅ श्याम घटा श्री कृष्ण, स्वरूप साम्य के आधार पर कृष्ण का प्रतीक है। तड़ित की कौध ही कृष्ण के चक्रायुध की चमक है। और अनवरत वर्षा शार्ङ्ग की शर वर्षा का प्रतीक है ।

(२) सुन्दर प्रकृति चित्र के साथ इस पद्य में वर्षा की भौगोलिक प्रक्रिया भी दृष्टव्य है जो वैज्ञानिक है।

(३) विश्व कल्याण की कल्पना के साथ-ही-साथ गोपियो का व्यक्तिगत कल्याण भी इस पद का लक्ष्य है, क्योकि उनके मार्गशीर्ष व्रत जलाभाव मे सोल्लास सपन्न नही हो सकता।

कुछ टीकाकार मेघराज को, भगवद्गुण रूपी समुद्र मे डूबे हुए आचार्य की महिमा का प्रतीक मानते हैं।

५. मायनै.....

भावार्थ :

महिमामयी मथुरापुरी में अवतीर्ण मायावी, पावन यमुना तट पर विहरण-कारी, गोपवंश के मणिदीपक अलंकार, माता का उदर धन्य करनेवाले श्री कृष्ण की यदि हम परिशुद्ध मन से पवित्र पुष्प अर्पित करके, मन और वचन से वन्दना करे तो हमारे भूत और भविष्य के समस्त दोष आग में डाले गये तृण सदृश विनष्ट हो जायेगे।

विशेष :

तिरुप्पावै के अन्तर्गत यह पाँचवाँ पद मंगलाचरण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। व्रत में पड़नेवाले विघ्नो से सशंकित गोपियाॅ व्रत के निर्विघ्न समापन के लिये ही श्री कृष्ण के विभिन्न महिमामयी रूपो का स्मरण करती हुई, उसकी मन और वचन से वन्दना करना चाहती है।

६. पुळ्ळुम्.....

भावार्थ :

हे बाले, पक्षि कलरव करने लगे है। पक्षिराज के स्वामी (विष्णु) के मदिर मे धवल शख निनादित होने लगे है। क्या तुमने यह सुना ? पिशाची के विपमय स्तन का पान करके कपटी शकट को चकनाचूर कर, क्षीर सागर मे शेषशय्या पर योग निद्रा मे शयन करने वाले बीज भूत भगवान के ध्यान मे तन्मय योगी गण "हरिः हरिः" उच्चारण कर रहे है। इसे सुनकर आनन्द विभोर हो, तुम जागो।

विशेष :

यहाँ से प्रारभ होने वाले आगे के दस पदो मे सर्वप्रथम निद्रा का त्याग कर जगनेवाली गोपी का अन्य गोपियों को विभिन्न सबोधनो के साथ भिन्न-भिन्न ढंग से जगाने के चित्र दृष्टव्य है।

"एकस्वादु न भुजीत" के आदर्श को देखते हुए मार्गशीर्षव्रत के निमित्त गोपी का और गोपियो को जगाना समीचीन ही है।

पक्षियो के कलरव, मदिरो के शख निनाद एव तपस्वियो के सकीर्तन के स्मरण के माध्यम से उपत्कालीन मनोरम प्रकृति चित्र चित्रित है।

७. कीचु.....

भावार्थ :

हे पिशाचिनी बाले, क्या भारद्वाज पक्षियो के कलरव को तुमने नही सुना ? सुगंधित केशवाली गोपियां हाथो को आगे पीछे करके दही मथ रही है (दही मथन के समय) उनके पहने हुए कासु पिरप्पु आदि आभूषणों से निकलनेवाली मधुर ध्वनि क्या तुमने नहीं सुनी ? हे नायिके, हम भगवान नारायण मूर्ति केशव की स्तुति जो कर रही है उसे सुनकर भी सो रही हो ? तेजस्विनी द्वार खोलो।

विशेष :

प्रातःकाल बहुत देर तक गोपी के सोये रहने के कारण ही उसकी सखियाँ उसे पिशाचिनी कहकर सबोधित करती है।

ऐसा जान पड़ता है कि सोई हुई गोपी ही शेष गोपियो का मार्गदर्शक है। इसलिये ही उसे नायिका कहकर संबोधित किया गया है और तेजस्विनी भी कहा गया है।

प्रातःकालीन दृश्य के साथ गोपियो के दही मथन के मनोरम दृश्य इस पद मे दृष्टव्य है।

८. कीऴ्वानम्......

भावार्थ :

हे कौतूहलमयी, पौ फट गया। पूर्व दिशा प्रकाशवान हो गयी। भैसे घास चरने के लिये चारो दिशाओ मे निकल गई है। तुम्हें छोडकर शेष समस्त बालाऍं शय्या का त्याग कर चुकी है। मार्ग मे उन्हे रोककर हम तुम्हें साथ ले जाने के लिये आई है। हे प्रतिमे जागो कृष्ण का गुण गान गाकर, केशि और मल्ल का संहार करने वाले देवों का देव श्री कृष्ण के निकट जाकर उनका गुण गान करने से हमारे प्रार्थना-जन्य कष्टो पर खेद प्रकट कर वे हमें कृपा प्रदान करेंगे ॥

विशेष :

प्रातःकाल वहुत सबेरे ही भैसो का झुँड चारागाहो की तरफ चल पड़ता है। प्रातःकालीन अन्य दृश्यों के साथ अलमस्त गति से आगे वढ़ते हुए भैसो का झुँड का यह दृश्य भी अत्यन्त मनोरम होता है। यहाँ पर कवयित्री ने इस चित्रण द्वारा नितान्त सूक्ष्म दर्शिता का परिचय दिया है।

अन्य सखियों की अपेक्षा इस जगानेवाली सखी का सोई हुई सखी के साथ अधिक निकट का सबंध जान पड़ता है। इसलिये ही वह उसे जगाने में अत्यधिक प्रयत्नशील है। इसके अतिरिक्त यह भी संभावना है कि सोई हुई गोपी का कृष्ण से विशेष संबंध है। उसके माध्यम से कृष्ण मिलन की निश्चितता और सरलता को लक्ष्य बनाकर और जगानेवाली सखी प्रयत्नशील हो सकती है।

९. तू मणि.....

भावार्थ :

धूप की सुगंधी से सुगंधित, अनंत दीपको से जगमगाती हुई, शुद्ध रत्नमयी अटारी पर कोमल शय्या में लेटी हुई, हे ममेरी पुत्री, मणिमय कपाट खोलो। हे मामी, उसको जगाओ। तुम्हारी पुत्री गूँगी, बहरी है या अलसाई हुई है या मत्र मुग्ध है या तुमने उसे बन्दिनी बना दिया है। हम मायावी, माधव, केशव बैकुठ आदि अनेकानेक नामो से कितनी- वार भगवान की स्तुति करके हम उसे जगा चुकी है।

विशेष :

मणिमय अटारी एवं दीपमालिका से सुसज्जित शय्या के चित्र का आदर्श परंपरागत है। गूँगी, बहरी आदि संबोधन सखियो की झुँझलाहट का परिचायक है। सखियों को यह विश्वास है कि सोई हुई गोपी कृष्ण का नाम सुनकर जाग जायगी। इसलिये ही वे कृष्ण के विभिन्न नामों का उच्चारण करती है।

१०. नोर्ंच्....

भावार्थ :

व्रतानुष्ठान से स्वर्ग पहुंचने के इच्छुक, हे प्यारी, यदि द्वार नही खोल सकती तो प्रत्युत्तर दो। सुगधित तुलसी मालाधारी, मनोवाछित फल प्रदान करने वाले, पुण्य रूप प्रभु रामचन्द्र के बाण का शिकार बनकर मृत्यु देवता के पंजे में पड़े कुँभकर्ण ने क्या तुमसे हारकर अपनी महा निद्रा को तुम्हें सौंप दिया है ? हे अलकार मडित आलसी, चैतन्य होकर द्वार खोलो।

विशेष :

प्रारंभिक पक्तियों से ज्ञात होता है कि सोई हुई गोपी व्रतानुष्ठान आदि में अधिक विश्वास करनेवाली है। व्रतानुष्टान की प्रात वेला में उसका शय्या पर पडे रहना आश्चर्यजनक ही है।

११. कर्क्....

भावार्थ :

वछड़ोवाली गायो से दूध दुहनेवाले और शत्रुओं के पराक्रम का संहार करने वाले, निर्दोष गोपो को वंश में उत्पन्न हे स्वर्णलता देवि, वल्मीक (मांद) मे रहनेवाले सर्प के फण सदृश सुन्दर भगवाली हे वनमयूरी, जागो। हे ऐश्वर्य-शालिनी वधू समस्त पड़ोसिनी सखियाँ तुम्हारे आंगन में घनश्याम का गुण-गान कर रही है। किन्तु प्रत्युत्तर दिये बिना तुम्हारे सोये रहने का उद्देश्य क्या है ?

विशेष :

स्त्री के द्वारा दूसरी स्त्री के गुप्त अंगों का स्पष्ट वर्णन का औचित्य विवादा-स्पद है। टीकाकार महाभारत मे वर्णित द्रौपदी की सखियों द्वारा उसके गुप्ताग पर मोहित हो कर पुँभाव ग्रहण करने की इच्छा का संकेत करते हुए आण्डाळ द्वारा किये गये इस चित्रण को पूर्ण और परंपरागत स्वीकार करते हैं।

"या स्त्री यो दृष्टवत्यस्थाः पुँभावम् ययु"

इस पद्य में आये हुए सर्प फण सदृश भग और वनमयूरी आदि मे मनोहर रूप साम्य दृष्टव्य है।

१२. कनैत्तिळं...

भावार्थ :

दूध दुहनेवालों के अभाव मे वेदना से भैसे रंभा रही है और अपनी पड़ियों की याद में द्रवित होकर पृथुल थनों से पय धारा प्रवाहित कर रही

है। इससे जिसका सारा घर पंकिल हो रहा है ऐसे अतुल ऐश्वर्यवान की बहन, तुषार वर्षा पर ध्यान दिये बिना तुम्हारे यहाँ आकर द्वार पर खड़े हम सब दक्षिण दिशा के लंकाधिपति रावण का अत्यधिक क्रोध में वध करने वाले सबके प्रिय श्री राम का भजन कर रही है। हमारी यातनाओं को देखते हुए भी तुम कैसे सो रही हो। आसपास सब लोगों ने जान लिया है कि हम तुम्हें जगा रही है।

विशेष :

पडियो को दूध पिलाने के निमित्त रभाती हुई भैंसों का यथार्थ चित्र इस पद की सौन्दर्य वृद्धि मे पर्याप्त सहायक हुआ है। व्रज निवासी गोप जनों की श्री समृद्धि का चित्रण अतिशयोक्ति के स्तर पर हुआ है।

१३. **पुळ्ळिन्वाय्...**

भावार्थ :

वकुला का मुख चीरकर जिसने वध किया है तथा जिसने दुष्ट रावण का सहार किया है उस प्राण प्रिय की स्तुति करती हुई सब बालिकाएँ अम्बा पूजा स्थल पहुँचने लगी है। शुक्रोदय हो गया है और बृहस्पति अस्त हो गया है। पक्षिगण चतुर्दिको मे कलरव करने लगे हैं। हे कुवलय नयने, प्रतिमा सी सुन्दरी, शीतल जलाशय में अवगाहन करने की शुभ वेला में तुम शय्या पर क्यों पडी हो। आओ हमारे साथ मिल जाओ।१३

विशेष :

शुक्र के उदय के साथ ही बृहस्पति का अस्त होना एक विशेष घटना है। ऐसी घटना ज्योतिष की गणनानुसार १२ वर्षो के अनन्तर बृहस्पति के वृषभ राशि में स्थित होने पर घटित होती है। निःसन्देह इस घटना के वर्णन के माध्यम से आण्डाळ ने अपने ज्योतिष ज्ञान का परिचय दिया है, साथ ही साथ इसमें आण्डाल के जीवन काल में घटित उक्त घटना विशेष का परिचय मिलता है। कुछ विद्वानो ने इसके आधार पर ही तिरुप्पावै की रचना तिथि का निर्धारण किया है।

"पोदरि" शब्द श्लिष्ट है। पोदु का अर्थ कुवलय पुष्प (के समान काला), और गति दोनों होता है। अरि शब्द का अर्थ मृग और शत्रु लिया जाता है। अतः पोदरिक कण्णिनाय् का अर्थ कवलनयने के अतिरिक्त, मृगाक्षी और पुष्प सौन्दर्य को विजित करने वाली आँखों से यक्त नारी भी लिया जा सकता है।

१४. **उकळ्...**

भावार्थ :

तुम्हारे आँगन के उपवन मे स्थित वापी के रक्त कमल विकसित और कुमुद सकुचित हो गये है। काषाय वस्त्रधारी, शुभ्र दान्त के तपस्वी, अपने-अपने मदिरो मे शख निनादित करने जा रहे है। हमे पहले आकर जगाने की प्रतिज्ञा करने वाली री निर्लज्जे, वाक् पटु, जागो। हम सब मिलकर शख चक्रधारी विशाल भुज कमल नयन का संकीर्तन करे।

विशेष :

कमल के पुष्पित होने, कुमुदिनी के सकुचित होने और तपस्वियो के मंदिरो की ओर प्रस्थान करने के दृश्य का वर्णन करके कवयित्री ने प्रात.-काल की स्पष्ट व्यजना करा दी है।

१५. एँल्ले...

भावार्थ :

"बाल सारिके, क्या तू अब भी सो रही है।"
"री सखियो, तो, मैं अभी आयी, कर्ण कटु वचन मत सुनाओ।"
"हम बहुत पहले से ही जानती हैं कि तुम बात बनाने और प्रत्युतर देने मे बहुत चतुर हो।"
(छोडो इन बातो को) "मै मान लेती हूँ कि बात बनाने मे मै समर्थ हूँ, ऐसे कहनेवाली तुम लोग भी कुछ कम नही हो।"१५
"तुम अपने को अलग समझती तो।"
"क्या सब सहेलियाँ आ गई है।"
"(हॅं हाँ)" आकर गिन लो।"
"शक्तिशाली गज का सहार एव शत्रुओं के दर्प का खंडन करनेवाले मायावी श्री कृष्ण का भजन करने के लिये तुम जागो।"

विशेष :

इस पद की रचना लोकगीत और वार्तालाप की शैली मे हुई है।

१६. **नायकनाय्...**

भावार्थ :

हमारे प्रधान नंदगोप के द्वारपाल तथा ध्वजो से सुशोभित तोरण द्वार के रक्षक हमारे लिये मणिमय कपाट खोल दो। मायावी मणिवर्ण एवं श्री कृष्ण ने कल ही हमें व्रतानुष्ठान के आवश्यक अभिमत (वाद्य विशेष) देने का वचन दिया था। प्रभाती गाकर उसे जगाने के लिये शुद्ध हृदय से

हम सब यहाँ आई है। हे रक्षक, सबेरे ही तुम अपने मुख से नकारात्मक उत्तर मत दो। कृपया परस्पर संयुक्त इन कपाटो को खोल दो।

विशेष :

यहाँ से प्रारंभ होने वाले आगे के सात पदो मे गोपियो द्वारा कृष्ण और उनके संबधी जन नन्दगोप, यशोदा, बलराम और नप्पिन्नै को जगाने का वर्णन है।

गोपियो का लक्ष्य है कि कृष्ण की प्राप्ति। इसके लिये नन्द, यशोदा आदि को जगाने का तात्पर्य भक्त के माध्यम से भगवान की प्राप्ति करना ही है। नद, यशोदा, बलराम आदि कृष्ण से बडे होते हुए भी उनके भक्त ही हैं।

"प्रधान" शब्द नन्द गोप के अतिरिक्त द्वारपाल के लिये प्रयुक्त भी माना जा सकता है। भगवद् प्राप्ति मे सबसे प्रथम सहायक होने के कारण ही टीकाकारो ने द्वारपाल को आचार्य माना है। अतः द्वारपाल के लिये प्रधान शब्द का संबोधन अनुचित नही है।

१७. अम्बरमे...

भावार्थ :

वस्त्र, जल एव अन्न का, याचको के इच्छानुसार धर्म भाव से दान करने वाले हमारे प्रिय नद गोप जागो।

हम गोप बालिकाओ के लिये किसलय सदृश (हृदयवाली) देवि, गोपवंश के कुलज्योति, हमारी स्वामिनी, यशोदा, जागो ॥

अम्बर को चीरकर। (तीनो) लोको को नापनेवाले हमारे देवाधिदेव (श्रीकृष्ण) जागो।

रक्तिम स्वर्ण वलय से सुशोभित चरण वाले बलराम, तुम अपने अनुज के साथ निद्रा को त्याग कर जागो।

विशेष :

अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिये लक्ष्य के पहले साधन रूप नद और यशोदा को जगाना, यह घोषित करता है कि भगवान की प्राप्ति के लिये भक्त साधन रूप होते है। भक्तो को प्रसन्न देखकर भगवान स्वय प्रसन्न हो जाते हैं।

बलराम को अपने अनुज (कृष्ण) के साथ जागने का निवेदन करके गोपियाँ यह व्यजित करा देती है कि वे बलराम को कृष्ण से पृथक नही समझती।

१८. उन्दु....

भावार्थ :

हे मातग सदृश शक्तिशाली, अद्वितीय बलशाली, नदगोप की पुत्रवधु, सुगधित केशवाली नप्पिन्नै, सर्वत्र मुर्गे बांग दे रहे है। माधवी कुजो मे कोकिल अनवरत कूक रहे हैं। कन्दुक हस्ते हम तुम्हारे प्रियतम का यशोगान कर रही है। तुम अपने रक्त कमल सदृश करो के ककण की मधुर ध्वनि के साथ प्रसन्न चित्त, अर्गला खोलो।

विशेष :

नप्पिन्नै का वर्णन तमिल आळ्वार साहित्य के अतिरिक्त और कहीं नहीं हुआ है। अप्पय दीक्षित इसे हरिवश पुराण मे वर्णित नीला देवी ही मानते है। (यादवाभ्युदय काव्य व्याख्यान-अप्पय दीक्षित) इसे यशोदा के भाई कुभ की पुत्री कहा गया है। प्रचलित है कि श्री कृष्ण ने सात वृषभो को दमन करके नीला को प्राप्त किया था। फिर भी नीला और नप्पिन्नै विषयक यह धारणा विवादास्पद होने के कारण स्वतत्र अनुसधान की अपेक्षा रखती है।

"कन्दुक हस्ते" शब्द से टीकाकारो ने यह अर्थ निकालने की अनावश्यक चेष्टा की है कि नप्पिन्नै रात भर कृष्ण के साथ गेद खेलती रही और विजयी होकर गेद हाथ मे लिये ही कृष्ण के साथ गई। पेरियवाच्चान पिळ्ळै गेद को लीलोपकरण मानते हुए उसके एक हाथ मे परमात्मा और दूसरे मे जीवात्मा की स्थिति स्वीकार करते है।

कथा प्रचलित है कि यह पद रामानुजाचार्य को अत्यधिक प्रिय है। अपने भिक्षाटन के समय वे तिरुप्पावै के पदो का गायन किया करते थे। एक बार की घटना है वे अपने गुरु के द्वार पर इस पद का ही गायन कर रहे थे। अन्तिम चरण (तुम अपने——खोलो) के गायन के समय ही गुरुपत्नी अत्तुलाय (तुलसी देवी) ने द्वार खोला था। वे रामानजाचार्य को नप्पिन्नै की साक्षात् प्रतिमा सी दिखाई पड़ी और वे तत्काल मूर्च्छित हो गये थे। तब से ही वे तिरुपावै के जीयर" नाम से विख्यात हुए।

इस कथा के आधार पर ही कुछ लोग यह निष्कर्ष निकालते है कि तमिल आळ्वार साहित्य पर सूफी सिद्धान्त का प्रभाव पडा था किन्तु यह धारणा नितांत भ्रमपूर्ण है और निराधार है।

१९. कुत्तु विळक्कु....

भावार्थ :

चारो तरफ (पंच मुखी) दीप-प्रभा के मध्य गज दत से निर्मित पंच गण

(सौन्दर्य, शैत्य, मार्दब, सुगंध, धवलता) से सपन्न शय्या पर पड़ी विकसित सुगंधित पुष्प गुच्छो से अलंकृत केशवाली नप्पिन्नै के स्तन पर शयन करने वाले हे विकसित पुष्प सदृश प्रियतम हमारी बाते सुनो ।

हे अजन भूषित विशाल नयने (नप्पिन्नै) तुम अपने पतिदेव श्री कृष्ण को क्षण भर के लिये भी शय्या से उठने नही देती। थोडी देर के लिये भी उनका वियोग सहन नही कर सकती । ऐसा करना उचित नही है ।

विशेष :

इस पद के आधार पर ही "नीलातुग स्तन गिरि तटी सुप्त मुद्बोध्य कृष्णम्" वाला सुन्दर सस्कृत श्लोक की रचना की गई है। "देखिये तिरुप्पावै श्लोक (तनियन)

२०. **मुप्पत्तु....**

भावार्थ :

तैंतीस देवताओ के दुख निवारक हमारे प्रियतम, जागो । ओ ऋजुमार्गी, सर्वशक्तिमान् शत्रु दाहक, विमल विशुद्धस्वरूप भगवान्, जागो । स्वर्ण कलश सदश कोमल स्तनवाली, रक्ताधर शोभने, सूक्ष्म कटि एव कुटिल कच वाली हे नप्पिन्नै, हे महा लक्ष्मी, जागो । हमे व्रतानुष्ठान के लिये आवश्यक व्यजन (पखा) दर्पण और अपने प्रियतम को भी देकर हमे मार्गशीर्ष व्रत में जलक्रीडा करने का अवसर दो ।२०

विशेष :

इस पद मे भगवान के सौशील्य गुणो का वर्णन किया गया है । तैंतीस देवताओ से तात्पर्य आठ बसु, ग्यारह रुद्र, बाहर आदित्य और दो अश्विनी देव, से है ।

भगवान के कई गुणो मे आर्जव गण भी एक है । इसका भाव है भक्तो से छल रहित व्यवहार करना । इसलिये ही कृष्ण को ऋजुमार्गी कहा गया है ।

कृष्ण मिलन में नप्पिन्नै ही सबसे अधिक सहायक हो सकती है । इसको लक्ष्य करके ही उसकी प्रशसा करते हुए वे कृष्ण से मिलने की प्रार्थना करती है । नप्पिन्नै को महालक्ष्मी कहकर संबोधित करने का तात्पर्य, उसे आश्रितों के प्रति दया दिखलाने वाली सिद्ध करना ही है ।

कोमलता स्तनों की विशेषता नही है । अत नप्पिन्नै को कोमल स्तनों-वाली कहना असंगत है । कदाचित कवयित्री का सकेत स्तनो की उस सुकु-मारता से है जो पति का क्षणिक वियोग भी सहन नही कर सकते ।

२१. एर

भावार्थ :

(थनो के नीचे) दुग्ध पात्र रखते ही पय प्रवाह प्रारभ कर देने वाली अनि उदार गो समूह के स्वामी नद गोप सुत, जागो ।

भक्त रक्षक, देव देव, विश्व मे ज्योति स्वरूप, बनकर अवतार लेने वाले प्रभ जागो ।

जैसे तुम्हारे शत्रु अपना समस्त पौरुष खोकर तुम्हारे गुरु द्वार पर आकर तुम्हारे शरणो मे नतमस्तक होते है वैसे ही तुम्हारी स्तुति करते हुए हम सब आई हैं ।

विशेष :

थनो के नीचे पात्र रखते ही पय प्रवाह गोप की उत्तम कोटि की गायो का सकेत करता है । प्रकारान्तर मे यह नन्दगोप की श्री समृद्धि का भी परिचायक है ।

पद के अतिम चरण मे शत्रु के अहकार और गोपियो के अह को समान मानते हुए सुन्दर उपमालकार की नियोजना है । नारीत्व स्वय में एक अहं होता है । गोपियों को यह अभिमान था कि कृष्ण स्वयं हमारे नारीत्व से आर्कापित होकर हमारे पास आएँगे । किंचित कारणो से ऐसा न हुआ और उनका अभिमान वैसे ही चूर-चूर हो गया जैसे कृष्ण के समक्ष उनके शत्रुओं का अभिमान चूर चूर हो जाता है ।

२२. **अकण्मा**

भावार्थ :

नि सीम भूतल के समस्त भूपति अपने अभिमान भग होने पर तुम्हारी शय्या के नीचे जैसे पडे रहते है वैसे ही हम गोपियाँ भी अभिमान शून्य होकर तुम्हारे पास आई है। छोटी किकणी के खुले हुए मुख एवं अर्ध विकसित कमल पुष्प के सदृश अपने रक्तनयन को धीरे-धीरे हमारी तरफ अभिमुख हो कर खोलो । उदित हो रहे चन्द्र और सूर्य के सदश तुम्हारे दोनों नेत्र यदि हमारे ऊपर पड़ेंगे तो हमारे सारे पाप विनष्ट हो जायेंगे ।

विशेष :

इस पद में भूतल के अभिमानी राजाओ की उपमा अभिमानी गोपियो से दी गई है । कृष्ण अर्ध निमीलित नेत्रों की क्रमश. छोटी किंकणी के खुले हुए मुख और अर्ध विकसित कमल से दी गई उपमा, स्वरूप साम्य के कारण अधिक पुष्ट हो गई है ।

कृष्ण के दोनों नेत्रों को क्रमशः चन्द्र और सूर्य कहने मे विरोधाभास नही है। व्यजना यह है कि कृष्ण के दोनों नेत्र भक्तो के पालक तथा उनके शत्रुओं के संहारक है। इन्द्र रूप, भक्त को शीतलता प्रदान करनेवाला तथा सूर्य रूप, शत्रु को ताप देनेवाला है।

२३. मारि

भावार्थ :

वर्षा काल मे गिरि गह्वर मे अपनी सिहनी के साथ प्रगाढ़ निद्रा मे मग्न सिह जागकर आग उगलती दृष्टि से इधर-उधर देखकर केश राशि बार-बार हिलाते हुए, अगड़ाई लेकर गंभीर गरजन करते हुए जैसे ही बाहर आता है वैसे ही अतसी पुष्प सदृश रंगधारी श्री कृष्ण, तुम अपने महल से निकलकर सुन्दर कलात्मक सिहासन पर विराजो और यहाँ आने के हमारे उद्देश्य पर विचार करो।

विशेष :

वर्षा काल में सिहनी के साथ सोये हुए सिह का वर्णन करके उसके साथ ही कृष्ण के शय्या त्याग का संबंध स्थापित करने का विशेष उद्देश्य है। वर्षा काल मे सिह बादलो की गरजना को सुनकर जागता है। गोपिया चाहती है कि कृष्ण हमारी आवाजो को सुनकर वैसे ही प्रणय रोष के साथ बाहर आवे। क्योंकि वे भी सिह की भाँति अपनी प्रिया नप्पिन्नै के साथ सोये हुए है।

वस्तुतः गोपिया कृष्ण को सिह के सदृश सरोष मुद्रा मे ही देखने की आकांक्षा रखती है।

२४. अन्‍ऱु

भावार्थ :

तुमने अपने जिन चरणो से तीनो लोको को नापा, उन श्रीचरणों की जय हो, जय हो। दक्षिणस्थित सुन्दर लंकापुरी का नाशकरने वाले तुम्हारे पराक्रम की जय हो, जय हो। तुमने कपटी शकटासुर के शकट रूप का विनाश किया है। तुम्हारे यश की जय हो, जय हो। स्वय वत्सासुर को अस्त्र बनाकर कपित्थ्यासुर को तुमने समूल नष्ट किया है। तुम्हारे चरण की जय हो, जय हो।

गोवर्धन पर्वत को छत्र रूप मे धारण करके तुमने इन्द्र का गर्व भंग किया है। तुम्हारे महिमा की जय हो, जय हो।

शत्रुओं को सहार करके द्वेष को समाप्त करने वाले तुम्हारे हाथ में स्थित चक्रायुध की जय हो, जय हो।

तुम्हारी (सौशील्य और सौलभ्य गुणों की) स्तुति कर व्रत का मनोवांछित फल प्राप्त करने हेतु हम आई है। हे वनमाली हमारे ऊपर दया करो।

विशेष :

श्री कृष्ण को अपने समक्ष पा कर गोपियो ने इस पद में उनकी नाना प्रकार से वन्दना की है। इसे ही मंगळाशासन कहा जाता है जिसमे आराध्य के विभिन्न गुणों का वर्णन करके भक्त आनन्द लाभ करता है।

२५. ओरुत्ति

भावार्थ :

दूसरे के घर जन्म लेकर, छुपके से दूसरे के घर में आकर चलने वाले और विनाश की कामना करने वाले (कंस) के हृदय में की ज्वाला बनकर उसकी दुराशा को मिटाते हुए उसका वध करने वाले, हे व्यामोही परमेश्वर, तुमसे मनोवांछित फल पाने के उद्देश्य से हम सब आई है। यदि हमे अपेक्षित फल दे दोगे तो तुम्हारे लक्ष्मी संपन्न ऐश्वर्य और पराक्रम का यशोगान करते हुए हम सब अपने विरह दुःख को मिटाकर आनन्द प्राप्त करेंगे।

विशेष :

इस पद मे भी गोपियाँ कृष्ण के के जन्म और कस वध संबंधी घटना का स्मरण करते हुए श्री कृष्ण से मनोवांछित नित्य कैंकर्य प्राप्त कर आनन्द लाभ करना चाहती है।

२६. माले

भावार्थ :

हे व्यामोहक, नीलमणि सदृश श्यामल, महाप्रलय काल में वट दल पर शयन करने वाले, पूर्वजो के आचरण मे आये मार्गशीर्ष स्नान करने निमित्त हमारी अपेक्षित वस्तुओं को सुनो। विश्व को विकंपित करने वाली ध्वनि से संयुक्त, तुम्हारे क्षीरोज्ज्वल पांचजन्य सदृश शंख, अत्यधिक विशाल भेरी, मंगलाशासन करने के लिये वैतालिक (गायका), मंगल दीप, विजय पताका और शुभ वितान हमें देने की कृपा करो।

विशेष :

अन्नयप्रयोजनत्व बताने वाली गोपियाँ मार्गशीर्ष व्रत के आवश्यक व्रतोपकरण के बहाने से श्री कृष्ण को ही माँगती हैं।

यहाँ शंख ध्वनि "ओंकार नाद और शंख शेषत्व ज्ञान का सूचक है। इसके अतिरिक्त भेरी पारंतत्रय ज्ञान का, वैतालिक सात्विक सहवास का, मगल दीपक भगवद् शेषत्त्व के ज्ञान प्रज्ज्वलित करने वाला भागवत शेषत्त्व का,

ध्वजा शेषत्त्व लक्षण का, वितान "उस कैकर्यफल का भोक्ता मैं रूपी अहकार निवृत्ति का प्रतीक है ।

२७. कूडारै

भावार्थ :

विमुख जनो को भी आकृष्ट करने मे समर्थ, गुणशाली हे गोबिन्द, तुम्हारी स्तुति कर व्रतोपकरण करने के अतिरिक्त हम सब तुमसे कुछ और अपेक्षा रखती है। प्रशंसनीय चूडी, ककण, कर्ण कुडल, कर्ण पुष्प, पग नपूर (पैंझनी) इत्यादि अनेकानेक आभूषण हम तुमसे प्राप्त करके पहनेगी। तदु-परान्त घृत से आपूर क्षीरान्न हम सब एक साथ तन्मयता से सेवन करेगी। २७

विशेष :

व्रतानुष्ठान के नाना उपाधानो की अपेक्षा करने वाली गोपियो का अभिप्राय यहाँ भी कृष्ण के साथ नित्य साहचर्य ही है, क्योकि वे कृष्ण के द्वारा दिये गये विभिन्न आभूषणादि का उपभोग स्वयं कृष्ण के साथ हिल मिल कर ही करना चाहती है न कि स्वयं भोग के लिये।

२८. **कऱवैकळ्**

भावार्थ :

हम सब गायो के पीछे-पीछे वन मे पहुँचकर भोजन करेगी । सर्वथा ज्ञान शून्य हम गोपों के कुल मे इतना पुण्य तो है कि तुमने उसमे जन्म लिया है। हे निर्दोष गोविन्द, तुम्हारे साथ हम गोपियो का किसी भी स्थिति में संवध विच्छेद नहीं हो सकता। ज्ञान शून्य हम बालाओ ने तुम्हे प्रेमवश ही तुम्हारा नाम लेकर पुकारा है। हे सर्वेश्वर, हमसे रुष्ट न होना। हे भक्तवत्सल, हमको पुरुषार्थ प्रदान करो।२८

विशेष :

पुरुषार्थ सिद्धि के लिये भगवान के श्री चरणो की सेवा करना ही फल प्राप्ति का चरम उद्देश्य है । गोपियाँ अकिंचन और अनन्यगतित्त्व से ही भगवान की कृपा का पात्र बन सकती है। इसीलिये ही इस पद मे गोपियों के आकिचन्य एवं अनन्यगतित्त्व का वर्णन किया गया है ।

ज्ञान हीन पुरुष पशु सदृश है। ज्ञानेनहीन पशुभिस्समान." । (विष्णु पुराण) गोपियाँ अपने को ज्ञान हीन सिद्ध करने के हेतु ही गायों के साथ अपने वन प्रस्थान की चर्चा करती हैं। फिर भी उन्हें इस बात का गर्व है कि उनके गोप कुल में पूर्व जन्म का अनन्य पुण्य है। इस पुण्य के वशीभूत होकर ही कृष्ण का जन्म इस कुल मे हुआ है ।

गोपियाँ कृष्ण के साथ अपना जन्म जन्मान्तर का सबंध निरूपित करती है जिसे विच्छिन्न कर सकने मे स्वय दोनो ही असमर्थ है ।

२९ सिर्ॅम्

भावार्थ :

उष:काल मे यहाँ आकर, तुम्हारे स्वर्ण सदृश पादारविन्दो की स्तुति करने के पीछे हमारा कुछ उद्देश्य है, उसे सुनो । गो चारण पर जीवन व्यतीत करने वाले कुल मे जन्म लेकर तुम्हे हमारे नित्य कैंकर्य से वचित नहीं रहना चाहिए । हे गोविन्द, हम तुमसे मात्र व्रतोपकरण प्राप्त करने के लिये यहाँ नही आई है । हमारा तुम्हारा सबध तो जन्म जन्मान्तरों का सबध है । हम तुम्हारी सेवा मे लगी रहेगी । इसके अतिरिक्त हमारे जो भी मनोरथ है उन्हे समाप्त करो ।

विशेष :

यह पद तिरुप्पावै का सार है । इसमें गोपियो के माध्यम से आण्डाळ स्पष्ट उल्लेख करती है कि वे भगवान की नित्य सेवा के अतिरिक्त उनसे और कुछ नही चाहती है । इसलिये ही मात्र कैंकर्य के अतिरिक्त जो कुछ आकाक्षाएँ गोपियो ने पहले के पद मे व्यक्त किया है उनको समाप्त करा देने का अनुरोध किया है ।

इस पद के आधार पर ही भट्ट स्वामी ने गोदा देवी के लिये "अध्या-पयन्ती" उपदेश देनेवाली शब्द का प्रयोग किया है । देखिये तिरुप्पावै श्लोक ।

जन्म जन्मान्तरों के संबध का बयान करके गोपियाँ श्री कृष्ण के साथ अपने शेष शेषी संबंध को सूचित करती है । कृष्ण उनके शेषी है और वे कृष्ण के शेष है ।

अन्य सारी मनोकाक्षाओं को समाप्त कर देने के भाव से यह भी व्यजित है कि गोपियाँ यह निवेदन करती है कि कृष्ण इस आकाक्षा को समाप्त कर दे कि वे हमारे लिये है । वे स्वलाभ व स्वार्थ के लिये भगवान का कैंकर्य भी नही चाहती । उनका लक्ष्य भगवान को प्रसन्न करना है । कहने का तात्त्पर्य यह है कि भगवान, चेतन (जीव) मात्र के शेषी अथवा स्वामी कहलाते है। इस चेतन के परमात्मा या शेषी से मिलने पर अत्यधिक आनदित होने वाला परमा-त्मा ही है । अतः परमपद में चेतन की मुक्ति से भगवान प्रसन्न होते है । प्रका-रान्तर से इसका यही अर्थ हुआ कि "मै (चेतन) भगवान का भोग्य हूँ ।" इसलिये गोपियाँ भगवान से कामना करती है कि उनके मन से स्वभोग साधन रूपी स्वार्थ कामना को वे सदा के लिये मिटा दे ।

भगवान को प्रसन्न रखने के योग्य, अपने को बनाये रखना भक्त का लक्ष्य है। आण्डाळ द्वारा इस भाव की अभिव्यक्ति होने के कारण ही भट्ट स्वामी जी ने गोदा को "पारार्थ" एव "श्रुति शत शिरस्सिद्धमध्यापयन्ती" पारतद्रय शेषत्व ज्ञान को सुनानेवाली—कहा है।

३० वंगक्....

भावार्थ :

चन्द्र सदृश श्री मुख शुभ आभूषण भूषित गोपियो ने तरगायुत क्षीराब्धि का मथन करने वाले माधव, श्री कृष्ण के पास जाकर प्रार्थना कर जो पुरुषार्थ रूपी अभिमत पाया, उसको श्रीपुट्टूर के निवासी, सुगधित व शीत कमल माला से सुशोभित श्री भट्टनाथ स्वामी जी की सुपुत्री गोदा देवी ने मनोहर ढंग से प्रकट किया। सघ तमिल् के इन तीसो पदो का अविकल्प मे अध्ययन व मनन जो करते है वे रक्त नयन, श्री मुख चतुर्भुज श्रिय.पति से दया प्राप्त कर आनदित होते है।

विशेष :

यह फलश्रुति का पद है।

गोदा देवी पेरियाळ्वार की सुपुत्री है। इस पद मे गोदा देवी अपने पिता को भट्टनाथ स्वामी के नाम से संबोधित किया है। यह नाम पेरियाळ्वार को उपाधि रूप में पांड्य राजा के दरबार मे परत्व निर्णय करने के उपलक्ष्य मे दिया गया जिसका अर्थ विद्वानो मे सिरमौर है।

गोदादेवी अपने तीसो पदो को सघ-तमिल कहती है। विदित हो कि तमिल् का अति प्राचीन साहित्य सघ साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। भाषा, भाव, शैली आदि की दृष्टि से समानता रखने के कारण ही अपने इन पदो को सघ-तमिल की संज्ञा दी है।

कुछ विद्वान "सघ" का अर्थ समूह मानते है। उनके अनुसार समूह के समूह गोपियाँ के सदृश जाकर भगवान से पुरुषार्थ पाने के लिये मधुर तमिल् मे रचित इन तीनों पदो को मनन करने वाले भगवान की कृपा का पात्र बनेगे।

तिरुप्पावै

तिरुप्पावै का लक्ष्यार्थ है श्री व्रत। व्रजभूमि को अकाल से बचाने के लिये गोपवृद्धो ने गोप बालिकाओ को व्रतानुष्ठान कर वर्षा के लिये प्रार्थना करने की अनुमति दी। गोपियो ने उनकी अनुमति पाकर कात्यायनी व्रत अर्थात् मार्गशीर्ष स्नान करने का निश्चय किया। धनुर्मास (मार्गशीर्ष मास) में उषत्

काल मे प्रथमत. जागनेवाली गोपी दूसरी को जगाती है। दोनो तीसरी सखी को जगाती है । इस प्रकार अपनी सभी सखियो को जगाते हुए सब मिलकर श्री कृष्ण को जगाने के लिये नंदगोप के महल पहुँचती है। क्रमशः द्वारपालक. नंद गोप, यशोदा, बलराम नप्पिन्नै को जगाने के वाद वे कृष्ण को जगाती है। व्रतानष्ठान के लिये आवश्यक व्रतोपकरण के बहाने से श्री कृष्ण का नित्य कैंकर्य करने का सौभाग्य माँगती है ।

इस तिरुप्पावै मे गोदा देवी भावना प्रकर्प ने स्वय गोपी वनकर, श्री विल्लिपुत्तुर को ही व्रजभूमि समझकर, वटपत्रशायी के मदिर को ही श्री कृष्ण भवन मानकर वर्णन करती है। अन्य आळ्वार भक्तो को भगवदनुभव करने के लिये स्त्री रूप को आरोपित करना पडा है । परन्तु गोदा देवी स्वयं स्त्री है । इसलिये ही विरह मिलन के विलक्षण अनुभवो से सबधित प्रसंग अन्य आळ्वारो की अपेक्षा उनकी रचनाओ मे अधिक सफलता के साथ व्यक्त हुए है ।

तिरुप्पावै के पदों मे वर्णित विषय का सक्षिप्त विवरण :

पद सख्या	वर्णित विषय
१	गोपियाँ मार्गशीर्ष व्रत करने के इच्छुक जनो को बुलाती है।
२	व्रतानुष्ठान के नियम तथा वर्जनीय कृत्यो का वर्णन करती है ।
३	व्रत के कारण देश को प्राप्त होने वाली श्री समृद्धि का वर्णन करती है ।
४	वर्षा के अधिपति पर्जन्य देव से वर्षा की प्रार्थना करती है
५	गोपियाँ भगवान के कीर्तन से व्रत मे संभावित विघ्न से स्वतः मुक्ति की धारणा व्यक्त करती है ।
६ से १५	प्रथमत. जागनेवाली गोपी अन्य गोपियो को जगाती है।
१६	सब गोपियाँ नद गोप के यहाँ पहुँचकर द्वार पालक से द्वार खोलने की प्रार्थना करती है ।
१७	क्रमशः नदगोप, यशोदा, श्री कृष्ण एव वलराम को जगाती है ।
१८	श्री कृष्ण की प्रधान नायिका तप्पिन्नै को जगाती है ।
१९,२०	श्री कृष्ण एव नाप्पिनै से, जागकर अपनी विनती सुनने की प्रार्थना करती है ।
२१	सब नप्पिन्नै को साथ लेकर श्री कृष्ण की स्तुति करती है।
२२	अपने अनन्यार्हत्त्व प्रकट करती हुई भगवान की कृपा कटाक्ष की प्रार्थना करती हैं ।

२३ श्री कृष्ण से, सिह के सदृश जागकर, सिहासन पर आरूढ़ हो कर गोपियो की स्तुति सुनने के लिये प्रार्थना करती है ।

२४ सिहासन पर विराजमान श्री कृष्ण का मगलाशासन करती है ।

२५ श्री कृष्ण के दिव्य पराक्रमो की जय जयकार करती है ।

२६ व्रतानुष्ठान के लिये शंख भेर्यादि मॉगती है ।

२७ व्रत समाप्त होने पर भगवान से विशेष भेट की आकांक्षा प्रकट करती है ।

२८ अपने अपराधो को क्षमा करने की प्रार्थना करती है ।

२९ यह पद तिरुप्पावै का सार है । गोपियॉ कृष्ण के नित्य कैंकर्य को ही अपने सारे व्रतानुष्ठान की फल प्राप्ति का लक्ष्य स्वीकार करती है ।

परिशिष्ट (ख)
तिरुप्पावै तनियन (स्त्रोत्र)

नीलातुङ्गस्तनगिरितटीसुप्तमुद्बोध्य कृष्णं
पारार्थ्यं स्वं श्रुतिशतशिरस्सिद्धमध्यापयन्ती
स्वोच्छिष्टायां स्रजि निगलितं या बलात्कृत्य भुङ्क्ते
गोदा तस्यै नम इदमिदं भूय एवास्तु भूयः (१)

भावार्थ :

नीलादेवी के उन्नत स्तन रूपी गिरि तट पर सुप्तावस्था मे रहने वाले श्री कृष्ण को जगाकर, वेदान्त के सार से सिद्ध, अपने पारतंत्रय अर्थात् शेषत्व को सुनानेवाली तथा अपने पहने उच्छिष्ट माला से भगवान को बलात् आनंदित करने वाली उस गोदा देवी को पुनः-पुनः नमस्कार ।

विशेष :

यह तनियन (स्त्रोत्र) श्री पराशर भट्ट स्वामी द्वारा विरचित है ।

अन्न वयल् पुदुवैयाण्डाळरंगर्कुप्
पन्नु तिरुप्पावैप् पल् पदियम्—इन्निसैयाल्
पाडिक् कोडुत्ताळ् नल् पामालै पूमालै
सूडिळ् कोडुत्ताळैच् सोल्लु (२)

भावार्थ :

अनेक विशेषार्थो से भरे तिरुप्पावै नामक श्रुति मधुर राग रागिनियों मे रचित गीता माला को जिसने श्री रगनाथ को अर्पित किया तथा जिसने

पुष्पमाला को स्वय पहनकर बाद भगवान को पहनाया ऐसे महामहिम, हस बिक्रीडित खेती से सुशोभित श्री विल्लिपुत्तूर मे उत्पन्न श्री गोदा देवी का तुम कीर्तन करो ।

विशेष :

यह उय्यक्कोण्डार स्वामी जी से रचित गोदा तनियन (स्त्रोत्र) है ।

सूडिक् कोडुत्त सुडर्क् कोडिये, तोल्पावै
पाडियरुळवल्ल पल्वळैयाय्–नाडि नी
वेंगटवर् केन्नै विदियेन्र विम्मार्ऱ्म्
नाम्कडवा वण्णमे नल्कु (३)

भावार्थ :

स्वयं पुष्प माला धारण कर, बाद उच्छिष्ट माला को भगवान को समर्पित करने से विशेष कातियुत लता सदृश, पावै व्रत का अनुष्ठान कर तिरुप्पावै की रचना से प्रकाशित दयामयि, "वेंकटाद्रिनाथ के पास मुझे ले जाकर उसको समर्पित कीजिये "ऐसी भक्ति मे ही मुझे भी लगा दो ।

विशेष :

यह पद भी उय्यकोण्ड स्वामी से विरेचित है ।

कोदै पिर्न्दवूर गोविन्दन वाल्ुमूर
सोदि मणिमाडन्लोन्रुमूर–नीदियाल्
नल्लपतर वाल्ुमूर नान् मर्कैकोळोदुमूर
विल्लिपुत्तूर। वेदक्कोनूर (४)

भावार्थ :

श्री विल्लिपुत्तूर नगर गोदादेवी का जन्म स्थान है, भगवान का निवास स्थान है। कांतियुत अट्टालिकाओं से सुशोभित है, परम भक्ताप्रेसर यहाँ वास करते है, चतुर्वेदो का निरतर अध्ययन यहाँ होता है तथा भट्टाचार्य श्री विष्णुचित स्वामी का अवतार स्थल यही है ।

पादकंकळ तीर्कुम् परमनडिकाट्टुम्
वेदमनैतुक्कुम् वित्तागुम्–कोदैतमिल्
ऐन्दु मैन्दुम् अरियाद मानिडरै
वैयम् सुमप्पदुम् वम्बु (५)

भावार्थ :

पाप नाशक, परम पद दर्शक, वेदो के बीजभूत, गोदा देवी से अनुगृहीत इन तमिल् के तीसों पद से अनभिज्ञ व्यक्तियो का भार यह धरा व्यर्थ ही ढोती है ।

नाच्चियार तिरुमोलि
(गोदा श्री सूक्ति)

नच्चियार तिरुमोलि, आण्डाळ कृत दूसरा ग्रंथ है। तमिल मे नाच्चियार का अर्थ है नायिका, तिरुमोलि का अर्थ है श्री सूक्ति। इस ग्रथ में चौदह दशक है अर्थात् १४३ पद्य है।

पहला दशक : तैयोरु तिगळ्. . . . (कामदेव का समाश्रयण)

आण्डाळ ने अविच्छिन्न अनन्य प्रयोजन भगवद् कैंकर्य रूपी परम पुरुषार्थ को पाने के एकमात्र उद्देश्य से, व्रजांगनाओ के सदृश कात्यायनी व्रत का अनुष्ठान कर अपनी प्रार्थना को 'तिरुप्पावै'' मे प्रकट किया। आण्डाळ के सिद्धोपाय एव अनन्य प्रयोजनत्व को जानकर भी भगवान ने उनकी मनोभिलाषा पूरी नही की। इसलिये आण्डाळ, प्रेमियों को मिलानेवाले मन्मथ की पूजा करके अपनी मनोभिलाषा को प्रकट करती हुई प्रार्थना करती है "मै तुम्हारी और तुम्हारे भाई की सेवा करूँगी, मुझे श्री वेंकटाद्रीश्वर से मिला दो। अपने दृढ़ निश्चय को मन्मथ से कहती है "जैसे भगवान को समर्पित हविस जगल में शृगाल के भोग्य नही है, उसके सूँघने मात्र से वह अपवित्र हो जाता है, वैसे ही श्री रंगनाथ को समर्पित यह शरीर साधारण मनुष्य के भोग्य नही है। किसी मनुष्य द्वारा इसके भोग का प्रस्ताव सुनकर ही मै जीवित नही रह सकूँगी।" वह मन्मथ से मात्र यही कहती है कि वह ऐसा अनुग्रह दर्शावे जिससे वेंकटाद्रीश्वर के कृपाकटाक्ष उसके ऊपर पड़े और वे अपने कोमल हाथ से उसका स्पर्श करे तथा उसको अपने चरण कमलो की सेवा करने का अवसर दें।

कामदेव के समाश्रयण से यह प्रश्न उठता है कि अनन्यार्हशेषत्व, अनन्य-शरणत्त्व प्रभृत्ति गुणों से विभूषित, सगुण संपन्न भगवान की भक्ति न होकर आण्डाळ के लिये मन्मथ की पूजा करना कहाँ तक उचित है। पेरियाळ्वार की सुपुत्री होकर, भूलकर स्वप्न में भी देवतांतर का स्मरण न करनेवाले भक्तों के कुल में जन्म लेकर भी किसी अन्य देवता से अभीष्ट फल की इच्छा प्रकट करना क्या उसकी निष्ठा के विरुद्ध नही है। अवश्य है। किन्तु वाल्मीकि रामायण मे ऐसे भी प्रसग है जब श्री रामचन्द्र जी के अतिरिक्त किसी दूसरे का स्मरण न करने वाले अयोध्यावासी एवं स्वयं हनुमान भी राम के क्षेमार्थ सभी देवी देवताओं से प्रार्थना करते हैं।[1] सच तो यह है कि आण्डाळ का

---

१. रामायण : अयोध्या कांड ।। और रा० सू० ३२–१४। नमो अस्तु वाच-स्पतये।

यह काम समाश्रयण भगवान के अति शीघ्र साक्षात्कार के उद्देश्य से ही है। अतएव सत्यनिष्ठ भगवद्भक्तो के साथ भगवद् समाश्रयण करना छोड़कर रजोगुण प्रचुर मन्मथ से प्रार्थना करने से "रजो रागात्मक विद्धि" का सिद्धान्त उस पर लागु नही होगा। प्रेमाधिक्य मे किया हुआ अज्ञानता पूर्ण कार्य दोष नही, अपितु गुण ही माना जाता है।

१. तैयोरुतिंगलुम्....

भावार्थ :

हे अनगदेव, पौष महीने भर तुम्हारे स्वागतार्थ वीथियो को साफ कर, मडल पूजा के लिये सुन्दर मडल वेदी बनाकर, माघमास के पूर्व पक्ष में सुन्दर बारीक सिकता कणो से मार्गो को अलकृत करती हूँ और तुम्हे तथा तुम्हारे भाई साब को भी प्रणाम करती हूँ। तुम आनदित होकर मुझे तीक्ष्ण एवं अग्नि वर्षी-चक्रराज से सुशोभित श्री वेकटाद्रिनाथ भगवान से उनकी सेवा करने हेतु मिला दो।१

विशेष :

आण्डाळ का उज्जीवन श्री वेकटाद्रिनाथ से सान्निध्य प्राप्त करना है। इस हेतु अन्य देवता होते हुए भी वह कामदेव एवं उसके भाई सांब को साधन रूप में स्वीकार करके पूजा करती है। इस आराध्येत्तर की वन्दना से भक्त के स्वरूप का नाश हो जाता है। पर असाधन रूप मे कामदेव और सांब को स्वीकार करने के कारण, आण्डाळ इस आरोप से बच जाती है प्रश्न यह है कि कामदेव के साथ सॉब की भी वन्दना उसने क्यो की? पर राम के साथ लक्ष्मण और सीता की वन्दना का उल्लेख वाल्मीकी रामायण मे मिलता है। नमो स्तु रामाय सलक्ष्मणाय, देव्ये च तस्ये जनकात्मजाये॥ इसी प्रकार स्वय आण्डाळ कृत तिरुप्पावै मे गोपियाँ श्री कृष्ण से मिलने के पूर्व नन्द, यशोदा, बलराम तथा नप्पिन्नै की वन्दना करती है। इस प्रकार कामदेव के साथ साब की वन्दना करना परंपरागत ही है।

२. वेल्लै नुण्मणल्....

भावार्थ :

हे कामदेव, धवल एवं बारीक सिकताकणो से मार्गो को अलकृत कर, उषत्काल मे ही स्नान कर, पवित्र कटक विहीन समिध से अग्नि मे होम कर, मै तुम्हारी पूजा करती हूँ। तुम मेरे इस व्रत से प्रसन्न हो जाओ। अपने धनुष पर मधु भरे पुष्प बाण में सागर वर्ण भगवान् श्री कृष्ण का नाम अकित कर बकासुर हता भगवान को लक्ष्य कर चला दो।२

३. मत्तनन्नरु....

भावार्थ :

हे कामदेव, मै तुम्हारे अत्यधिक पसन्द के धतूर, किंशुक पुष्पों को त्रिकाल तुम्हारे चरणों मे समर्पित कर पूजा करती हूँ। मुझे भी ऐसा अवसर प्रदान न करना कि मुझे अत्यधिक आन्तरिक वेदना मे व्यथित होकर तुम्हें धूर्त देव कहकर कलकित करना पडे। अतः विकसित पुष्पो को अपने धनुष मे लगाकर गोविन्द नाम को मन मे अकित कर मुझे लीलामय वेकटाद्रीश्वर नामक दीप मे प्रवेश करा दो।

विशेष :

मन्मथ रजोगुण प्रचुर होने के कारण उसको धतूर, पलाश, मन्दार पुष्प ही अत्यधिक प्रिय है। विशेषता यह है कि पलाश पुष्प फालगुन महीने मे पुष्पित होता है।

४. सुवरिल् पुराण....

भावार्थ :

हे कामदेव, मै अपने घर की दीवारों पर तुम्हारा नाम लिखकर साथ ही मत्स्यध्वज, तोता, कवरीचमरी मृग, इक्षु धनुष, आदि को भी चित्रित कर अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँगी। मैं यही सकल्प कर भगवान की सेवा करती आई हूँ कि प्रारभ से ही कृष्ण के लिये उभरे मेरे पूजनीय पीन पयोधर, द्वारकाधीश उस भगवान के ही उपभोग्य बने। हे कामदेव, मेरे इस सकल्प को अति शीघ्र पूर्ण बना दो।

विशेष :

श्री कृष्ण को प्राप्त करने के उपरान्त आनन्दातिरेक मे मन्मथ को भूल जाने की संभावना है। इस कृतघ्नता से बचने के लिये ही आण्डाळ दीवारों मे मत्स्य-ध्वज आदि को चित्रित करना चाहती है।

आण्डाळ अपने ही पीन पयोधर को पूजनीय मानती है, क्योकि बचपन मे ही इन स्तनों को द्वारकाधीश भगवान को समर्पित कर चुकी। तब से ही ये स्तन उनके भोग्य वस्तु हो गये। भगवान की विभूतियों की वन्दना करनेवाली आण्डाळ उन्ही को समर्पित अपने स्तनों की भी वन्दना करती है। यहाँ शीघ्र कहने का तात्पर्य है कि स्तनो के सौन्दर्य के नष्ट होने के पूर्व ही।

तुरग का अर्थ घोडा है। तोता मन्मथ का वाहन है। अतः तुरग शब्द "तोता" के लिये प्रयुक्त है। तमिऴ् साहित्य मे मन्मथ का रथ दक्षिणी हवा माना गया है। उस रथ को खीचने वाला घोड़ा, तोता ही है। अतः तुरग शब्द इस घोड़े के अर्थ में है।

कवरी चमरी मृग वह है जिसकी पूँछ से चामर बनाया जाता है ।

५. **वानिडै....**

भावार्थ :

हे मन्मथ, स्वर्गवासी देवताओ को ब्राह्मणो के द्वारा याग मे दिया गया हविस, जंगल मे फिरने वाले शृगाल के सूँघने, वहाँ से हटाये जाने पर वह अपवित्र हो जाता है । वैसे ही शख चक्रधर पुरुषोत्तम भगवान के लिये उद्भूत मेरे इन पीन स्तनो का किसी मनुष्य द्वारा उपभोग का प्रस्ताव मात्र से अपवित्र हो जाऊँगी और मै जीवित नही रह सकूँगी ।५

विशेष :

आण्डाळ अपने दृढ निश्चय को मन्मथ से कहती है कि वह भगवान के लिये ही पैदा हुई है। मानव के साथ सबध का प्रस्ताव सुनने को भी तैयार नही है, क्योंकि प्रस्ताव सुनने के वाद जीवित रहना उच्छिष्ट पदार्थ को भगवान को समर्पित करना हो जायगा ।

६. **उरुवुडैयारिलैयार्कल्....**

भावार्थ :

हे कामदेव, काम शास्त्र मे निपुण तथा रूप लावण्यमयी सुन्दरियो को साथ ले कर फाल्गुन महोत्सव मे तुम्हारी अगुवानी कर, संतोष के साथ तुम्हारा व्रत रखूँगी । इतना अनुग्रह करो कि काले-काले जलद के सदृश कांतिवाले, अतसी पुष्प सदृश प्रियतम, नीलोज्ज्वल भगवान, कमल सदृश कातियुक्त मुखडे मे सुशोभित चक्षुओ से मेरे ऊपर कृपा कटाक्ष करे।६

विशेष :

आगम शास्त्रज्ञो की सहायता से जैसे याग किये जाते है वैसे ही रजोगुण देवता की पूजा आण्डाळ काम शास्त्र मे निपुण व्यक्तियो की सहायता से करती है ।

"ओत्तु" का अर्थ है अध्ययन किया जाने वाला वेद । मन्मथ के लिये उपयुक्त वेद, काम शास्त्र ।

७. **कायुडैनेल्लोड़....**

भावार्थ :

हे मन्मथ, शालिगुच्छ, गन्ना तथा गुड़, तंडुल आदि को समर्पित कर, निपुण शास्त्रज्ञ के मंत्रों से मै तुम्हारी वन्दना करती हूँ । पुराने काल मे त्रिविक्रम अवतार ले कर अपने चरणों से विश्व को नापने वाले भगवान से मेरे कांतियुत उदर तथा कोमल व विशाल स्तनों का, अपने कोमल हाथों द्वारा

स्पर्श कराने का अनुग्रह करो और मेरी कीर्ति को बनाये रखने मे मदद करो। (भगवान के स्पर्श से मैं भाग्यवती हो जाऊँगी)।

८. मासुडैयुडम्बोडु....

भावार्थ :

हे कांतियुत, प्रेमियो को मिलाने मे समर्थ कामदेव, मेरी शारीरिक स्थिति पर कृपा करो। मै कृशकाय हो गई हूँ। केश बिखरी अवस्था मे है, मेरे होठ विवर्ण हो गये है। केवल एक समय भोजन कर रही हूँ। अब तुमसे मेरी प्रार्थना है कि मेरे अस्तित्व की रक्षा करो और मुझे श्री केशव भगवान की चरण सेवा करने का सौभाग्य प्रदान करो।

९. तोलुदु....

भावार्थ :

हे कामदेव, मै तुम्हारे चरणो मे पवित्र पुष्पों को समर्पित करके त्रिकाल पूजा कर रही हूँ। इतने पर भी यदि मै क्षीराब्धिशायी भगवान को नि.स्वार्थ चरण सेवा करके कृतार्थ नही हो सकी और रोते-रोते हाय हाय करते दुख भोगती रही तो तुमको बड़ा पाप लगेगा। तुम्हारा यह काम हल मे चलने वाले बैलो को चारा दिये बिना जोत से मारकर भगा देने के सदृश होगा ॥

विशेष :

वलुविल्ला अडिमै सेय्यवेण्डुम्"—अर्थात् नि स्वार्थ सेवा करना, यही सभी आळ्वार भक्तो का आदर्श है। (तिरुवायमोऴि ३-३-१)

१०. करुप्पु...

भावार्थ :

पुष्प बाणो को धारण करने वाले इक्षुधन्वी कामदेव के चरणो की वन्दना करने वाली तथा कस के कुवलयापीड़ हाथी को थर्रा कर सहार करने वाले, बकासुर के मुख को चीर कर वध करने वाले एव नीलमणि सदृश कातिवाले श्री कृष्ण से मिलने की कामना करने वाली पहाड़ सदृश ऊँचे-ऊँचे महलो मे अलंकृत श्री विल्लिपुत्तूर के प्रधान श्री विष्णुचित्त स्वामी की सुपुत्री गोदा द्वारा रचित इन तमिऴ् प्रेम गीतो का अध्ययन करने वाले भगवान के पादारविन्दो को प्राप्त करेगे।

विशेष :

इस पद में फलश्रुति वर्णित है। इन पदो के अध्ययन करनेवाले आण्डाळ की तरह विरह वेदना भोगे बिना ही नित्यानुभव करने वाले नित्य सूरियो की तरह भगवान के कैंकर्य करने का भाग्य प्राप्त करेगे।

दूसरी श्री सूक्ति : नाममायिरम्

पूर्व श्री सूक्ति मे आण्डाळ ने अपने को गोपी रूप मे निरूपित करके कान ममाश्रयण किया ।

मदनोत्सव के निमित्त गोपियो द्वारा निर्मित क्रीडा-गृहो को देख कर श्री कृष्ण उनके निर्माण का कारण पूछते है। कारण जानकर कृष्ण सोचते है कि मुझे प्राप्त करने के लिये गोपियाँ अन्य देवता का आश्रय क्यो ग्रहण करे। श्री कृष्ण स्वयं उनके क्रीडा गृहो के पास जाकर उनके साथ खेलने की अनुमति चाहते है तो गोपियाॅ उनका तिरस्कार करती है । श्री कृष्ण उनके घरौंदे तोड़ते है। उनके बीच आपस मे वार्तालाप होते है। प्रेम पूर्ण छेडछाड युक्त वार्तालाप ही द्वितीय श्रीसूक्ति का विषय है । आण्डाळ द्वारा चित्रित ये ध्वन्यात्मक प्रसग अत्यधिक मनोहर है।

१. नाममायिरमेत्तनिन्र....

भावार्थ :

हे सहस्र नामों से पूजे जानेवाले नारायण, नर रूप धारी, अगर हम तुमको आने वाली सास का पुत्र (अर्थात् पति रूप मे) बना ले तो हमारा कष्ट दूर हो जायगा ? फाल्गुन महीने में मन्मथोत्सव निमित्त हमने सडकों का अलकरण किया है । हे धूर्त श्रीधर, इन क्रीड़ा घरों को विनष्ट मत करो ।

विशेष :

गोपियाॅ कहती है कि सबध न होने पर तुम हमे इतना कष्ट देते हो। अगर हम तुमको पति रूप मे वरण कर लेगी तो न जाने कितने कष्ट दोगे। पति के लिये सास का पुत्र कहा गया है।

२. इन्रु....

भावार्थ :

दिन भर अत्यधिक परिश्रम से निर्मित हमारे इन क्रीड़ा गृहो को देख करके हमे कृतकृत्य करो । महा प्रलय काल मे वट पत्र मे शिशु बन कर शयन करने वाले हे आराध्यदेव, यह हमारा पाप का ही फल है कि तुमको हमारे ऊपर दया नही आई है ।२

३. कुण्डुनीरुरै....

भावार्थ :

हे गभीर सागर, हे उग्र सिह सदृश, हे मत्त गजेन्द्र के रक्षक, मत सताओ । बारीक सिकता कणों द्वारा वलय युक्त कलाइयोवाले हाथों से हमने अधिक

परिश्रम कर इन क्रीडा गृहो का निर्माण किया है । धवल तरगयुत सागर मे शयन करने वाले हे प्रियतम, हमारे क्रीडा-गृहों को मत तोडो ।३

४. पेय्युमामुकिल्....

भावार्थ :

हे बरसने वाले जलद सदृश कृष्ण, तुम्हारी चेप्टाये एव मनोहर बाते हमको पूरा पागल बना देती है । हम अपना सयम खो बैठती है। क्या तुम्हारा मखडा माया मन्त्रित है। हम इसलिये तुमको कटुवचन कहे बिना मौन साधे है कि तुम कही हमे अल्पवद्धि वाली न समझ बैठो। हे पुण्डरीकाक्ष, हमारे क्रीडा गहो को विनष्ट मत करो ।४

५. वेल्लैनुण्मणल्....

भावार्थ :

हमने वीथियो मे धवल सिकता कणो से अद्भुत गृहो को बनाया है। उन गृहों को तोड देने से तो हमारा हृदय टूट जायगा । फिर भी तुम्हारे ऊपर लेशमात्र भी क्रोधित नही होगी । हे चोर माधव, क्रीडा-गृहो को नाश करने मे तुले हे केशव, तुम्हारे चेहरे पर आँखे नही है क्या। इतने सुन्दर गृहो को देख कर कोई भी उन्हे विनप्ट करना नही चाहेगा ।५

६. सुरिलाद....

भावार्थ :

सेतु बन्धन कर लका नगरी का सर्वनाश कर, राक्षसो को सहार करने वाले हे वीर प्रतापी, हम तो कन्याये है, पूर्णतया हमारे स्तन भी विकसित नही हुए है। इन क्रीड़ा-गहो को तोडने के वहाने से क्षुद्र चेप्टाये कर रहे हो। तुम्हारे जैसे प्रणय चेष्टाये करना हम सब नही जानती । कृपया हमे मत सताओ ।६

७. वेदनन्गरियार्कलोडु....

भावार्थ :

हे तरगयुत महा समुद्र के समान वर्णवाले, तुम्हारी शृगार युक्त रसीली बातो का रसास्वादन शृगार के मर्मज्ञ ही कर सकेगे। हम तो भोली भाली कन्याये है । हमे शृगार चेष्टा आदि से कष्ट देने मे तुमको क्या लाभ होगा ? हे सेतु बधन करने वाले प्रियतम, तुम्हारी पत्नियो की कसम, हमारे क्रीडा-गृहो को मत तोडो ।७

८. वट्टवाय्....

भावार्थ :

हे ज्योतिः पुज सुदर्शन चक्रधारी, नील सागर स्वरूप कृष्ण, हमारे द्वारा

वनाये क्रीडा-गृहो को नाश करने मे तुमको क्या मिलेगा ? कलश, सूप, वालू आदि से खेलनेवाली हम गोपियो को स्पर्श एव उत्पीड़न से मत सताओ । क्या तुम नही जानते मन अधिक दुखित रहने पर गुड भी कडवा लगता है।८

९. मुरंत्तूडुपुकुन्दु....

भावार्थ :

हे गोविन्द, तुमने (वामन अवतार लेकर) एक पैर से सारे धरातल और दूसरे से ऊर्ध्वलोको को नाप लिया है । हमारे आगन मे घुसकर, मुस्कुराते तथा शृगार चेष्टाये करते हुए हमारे क्रीड़ा-गृहों को विनष्ट करके मन को क्यों सता रहे हो। तुम हमारे साथ गाढालिगन करने का प्रयत्न करते हो, समीपस्थ लोग क्या समझेगे ? ९

विशेष :

आळ्वारो के नायिका-भाव मे स्वय पुरुष होकर स्त्री के रूप मे भगवान मे प्रेम प्रदर्शित करने से बढकर स्वय आण्डाळ स्त्री होने के कारण उसकी नायिका भाव मे विशेष सौन्दर्य द्रष्टव्य है । आण्डाळ का यह कहना है कि "समीपवर्ती लोग क्या कहेगे" मे जो माधुर्य व लज्जा का भाव द्रष्टव्य है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

१०. सीतैवायमुदण्डाय्....

भावार्थ :

सीतादेवी के अधर पान करनेवाले भगवान, हमारे क्रीड़ा-गृहो को नाश न करो ऐसी प्रार्थना करनेवाली तथा अपने को वीथियों मे खेलनेवाली गोपी मानकर तोतली भाषा बोलने वाली, वेदाध्ययन तथा अनुष्ठान मे उत्तम श्री वैष्णवो मे सुशोभित श्री विल्लिपुत्तूर के प्रधान श्री विष्णु चित्त स्वामी की सुपुत्री गोदा-देवी के द्वारा रचित इन गीतो का अध्ययन करनेवाले अत्यधिक ऐश्वर्य पाकर परमपद को प्राप्त करेगे।१०

विशेष :

इस पद मे फलश्रुति वर्णित है।

तीसरी श्री सूक्ति : कोलि़यलै प्पदन्मुन्नम्

गोपियों को नाना प्रकार से तग कर तदनन्तर उन्हे श्री कृष्ण ने गाढ़ालिगन कर लिया। मिलन के उपरान्त बन्धु वर्गो ने विरह को इसलिये आवश्यक समझा कि मिलन के बाद विरह होने पर सत्ता की हानि नही होगी। विरह मे गोपियां कलपने लगी। इनकी स्थिति देखकर माता-पिताओं ने उनको कमरे में बंद कर

दिया। उनकी शारीरिक अवस्था देखकर माता-पिताओ ने उन्हे प्रात. स्नान करने की अनुमति दी जिससे वहा कृष्ण से उनकी भेट हो। प्रियतम से विरहित गोपियां प्रातः स्नान करने के लिये यमुना नदी गई । वे छिप छिपकर एक एक करके गई ताकि श्री कृष्ण उन्हें न देख ले। यमुना तट पर जाकर वस्त्रादि को उतारकर, किनारे पर रखकर जल मे क्रीडा करती रही। उधर श्री कृष्ण उनके पीछे पीछे आकर किनारे पर रखे वस्त्रादि को उठाकर, पास स्थित कुन्द पेड पर चढ़ गया। जल क्रीड़ा समाप्त कर, अपने वस्त्रों को किनारे पर न देखकर इधर उधर ढूँढ़ने लगीं तो पेड़ पर मुस्कुराते, शृगार चेष्टा करते कृष्ण दिखाई पड़े। कभी वे प्रार्थना करती, कभी रोती, कभी रोष से कटुवचन सुनाती कभी उन्हे अपने भाइयो द्वारा शिक्षा दिलाने का भय दिखाती वस्त्र मागने लगी। श्री कृष्ण ने कहा कि आप सब जल से बाहर आकर, हाथ जोडकर नमस्कार करेंगी तो आप लोगो के वस्त्र दे देता हूं। कृष्ण की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर सखिया एक दूसरी के हाथ से हाथ मिलाकर अजली करने लगी। इस दशक में आण्डाळ का अनुभव , वस्त्रापहरण प्रसग पर गोपियो के समान है।

१. **कोलियलैप्पदन्मुन्नम्....**

भावार्थ :

हे शेषशायी, जल मे डुबकी लगाकर जल क्रीड़ा करने के उद्देश्य मे मुर्गी के वाग लगाने के पूर्व ही यहां आ गई है। अब तो तेज पुज सूर्य का उदय हो गया है। तुम्हारे कारण हमें अधिक कष्ट भोगना पड़ा है। आगे हम कभी भी इस सरोवर में स्नान करने नहीं आयेगी। सखी के हाथ के साथ हाथ जोडकर तुम्हें प्रणाम करती है। हमें अपने वस्त्र दे दो।१

विशेष :

जब कृष्ण ने कहा कि बिना वस्त्र के जल मे स्नान कर आप लोगो ने जल देवताओ के प्रति गुरुतर अपराध किया है। अतः हाथ उठाकर प्रणाम करने पर मै वस्त्र दे देता हूं।

"अजली परमा मुद्रा क्षिप्रा देवप्रसादिनी" क्योंकि देवताओ को प्रसन्न करने के लिये अजली ही एकमात्र अच्छी पद्धति है। बेचारी लाज के मारे कैसे दोनो हाथ उठाकर प्रणाम कर सकती थी तो एक हाथ से अजली करने पर कृष्ण ने कहा "एक हस्त प्रणाम कोटि पाप सम" है। इसे सुनकर दो दो सखिया अपना एक एक हाथ मिलकार प्रणाम करने लगी।

जल क्रीडा को तमिल साहित्य मे सश्लेषण (मिलन) के रूप मे स्वीकार किया गया है।

२. इदुवेन्पुकुन्दीदिकन्दो...

भावार्थ :

हे मधुमय तुलसी माला धारी, अद्भुत गुण सपन्न, हमारे अमृत, हाय! यह क्या हुआ। तुम इस तालाब को आये कैसे? हम दुर्भाग्यशाली है, हम उस (संश्लेषण) के लिये सहमत नही होगी। हे आश्चर्य चेष्टाये करनेवाले बालक, शीघ्रता मत करो। हे कालियनाग के फण पर कूदकर आनन्द नृत्य करनेवाले, कुन्द वृक्ष पर रखे हुए हमारे वस्त्रो को दे दो।।२

३. एल्ले....

भावार्थ :

अपने धनुष बाणो से लका को विनष्ट करनेवाले प्रियतम, यह क्या पागलपन है। अगर हमारी माताए हमे नग्नावस्था मे देख लेगी तो हमारा घर मे प्रविष्ट होना ही असभव हो जायगा। तुम यह नही जानते कि तुम्हारा यह कार्य अनुचित है। पवित्र कुन्द वृक्ष पर चढ बैठे हो हमसे जो भी मागोगे वह सब हम देने को तैयार है। परन्तु यहा से किसी के देखने के पूर्व ही जाना चाहती है। कृपा कर हमे अपने क्षैम-वस्त्र दे दो।३

४. परक्कविलित्तेगुम्....

भावार्थ :

हे लका को नाश करनेवाले हमारे स्वामी, जरा आख खोलकर चारो तरफ देखो। हम कितनी ही गोपिया यहा स्नान कर रही है। आखों से अश्रु प्रवाह रोकने पर भी नहीं रुकते। इस करुणामय दृश्य को देखो। हे निर्दयी, हमे ज्ञात हुआ, तुम वानरों के नेता ठहरे। कृपा कर कुन्द वृक्ष पर रखे वस्त्रों को दे दो।४

५. कालैक्कदुविडुकिन्र....

भावार्थ :

हे श्याम सुन्दर प्रियतम, देखो, विविध मछलिया हमारे पैर काट रही है। यदि हमारे भाइयो को इसका आभास हो गया तो वे क्रोधित होकर तुम्हारे ऊपर अस्त्र प्रहार करेगे तो इस खेल का क्या परिणाम होगा। हमारे वस्त्रो को लेकर वृक्ष पर क्यो बैठे हो। कुन्द वृक्ष पर रखे हमारे वस्त्रो को दे दो।।५

६. तडत्तविन्ल्

भावार्थ :

हे घटनर्तन मे निपुण प्रियतम, विकसित एवं विशाल (कटक पूर्ण) कमल नाल, विष भरे बिच्छुओ के डक सदृश हमारे पैरो में चुभ रहे हैं जिससे हम सब

अत्यधिक वेदना का अनुभव कर रही है। कृपया अपनी धूर्तता पूर्ण चेष्टाओं को छोड़कर हमें अपने वस्त्र दे दो।६

विशेष :

दक्षिण मे अहीरो मे अत्यधिक सपन्नता आने पर दूध के मटको को सिर पर रखकर आनन्द नृत्य करने का विधान था। इसे घट नर्तन कहते थे।

७. नीरिले....

भावार्थ :

प्रलय काल मे भी जगत् की रक्षा मे रत रहनेवाले हमारे प्रियतम, कितनी देर से हम जल मे खड़ी दुख भोग रही है। तुम न्याय विरुद्ध कार्य कर रहे हो। हमारा गाव व गृह तो यहा से अधिक दूर पर है। तुम्हारे इतने कष्ट देने पर भी हम तुमको प्यार करती हैं। हमे यही भय है कि यदि हमारी माताए देख लेगी तो यहा फिर हम सब न आ पायेगी। अतः कुन्द वृक्ष पर बैठकर हमे मत मनाओ।।७

८. मामिमार्....

भावार्थ :

विशुद्ध कमल सदृश नेत्र बंद कर सोनेवाले, हे नित्य जागरूक प्रभु यहा (तुमसे प्रेम सबध रखनेवाली) केवल हम गोपिया ही नही है अपितु अन्य स्त्रिया भी हैं। अतः हे कोमल गोप बालक, हम स्पष्ट कहती है कि यह जो कार्य कर रहे हो वह सर्वथा अनुचित है। कुन्द वृक्ष पर लटक रहे हमारे वस्त्रो को दे दो। ८

९. कंजन्....

भावार्थ :

संभवतः हम गोपियों को इस प्रकार जल मे खड़ी करके कष्ट देने के लिये ही तुम कस से रचे माया जाल से बचकर, गाढाधकार में छिपकर व्रज आ पहुचे हो। माता यशोदा भी तुम्हे कभी नही डाटती। इसके विपरीत धूर्तता करने के लिये ही तुमको पाल पोसकर बड़ा कर रखा है। बचकी पिशाची पूतना के स्तन पान करनेवाले हे निर्लज्ज हमारे वस्त्र दे दो।।९

विशेष :

इस पद मे व्याज स्तुति है।

१०. कन्नियरोडेकन्लनम्बि....

भावार्थ :

गोपबालिकाओ के साथ हमारे प्रियतम की लीलाओ का वर्णन करनेवाली स्वर्णमय महलो से सुशोभित श्री विल्लिपुत्तूर के स्वामी विष्णुचित की सुपुत्री

गोदा मे वर्णित इस गीत दशक का अध्ययन करने वाले श्रीमन्नारायण का नित्यानुभव करेंगे।१०

विशेष :

यह फलश्रुति से सबधित पद है।

चौथी श्री सूक्ति : तेंळ्ळियार् पलर

तमिल प्रदेश मे एक प्रकार की शकुन परीक्षा को "कूडलिलै़त्तल" कहते है। विरह से संपीडित नायिका मृत्तिका पर अनेक वृत्ताकार रेखाये अकित करती है और यदि अत मे एक युग्म रेखाये शेष रह जायं तो ऐसा माना जाता है कि प्रियतम का मिलन अवश्य होगा और यदि एक ही रेखा शेप बचे तो उसका यह अर्थ माना जाता है कि प्रियजन के दर्शन नही होगे। इस कूडलिलै़ त्तल से नायिकाओ के मन को आश्वासन मिलने की सभावना है। अपने को गोपी रूप मे मानकर आण्डाळ इस दशक मे "कूडलिलै़त्तल" का मार्मिक चित्र चित्रित करती है। इस प्रवृत्ति के माध्यम से आण्डाळ ने अपने प्रियतम से मिलने की तीव्र उत्कठा व्यक्त की है।

१. **तेल्लियार....**

भावार्थ :

हे कूडल, अनेक विशुद्ध–चित्त भक्तो से पूजित, परमोदार, तिरुमालिरं सोलै के मेरे साजन, अपने शयन स्थान पर मुझे चरम सेवा करने का अवसर देनेवाले हो तो उसकी सूचना दिलाने के लिये तुम मिल जाओ१

विशेप :

विशुद्ध चित्त, आत्म साक्षात्कार प्राप्त सनकादि महर्षि, मुक्त तथा नित्य सूरियों को कहते है।

कूडल मिलने का तात्पर्य वृत्ताकार रेखाओ का दो दो वर्ग से पूर्ण रूप से समाप्त हो जाने से है।

तिरुमालिरुं सोलै, दक्षिण मे मदुरै से दस मील की दूरी पर स्थित पर्वत है।

२. **काट्टिल्....**

भावार्थ :

हे कूडल, वेंकटाचल पर्वत एव तिरुक्कण्णपुरम् मे सानन्द विराजमान वामन भगवान यदि शीघ्रता से आकर, मेरा हाथ पकडकर, मुझे अपनी छाती मे लगानेवाले हो, तुम मिल जाओ।२

३. पूमकन....

भावार्थ :

हे कूडल, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा तथा नित्य सूरियों से वन्दनीय पुरुषोत्तम, सुन्दर ललाटवाली देवकी एवं अत्युत्तम गुणो से भूपित वसुदेव के सुपुत्र गोपाल यदि इस ओर आकर मुझसे मिलनेवालो हो तो मिल जाओ।३

विशेष :

सासारिक जन एव नित्यसूरी दोनो ही भगवान की वन्दना करते है जैसे नदी के दोनो किनारे पर खडे व्यक्ति मध्य से स्थित नौका को बलाते है। "नावेव यान्तमुभये हवन्ते।" (तैत् स का १, प्र ६।

४. आच्चिमार्कन्लुम्....

भावार्थ :

हे कूडल, सव गोप तथा गोपियो को भयभीत करते हुए वहा पुष्पित कदम्ब वृक्ष पर चढकर, ऊपर से हृद मे कूदकर, सौभाग्यशाली कालियनाग के फणो पर नृत्य करनेवाले नटवर अगर इस तरह आनेवालो हो तो मिल जाओ।४

५. माडमालिकै....

भावार्थ :

हे कूडल, कुवलयापीड नामक मस्त हाथी का सहार करनेवाले प्रियतम श्री कृष्ण यदि ऊचे ऊचे महलो से सुशोभित मदुरापुरी मे हमारे घर को ढूँढते हुए आकर मुझसे मिलनेवालो हो तो मिल जाओ।५

विशेष :

भावना प्रकर्ष मे आण्डाळ गोपी ही बन जाती है और कहती है कि हमारी ही गली की तरफ प्रियतम आवे।

यहा पेरियवाच्चान पिल्लै की उक्ति द्रष्टव्य है। धनुर्याग के समय श्री कृष्ण मालाकार के घर गये। वैसे ही अब यहा माला बनानेवाले पेरियाल्वार के यहा भी अवश्य आ सकेंगे।

कंसवध के पूर्व श्री कृष्ण मालाकार का घर ढूँढ़ते हुए उसके यहा गये और कुबड़ी कुब्जा से मिलकर कृतार्थ किया। आण्डाळ भी यही चाहती है कि श्री कृष्ण उसी भांति उसके मालाकार पिता के घर आवे और उसका उद्धार करे। विदित हो कि आण्डाळ के पिता पेरियाल्वार नित्य ही अपनी वाटिका के पुष्पों से एक माला तैयार कर भगवान वटपत्रशायी को अर्पित करते थे।

घर ढूँढते हुए आने का तात्पर्य आण्डाळ के महत्त्व को अधिक बढाना है।

ऐसा करने से आस पडोस के लोग यह समझ जायेगे कि आण्डाळ से मिलने के लिये स्वय भगवान ही उसका घर ढूँढ रहे है।

६. अरॅवन्....

भावार्थ :

हे कूडल, मेरे लिये ही उत्पन्न तथा यमलार्जुन रूपी वृक्षो को तोडकर चलने की कला सीखनेवाले, छल कपट से (जैसे को तैसा) कस का सहार करने वाले, मेरे मथुरा पूरी के स्वामी श्री कृष्ण यदि इधर आनेवाले हो तो तुम मिल जाओ।६

७. अन्रिन्नादसेय....

भावार्थ :

हे कूडल, दुष्कर्मी शिशुपाल, यमलार्जुन रूपी वृक्ष, सप्त ऋषभ एव बकासुर तथा अत्यन्त शक्तिशाली कस को विनष्ट करनेवाले भगवान श्री कृष्ण इधर आनेवाले हो तो मिल जाओ।७

८. आवन्लन्बुडैयार्....

भावार्थ :

हे कूडल, भक्ति भावना से भरे भक्तो के हृदय के अनिरिक्त अन्यत्र कही न रमनेवाला सुगध से भरे मथुरा पुरी के स्वामी एव बछडो को चराकर क्रीडा करनेवाले गोपाल कृष्ण इधर आनेवाले हो तो मिल जाओ।८

९. कोण्डकोल...

भावार्थ :

हे कूडल, प्राचीन काल मे वामनावतार के समय ब्रह्मचारी के रूप मे महाबली की यागशाला पहुंचकर एक पैर से भूमि को और एक चरण से आकाश को नापने वाले त्रिविक्रम भगवान इधर आनेवाले हो तो तुम मिल जाओ।९

१०. पलकुनान्मरॅयिन....

भावार्थ :

हे कूडल, अनादि चतुर्वेदो के अर्थ स्वरूप, मदजल बहते गजेन्द्र का उज्जीवन करने वाले हमारे प्रियतम एव सुन्दरी गोपियो के मन मे सदा निवास करनेवाले श्री कृष्ण इधर आने वाले हो तो तुम मिल जाओ।१०

११. ऊडल....

भावार्थ :

भगवान पर प्रणय रोष दिखाना, पुनः मिलने की इच्छा प्रकट करना, तदुपरान्त मिलने का संपन्न होना, इन कार्यो मे शाश्वत प्रेम रखनेवाली गोपियो

की कूडल क्रीड़ा का वर्णन करनेवाली सुन्दर केशयुक्त गोदा देवी द्वारा रचित इन दशक का मनन कर्ता पाप मुक्त होंगे।"११

विशेष :

इस पद में फलश्रुति वर्णित है।।।

पांचवीं श्री सूक्ति : मन्नुपेरुम्पुकल्

(कोयल से प्रार्थना)

गोदादेवी अपने उद्यान में नाना प्रकार के पक्षियो को भगवान के नाम संकीर्तन सिखाकर पाल रखा था। कूडल से प्रार्थना करने पर भी जब वह भगवान का साक्षात्कार न कर सकी तो अपने उद्यान मे पले कोकिल को माध्यम बनाकर अपने भाव व्यक्त करने लगी। "हे सुन्दर एव मधुर कोकिल, अपने मधुर कठ से मेरे प्रियतम श्रीमन्नारायण को इधर बुलाओ। यदि ऐसा करोगे तो अपने द्वारा पालित तोते को तुम्हारा मित्र बना दूंगी। तुमको क्षीरान्न खिलाऊंगी।" इतने पर भी कोकिल को मौन देख वह उसे अपने उद्यान से भगा देने की धमकी भी देती है।

कोकिल सबोधन से गूढार्थ भी लिया जाता है। जो आचार्य भगवान का साक्षात्कार करने मे समर्थ होते है वे पक्षी कहलाते है। इस सदर्भ मे यह उक्ति द्रष्टव्य है—

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते पुरुषोत्तमः ।।

अर्थात् जैसे पक्षी दो पखो से आकाश मे उड़ता है, इसी प्रकार ज्ञान व अनुष्ठान की सहायता से मनुष्य भगवान को प्राप्त कर सकता है। स्वयं ज्ञान और अनुष्ठान हीन व्यक्ति इन्ही आचार्यो को माध्यम बनाकर अपना सदेश भगवान तक भेजता है। विरहावस्था में नायिका भावापन्न आऴ्वार अपनी दशा को परमात्मा के पास निवेदन करने के लिये आश्रय अवश्य लेते हैं।

१. मन्नुपेरुमपुकऴ्....

भावार्थ :

पुन्नाग–माधवी–प्रियकु–सुरपुन्नागादि वृक्षो से भरे उपवन में निवास करने वाला हे कोकिल, अतुलित यश एवं नीलमणि सदृश कातियुत, रत्न जटित मुकुट धारी श्रियःपति प्रियतम से प्रेम करने के कारण ही मेरे हाथ के कंगन स्खलित हो गये। अर्थात् ये हाथ कंगन धारण करने लायक अब नही रहे। क्या ऐसा होना उचित है? प्रवाल सदश होंठवाले मेरे प्रियतम को शीघ्र इधर बुलाने के लिये बार बार उन्ही का नामोच्चारण करो।१

२. वेल्लैविलि....

भावार्थ :

मधुभरे चपक पुष्प का रसास्वादन कर मस्त गानेवाला हे कोकिल, कैंकर्य करनेवाले भक्तजनो को बुलाने निमित्त धवल शख को वामहस्त मे धारण किये हुए मेरे प्रियतम मुझे अपने दर्शन नही देते अपितु मेरे हृदय मे प्रवेश कर मनको अधिक शिथिल कर मेरे दुख से वे अधिक सतोष पा रहे है और वे मुझे मरने भी नही देते। तुम अपने मीठे मधुर वचनों से मेरे विरह को मत बढाओ, अपितु वेकटाचल मे सुशोभित मेरे प्रियतम को इधर बुलाओ।२

३. मातलि तेर्मुन्बु...

भावार्थ :

नव विकसित पुष्पो से भरे उपवन मे सुन्दर भ्रमरो के सुमधुर गीत सुनते हुए अपनी प्रियतमा के साथ विहारनेवाला हे कोकिल, मातलि रथ मे स्वय आगे आकर रथ हाककर मायावी रावण के समक्ष रथ को ले जाने पर, शर वर्षा कर रावण के मुण्डों को एक एक कर काट गिरानेवाले प्रियतम अभी तक नही आये।३

विशेष :

कोकिल की मधुर ध्वनि और कोकिला के साथ उसके विहार करने के दृश्य ने आण्डाळ के विरह को और अधिक उद्दीप्त कर दिया। इसीलिये कोकिल को सबोधित कर आण्डाळ जैसे कहना चाहती हो कि तुम अपने ही जैसे मुझे भी प्रियतम के साथ मिला दो।

मातलि इन्द्र का सारथी है। प्रसिद्ध है कि इसने कभी भी शत्रुओ के सामने खडे होकर युद्ध नही किया। ऐसा कायर मातलि भी रामचन्द्रजी के साथ होने के कारण रथ को रावण के सामने ले जाने मे समर्थ हुआ।

४. एन्बुरुकियिनवेल्....

भावार्थ :

हे कोकिल, मेरा शरीर अस्थि पिजर मात्र रह गया है। मेरी तीक्ष्ण बाण सदृश आंखों की पलके गिरती ही नही। मैं इस विरह जन्य दुःख सागर में बैकुण्ठ नामक नाव के अभाव मे भटक रही हूं। तुम भली भाति जानते हो कि प्रियतम से बिछुड़े रहने से कितनी विरह वेदना सहनी पड़ती है। अतः स्वर्ण सदृश शरीरयुत, गरुड ध्वज, साक्षात् पुण्य रूप मेरे प्रियतम को यहां बुलाओ।४

विशेष :

आण्डाळ का विचार है कि नित्य विरह गीत गानेवाला कोकिल ही उसके

समान विरही है। अतः वह उसके विरह दु.ख की प्रचण्डता को जान सकता है।

५. **मेन्नडैयन्नम्परन्दु...**

भावार्थ :

मंद गति हंसों की विहार-स्थली, दिव्य विल्लिपुत्तूर क्षेत्र मे सुशोभित भगवान के स्वर्ण पादो के दर्शन करने की अभिलाषा मे, परस्पर स्पर्धी मछलियो के सदृश मेरे नेत्र निद्रा से वचित हो गये है। हे कोकिल, तुमको क्षीरान्न खिलाकर पोषित अपने सुन्दर तोते को तुम्हारा मित्र बना दूँगी, बदले मे तुमको विश्व को नापने वाले प्रियतम को इधर बुलाना होगा।५

विशेष :

गुह ने श्री रामचन्द्र जी को गगा पार करने आदि मे अत्यधिक सहायता की। उसके लिये प्रभु राम ने लक्ष्मण के साथ गुह की मित्रता करायी।

"तस्मै सौमित्रिमैत्रीयमुपकृतवानातरम् नाविकाय"

वैसे ही आण्डाळ भी अपने लिये किये उपकार के लिये क्षीरान्न से पालित तोते से मित्रता कराने का वचन देती है।

नञ्जीयर के समक्ष नम्पिळ्ळै ने यह सदेह प्रकट किया कि पिछले पद मे वैकुण्ठ स्थित भगवान की प्राप्ति के लिये आण्डाळ का तडपना उचित है किन्तु आण्डाळ जब चाहे जाकर विल्लिपुत्तूर मे सुशोभित भगवान को देखकर आनन्द उठा सकती है। अतएव उसका यह कहना कहा तक उचित है कि मै विल्लिपुत्तूर भगवान के स्वर्ण सदृश चरणों को देखने के लिये तड़प रही हूं। जीयर ने उनका सदेह दूर करते हुए कहा "आपका यह सदेह स्वाभाविक ही है। परन्तु विल्लिपुत्तूर मे पैदा होने पर भी भगवान के दर्शन आण्डाळ के लिये सुलभ नही रहा। हम मंदिर मे जाकर भक्ति न होने के कारण बिना चित्त विकार के पत्थर सदृश ही वापस आ जाते है। परन्तु आण्डाळ के सरक्षको को यह शका थी कि भगवान के दर्शन करते ही वह उन्मत्त हो जायगी। इसलिये ही उन्होने उसके मदिर जाने पर बधन लगा दिया था। अतएव आण्डाळ की अभिलाषा सर्वथा उचित ही है।

६. **एत्तिसैयुममरर्....**

भावार्थ :

विकसित पुष्पो के मध्य बगीचे के सुन्दर अंचल मे शयन करनेवाला हे नन्हे कोकिल, चतुर्दिशाओ के देवो से पूजित हृषीकेश दर्शन न देकर सता रहे है। इसलिये ही मेरे मोती सदृश शुचि स्मित रक्ताधर एव स्तन आदि अपना सौन्दर्य खो बैठे है। मेरे प्राणाधार तत्त्व को यदि बुलाओगे तो मै आजीवन अपने सिर को

तुम्हारे पैरो मे रख कर कृतज्ञता प्रगट करती रहूगी। इसके अतिरिक्त मै कर भी क्या सकती हू।६

७. पोगिय....

भावार्थ :

हे सुन्दर कोकिल, तरगित क्षीर सागर मे शयन करनेवाले प्रियतम से परिरभ करने निमित्त अत्यधिक उत्साहयुक्त ये पीन पयोधर अब संश्लेष न होने के कारण वे ही मेरी आत्मा को आकुल कर रहे है। मुझसे छिपकर रहने से क्या लाभ है? शख चक्र गदा से सुशोभित प्रियतम को यदि बुलाओगे तो तुम्हे पुण्य प्राप्त होगा।७

८. शार्ङ्ग...

भावार्थ :

मधुर आम्र फलो से भरे उपवन मे रक्त किसलय को चुगनेवाले हे शिशु कोकिल, शार्ङ्ग धनुप चलाने मे प्रवीण, दीर्घ बाहु, मेरे प्रियतम प्रणय रीति मे भी दक्ष है। प्रियतम से मिलन के समय हमारे बीच हुई गुप्त बातो को केवल हम दो ही जानते है। मेरे उस प्रिय पति को यदि तुम बुलाओगे तो देख सकोगे कि मैं क्या करती हू।८

विशेष :

आण्डाळ ने यह निश्चय कर लिया है कि प्रियतम के आने पर वह प्रणय रोष प्रकट करेगी और जैसे उसने उसको तडपाया है वैसे ही उसे तड़पायगी। प्रत्युपकार मे यही दृश्य कोकिल को भी दिखाना चाहती है।

९. पंकिलि....

भावार्थ :

मधुपान से मस्त भ्रमरो द्वारा गुँजित वाटिका मे आनन्द विहार करनेवाला हे कोकिल, मेरे वचन जरा ध्यान से सुनो। या तो शख चक्रधारी भगवान को यहां बुलाओ अथवा मेरे स्वर्ण कंकन को लाकर पहना दो। यदि तुम इस वाटिका मे निवास करना चाहते हो तो इन दोनों मे से एक कार्य तुमको करना ही पड़ेगा। मैं तो मनोहर शुक सदृश वर्णवाले श्रीधर नामक जाल मे फस गई हू।९

विशेष :

"कगन पहना दो" मे लक्ष्यार्थ है। कगन पहनना तभी सभव है जब आण्डाळ का कृश हुआ हाथ पुनः पुष्ट हो जाय और यह तभी सभव है जब स्वय कृष्ण आकर उससे मिल जायँ।

१०. अन्रलकमलन्दानैयुगन्दु....

भावार्थ :

तीनो लोको को नापनेवाले, त्रिविक्रम भगवान की सेवा करना चाहती हू, परन्तु उस सौभाग्य से मै वचित हू। मेरी इस विरहावस्था से लाभ उठाकर दक्षिण पवन और चन्द्र मेरे शरीर का भेदन कर मुझे जो कष्ट दे रहे है वह कहा तक न्याय सगत है। ऐसे समय हे कोकिल तुम भी सदा इस वाटिका मे रहकर मुझे और मत सताओ। यदि तुम श्रीमन्नारायण को यहा नही बुलाओगे तो तुमको अवश्य यहा से भगा दूगी।१०

११. विण्णूर....

भावार्थ :

आकाश तक चरण बढाकर विश्व को नापनेवाले त्रिविक्रम भगवान पर से प्रेम करनेवाली स्वर-प्रधान चतुर्वेदाध्ययन मे रत श्री वैष्णवों से भरे श्री विल्लिपुत्तूर के स्वामी श्री विष्णुचित्त की पुत्री, तीक्ष्ण अस्त्रवत् सुन्दर नेत्रा गोदा देवी द्वारा, कोकिल से कहे गये इन वचनों को कि "हे कोकिल, सागर वर्णवाले प्रियतम को इधर बुलाओ" का अध्ययन करनेवालो के मुख मे सर्वदा यह वचन निकलेगा "नमो नारायणाय"।११

विशेष :

भगवान के कैंकर्य करने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले भक्त सदा "नमो नारायणाय" कहकर स्तुति करते है। गोदा द्वारा रचित इन प[द्यों] का अध्ययन करने वाले उस "नमोनारायणाय" कहने का फल पायेगे।

छठी श्रीसूक्ति : वारणमायिरम्

पूर्व श्री सूक्ति मे आण्डाळ ने कोकिल से प्रार्थना की कि मुझे अपने माधव के साथ मिला दो। परन्तु उसका कुछ प्रभाव नही पडा। उनके प्रियतम का उद्देश्य भी आण्डाळ की विरह वेदना को और भी उद्दीप्त करना ही रहा हो, एतदर्थ आण्डाळ से उनका साक्षात्कार नही हुआ। आण्डाळ विरह ताप के कारण क्षणमपि जीवित न रहेगी, यह जानकर प्रियतम ने उसको स्वप्न मे विवाहोत्सव के सभी अंगों का दर्शन दिये। यहा कठोपनिषद् का यह आप्त वचन स्मरण करने लायक है—जीवो के सुप्तावस्था मे रहने पर भी परब्रह्म पदार्थों को अपनी स्वेच्छा से सृष्टि कर जागता रहता है।

एष सुप्तेषु जागर्ति कामम् कामम् पुरुषो निर्मिमाणः।१

आण्डाळ स्वप्न में भगवान के साथ विवाह होने के दर्शन कर उस दिव्य दर्शन को अपनी सखी से कहती है।

१. **वारणमायिरम्....**

भावार्थ :

हे सखी मैंने स्वप्न देखा कि श्रीमन्नारायण सहस्रों हाथियों से परिवृत नगर मे आ रहे है। मार्ग मे सर्वत्र तोरण बंधे हुए है। सभी लोग जल-पूर्ण, स्वर्ण-कलश लिये अगवानी कर रहे हैं ।१

२. **नाळै वदुवै....**

भावार्थ :

स्वप्न में सखी, मैने देखा, सबने आपस मे विचार विमर्श करके यह निश्चय किया कि कल शुभ-विवाह सम्पन्न करेगे। कदली, पूंग आदि से विवाह मडप सुशोभित था। इस मडप मे नृसिह, माधव, गोविन्द प्रभृति नामवाले अति-सुन्दर पुरुष ऋषभ को प्रविष्ट होते देखा।२

विशेष :

वदुवै–तिलकोत्सव, मणम्–पाणिग्रहण सस्कार । इन दोनो शब्दो मे विशेप अन्तर है। इन दोनो शब्दो को एक साथ ही प्रस्तुत होना असगत नही है। तमिल टीकाकारो ने दोनो को पर्यायवाची माना है।

३. **इन्दिरनुल्लिट्ट....**

भावार्थ :

सखी मैने स्वप्न देखा, इन्द्रादि देवगण पधारे है। उन्होने मेरे माता-पितासे प्रार्थना की कि वे अपनी सुपुत्री के साथ श्रीमन्नारायण का शुभ-पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न कर दे। स्वयं गिरिजा ने ही विवाह के शुभ अवसर पर अपने हाथो से माला तथा मंत्र-वस्त्र पहनाये।३

विशेष :

तमिलनाड़ मे वधू को मंत्र वस्त्र पहनाने का अधिकार ननद को है। कृष्ण को वर रूप में वरण करनेवाली आण्डाळ को दुर्गा ननद ही है । उल्लेखनीय है कि श्री कृष्ण और दुर्गा का जन्म एक साथ ही हुआ था । कस ने जब दुर्गा का, वसुदेव की सतान समझकर वध करना चाहा तो वह अन्तर्धान हो गई। अतः तमिल मे यहां उसको "अंतरी" कहा गया है।

मंत्र वस्त्र का अर्थ है वधू को विवाह के समय पहनाये जानेवाला मगल वस्त्र ।

४. **नारिसैतीतम्...**

भावार्थ :

सखी, मैंने स्वप्न में देखा कि वेदाभ्यासी अनेक ब्राह्मणोत्तमो ने चतुर्दिक

मे तीर्थ जल लाकर हम वर-वधुओं पर प्रोक्षण कर दिया। वेद-मत्रो से हमे आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त माधव के हाथ के साथ मेरे हाथ मे भी रक्षासूत्र बाध दिया गया।४

५. कदिरोलिदीपम्....

भावार्थ :

हे सखि मैने स्वप्न देखा, चारुमुख परिया प्रकाशमान दीपो तथा स्वर्ण कलशो को हाथ में लियें प्रियतम का स्वागत करने आई है। उस समय मथुरा के अधिपति ने गभीर चाल से प्रवेश किया।५

६. मत्तलम्....

भावार्थ :

हे सखी मैने स्वप्न देखा, मुक्ताओ से शोभित मडप मे रेखाकित शख, मृदंग आदि बज रहे थे। मेरा प्रियतम (फुफेरे का लड़का) मधुसूदन, भगवान श्री कृष्ण ने आकर मेरा पाणिग्रहण किया।६

७. वाय् नल्लार....

भावार्थ :

हे सखी मैने स्वप्न देखा, वेदाध्यायी सस्वर वेद पाठ कर रहे है। मत्रोच्चारण के साथ हरित कुशो से चारो तरफ परिस्तरण करके समिधो से आहुति देकर, गज सम चाल वाले प्रियतम ने मेरा हाथ पकडकर अग्नि-परिक्रमा की।७

विशेष :

अग्नि परिक्रमा करते समय यह वेद मत्र सस्वर गाया जाता है।

"एकमिषेविष्णुस्त्वान्वेतु"। एकाग्निकाण्ड

अर्थात् "भगवान विष्णु तुमको एक पद दूर ले जावे––"

आण्डाळ के पाणिग्रहण के समय यह मत्र स्वतः सत्य सिद्ध होता है क्योंकि स्वय भगवान (विष्णु) श्री कृष्ण उसका हाथ पकडकर आगे ले जाते है।

८. इम्मैक्कुम्.....

भावार्थ :

हे सखी मैने स्वप्न देखा, जनम जनम के हमारे रक्षक, आराध्यदेव श्रीमन्नारायण ने अपने सुन्दर हाथों से मेरे चरणों को पकड़कर सिल पर रखा।८

विशेष :

विवाह के इस कार्यक्रम को अश्मारोहण कहते है। विवाहोपरान्त उस दिन संध्या समय वर को, वधू के पैर को उठाकर सिल पर रखने को कहा जाता है और ऐसा करने के बाद दोनो अरुन्धती नक्षत्र का दर्शन करते है।

९. वरिसिलै....

भावार्थ :

हे सखी मैने सपना देखा, धनुष सदृश भ्रू एव सतेज मुखवाले मेरे भ्राताओं ने, मुझे और प्रियतम को अग्नि कुड के आमने सामने खड़ा करके नृसिह रूप श्री कृष्ण के हाथो पर मेरा हाथ रखकर होम कराया।६

विशेष :

प्रयोगचन्द्रिका नामक ग्रथ के विवाहोत्सव अध्याय मे "लाज होम" के बारे मे वताया गया है कि पत्नी के भाई द्वारा धान की लाई को वर, वधू के हाथ में गिराकर अग्नि मे डालकर लाज होम करना चाहिए। इसका उद्देश्य पति और पत्नी से हास परिहास करना एव दोनों मे निकटतम सपर्क स्थापित करने का प्रयत्न ही है।

१०. कुंकुममप्पिक्कुलिर्सान्दर्मट्टित्तु....

भावार्थ :

हे सखी मैने स्वप्न देखा, हमारे शरीर पर शीतल चदन, कुकुम आदि का लेपन करके, हम दोनो को हाथी पर बिठाया गया। इस प्रकार नगर की अलकृत वीथियो से परिक्रमा कराने के उपरान्त हमे सुगन्धित जल से स्नान कराया गया।१०

विशेष :

दक्षिण भारत मे वर, वधु को नगर के सज्जनो से परिचित कराने के लिये नगर की परिक्रमा कराने का विधान है। परिक्रमा के बाद कराये जाने वाले स्नान को वसन्त स्नान कहते है।

११. आयनुक्नाक....

भावार्थ :

भागवतो से संस्तुत श्री विल्लिपुत्तूर के स्वामी की पुत्री आण्डाळ द्वारा विरचित, उसके कृष्ण के साथ सपन्न विवाह सबधी तमिल के इन स्वप्न गीतो का अध्ययन करने वाले, गुणवान् तथा सुन्दर सतानो को पाकर आनदित होगे।।११

विशेष :

यह इस दशक की फल श्रुति है। आज भी वसन्न स्नान के पूर्व वैष्णव विवाहों में स्त्रियां वेद मंत्र की तरह इन गीतों का भक्ति श्रद्धा के साथ गायन करती है।

सातवीं श्रीसूक्ति : करुप्पूरं नारुमो

आण्डाळ ने प्रियतम का स्वप्न मे साक्षात्कार किया। उनको प्रियतम के साथ पाणिग्रहण का दिव्य अनुभव तो प्राप्त हुआ परन्तु यह दिव्यानन्द अल्प काल तक ही रहा। स्वप्न के उपरान्त विरह दुःख पहले से अधिक हो गया। उसे स्मरण आया कि प्रियतम का अधरपान करनेवाला पांचजन्य शख उनका नित्यसश्लेष कर रहा है। उस शख का मानसिक साक्षात्कार करके उससे ईर्ष्या वश पूछती है "हे शख, बताओ, प्रियतम के अधर की गंध कैसी है और अधरामृत का स्वाद कैसा है। तुम कितने भाग्यवान हो। गभीर सागर मे जन्म लेकर आज भगवान के कर कमलो मे सुशोभित हो रहे हो। कमलपुष्प के मधु पीने वाले हस की तरह तुम सदा प्रियतम के हाथ मे ही रहकर अधरामृत का पान कर रहे हो। तुम्हारे समान ही हम यहा सोलह हजार सखिया उनके अधरामृत का पान करना चाहती है। हम सब के पान करने के वस्तु का उपभोग केवल तुम्ही कर रहे हो, इसे हम कैसे सहन करेगी।

१. **करुप्पूरम्....**

भावार्थ :

हे गभीर धवल शख, कुवलयापीड हाथी के दात तोड़नेवाले श्री कृष्ण के अधर का स्वाद एव उसके सुगध के सबध मे अधिक उत्कठा होने के कारण पूछती हू, कहो कि सुन्दर प्रवाल सदृश प्रियतम का अधर कर्पूर के समान सुगधित है या कमल पुष्प की तरह गंधयुक्त है या मधुरतम है? १

२. **कडलिल् पिरन्दु....**

भावार्थ :

हे श्रेष्ठ शख, समुद्र मे उत्पन्न होकर पचजन नामक असुर के पेट मे पलकर जनम स्थल व वासस्थल को भूलकर प्रियतम भगवान के कर तल मे आरुढ़ होकर असुर के हृदय को आतकित करने के लिये उच्च ध्वनि में जयनाद करते हो।२

विशेष :

क्षुद्र स्थान में जन्म लेकर, निकृष्ट स्थल मे पलकर भगवान के करकमलो में शंख ने अपना वासस्थान बना लिया। उसके इस महा भाग्य पर आण्डाळ को ईर्ष्या क्यों न हो।

३. **तडवरैयिन्मीदे....**

भावार्थ :

पूर्णिमा के दिन पर्वत के शिखर पर उगते हुए शरत् कालीन चन्द्र के सदृश

सुन्दर हे श्रेष्ट शख तुमने भी उत्तर मथुराधीश वासुदेव के हाथ मे अपना निवास स्थान बना लिया ?

४. चन्दिर मण्डलम्....

भावार्थ :

हे वलम्पुरी नामक शख, दामोदर भगवान के हाथ मे स्थित चन्द्र मडल की तरह उनसे क्षण मात्र भी अवियुक्त न होकर तुम उनके कान मे कदाचित् कोई रहस्य सुना रहे हो। ऐश्वर्य में इन्द्र भी तुम्हारे सदृश नही है।४

विशेष :

मदा भगवान के हाथ मे वास करने से भक्तो को ऐसा दीखता है मानो शख भगवान के कान मे यह कह रहा हो कि आपके वियोग मे अनेक लोग तडप रहे है। आण्डाळ का यह कहना कि इन्द्र से शख ऐश्वर्यवाला है, अतिशयोक्ति नही है। यहा पेरियवाच्चान पिळ्ळै का कथन द्रष्टव्य है—अपने आराध्य देव को ही आण्डाळ यहा इन्द्र कहती है। भगवान का स्वातत्र्य ऐश्वर्य, शंख के पारतत्र्य ऐश्वर्य (भक्तों का ऐश्वर्य) के सामने फीका पडता है।

५. उन्नोडुडने...

भावार्थ :

हे पाचजन्य, सागर मे तुम्हारे ही समान कितने ही पदार्थ है। उनकी तरफ ध्यान तक देने वाले कोई नही। परन्तु एक तुम हो कि भगवान मधुसूदन के अधरामृत का नित्य पान कर रहे हो।५

६. पोय्तीर्तमाडादे....

भावार्थ :

हे वल्मम्पुरी शख, जाकर पुण्य तीर्थो मे स्नान करने का कष्ट किये विना ही, यमल्लार्जुन वृक्षों को तोडनेवाले श्री कृष्ण के करो मे आरूढ होकर वही पर नित्य निवास करते हो और तीर्थराज कमलनयन भगवान के अधरामृत मे ही पान करते रहते हो। तुम कितने भाग्यशाली हो।६

७. सेकमलानाण्मलर्मेल्....

नव विकसित रक्त कमल का मधु पान करनेवाले हस की तरह अरुण नयन श्यामसुन्दर श्री वासुदेव के मुन्दर करो मे आनन्द निद्रा लेनेवाले शखराज तुम्हारा ऐश्वर्य सर्वोत्कृष्ट है।७

८. उण्पदु....

भावार्थ :

हे पांचजन्य, तुम्हारा भोजन है त्रिविक्रम भगवान का अधरामृत। तुम्हारा

शयन गृह सागर वर्णवाले भगवान का कर स्थल है। सारा स्त्री वर्ग ही तुम्हारे ऊपर दोषारोपण कर रहा है। तुम अधिक ही अनुचित कार्य करते हो।८

विशेष :

आण्डाळ सोचती है कि खारे समुद्र से उत्पन्न शख की वुद्धि भी दूषित ही होगी। उसे अधर पान अकेले नही करना चाहिए । कहा भी गया है "एक-स्वादु न भुजीत" अर्थात् किसी भी स्वाद का भोग अकेले नही करना चाहिए।

९. पदिनारु....

भावार्थ :

हे सर्वगुणसम्पन्न शंख, सोलह सहस्र देविया प्रियतम का अधरपान करने के लिये आतुर है। उन सबके सामने ही यदि तुम अकेले माधव के अधरामृत का पान करोगे तो वे तुम्हारे साथ कलह प्रारभ कर देगी।९

१०. पांचजन्नियत्तै....

भावार्थ :

भगवान पद्मनाभ के साथ पांचजन्य को भी सबधित करके विरचित सुन्दर श्रीविल्लिपुत्तूर के यशस्वी पेरियाल्वार की पुत्री गोदा देवी के इन दस तमिल् पदो का अध्ययन करने वाले पांचजन्य की तरह ही भगवान से मिलकर सेवा करने का भाग्य प्राप्त करते है।१०

विशेष :

यह फलश्रति का पद है।

आठवीं श्रीसूक्ति : विण्णील मेलाप्पु

विरहियों को सतानेवाला वर्षाकाल भी आ गया। सुन्दर काले काले वादल आकाश में गरजने लगे जिनके दर्शन से आण्डाळ भगवान के रूप तथा उनके दिये वचन का स्मरण करके तड़पने लगी। वह उन्हीं बादलो से पूछने लगी "हे बादल क्या मेरे प्रियतम धर आ रहे है ? विरह दुःख के कारण मै अधिक कृश काय हो चुकी हूं। इस प्रकार मुझे सताने से उनको क्या लाभ है? प्रियतम का नाम स्मरण मात्र करके कैसे मै जीवित रह सकूंगी। उन्होंने मेरे शरीर मे प्रवेश कर मुझे निःसार कर दिया है । यदि प्रियतम एक दिन मेरे पास आकर मेरा आलिंगन करे तो मैं जीवित रह सकूँगी । आश्रितों की रक्षा यदि वे नहीं कर सकेंगे नारी हत्या का दोष लगेगा और संसार मे उनकी अपकीर्ति फैल जायगी। मैं इस अपयश से उन्हें बचाना चाहती हूं। हे बादल, तुम जाकर मेरा संदेश सुना दो।

१. विण्णीलमेलाप्पु....

भावार्थ :

आसमान मे फैले हुए नीलवर्ग वितान के सदृश दिखाई देने वाले हे बादलो, निर्मल वारि-धाराओ से आवृत वेकटाचल के विहारी मेरे प्रियतम भगवान क्या इस तरफ आये है? क्या अश्रु प्रवाह से मेरे विनष्ट हो रहे स्त्रीत्व के कारण उनके गौरव पर कलंक नही लगेगा? १

विशेष :

नीलवर्ण वादलो के वितान के माध्यम से आण्डाळ शेष नाग के फण को व्यजित करती है जिसके नीचे भगवान विष्णु शयन करते है

२. मामुत्त....

भावार्थ :

सुन्दर मुक्ताराशि की वर्षा करने वाले हे बादल, श्री वैकटाद्रिनाथ श्यामसुन्दर का क्या कोई विशेष सदेश है? कामाग्नि मेरे शरीर के अन्दर प्रवेश कर मुझे दग्ध कर रही है। इसके अतिरिक्त मै अर्धरात्री मे चलने वाले दक्षिण पवन के कारण और भी दु.ख भोग रही हू। मै क्या करू? २

३. ओलिवण्णम्....

भावार्थ .

हे दयामयी बादल, देह की काति, वर्ण, वलय, मन, निद्रा ये सब मेरी दैन्यावस्था देखकर मेरी उपेक्षा कर मुझे और क्षीण बनाकर दूर चले गये हैं। शीतल निर्झरो से शोभित श्री वैकटाद्रि नाथ के मात्र गुण गाकर कैसे मै अपनी आत्म रक्षा कर सकूँगी? ३

४. मिन्नाकत्तेलुकिन्र....

भावार्थ :

विद्युत प्रकाश से शोभायमान हे बादलो, श्री महालक्ष्मी के आश्रय रूप वक्ष स्थलवाले वेकटाद्रिनाथ भगवान से मेरी यह बिनती कहना कि मेरे ये बालस्तन उनके साथ आलिगन के लिये अधिक उत्सुक रहते है।४

विशेष :

पेरियवाच्चान पिळ्ळै की उक्ति यहां द्रष्टव्य है। सीताजी के विरह मे तड़पते समय जटायु पक्षी को देखकर जैसे श्री राम आनदित हुए, वैसे ही विरह संतप्त आण्डाळ बादलों को देखकर प्रियतम से साक्षात्कार होने की अभिलाषा मे आनंदित होती है।

५. वान्कोण्डु....

भावार्थ :

आसमान में सर्वत्र व्याप्त वेकटाद्रि के मधुपूर्ण पुष्पो को विनष्ट करते हुए बरसनेवाले हे काले बादलो, अपने अतितीक्ष्ण नखो से हिरण्यासुर का वध करनेवाले भगवान से कहो कि जिन चूडियो को मुझसे अपहृत करके ले गये हैं उनको लौटा दे ।५

विशेष :

चूडियां वियोग मे शरीर के कृश हो जाने के कारण स्वय गिर गई है। उन्हे वापस करने का भाव प्रकारातर से यह व्यजित होता है कि भगवान आकर उसके साथ संश्लेष करे। शरीर की, पहले जैसी स्थिति तभी सभव है।

विरह को उद्दीप्त करनेवाले पुष्पो को विनष्ट होते देख आण्डाळ को प्रसन्नता होनी चाहिए। किन्तु उसे प्रियतम से साक्षात्कार की पूर्ण आशा है और वह चाहती है कि ये पुष्प मिलन की वेला मे आनन्द का उपकरण बने।

६. चलंकोण्डु....

भावार्थ :

राजा वलि से भूमि को अपहृत करनेवाले भगवान के निवास स्थान वेकटाद्रि मे वरसनेवाले, समुद्र के जल से युक्त गगन विहारी शीतल बादलो, कीडो से खाये हुए कपित्थ फल के सदृश ही मेरे प्रियतम ने हृदय के अन्दर प्रवेश कर मेरे सर्वस्व का अपहरण कर दिया है। कृपया उनसे मेरी मानसिक वेदना सुना दो।६

७. शंगमाकडल....

भावार्थ :

शखो से सुशोभित समुद्र का मथन करनेवाले भगवान का नित्य निवास स्थान वेकटाद्रि के शीतल बादलो, कमलनयन भगवान के दिव्य चरणो मे मेरा यह नम्र निवेदन सुना देना कि एक दिन यहा पधारकर मेरा गाढालिगन करके मेरे स्तनो पर लगे हुए सारे कुकुम लेप को मिटा दे, तभी मेरा जीवित रहना सभव है।७

विशेष :

तमिल प्रदेश मे कुकुम चदन आदि से अपने स्तनो को चित्रित करने की प्रथा प्राचीन काल मे थी। इस प्रकार के चित्रण के द्वारा आण्डाळ वासक सज्जा नायिका की भाति प्रियतम से मिलने की उत्कंठा व्यक्त करती है।

८. कारकालत्तु....

भावार्थ :

वर्षाकाल मे श्री वेकटाद्रि मे छाये हुए हे बादलो, मै विजेता श्री रामचन्द्र

जी का गुण गान सदैव करती रहती हूं। क्या वे वर्षाकाल मे शिथिल होकर गिरने-वाले अर्कपत्र की तरह रहनेवाली मुझ अवला के लिये इस लबी अवधि मे कोई अनुग्रह पूर्ण सदेशा नही भेजेगे ?८

विशेष :

ग्रीष्म काल मे सूखे हुए अर्क पत्र, वर्षा काल की बूंदो से आहत होकर नीचे गिर जाते हैं ठीक उसी तरह विरह में दुखित आण्डाळ नाम स्मरण से और अधिक वेदना का अनुभव करती है।

९. **मदयानैपोलेलुन्द....**

भावार्थ :

वेंकटाद्रि में नित्य निवास करनेवाले हे मत्तगज गामी काले बादलो, शेषशायी भगवान के वचन क्या असत्य हो गये ? यदि वे आश्रितो की रक्षा करने के स्वभाव को भूलकर एक अबोध बालिका का वध कर डालेगे तो निश्चित रुप से स्त्री घातक के नाम से अपयश पायेंगे फिर कौन उनका सम्मान करेगा ? ६

१०. **नागत्तिन्....**

भावार्थ :

पूर्ण रूप से भगवदनुभव पानेवाले श्रीविल्लिपुत्तूर के नायक पेरियाळ्वार की, सुन्दर ललाट से सुशोभित सुपुत्री आण्डाळ द्वारा शेषशायी वेकटाद्रि भगवान के अनुराग वश गाये गये मेघदूत से संबंधित इन तमिल् पदो को सच्चे हृदय से गानेवाले भगवान का नित्य कैंकर्य करने का फल पायेंगे।१०

नवीं श्री सूक्ति : सिन्दुरच् चेम्पोडिप्पोल

आण्डाळ ने पूर्व दशक मे उमडते हुए वादलों से प्रार्थना की कि उसकी विरह दशा का सदेश प्रियतम तक पहुचा दे। परन्तु बादलो ने उसकी प्रार्थना नही सुनी, उल्टे पानी बरस गया। वर्षा के कारण सर्वत्र पुष्प विकसित हो गये। इन्द्रगोप, कोयल, मयूर, आदि सर्वत्र दिखाई पड़ने लगे। अपने आराध्यदेव की याद दिलानेवाले पुष्पो और पक्षियों के दर्शन से आण्डाळ की विरह वेदना और भी उद्दीप्त हो गई। इस नवी श्री सूक्ति मे इस अवस्था के ही चित्रण है।

१. **सिन्दुर....**

भावार्थ :

तिरुमालिरुम सोलै क्षेत्र मे सर्वत्र सिन्दूर चूर्ण सदृश इन्द्र गोप कीट ही फैले हुए हैं। मदर पर्वत के द्वारा मंथन कर क्षीर सागर से सारतम वस्तु निकालने वाले सुन्दर बाहु प्रियतम के माया जाल से कैसे बच सकती हूं।१

विशेष :

यहा सारतम का तात्पर्य लक्ष्मी से है। देवो ने समुद्र का मथन कर अमृत को पाया। अमृत से भी मधुर सार रूप महालक्ष्मी को भगवान ने प्राप्त किया।

२. **पोक्कंलिरुपोरुम्....**

भावार्थ :

युद्ध प्रवीण मत्त गजों से घिरे तिरुमालिरुम सोलै पर्वत के सुन्दर तलहटी मे विकसित यूथिका पुष्प, श्री सुन्दर बाहु भगवान के धवल मुस्कान की याद दिला रहे है। इन सब की मुस्कान मानों यह सकेत दे रही है कि तुम हमारे चगुल से बच नही सकती। प्रियतम द्वारा धारण की हुई माला को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा के कारण ही मुझे यह अपमान सहन करना पड़ रहा है। उसे मै किससे कहू ? २

३. **करुविलैयोण्मलर्काल्....**

भावार्थ :

हे सुन्दर काकण एव अतसी पुष्पो, तुम मुझे प्रियतम की काति का स्मरण दिला रहे हो। मुझे इससे बचने का मार्ग बतलाओ। महालक्ष्मी के क्रीडा-स्थल रूपी दृढ भुज से सुशोभित तिरुमालिरुम् सोलै के नाथ ने मेरे यहा आकर हठात् मेरी चूड़ियो का अपहरण कर लिया। ऐसा करना क्या उचित है? ३

४. **पैम्पोलिल्....**

भावार्थ :

विशाल वाटिका मे रहने वाले हे कोकिल पक्षियो, हे मयूरो, हे सुन्दर काकण पुष्पो, हे कला फलो, हे मनोहर रगवाले अतसी पुष्पो, तुम सब पंच महा पातक हो। सुन्दर तिरुमालिरुम सोलै मे विराजमान मेरे भगवान का वर्ण तुम लोगो को किस उद्देश्य से प्राप्त हुआ ? ४

विशेष :

पुष्प, पक्षि आदि प्रियतम की शोभा का स्मरण दिलाकर आण्डाळ को और सता रहे हैं। इसीलिये ही इनको पच महा पातक के नाम से संबोधित करती है।

५. **तुंगमलपोलिल्....**

भावार्थ :

पुष्पित वनों से भरे तिरुमालिरुम सोलै में शोभायमान कमलाक्ष मेघश्याम भगवान की दिव्य मूर्ति सदृश पुष्पोविष्ट हे भ्रमरों के समूह, हे सुन्दर सरोवर, उनमें विकसित कमल पुष्पो, मुझे इस दुःख से बचने का उपाय बतलाओ।५

६. नारु....

भावार्थ :

सुगधित वनस्थलियो से भरे तिरुमालिरुम सोलै मे शोभायमान अपने आराध्यदेव को मैने शाब्दिक रूप से सौ घडे मक्खन सर्मपित किया है। सौ घडो का क्षीरान्न अर्पित किया है। क्या प्रारूढ श्री प्रियतम यहा पधारकर मेरे इस भोग को स्वीकारेगे ? ६

विशेष :

आण्डाळ अति विरहावस्था मे भी प्रियतम को भोग सर्मपित कर सेवा करना चाहती है। वास्तविक रूप मे सेवा कर सकने मे असमर्थ होने के कारण, वह मक्खन, क्षीर आदि मात्र शाब्दिक रूप से सर्मपित करती है।

कहा जाता है कि एक बार श्री रामानुजस्वामी नाच्चियार तिरुमोलि पर प्रवचन कर रहे थे। इस सूक्ति के विषय मे उन्होने कहा कि आण्डाळ भगवान को भोग देना चाहती थी, पर अत्यधिक विरह के कारण मात्र मानसिक सेवा ही कर सकी। हमारा कर्त्तव्य है कि उसकी मनोभिलाषा को पूरा करे। इतना कहकर प्रवचन को स्थगित करके तिरुमालिरुम सोलै पधारकर सुन्दर बाहु भगवान को सौ घडा मक्खन का तथा सौ घड़ा क्षीरान्न अर्पित किया। जब स्वामी जी श्रीविल्लिपुत्तूर पधारे तो आण्डाळ बालिका के रूप में प्रगट हुई और कहा कि आपने मेरी इच्छा पूरी की है। आप मेरे बडे भाई है। तब से स्वामी जी गोदाग्रज कहे जाते है।

७. इन्रु....

भावार्थ :

मलय मारुत से सुगधित तिरुमालिरुम सोलै मे सुशोभित सुन्दर बाहु भगवान यदि यहा आकर मेरी इस सेवा को स्वीकार कर लेगे और मेरे हृदय मे निवास करेगे तो उसको एक एक घडे के स्थान पर सौ सौ घडे का भोग सर्मपित करूगी, उसके अतिरिक्त उनकी चाकरी भी करूगी। ७

८. कालै....

भावार्थ :

प्रातः काल ही उठकर काले रगवाले (गोरैये) पक्षी समूह तिरुमालिरुम् सोलै के नाथ, द्वारिकाधिपति एव वटपत्रशायी का नामोच्चारण कर रहे है। क्या इससे प्रियतम के आने की सूचना मिलती है ८

विशेष :

कुछ विशेष पक्षियों का प्रात.काल चहचहाना किसी प्रिय जन के आगमन की सूचना है।

९. कोंकलरुम्....

भावार्थ :

मै पुष्पित तिरुमालिरुम सोलै पर्वत के कोन्रै वृक्षो (कनेर) पर लटकने वाले स्वर्णिम पुष्पो की तरह व्यर्थ पडी हूं। अधर पर रखकर बजाये जानेवाले पांचजन्य शंख की ध्वनि तथा शार्ग नामक धनुष की टकार को सुनने का सुअवसर मुझे कब प्राप्त होगा।९

विशेष :

तिरुमालिरुम सोलै पर कोन्रै वृक्ष अधिक होते है। वर्षा काल मे इनमे सुन्दर व सुगधित पुष्प गुच्छ लटकते दीखते है। ये पुष्प भगवान शिव को ही चढाये जाते है। इन पुष्पो का उपयोग भगवान सुन्दर राज के मदिर मे न होने के कारण वे व्यर्थ हो जाते है। प्रियतम से अलग अपना कोई महत्त्व न होने के कारण आण्डाळ अपने को भी इन पुष्पो की भांति ही व्यर्थ बतलाती है।

१०. शन्दोडु....

भावार्थ :

चन्दन एव अगरु वृक्षो को लेकर किनारो को विनष्ट करते हुए बहनेवाली नूपुर गंगा के तट पर सुशोभित तिरुमालिरुम सोलै मे विराजमान सुन्दर बाहु भगवान को संबोधित कर भ्रमर मडित केशवाली आण्डाळ से कहे गये इन दस तमिळ गाथाओ को गानेवाले श्रीमन्नानारायण के पादारविन्द को प्राप्त करेंगे।१०

इस पद मे फलश्रुति वर्णित है।

दसवीं श्री सूक्ति : काक्कोंडल पूक्काळ

अपने प्रियतम को प्राप्त करने के लिये आण्डाळ ने विभिन्न पुष्पो एव पक्षियो से निवेदन किया, परन्तु फल प्राप्ति नही हुई। भगवान के रूप सदृश अनेक पुष्प विकसित होकर आण्डाळ को अपने प्रियतम की याद दिला रहे थे। आण्डाळ इस दशक में अपनी विरह व्यथा को उन पुष्पो के माध्यम प्रकट करती है।

१. कार्कोडल

भावार्थ :

हे कोडल पुष्पो, नीलाब्धि वर्ण श्री कृष्ण कहा है ? क्या उन्होंने तुम सब को युद्ध के लिये सजाकर मेरे ऊपर आक्रमण करने हेतु भेजा है? तुम सबसे पीडित मै किसके पास जाकर अपनी विरह व्यथा को सुनाऊं। आह मै क्या करू। प्रियतम द्वारा धारण की हुई माला के प्रति आसक्त होने के कारण मेरी यह स्थिति हो गई है।१

विशेष :

बेचारी आण्डाळ अपनी विरह व्यथा को किसी से सुनाना चाहती है।" "बोधयन्तः परस्पर" से मन का भार हल्का-होता है। परन्तु सुनावे तो जाकर किसके पास ?

२. मेल्तोन्रि....

भावार्थ :

समस्त लोको को पार कर दिव्य ज्योति रूपी परमपद मे शोभायमान, वेदस्वरूप श्रीमन्नारायण के दाहिने हाथ मे स्थित सुदर्शन की तीव्र ज्योति सदृश, ऊर्ध्व मुखी पुष्पो, मुझे दग्ध किये बिना कैवल्य निष्ठो की गोष्ठी मे पहुंचा सकते हो ?२

३. कोवै....

भावार्थ :

हे विम्बलते, तुम अपने सुन्दर फलों से मेरे प्राणो का सहार मत करो। मै सुन्दर अधरवाले भगवान के स्मरण से ही डरती हू। मुझ निर्लज्ज के जन्म के बाद, शेषशायी प्रियतम शेषनाग की भाति ही द्विजिह्व हो गये है।३

४. मुल्लैपिराट्टि....

भावार्थ :

हे गंभीर स्वभाववाली यूथिका देवी, तुम अपने मद मुस्कान से मुझे मत सताओ। मैं तुम्हारी शरण जाती हूं। अपनी मर्यादा भ्रष्ट शूर्पणखा के नासिका-च्छेदक श्रीरामचन्द्रजी के वचन यदि असत्य हो तो मेरा जन्म लेना भी तो असत्य है।४

विशेष :

यूथिका पुष्प को देखते ही प्रियतम के मद मुस्कान के स्मरण हो जाने से अपने को विरह वेदना से बचाने की प्रार्थना करते हुए उसके पैरों पड़ती है। गोदादेवी कहती है कि प्रियतम के भक्तों की रक्षा करने के प्रतिज्ञावचन को भूलकर मेरी उपेक्षा करने के यत्न करने पर भी वह संभव नही हो सकेगा, क्योंकि मै श्री विष्णुचित्त की सुपुत्री हूं। शास्त्रो का प्रमाण है कि भगवान की चरण सेवा करने वालों को यह संदेह हो सकता है कि हमे सिद्धि प्राप्त होगी कि नही। परन्तु भगवद् भक्तो का आश्रय लेने पर यह शंका हो ही नही सकती। इस पद में आचार्यों के आश्रय की श्रेष्ठता वर्णित है। आण्डाळ पेरियाळ्वार को ही अपना गुरु मानती है। इसको दृष्टि में रखकर ही अपने भगवद्साक्षात्कार की तुलना आण्डाळ राम के वचनों से करती है।

५. पाडुम्....

भावार्थ :

हे गानेवाले कोकिल, यह कैसा कर्णकठोर गीत गा रहे हो ? यदि श्रेष्ठ श्री वेंकटाद्रिनाथ यहां पधारकर मेरे ऊपर कृपा करनेवालों हो तो इधर आकर गाओ। नर्तक गरुड की ध्वजा धारण करनेवाले भगवान यदि कृपा कर इधर पधारकर सश्लेष देगे तो मै ही स्वयं बुलाकर तुम्हारे गीत सुनूंगी।५

विशेष :

कोकिल कूजन आण्डाळ को विरह काल मे कर्ण कठोर प्रतीत होता है।

६. कणमामयिल्काल्....

भावार्थ :

श्री कृष्ण के दिव्य रूप सदृश अपना रूप दिखाकर मनोहर नृत्य करने वाले हे श्रेष्ठ मयूर गण, तुम्हारे पैर पकड़कर प्रार्थना करती हू । (विरह उद्दीप्त करनेवाली चेष्टा से विरत हो जाओ) शेषशायी मेरे प्रियतम का दिया हुआ उपहार देखो। (मै सदा विरह में तड़प रही हूँ)।६

७. नडमाडि....

भावार्थ :

अपने पंख फैलाकर नृत्य करनेवाले हे सुन्दर मयूरो, तुम्हारे इस नृत्य को देखने की क्षमता अब मुझमे नही है। घटनर्तक गोविन्द ने अपनी नानाविध छेड़छाडो से मेरा सर्वस्व अपहरण कर लिया है। ऐसी स्थिति में मेरे सामने इस प्रकार नृत्य करके मुझे सताना क्या तुम्हारे लिये उचित है ?७

८. मलैये मलैये....

भावार्थ :

हे बादल, हे बादल, बाहर मिट्टी से लेपन कर, अन्दर के मोम को—सारभूत पदार्थ—निकालनेवालो की तरह पहले मुझे गाढ़ालिगन कर पीछे विरह व्यथा से मेरे प्राण संहारक श्री वेंकटाद्रिनाथ भगवान से मेरी इच्छा के अनुकूल उससे गाढालिगन कराकर, खूब बरसो।८

विशेष :

आण्डाळ रो रोकर बादलो से प्रार्थना करती है कि प्रियतम से मेरा सश्लेष कराकर बाद बरसो। प्रियतम से दी गई विरह वेदना को आण्डाळ बादल को समझाती है कि कांसे के बरतन तैयार करनेवाले, पहले बरतन की मिट्टी के सांचे के ऊपर मधूच्छिष्ट (कासे को पिघलाया हुआ रस) का लेप कर फिर उसके ऊपर मिट्टी का लेप कर, मध्य भाग के मधूच्छिष्ट को एक छेद के द्वारा बाहर कर

देते है। वैसे ही प्रियतम पहले आण्डाळ को गले लगाकर पश्चात् विरह मे तड़पाने मे समर्थ हो गये है।।

उल्लेखनीय है कि इस पद को और आगे के पद को तिरुमोळि नम्बि, गाते गाते आत्म विभोर होकर रुदन करने लगते हैं।

९. कडले कडले....

भावार्थ :

हे सागर, सागर, तुम आश्रय स्थल को ही मथन कर अन्दर के साररूप अमृत को निकाल दिया न ? वैसे ही मेरे शरीर मे प्रवेश कर मेरे प्राणों का हरण कर रहा है। क्या तुम उसकी शय्या (शेषनाग) के समीप जाकर मेरा दुख कह सकोगे।९

१०. नल्लवेन्....

भावार्थ :

हे मेरी प्यारी सखी, शेषनाग पर शयन करनेवाले हमारे प्रियतम बडे धनी है सबसे उत्तम है। हम क्षुद्र मनुष्य है। हम क्या कर सकते है। सर्व श्रेष्ठ उस भगवान से अति क्षुद्र हम लोगो का मिलन किस प्रकार होगा ? श्रीविल्लिपुत्तूर के प्रधान विष्णुचित्त स्वामी अपने आराध्य देव को यदि किसी प्रकार यहा ला सके तो हम उसके दर्शन कर लेगी"।१०

विशेष :

इस दशक मे अन्य दशक की भाति फलश्रुति नही है। परन्तु इसी पद को फलश्रुति मान सकते है । आण्डाळ का सकेत है कि श्रीविल्लिपुत्तूर के स्वामी की कृपा से ही प्रियतम का साक्षात्कार सभव है।

ग्यारहवीं श्री सूक्ति : तामुकक्कुम् तम् कैयिल्

"भगवान कभी असत्य वचन नही बोलते, वे दो बात कभी नही कहते, और उनके वचन व्यर्थ नही होते" आदि होने पर भी गोदादेवी अपने सबध मे इनको सत्य न होते देख अपनी सखियो से कहती है "प्रियतम रगनाथ क्यो मेरी उपेक्षा इस प्रकार कर रहे है। लगता है, शेषनाग के साथ रहने से वे भी उनके सदृश दो जीभवाले हो गये हैं। जिन्होने भूदेवी के उद्धार करने के लिये वराहावतार लिया, सीतादेवी के लिये अत्यधिक दुख सहन किये तथा जो रुक्मणि देवि से विवाह करने के लिये अधिक दूर से शीघ्र चले आये वे ही मेरे विषय मे उदासीन क्यो हैं।" कृष्ण को अपने प्रति इस उदासीनता को देखकर आण्डाळ मन में अनेक तर्क वितर्क करती है। इस श्री सूक्ति मे इन्ही मनोभावनाओ के सुन्दर चित्र है।

१. तामुकक्कुम्....

भावार्थ :

हे आभूषणो से अलकृत सुन्दरियो, मेरी पसद की ये चूड़िया प्रियतम के हाथ मे स्थित शखराज के सदृश नही है क्या ? हाय रे दुर्भाग्य, भयकर मुखवाले शेषनाग पर शयन करनेवाले श्री रगनाथ भगवान मेरा मुख भी नही देखना चाहते है।१

विशेष :

शंख को सदा अपने हाथ मे रखने का अधिकार प्रियतम को है तो आण्डाळ को भी अपनी चूड़ियो को हाथ मे सदैव रखने का अधिकार होना चाहिए। यह तभी सभव है जब प्रियतम से उसका मिलन हो और उसकी कृशता दूर हो जाय। पद्य मे यही कामना व्यजित है।

२. एलिलुडैयवम्मनैमीर....

भावार्थ :

हे सुन्दरी माताओ, मेरे श्रीरंग स्थित प्रियतम स्वय अपने केशपाश, अपने अधर और अपने नेत्रों तथा अपनी ही नाभि से उत्पन्न दिव्य सुन्दर कमल से भी सुन्दर है। ऐसे सुन्दर प्रियतम ने मेरे हाथ के कलल वलय को भ्रंशित वलय बना दिया।२

विशेष :

कलल वलय मे यहा श्लिष्टता है। तमिल मे कलल वलय का अर्थ, सुन्दर वलय, और ढीला वलय है।

३. पोकोतम्....

भावार्थ :

तरंगित समुद्र से परिवृत समस्त भूमंडल तथा परमाकाश दोनो पर एक साथ ही शासन करनेवाले श्री रंगनाथ भगवान मेरे हाथ से चूडियो का अपहरण करके क्या अधिक सम्पन्न हो जायेगे।३

४. मच्चाणि....

भावार्थ :

मजिल से भूषित प्रासाद तथा प्राकार युक्त श्रीरंग पुरी मे सुशोभित भगवान श्री रंगनाथ ने वामनअवतार लेकर राजा बली से उदक धारा द्वारा भिक्षा में (तीन लोक) प्राप्त कर लिया था। ऐसा लगता है कि इसके उपरान्त भी उन्हें कुछ कमी रह गई है और उसकी पूर्ति के लिये मेरी चूड़ियो को चाहते है। यदि ऐसा है तो इन वीथियों से होकर क्यों नही गुजरते ? ४

५. **पोल्लाक्....**

भावार्थ :

सुन्दर वामन रूप लेकर, अपने विलक्षण हाथों मे भिक्षा ग्रहण करने तथा अपने चरणो से तीनो लोकों को नापने वाले तथा सज्जनो के निवास स्थल, सुशीतल श्री रंगधाम मे शेषशय्या पर शयन करनेवाले भगवान मेरे हाथ के धन का भी अपहरण करना चाहते है।५

६. **कैप्पोरुल्कल्....**

भावार्थ :

समस्त खेतो से होकर बहनेवाली पवित्र नदी कावेरी से परिवृत श्रीरंग में विराजमान समस्त पदार्थो मे अन्तर्यामी अति दुर्लभ, चतुर्वेदो के सारे शब्दो के अर्थ स्वरूप श्री रगनाथ भगवान ने पहले ही मेरे हाथों के अलकारो को छीन लिया था। अब मेरे शरीर रूपी धन को भी छीनना चाहते हैं।६

७. **उण्णदुरंगा....**

भावार्थ :

अति दृढ प्राचीरो से परिवृत श्रीरंग दिव्य क्षेत्र में सुशोभित श्रियःपति भगवान ने रामावतार के समय सीतादेवी के दिव्य शरीर पर आसक्त होकर, निद्रा व आहार को छोड़कर समुद्र में पुल बाधने के भीषण कार्य को भी संपन्न कर, सीता के प्रति अपना उन्माद को प्रदर्शित किया था। वे अब अपने पूर्व महत्त्व के ध्यान में ही मग्न है।७

विशेष :

आण्डाळ के कहने का तात्पर्य है कि रामावतार में एक स्त्री के लिये भोजन व निद्रा के बिना उसकी खोज मे सदा लगे रहे। उनके उस उन्माद को कौन नहीं जानते।

"न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चापि मधु सेवते"
"अनिद्रस्सततं रामः" ।रा० सु० ३६,४४

ऐसे स्वभाववाले को चाहिए कि मेरे लिये भी इसी प्रकार प्रयत्न करे ; क्यों वे मेरी उपेक्षा कर रहे है।

८. **पासिलूलु विडन्द....**

भावार्थ :

पूर्व काल में शैवाल से आच्छादित भूमिदेवी के लिये निरन्तर जल टपकने वाले वराह का मलिन शरीर धारण कर, तेजोमय भगवान श्री रंगनाथ ने जो अभय प्रदानकारी वचन कहे हैं वे भूलने पर भी भुलाये नहीं जा सकते।८

९. कण्णालंकाडित्तुक्....

भावार्थ :

दृढ़ निश्चयी शिशुपाल रुक्मिणी देवी से पाणिग्रहण का समस्त प्रबन्ध कर चुका था। ऐसी स्थिति मे स्वय भगवान ने उसको निराश करके तथा रुक्मिणी देवी का पाणिग्रहण करके यह आश्वासन समस्त स्त्री जाति को दिया कि वह उनके रक्षक है। ऐसे प्रियतम भगवान के दिव्य देश का नाम है "श्रीरग क्षेत्र"।"९

१०. सेम्मैथुडैय....

भावार्थ :

ऋजुस्वभाव वाले श्री रंगनाथ भगवान ने कृष्णावतार के समय अपने आश्रित भक्त अर्जुन के प्रति जो अभय वचन कहे थे उसे श्रवण कर मेरे पूज्य पिता विष्णु चित्त स्वामी जी उसी पर निर्भर रहते है। "जो मुझ पर प्रेम करते है मैं उन्हे प्रेम करता हू", कृष्ण के ये वचन यदि स्वय असत्य सावित हो जाय तो उस पर कौन नियत्रण करे॥१०

विशेष :

पिछले दशक की भाति इस दशक मे भी अलग फलश्रुति नही कही गई है।
गीता का यह आप्त वचन है—
"प्रियो हि ज्ञानिनो ऽत्यर्थमहं स च मम प्रिय"
अर्थात् जो मुझसे प्यार करता है उससे मैं भी प्यार करता हूँ।

बारहवीं श्री सूक्ति : मर्रिरुन्दीर्कट्करियलाहा

इस दशक मे गोदादेवी अपने बंधुओ से प्रार्थना करती है कि भगवान की विशेष लीला स्थानों मे उसे ले जावे और भगवान के दर्शन करावें। जब वे गोदा को समझाने के प्रयत्न करते है तो गोदा उनसे कहती है कि आप लोगो के कथन मूक वधिर के सवाद सदृश है। मुझे व्रजभूमि मे यशोदा के यहा पलनेवाले भगवान श्रीकृष्ण की मथुरा पुरी के समीप पहुंचा दे। गोदा की शारीरिक दशा पर दुःखित होकर सेवा करने वालो से कहती है कि अगर आप लोग मुझको मृत्यु से वचाना चाहती है तो मुझको व्रजभूमि मे ले जाकर छोड़ दो। बधुओं को सचेत करते हुए कहती है कि बधुओ के रहते यह सब को छोड़कर भाग गई, ऐसा अपयश फैलने के पूर्व ही मुझको रात्रि के अधकार मे ही नद गोप के यहां पहुचा दे। अपने उभरे हुए स्तनो के सदुपयोग करने के लिये बंधुओं से प्रार्थना करती है कि उसे यमुना तीर पर पहुचा दे। घर आई माताओ से कहती है कि मेरे रोग को कोई नही जान सकते। इस रोग को दूर करने के लिये उसे कालिय ह्रद के समीप पहुचा

दे जहां श्री कृष्ण ने काल्यि नाग पर नर्तन किये थे। अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहती है कि प्रियतम के दर्शन के लिये भक्तविलोचन क्षेत्र मे पहुचा दे। विरह के कारण अपने शरीर का वैवर्ण्य और दुर्वल स्थिति को दूर करने के लिये कहती है कि प्रलवासुर वध जहा हुआ, वहा ले जावे। कृष्ण की धूर्त चेष्टाओ पर मजाक उडानेवालो से कहती है कि प्रियतम के यह सब कार्य लीला विनोद हैं। मुझे गोवर्धन पर्वत पर पहुचा दे। अपने पालित तोते के "गोविन्द, गोविन्द" पुकारते देख असहनीय वेदना मे प्रार्थना करती है कि मुझे ऊचे महलो से अलकृत द्वारका क्षेत्र मे पहुचा दे। इस प्रकार मथुरा से लेकर द्वारका तक के नो दिव्य क्षेत्रो का वर्णन इस दशक मे वर्णित है।

१. मरि....

भावार्थ :

माधव के सबध मे मेरे प्रेम को मेरे अतिरिक्त दूसरे लोग समझने मे असमर्थ है और आप लोगो का कथन मूक वधिर सवाद के सदृश है। यदि आप लोग मेरे लिये कुछ करना चाहती है तो कृपया जननी माता देवकी को छोडकर व्रज भूमि मे यशोदा के यहा आकर पलनेवाले, मल्लयुद्ध निपुण भगवान श्री कृष्ण की मथुरा पुरी के समीप मुझे पहुचा कर उज्जीवित कराइये।१

२. नाणि....

भावार्थ :

अब लज्जित होने से कोई प्रयोजन नही है। क्योकि मेरी इस दशा को गाव के समस्त जन जान गये है। बिना विलब के अगर आप लोग आवश्यक सेवा कर मुझे पूर्ववत् करना चाहती है और मुझको मृत्यु से बचाना ही आप लोगो का उद्देश्य है तो मुझको व्रजभूमि मे ले जाकर छोड़ दो। वहा लोक विक्रान्त वामन भगवान के दर्शन हो जाय तो मेरा दु:ख कम होगा।२

३. तन्दैयुम्....

भावार्थ :

इस संसार मे मेरे कारण यह अपयश फैलने की सभावना है कि माता पिता तथा बधुओं के रहते यह सब को छोड़ कर अपने मार्ग मे चली गई। ऐसी घटना हो जाने के बाद उसको मिटाना अधिक कठिन है। मायी श्री कृष्ण मेरे सामने आकर अपना स्वरूप दिखाकर आकृष्ट कर रहे हैं। इसके पूर्व ही आप लोग मुझको श्री रात्रि के अधकार में ही धूर्तचेष्ट कृष्ण के पिता नद गोप जी के घर पर पहुंचाइये।३

४. अगैत्तलत्तिडैया....

भावार्थ :

सुन्दर हस्त चक्रधारी श्री कृष्ण को छोडकर दूसरे का मुखावलोकन नही करेगे, इस भावना से अरुण वस्त्र से अपने को छिपाकर, क्षुद्र मनुष्यो को देखने पर लज्जित, इन मेरे स्तनो को आप ही देखिये। ये स्तन गोविन्द को छोडकर और किसी की तरफ भी नही ताकेगे। मेरे यहा के काम को समाप्त कर, मुझे यमुना तीर पर पहुचा दीजिये।४

५. आर्कु...

भावार्थ :

हे माताओ, मेरा वह रोग कोई भी समझ नही सकता। अतएव आप इसकी चिन्ता न करे। इस रोग को दूर करने का एकमात्र उपाय नीलसागर वर्ण श्री कृष्ण का कर स्पर्श ही है। अत आप तट स्थित कदंब वृक्ष से कालियनाग के फन पर कूदकर नर्तन किये गये युद्ध रग सदृश उस सरोवर के तीर पर पहुचा दीजिये।५

६. **कात्तण....**

भावार्थ :

वर्षाकाल का शीतल मेघ, अतसी पुष्प, करुविळै पुष्प, कमल पुष्प, ये सब मेरे सम्मुख आकर मुझे 'हृषीकेश के पास जाने की प्रेरणा दे रहे है। गाय चराने के आयास से प्रस्विन्न होकर भूख के कारण जो यह सोचकर कि भोजन करने का समय हो गया, उसके प्रतीक्षक की दृष्टि के लक्ष्यभूत भक्त विलोचन नामक क्षेत्र मे मुझे पहुचा दीजिये।६

विशेष :

मेघ, अतसीपुष्प, करुविळै पुष्प, कमल पुष्प आदि उद्दीपक बनकर गोदादेवी को प्रियतम की याद दिलाकर सता रहे है।

भक्त विलोचन क्षेत्र का वर्णन श्री भागवत के दशमस्कन्ध मे (१०–३३) वर्णित है। एक बार गाय चराते चराते यमुना नदी के किनारे भूख के कारण थके मादे सभी गोप बालक बैठे थे। श्री कृष्ण ने अपने मित्रो मे कहा "यहा से थोडी दूर पर मुनिगण आगिरस नामक यज्ञ कर रहे है। वहा जाकर कृष्ण बलराम के नाम लेकर अन्न मागो।" गोप बालक वहा पहुचे। परन्तु गोप बालको की प्रार्थना पर मुनियो ने ध्यान नही दिया। बेचारे खाली हाथ लौटने पर श्री कृष्ण ने उन्हे मुनिपत्नियो के पास जाकर अपने नाम पर अन्न मागने के लिये कहा। गोप बालक मुनिपत्नियो के पास गये। श्री कृष्ण का नाम सुनते ही वे अत्यधिक आनंदित हुई और नाना प्रकार के मिष्ठान्न लेकर सब स्त्रिया श्री कृष्ण के पास

दौडी आई और सबको प्रेम से खिलाया। प्रति दिन श्री कृष्ण वहा मध्याह्न के समय पहुंचते थे और मुनिपत्नियो से भोजन पाने की प्रतीक्षा करते थे। इसीलिये उस स्थान का नाम भक्तविलोचन (भक्त भोजन विलोचन)

७. **वण्णम्....**

भावार्थ :

शरीर का वैवर्ण्य, मन की शिथिलता, निर्लज्जता, फीके अधर, भोजन मे अरुचि होना और अन्त.करण की दुर्बलता, ये सब सागर वर्ण गोपालकृष्ण की तुलसी माला पहनाने से मिट जायेगी । अगर यह माला लाना असभव हो। मुझे पाण्डिवट नामक वृक्ष के समीप पहुचा दीजिये। जहा बलदेव के हाथ से प्रलम्बासुर का वध हुआ।७

विशेष :

पाण्डिवट को भाडीर वन कहते है।

८. **कारिनमेय्क्कलुम्....**

भावार्थ :

मेरे प्रियतम ने गायो के चराने का कार्य किया, वनवासी जाति मे पैदा हुआ मक्खन की चोरी मे पकडे जाकर और ऊखल मे बाधा गया, यह सब सच है। (इन सब चेष्टाओ को दोष बतलानेवाले) पापियो, सौलभ्य-सूचक ये गुण तुम लोगो को निन्दा करने के कारण हो गये। स्तोत्र करने योग्य प्रियतम के विषय मे इस प्रकार निन्दा करके मेरे धिक्कारने का पात्र मत बनो। गोगणो की रक्षा हेतु वर्षा को रोकने के लिये जिसको जैत्र छत्र के रूप मे धारण किया, उस गोवर्धन पर्वत पर मुझे पहुचा दो।८

९. **कूट्टि....**

भावार्थ :

मेरे पालित तोता पिजर मे स्थित सदा "गोविन्द, गोविन्द" रटता है। यदि मै आहार न देकर उसको सताती तो उच्च स्वर मे बोलता है "हे त्रिविक्रम भगवान"।। इस दशा मे इन नामो को सुनने से मेरी व्यथा और भी बढ जाती है। मेरे कारण आप लोगो को अपमान सहना पडेगा और आप लोगो का गौरव मिट जाने की सभावना है। मेरे कारण आप कही मुँह दिखाने योग्य नही रहेगे। उसके पूर्व ही मुझे अभी ऊचे महलो से अलकृत द्वारका क्षेत्र मे पहुंचा दीजिये।६

१०. **मन्नुमदुरै....**

भावार्थ :

स्वर्ण महलों से सुशोभित श्री विल्लिपुत्तूर के स्वामी श्री विष्णुचित्त की सुपुत्री

दीर्घ केशवाली, गोदा ने मथुरा से द्वारका तक के कतिपय दिव्य क्षेत्रो के नाम लेकर अपने माता-पिता से उन प्रदेशो मे ले जाने की प्रार्थना करती हुई अपने अध्यवसाय को जिन मधुर गीतो मे प्रकट किया, उनका अध्ययन करनेवालों के रहने का स्थान ही परमपद होगा ।१०

विशेष :

इस पद में फलश्रुति वर्णित है ।

तेरहवीं श्री सूक्ति : कण्णनेन्नुम्

पिछले दशक मे गोदादेवी ने अपने स्वजनों से मथुरादि दिव्य स्थानो में पहुचा देने के लिये प्रार्थना की। जब यह इच्छा पूरी नही हुई तो उसने निवेदन करना प्रारभ किया कि यदि वे भगवान के कमर मे पीताबर को लाकर उससे व्यसन करें अथवा कुंभकोण स्वामी की शीत व सुन्दर तुलसी माला लाकर अपने केशो पर पहनावे या प्रियतम की वनमाला लाकर अपने वक्ष स्थल पर पहनावे अथवा भगवान के अधरामृत को द्रवित रूप मे लाकर पिलावे या गिरधर की मुरली के छेद मे स्थित अमृत रस को लाकर अपने मुख पर लेपन करें अथवा धूर्त कृष्ण के पद धूलि को लाकर उसके शरीर पर लगावे अथवा भगवान के सिवा और किसी पर आसक्त न हुए इन स्तनों को नन्दगोप सुत के सुन्दर व विशाल भुजाओ के साथ लगाकर बांध दे । अधिक दु:खित होकर कहती है कि मेरा सर्वस्व अपहरण करनेवाले को कही देख पाऊगी तो मेरे निष्प्रयोजन स्तनो को समूल उखाड़कर उनके वक्ष पर फेककर ताप मिटाऊंगी । इस प्रकार की मार्मिक व्यजनाओं का उल्लेख इस दशक मे है।

१. **कण्णने....**

भावार्थ :

(हे माताओ) कृष्ण नामक काले देवके दर्शन की अभिलाषा रखनेवाली मुझ उपेक्षिता के साथ पराये का सा व्यवहार कर, घाव पर इमली रस छिड़कने के सदश (क्षते क्षारमिव) कटुवचन मत सुनाओ अपितु ललना-दु.ख-अनभिज्ञ श्री कृष्ण भगवान के कमर के पीताबर को लाकर उससे व्यसन करो जिससे मेरा विरह ताप दूर हो सके ।१

विशेष :

यहां आण्डाळ ने श्री कृष्ण को काला देव, मात्र उसकी कृतघ्नता को प्रदर्शित करने के लिये कहा है।

२. **पालालिलैयिल्....**

भावार्थ :

अत्यत कोमल वटपत्र पर शयन करनेवाले परमपुरुष के प्रेमपाश मे बधी मुझ उपेक्षिता को और मन माने कठोर वचन सुनाकर मत सताओ अपितु लाठी से गाय चरानेवाले, घटनर्तन प्रवीण, श्री कुभकोण क्षेत्र के स्वामी की शीतल व सुन्दर तुलसी माला लाकर मेरे कोमल तथा घने केशो पर पहनाओ।२

३. **कञ्जैक्कायन्दकरुविल्लि....**

भावार्थ :

कंस को सहारनेवाला और धनुष सदृश भ्रुयुत अपने कटाक्ष रूपी तीर से बेधकर सतप्त करनेवाला प्रियतम मुझे अभय वचन तो नही देता। यदि वह छल किये बिना अपने वक्ष की वनमाला दे दे तो लाकर मेरे वक्ष पर स्पर्श कराओ।३

४. **आरेयुलकत्तारुवार....**

भावार्थ :

समस्त व्रजभूमि को वश मे कर (वहा की गोपियो से) सुख प्राप्त करनेवाले वृषभ सदृश श्याम से पीड़ित मुझ दु:खिता को इस संसार में आश्वासन कौन देगा? अपर्याप्त अमृत सदृश भगवान के दिव्य अधरामृत को उसी द्रवित रूप मे ही मुझे पिलाकर मेरा सताप दूर करो।४

५. **अलिलम्....**

भावार्थ :

प्रलाप तथा प्रणाम करने पर भी प्रियतम अपने मगल रूप को नही दिखाता और अभय वचन भी नही देता। ऐसा महान प्रियतम यहां मेरे समक्ष आकर गाढ़ालिगन करता है किन्तु यह केवल मानसानुभव मात्र ही है। मुरली बजाते गायों के पीछे आनेवाले श्री कृष्ण की मुरली के छेद मे स्थित अमृत रस को लाओ और मेरे मुख पर उसका प्रोक्षण करो।५

६. **नडैयोन्रिल्लावुलकत्तु....**

भावार्थ :

पहले से ही न्याय रहित इस संसार मे नन्द नन्दन नामक निर्दयी एवं स्वार्थ श्रिय:पति से प्रमथित अबला मैं हिलने डुलने मे भी असमर्थ हू। अत: धूर्त कृष्ण के पद धूलि को लाकर इस अनिर्गत प्राण-शरीर पर लगाओ।६

७. **वेरिकरुलक्कोडियान्....**

भावार्थ :

विजयी गरुडध्वज भगवान की आशा का उल्लंघन करने मे अशक्त इस

संसार में, यशोदा माताजी ने कटु नीम के सदृश अपने पुत्र को पाला पोसा है। भगवान के सिवा और किसी पर आसक्त न हुए मेरे इन निर्दोष स्तनों को उन्हीं नंद गोप सुत के सुन्दर व विशाल भुजाओं के साथ बाँध दो। ७

विशेष :

प्रियतम के अतिरिक्त और किसी पर आसक्त न होने के कारण ही अपने स्तनों को आण्डाळ निर्दोष बताती है। इसके पहले भी आण्डाळ ने कई पदों में स्तनों के बारे में मात्र कृष्ण के भोग्य होने का उल्लेख किया है।

८. उल्लेउरुकिनैवने....

भावार्थ :

अन्दर ही अन्दर घुलकर अत्यधिक शिथिल हो रही हूं। मेरा इतना भी ध्यान नहीं किया गया कि यह जीवित है कि नहीं। मेरा सर्वस्व अपहरण करनेवाले धूर्त कृष्ण को यदि देख पाऊंगी तो अपने निष्प्रयोजन इन स्तनों को समूल उखाड़कर उनके वक्ष पर फेंककर मैं अपने ताप को मिटाऊंगी।८

विशेष :

कृष्ण के द्वारा उपभोग न किये जानेवाले अपने स्तनों को आण्डाळ "निष्प्रयोजन" कहती है। स्तनों को समूल उखाडकर फेंक देना एक अनूठी उक्ति है जो बीभत्स की सृष्टि करती है।

९. कोन्मैमुलैकलिडरतीरक्....

भावार्थ :

अपने पीन पयोधर के संताप को मिटाने योग्य प्रियतम गोविन्द की सेवा करने का भाग्य यदि न पा सकी तो और एक जन्म लेकर तपस्या करना व्यर्थ है। यदि प्रियतम अपने सुन्दर वक्ष से मेरा आलिंगन करें तो उत्तम है। यदि वे ऐसा करना न चाहें तो एक दिन अभिमुख देकर यही कह दें कि मैं तुमको नहीं चाहता हूं। यह और भी अच्छा होगा।९

१०. अल्लल विलैत....

भावार्थ :

गोपियों के दुःखप्रद, गोकुल के दीप सदृश गोपाल से प्रेम कर, श्री विल्लिपुत्तूर के स्वामी श्री विष्णुचित्त की, धनुष पर भी विजय प्राप्त करनेवाली भ्रुवों से युक्त, पुत्री, गोदा देवी द्वारा रचित इन गाथाओं का अध्ययन करनेवाले दुःख सागर में नहीं डूब सकते।१०

विशेष :

इस पद में फलश्रुति वर्णित है।

चौदहवीं श्री सूक्ति : पट्टिमेयून्दोर्

अत्यधिक विरह दुःख देने के अनन्तर भगवान गोदादेवी को दर्शन देकर उसके विरह तापको दूर करते है। गोदादेवी प्रियतम के दिव्य दर्शन का वर्णन इस दशक मे करती है। यह वर्णन दो सखियो के मध्य हुई। प्रश्नोत्तर शैली मे है।

१. **पट्टिमेयुन्दोर....**

भावार्थ :

क्या तुमने अपनी इच्छा से भटकते, आनन्द विभोर, अत्यधिक कोलाहल करते इधर से गुजरनेवाले बलदेव के अनुज, श्याम-वृषभ श्री कृष्ण को देखा?

हा, हमने उसको गायो को चराते वृन्दावन मे सानन्द घूमते हुए देखा।१

२. **अनुंगवेन्नैप्पिरिवुसेय्दु....**

भावार्थ :

क्या तुमने ऋषभ सदृश माखन चोर कृष्ण को देखा जो मुझे विरह दुःख देकर व्रजभूमि की गोपिकाओ के साथ रमण कर रहा है।

हा, हमने विद्युत्मिश्रित मेघ वर्णवाले, वनमाला से भूपित, अपने मित्रो के साथ विचरण करते हुए उसका दर्शन वृन्दावन मे किया।२

३. **मालायप्....**

भावार्थ :

क्या तुमने दूसरों को मोहित करने एवं परस्पर विरुद्ध तथा असत्य वचन कहने वाले व्यामोह स्वरूप श्री कृष्ण को इधर आते देखा?

हां, आतप निवारणार्थ प्रमारित विनता सुत के पख रूपी वितान की छाया मे आते हुए श्री कृष्ण को हमने वृन्दावन मे देखा।३

विशेष :

श्री कृष्ण माखन आदि की चोरी करते हुए पकडे जाने पर झूठ बोलने से जरा भी सकोच नही करता। परस्पर विरुद्ध असत्य वचन कहने का तात्पर्य यही है।

ऐसा प्रचलित है कि (विनता सुत) गरुड श्री कृष्ण को धूप से बचाने के लिये वन में फिरते समय अपने पंख फैलाकर छाया करता था।

४. **कार्तवाकमलक्कण्णोन्नुम्....**

भावार्थ :

क्या तुमने उस मेघोत्पन्न कमल सदृश शोभायमान अपने दिव्य नेत्र रूपी, बडे जाल में फंसाकर अपने साथ ले जानेवाले मेरे प्रियतम को इधर आते देखा।

हा, हमने मोती जडे वस्त्र से अलकृत, तेजस्वी एव करि-कलभ सदृश कृष्ण को स्वेद श्रम विन्दुओं से सुशोभित खेलते हुए वृन्दावन मे देखा ।४

५. **मादवनेन्मणियिनै....**

भावार्थ :

क्या तुमने नीलमणि सदृश श्रिय.पति को नही देखा जो जाल से वचकर भागनेवाले वराह सदृश, दूसरो को कुछ न देनेवाले है।

हा, उसे, कटिविलवित पीतावर के साथ, नीरभरी वदली सदृश मगल-वीथी मे आते वृन्दावन मे देखा ।५

विशेष :

अपने प्रियतम को जाल से वचकर भागनेवाले वराह सदृश कहने का तात्पर्य है कि जैसे जाल से बचने पर गर्व के साथ वह भागता है वैसे प्रियतम गोपागनाओ से छल कपट कर भागनेवाले है । उनका सर्वस्व अपहरण कर स्वार्थी वनकर रहनेवाले है।

६. **दरुममरियाक्कुरुम्बनैत्....**

भावार्थ :

क्या तुमने उसे इधर आते देखा जो दया धर्म को नही जानता, जो स्वय धूर्त है, अपने श्री हस्त मे स्थित शार्ङ्ग धनुप सदृश जिसकी सुन्दर भौहे है तथा जो अपने भक्तो को छोडकर अन्यत्र घूमता है।४

हा, दिव्य मुख से सुशोभित, उदय पर्वत पर उदीयमान सूर्य सदृश चमकने वाले, कातियुक्त श्यामसुन्दर को वृन्दावन मे देखा।६

७. **वेल्लियसंकोन्रुडैयानैप्....**

भावार्थ :

क्या तुमने श्वेत शख, पीतांबर, तथा चक्रायुध से सुशोभित श्रिय पति को नहीं देखा ।

हा हमने वृन्दावन मे उसके दर्शन किये जिसकी वृहद् भुजा पर फैल रहे सुगधित एव मनोहर केश समूह ऐसे दीख रहे थे मानो मस्त भ्रमरावलि मटरा रही हो ।७

८. **पोरुत्तमुडैय....**

भावार्थ :

क्या तुमने मेरे मनोभिलापो को विनष्ट करनेवाले वृहद् श्याम मेघ सदृश परम प्रिय स्वामी को देखा जिसका अन्तर और वाह्य उसके शरीर सदृश ही काला है ?

हा, हमने उसे वृन्दावन में देखा जो तारागणो मे अलकृत आकाश सदृश अपने अनगिनत मित्र मडली के मध्य आ रहा था।

विशेप :

नमोक्ति मे गोदादेवी कहती है—हमारे प्रियतम भीतर एक प्रकार के और बाहर दूसरे प्रकार के स्वभाववाले नहीं है। जैसे उनका बाह्य रग काला है वैसे ही उनका हृदय भी है।

९. गाढ्रै....

भावार्थ :

क्या तुमने उस प्रियतम को देखा जो जगत् सृजनार्थ अपने विशाल शीतल नाभि कमल से ब्रह्मादि की सृष्टि कर आनन्दानुभव करता है?

हां, हमने उसे वन मे जाकर, धेनुकासुर, कुवलायापीड हाथी एव वकासुर को संहार करके आते हुए वृन्दावन मे देखा।९

१०. परुम्....

भावार्थ ·

बडे पैरवाले गजेन्द्र पर कृपा दिखानेवाले प्रियतम के दर्शन करके वृन्दावन मे ही श्री विष्णुचित की सुपुत्री आण्डाळ ने उनका वर्णन अपने इन गाथाओं मे किया है। इनको, सासारिक रोग के लिये भेपज मानकर मनन करनेवाले परम कृपालु भगवान के चरणो मे नित्यानुभव को प्राप्त करते है।१०

विशेष :

इस पद मे फलश्रुति वर्णित है।

———

परिशिष्ट...२

तिरुप्पावै में वर्णित मार्गशीर्ष व्रत

तिरुप्पावै मे वर्णित मार्गशीर्ष व्रत का सबंध सूत्र श्रीमद् भागवत के कात्यायनी व्रत से जोडा जाता है। भागवत मे कात्यायनी देवी के व्रतानुष्ठान को समझाते हुए महर्षि शुकदेव राजा परीक्षित से कहते है—"हे राजन्, गोप कन्याओ ने हेमन्त ऋतु के प्रारभ मे अर्थात् मार्गशीर्ष मास मे श्री कृष्ण को प्राप्त करने के निमित्त कात्यायनी देवी का व्रत किया। उस समय वे मात्र हविन् का भोग कर व्रत मे लीन रहती थी। प्रात.काल सूर्योदय के पूर्व ही शय्या का त्याग करके यमुना नदी मे स्नान करने के उपरान्त तट पर स्थित सिकता राशि से कात्यायनी देवी की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा चन्दन, पुष्प, धूप, नैवेद्य, फल बलि आदि से विधिवत् करती थी। उन्होने "कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि, नंदगोप सुत देवि पति मे कुरु ते नम" मंत्र का बार बार जप करते हुए एक मास तक यह व्रत किया। इसके बाद व्रत की विधि का वर्णन करते हुए कहते है, "हे राजन् व्रत के इन दिनो मे गोपिया सूर्योदय के पूर्व ही जागती थी। जो गोपी सर्व प्रथम जागती थी वह दूसरी को जगाती थी। पुन: दोनो मिलकर तीसरी को जगाती थी। यही क्रम चलता जाता था और सब गोप-बालाएं एक साथ एक दूसरी का हाथ पकड़कर उच्च स्वर से कृष्ण का गुण गान करते हुए यमुना स्नान करने जाती थी। मासान्त मे श्री कृष्ण ने उनके अनुष्टान से प्रसन्न होकर घोपित किया कि हे गोपियो जिस लक्ष्य पूर्ति के लिये तुम सबने यह व्रत किया है उसे पूर्ण समझो और शरद् ऋतु की मधुर रात्रियों मे मेरे साथ विहार करो।[1]

---

१. हेमंते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ।।
आप्लुत्यांभसि कालिंद्या जलान्ते चोदितेऽरुणे ।
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमार्चुर्नृप सैकतीम् ।।
गंधैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ।
उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतंडुलैः ।।
कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नंदगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।।

सभव है कि श्रीमद्भागवत की इस कथा को आण्डाळ ने अपने पिता पेरियाल्वार से वचपन मे सुना हो और कालान्तर मे मार्गशीर्ष व्रत का वर्णन करते समय उस कथा का ही आधार ग्रहण कर लिया हो। आण्डाळ द्वारा वर्णित इस व्रत का विशेप सकेत उसके पूर्ववर्ती तमिल् साहित्य मे भी मिलता है। आण्डाळ ने इस व्रत को पावै व्रत (देखिये पद, तिरुप्पावै, ३) कहा है। पावै का सामान्य अर्थ है प्रतिमा । सारे अनुष्ठान का केन्द्र विन्दु इस प्रतिमा के ही होने के कारण इम प्रतिमा को ही व्रत का प्रतीक मान लिया गया और इस प्रकार पावै का अर्थ "व्रत विशेप" रूढ हो गया । आण्डाळ के पूर्ववर्ती साहित्य मे पावै शब्द का प्रयोग एक नृत्य विशेप के लिये किया गया । देवताओ के ग्यारह नृत्यों की चर्चा है जो अल्लियम्, कोटिट्, कुडै, कुडम्, पाण्डरगम्, मल, तुडि, कडैयम्, पेडु, मरक्काल, और पावै कहे गये है। इनमे से "पावै" नृत्य लक्ष्मी देवी के उस विशेप नृत्य से सवंधित है जो उनके द्वारा असुरो के विनाश के लिये किया जाता है । आगे चलकर यह "पावै व्रत" मात्र कुमारी नारियो से ही सबधित हो गया। आण्डाळ द्वारा वर्णित तिरुप्पावै मे यह व्रत कुमारी गोप बालाओ से सबधित है।

तमिल् सघ साहित्य मे इस व्रत के लिये "अबावाडल्, तैनीराडल्, तवत्तैनीराडल्, मावैयनीराडल् आदि कई नाम मिलते है। परिपाडल नामक ग्रथ के कवि नलंतुवनार् "वैगै" नदी का गुण गान करते हुए लिखते है—

> काले काले वादलो से रहित, तथा हेमन्त ऋतु की कपकपी पैदा कर देने वाली शीत के कारण मार्गशीर्प महीने में उप्णता कम रहती है और वर्पा भी नही होती है। ऐसे ही समय में पूर्णिमा के तिरुवादिरै दिन वेदाभ्यासी ब्राह्मण पूजा मे रत हुए। आगम शास्त्रज्ञ ब्राह्मण पूजा के पात्र, द्रव्यादि जुटाने लगे । अबावाडल् (देवी व्रत) के अनुप्ठानों से परिचित ब्राह्मण की पत्नियो ने अपनी कन्याओ को इस व्रत के विधि-विधान सिखलाये । तदुपरान्त शीतयुत प्रात.काल

इति मंत्रं जपंत्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥
एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः
भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नंदसुतः पतिः ॥
उषस्योत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ।
कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिंद्यां स्नातुमन्वहम् ॥

श्रीमद्भावगत १०।२२।१–६

मे जलक्रीडा करने गई । अपार सिकता राशि से होकर वहनेवाली ठंडी हवा के कारण ये कन्याये अपने गीले वस्त्रो को सुखाने और अग्नि को नमस्कार करने के निमित्त वहा गई जहा नदी किनारे वेदाभ्यासी ब्राह्मण अग्नि प्रज्जवलित करके आहुति दे रहे थे । हे वैगै नदी, तुम्हारे तट पर की जानेवाली ऐसी आहुति क्या तुम्हे अधिक पसन्द आई । कुमार ब्रह्मचारियो के साथ खेलनेवाली काम भावना से पूर्णतया अनभिज्ञ ये कन्याये अपनी माताओं के साथ तवतैनीराडल नामक इस व्रत को तुम्हारे तट पर ही कर रही हैं।[1]

कुछ लोगो का अनुमान है कि माताओ के साथ रहकर उनकी कन्याओ द्वारा किये जाने के कारण ही इस व्रत को "अबावाडल" कहा जाता है । अवा का अर्थ है "मा" और वाडल का अर्थ है "स्नान" । उपर्युक्त विद्वानो की इस धारणा का यही आधार है। किन्तु इस आधार पर इस व्रत विशेष को अबावाडल कहना अनुचित जान पडता है। वास्तविकता तो यह है कि अबा का अर्थ यहां देवी से है और "वाडल" शब्द इस व्रत मे बालू की प्रतिमा को जल स्नान कराने की प्रमुखता के कारण व्रत के अर्थ मे रूढ हो गया है।

इस व्रत विशेष को तैनीराडल अर्थात् पौष महीने की जल क्रीडा भी कहा जाता है। संभव है कि संघ काल मे चाद्रमान क्रम के आधार पर यह व्रत मनाया जाता रहा हो। बाद मे लोग इसे सौरमान क्रम के अनुसार मनाने लगे हो। उन्होने इसकी सघटना अगहन महीने मे ही होने के कारण इसे मार्गशीर्ष व्रत कहा होगा।

इस कन्या व्रत का उल्लेख तमिल् पिगल शास्त्र मे भी हुआ है। वहा इस बात का वर्णन है कि तीन साल की अवस्था की बच्चिया गुड्डियो का विवाह रचाती है। पाच से नौ साल तक कन्याये आनन्द व उमग के साथ मन्मथ के प्रति व्रतानुष्ठान करने हेतु शीतकाल मे जलक्रीडा करने के उपरान्त देवी की पूजा करती हैं। इस देवी पूजा को वहा पावैयाडल कहा गया है ।[2]

माणिक्कवाचकर कृत शैवो के प्रसिद्ध ग्रथ तिरुवेम्पावै में भी इस पावै व्रत का संकेत मिलता है । यहा ऐसा वर्णन है कि कन्याये मार्गशीर्ष मे प्रातःकाल स्नान करने के लिये परस्पर अपनी सखियो को जगाती है और स्नानोपरान्त शिव भक्तों को पति रूप मे प्राप्त करने के लिये देवी की प्रतिमा की पूजा करती

१. परिपाडल ११
२. निगण्ठु सूत्र १३६९

है। अधिकतर विद्वानो ने इस ग्रथ मे आये हुए एम्पावाय् का अर्थ देवी प्रतिमा ही लिया है।

तिरुप्पावै के सदृश इस ग्रथ का उद्देश्य भी मार्गशीर्ष महीने मे जलक्रीडा आदि व्रतानुष्ठान द्वारा उत्तम पति, उपयुक्त वर्षा लाभ करना ही है।

परिपाडल मे इस व्रत के लक्ष्य और फल सिद्धि पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि इस व्रत का अनुष्ठान करनेवाली कन्याओ की अभिलाषायें पूर्ण हो जायेगी और गल बाहे डाले हुए प्रियतम का बिछुडन नही चाहनेवाली एव पुष्प को चूसकर भागनेवाले भवर सदृश स्वार्थी प्रियतम को न पसद करनेवाली तथा वृद्धावस्था से बचकर चिर यौवन को चाहनोवली कन्याये इस व्रत से लाभान्वित होगी।[1]

कहा जाता है कि दक्षिण मे जैन धर्म के प्रचारार्थ जैन धर्मावलबियो ने भी तिरुप्पावै के सदृश व्रतानुष्ठानो को अपनाया था। इन धर्मावलबियो ने तिरुप्पावै सदृश एक ग्रंथ की रचना भी की थी । किन्तु अब तक यह ग्रथ प्राप्त नही हो सका है और उक्त धारणा स्वतत्र शोध की अपेक्षा रखती है ।

तमिलनाड में यह तिरुप्पावै व्रतानुष्ठान प्रचलित तो है किन्तु वहां यह अपने नितात विकृत रूप मे शेष रह गया है । प्रात कालीन जलक्रीडा और प्रतिमा पूजन सर्वथा लोप हो गया है। आजकल मार्गशीर्ष महीने मे प्रात काल स्नान कर तिरुप्पावै का पाठ करके ही सतोष कर लेते हैं। हा, केरल प्रदेश मे आज भी इस व्रत को अपने संघकालीन रूप से थोड़े से भिन्न रूप में प्रचलित रखा गया है। वहा इस प्रकार के उत्सव को तिरुवादिरै विऴा (आर्द्रा उत्सव) कहा जाता है। इस व्रत में आज भी वहा कन्याये और युवतिया अत्यधिक उत्साह से भाग लेती है। वहा मनाये जाने वाले इस उत्सव के विषय में उल्लेखनीय है कि तिरुवादिरै केरल राज्य में तीन महत्त्वपूर्ण उत्सवो मे से एक है । वह मार्गशीर्ष महीने मे आर्द्रा नक्षत्र में सपन्न होता है । यह उत्सव विशेष रूप से कन्याए मनाती हैं । पौराणिक कथानुसार यह कामदेव से सबंधित है । अपनी निश्चित तिथि से इस उत्सव की तैयारिया प्रारभ हो जाती है । ब्राह्म मुहूर्त मे ही जागकर युवतिया झुंड बाधकर सरोवरों में जलक्रीड़ा करती हैं । एक युवती जल क्रीडा के समय मन्मथ का गीत प्रारभ करती है और शेष उसे दुहराती है। पानी पर हाथों की थाप देकर निकलनेवाली ध्वनि से इस गीत का ताल निर्धारित होता है। सूर्योदय तक इस प्रकार जलक्रीडा करने के उपरान्त नाना प्रकार से अलकरण कर, आखो मे काजल लगाकर, तांबूल लेकर युवतियां झूला झूलना

---

१. परिपाडल् ११

प्रारंभ करती हैं। इसी प्रकार यह निश्चित दिन तक चलता रहता है। उत्सव के अन्तिम दिन प्रात.कालीन स्नानोपरान्त युवतिया विशेष जलपान एव प्रीतिभोज का आयोजन करती हैं। उस समय वे केले का फल, शक्कर मिश्रित क्षीर का विशेष रूप से सेवन करती हैं । सूर्यास्त तक गीत नृत्यादि होते रहते है। यह भी कहा जाता है कि नववर्ष के उपलक्ष्य मे मनाये जाने वाले विषु ओणम् के त्योहार की तरह इस उत्सव में भी सायंकाल युवतियों के पतिदेवों को गणों के उत्सव मे उपस्थित रहना आवश्यक होता है ।[1] इस व्रत की एक स्पष्ट छाया आण्डाळ के तिरुप्पावै में वर्णित २०वे पद मे देखी जा सकती है । पद का भावार्थ इस प्रकार है—

> विमुख जनों को भी आकृष्ट करने मे समर्थ, गुणशाली हे गोविन्द तुम्हारी स्तुति कर व्रतोपकरण प्राप्त करने के अतिरिक्त हम सब तुमसे कुछ और अपेक्षा रखती है । प्रशसनीय चूड़ी, ककण,कर्ण कुडल, कर्ण पुप्प, पग नूपुर, इत्यादि अनेकानेक आभूषण हम तुमसे प्राप्त करके पहनेगी। तदुपरान्त घृत से आपूर क्षीरान्न हम सब एक साथ तन्मयता से सेवन करेंगी।[2]

उपर्युक्त आभूषणादि का टीकाकारो ने प्रतीकार्थ लिया है । किन्तु केरल प्रदेश मे प्रचलित व्रत संबधी युवतियों के अलकरण और आण्डाळ द्वारा वर्णित इस अलंकरण में स्पष्ट साम्यता है । इस आधार पर दोनो के सवध सूत्र को ठुकराया नही जा सकता। इस प्रकार यह निश्चित है कि आण्डाळ ने तिरुप्पावै में जिस मार्गशीर्ष व्रत का वर्णन किया है वह श्रीमद्भागवत में वर्णित कात्यायनी व्रत का ही दूसरा रूप है और इसकी संगति आण्डाळ के पूर्ववर्ती और समकालीन साहित्य में भी मिल जाती है। नीचे भागवत में वर्णित व्रत के विभिन्न विधि विधानों से समता रखने वाले तिरुप्पावै के वर्णन को प्रस्तुत किया जा रहा है—

> "जगत वासियों, हमसे किये जानेवाले व्रतानुष्ठानो को सुनो । हम क्षीराब्धिशायी भगवान के श्री चरणो की वन्दना करेगी, घृत सेवन नहीं करेगी, दूध नही पियेगी, प्रात.काल ही स्नान करेगी, नेत्रांजन नही लगायेगी और केशो को पुष्पों मे अलकृत नही करेंगी। वर्जित काम नही करेगी, कटुवचन नहीं सुनायेगी, सत्पात्रों को

---

१. तिरुप्पावैमालै
२. तिरुप्पावै पद २७

यथा शक्ति दान व भिक्षा देगी । इस भांति उज्जीवनार्थ ये सब अनुष्ठान करके आनंदित होगी ।[1]

भागवत में वर्णित प्रसग इस प्रकार है—

हविष्यं भुंजानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्
आप्लुत्यांभसि कालिंद्या जलान्ते चोदितेऽरुणे
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥
गंधैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः
उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतंडुलैः ॥[2]

प्रश्न शेष रह जाता है कि भागवत मे वर्णित उपर्युक्त कात्यायनी व्रत की कथा का आधार क्या है। इस सदर्भ मे इतना ही कहा जा सकता है कि होली आदि त्योहारों के सदृश इसका भी कोई आधार नही है । किसी समय किसी कारण यह व्रतानुष्ठान प्रचलित हो गया होगा और वही परपरागत रूप मे आगे चलता गया है । इस व्रत के मात्र परंपरागत होने का स्पष्ट उल्लेख आण्डाळ ने तिरुप्पावै के २५वे पद मे क्या है ।[3]

इसी प्रकार तिरुप्पावै मे वर्णित व्रत के कारण का उल्लेख करते हुए टीकाकार पेरियवाच्चान पिळ्ळै लिखते है कि कृष्ण के साथ गोपिकाओ के अनैतिक सबध को देखकर गोप-वृद्धों ने गोप-वालाओ को कमरों में बंद कर दिया था। इस कारण ही व्रजभूमि में अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। वाध्य होकर गोपवृद्धो को वर्षा के निमित्त व्रतानुष्ठान करने हेतु गोपियो को मुक्त करना पड़ा । इससे स्पष्ट होता है कि यह व्रत विशेष, अकाल के समय वर्षा के निमित्त ही किया जाता है ।[4] किन्तु पिळ्ळै की इस धारणा का कोई भी आधार नही । अतः उनके द्वारा प्रस्तुत कारण मात्र काल्पनिक कहा जायगा ।

मार्गशीर्ष महीने का माहात्म्य :

पौराणिक आख्यान है कि उत्तरायण देवो के लिये दिन और दक्षिणायन रात्रि है। उत्तरायण और दक्षिणायन का सधि काल देवताओं के लिये उषःकाल कहा गया है। यह सधि काल ही मार्गशीर्ष महीना होने के कारण यह देव मास

---

१. तिरुप्पावै पद २
२. श्रीमद्भागवत १०।२२।१–६
३. मेलैयार् सेय्वनकळ् वेण्डुवन केट्टियेल्, तिरुप्पावै पद २५
४. तिरुप्पावै—पेरियवाच्चन पिळ्ळै की टीका, भूमिका भाग

कहा जाता है। इसलिये ही कृष्ण ने गीता मे कहा है—"मासाना मार्गशीर्षोऽहम्"[1]

वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह महीना विशेष महत्त्व का है। धनु राशि मे पडने वाले सूर्य की गति के साढे तेरह दिनो मे आकाश मे स्थित बादलो की गति का अध्ययन करके पूरे वर्ष मे होनेवाली वर्षा का अनुमान लगाया जाता है।

इस महीने मे ही कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। और संचय ने उसे धृतराष्ट्र को सुनाया। दुष्टो का दमन और अधर्म पर धर्म की विजय निरूपित करनेवाला महाभारत का अद्वितीय संग्राम इस महीने मे ही समाप्त हुआ। इन सब कारणो से यह महीना महत्त्वपूर्ण माना गया और उसके इसी महत्त्व के कारण विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान के लिये उसको उपयुक्त समझा जाता है।

शिलालेख में मार्गशीर्ष व्रत का उल्लेख :

राजराज सोलन के शिलालेख मे भी इस मार्गशीर्ष व्रत के अत मे किये जानेवाले प्रीति भोज का स्पष्ट सकेत मिलता है। वहा भी इस बात का वर्णन इस प्रकार है—"मार्गशीर्ष के तिरुवादिरै उत्सव के अवसर पर क्षीरान्न प्रसाद के रूप मे दिये जाने का प्रबध किया गया है।"[2]

तिरुप्पावै में जलक्रीडा का उल्लेख :

तिरुप्पावै मे जलक्रीडा का उल्लेख निम्न लिखित पदो मे हुआ है—

(१) **मार्कलि** **तिंगळ्** मदि निरैन्द नन्नाळाल् **नीराडप्** पोदुवीर् पोदुमिनो[3]

(मार्गशीर्ष मास के पूर्णमासी का शुभ दिन है। स्नानेच्छुक व्रज बालाओ सब आओ।)

(२) नाकळुम् **मार्कलि नीराड** मकिलन्दु[4]

(वर्षा ऐसी हो जिससे हम भी मार्गशीर्ष व्रत का स्नान सतोष के साथ कर सके।)

(३) माले मणिवण्णा **मार्कलि नीराडुवान्** मेलैयार् सेय्वनकल्[5]

---

१. **श्रीमद्भवगद्गीता १०।३५**
२. **शिलालेख सूचना—१९१४ वर्ष की–६८ संख्या, शिलालेख**
३. **तिरुप्पावै पद, १**
४. **तिरुप्पावै पद ४**
५. **तिरुप्पावै पद २६**

(हे व्यामोहक, नीलमणि सदृश श्यामल, पूर्वजो के आचरण मे आये मार्गशीर्ष स्नान करने निमित्त ।)

(४) नाट्काले **नीराडि**[1]

(प्रात.काल ही जलक्रीडा करके ।)

(५) नम् पावैक्कुच् सार्रि **नीराडिनाल्**[2]

(यदि हम देवी-प्रतिमा को स्नान करायेगी ।)

(६) कुळ्ळक् कुळिरक् कुलिर्न्दु **नीराडादे**[3]

(शीतल जल मे अवगाहन किये बिना)

(७) इप्पोदे एम्मै **नीराट्टु**[4]

(अभी हमे (दर्पण आदि देकर) जलक्रीडा करने दो)

उपर्युक्त कथनो मे यह साफ लक्षित है कि मार्गशीर्ष व्रत, पौष माह की जलक्रीडा आदि भागवत धर्म पर आधारित कात्यायनी व्रत ही है। गोपियों ने कात्यायनी व्रत के द्वारा ही कृष्ण को पाया है । साध्य पर ध्यान देने पर साधन गौण रह जाता है। केवल देवी व्रत ही नही, श्री रंगनाथ को पतिरूप मे वरण करने के निमित्त पौष महीने में मन्मथ और उसके भाई साम्ब की पूजा करती है। देवी व्रत तो गोपी कुलाचार अनुष्ठान पर आधारित है। अत. यहाँ संप्रदाय विरोध की भावना के लिये स्थान नही है। ""इसलिये आण्डाळ कृत तिरुप्पावै कात्यायनी व्रत से सबधित ही है।

---

१. तिरुप्पावै पद २
२. वही पद ३
३. वही पद १३
४. वही पद २०

परिशिष्ट...३

मीरांबाई की कौम और ससुराल[1]

मीराबाई जोधपुर के राठोड़ खानदान की थी और उदेपुर के सिसोदिया खानदान में महाराणा सांगाजी के कुवर भोजराज के साथ ब्याही गई थी। इन दोनो खानदानों में कदीम से सबध होता चला आता है। इस वास्ते इस सिलसिले को हम जरा ऊपर से छोड़ते है और कुरसीनामो से उसको सुगमता देते हैं ताकि कुलहालात पढ़ने वालो को अच्छी तरह से मालूम हो जावे और जो गलतियां मीरांबाई के जमाने और उनके पति व पिता के नाम वगैरा मे नावाकिफ लोगों की लिखावटों से हो रही है दूर हो जावे॥

कुरसी नाम :
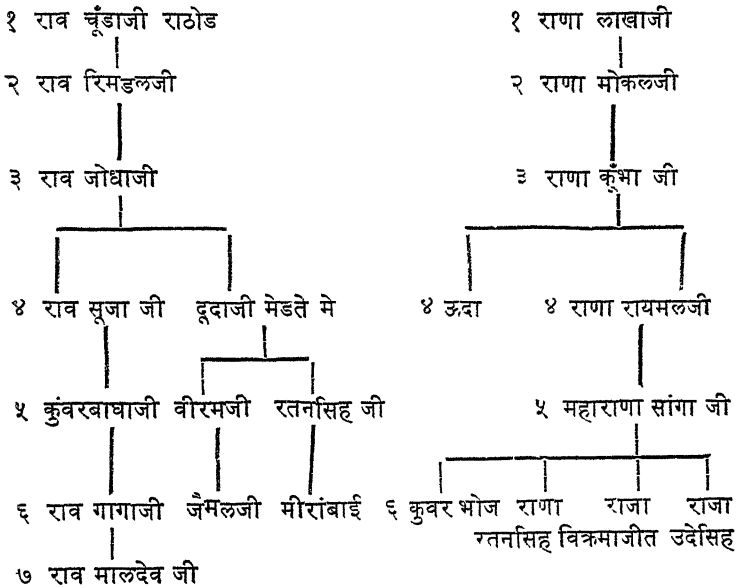
1. मुशी देवीप्रसाद कृत मीरांबाई का जीवन चरित्र : संपादक ललिता प्रसाद सुकुल—पृष्ठ ३ ।

राठौर–सिसादिया वशो के वैवाहिक सवध
राठौर राव चूंडा (१३६६ ई०)
रणमल (मृत्यु १४४३ ई०)
हसाबाई (पत्नी राणा लाखा) (मेवाड) लगभग १४१८
जोधा (लगभग १४५३–६८ ई०)
मोकल (१४२०–२८ ई०)
दूदा
शृगार देवी (१४६८–१५०४ ई०)
कुभा (१४३०–६८ ई०)
वीरमदेव (जन्म १४७७)
रतनसिह (मृत्यु १५२७ ई०)
विवाह–रायमल (१४७३–१५०६ ई०)
सागा (१५०६–१५२८ ई०)
मीराबाई (जन्म १५०४–विवाह १५१६)
भोजराज
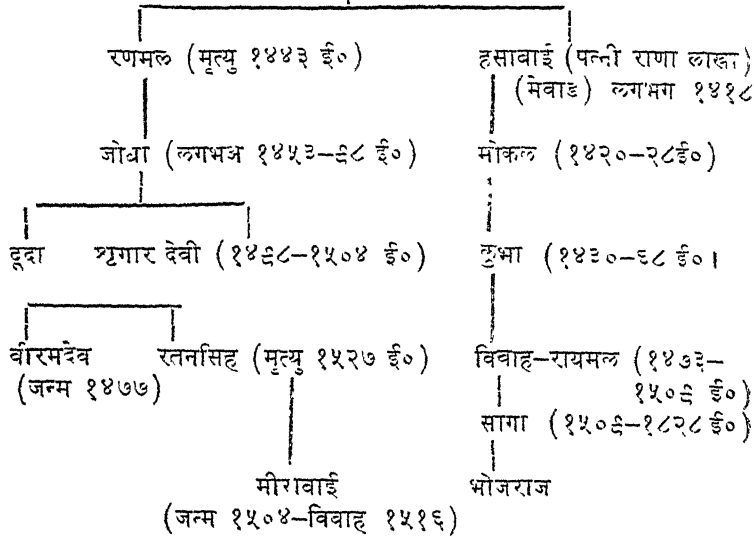
परिशिष्ट...४

अब तक मीरां के प्रकाशित पद-संग्रह[1]

(१) सगीत राग कल्पद्रुम · यह सग्रह कृष्णानद व्यास देव रामसागर द्वारा १९वी शताब्दी के पूर्वार्ध में ही तैयार किया गया था। यह सगीत सबध ग्रथ वगीय साहित्य परिषद् द्वारा प्रथमतः १८४२ मे प्रकाशित हुआ था। इसका यह प्रथम सस्करण अनुपलब्ध है। वगीय साहित्य परिषद् ने इसका दूसरा सस्करण सन् १९१४ मे प्रकाशित किया। इस सग्रह मे विभिन्न रागो के उल्लेख के रूप मे मीरा से संबधित ४३ पद सगृहीत है।

(२) वृहद् काव्य दोहन : यह काव्य-सग्रह इच्छाराम सूर्यराम देसाई द्वारा १९वी सदी के उत्तरार्ध मे दस भागो मे प्रस्तुत किया गया। इसमे मीराबाई की कुछ रचनाओं के अतिरिक्त तुलसी. नरसी मेहता, प्रेमानंद, भालण, वल्लभ अखा, तथा धीरो आदि गुजराती कवियो की रचनाए भी संगहीत हैं। इसके पहले भाग मे मीरा के नौ पद दूसरे मे सत्रह पद, पाँचवे मे पन्द्रह पद, छठे मे पाच पद और सातवें मे एक सौ तेरह पद संकलित हैं। इस प्रकार इस काव्य दोहन मे मीरा के कुल १५९ पद प्राप्त होते हैं।

(३) मीरांबाई के भजन · यह छोटी सी पुस्तिका है जिसे प० ईश्वरी प्रसाद रामचन्द्र ने सन् १८९७ मे मेरठ मे प्रकाशित कराया था। इसमे मीरा के नाम से सबधित कुल २० भजन ही है। शेष भजन नरसी मेहता, सूर तथा तुलसी आदि कई कवियों के है।

(४) मीराबाई आफ उदेपुर . यह सग्रह श्री उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा सन् १९०१ में प्रकाशित किया गया। इसमें मीराबाई के पदों के अतिरिक्त कुछ और कवियो के भी पद सगृहीत है। सबका अनुवाद भी बगला भाषा मे प्रस्तुत किया गया है।

(५) मीराबाई का जीवन चरित्र : इसका दूसरा सस्करण सन् १९०३ मे काशी से प्रकाशित हुआ था। इस ग्रथ का प्रधान उद्देश्य मीरा के जीवन से सबधित घटनाओ का सामान्य विवरण प्रस्तुत करना ही है। जीवन संबधी

---

१. डा० प्रभात कृत मीरांबाई एवं पं० परशुराम चतुर्वेदी कृत मीरांबाई की पदावली के आधार पर।

घटनाओं के अतिरिक्त इसमें मीरा के १२ पद भी सकलित किये गये है। यह पुस्तक महाराजा रघुराज सिह देव के सग्रह में संगृहीत पदों के आधार पर ही लिखी गई है।

(६) महिला मृदुवाणी : मुँशी देवीप्रसाद कृत यह ग्रंथ सन् १९०५ मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित है। इसमे दिये हुए मीरा के पद अत्यधिक विश्वसनीय होने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

(७) मीरांबाई का जीवन चरित्र : मुँशी देवीप्रसाद का ही यह ग्रथ वगीय हिन्दी परिषद् कलकत्ता द्वारा संवत् २०१९ मे प्रकाशित पुस्तक का नवीन संस्करण है। इन्होने इस ग्रथ में मीरा की सर्वाधिक प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत की। बाद के प्राय सभी विद्वानो ने इस ग्रथ का आधार ग्रहण किया है। इस नये सस्करण के सपादन का कार्य प० ललिता प्रसाद सुकुल ने किया है। इसमे कुछ अन्य विद्वानों के भी मीरां संबधी खोजपूर्ण निबध सगहीत है।

(८) श्रीभक्ति शिरोमणि मीरांबाई के भजन : विश्वेश्वर प्रेस, बनारस से प्रकाशित इस ग्रंथ में मीरां के कुल ३४ भजन सगृहीत है।

(९) मीराबाई के भजन : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित पुस्तिका सन् १९१३ मे हुई पुस्तक की दूसरी आवृत्ति है।

(१०) गाथा पंचक : विभिन्न भक्त कवियो के पदों का यह बृहद् सग्रह सन् १९०८ मे त्र्यम्बक हरी आप्टे द्वारा प्रस्तुत किया गया है इसमे मीरांबाई के १५६ पद संगृहीत है।

(११) मीरांबाई की शब्दावली : वेल्वेडियर प्रेस, अलाहाबाद से यह सग्रह सन् १९०९ मे प्रकाशित है। इसमें मीरां के ३८ पद सगृहीत है।

(१२) मीराबाई भजन भाडार (मीरांबाई कृत पद रत्न सग्रह) : यह बृहद् संग्रह श्री गोविदराव मोरावा कालेकर द्वारा सन् १९२२ में संपादित है। इसमे मीरांबाई के नाम से उस समय तक प्रचलित प्रायः समस्त पद जिनकी संख्या ३५२ हैं, संगृहीत है।

(१३) प्राचीन काव्य–सुधा : इसके सकलनकर्ता श्री छगनलाल विद्याराम रावल है। (यह सग्रह कई भागो में तैयार किया गया है। मीरावाई के पद : इसके प्रथम भाग मे१६, द्वितीय भाग मे १४, और तृतीय भाग में कुल ३ की संख्या में हैं।

(१४) सिलेक्सनस प्रेम क्लासिकल गुजराती लिटरेचर : इसका सपादन तारापोरवाला ने किया है। इसमे मीरा से सबधित १०६ पद अंत मे दिये गये हैं।

(१५) मीरांबाई० सहजोबाई० दयाबाई का पद संग्रह : श्री वियोगी हरि द्वारा सपादित इस संग्रह मे मीरांबाई के नाम से प्रचलित ३६ पद संगृहीत है।

(१६) मीरा मदाकिनी : श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० द्वारा संपादित यह ग्रंथ युनिवर्सिटी बुक डिपो, आगरा से स० १९८७ मे प्रकाशित हुआ था। इसमे मीरा के कुल १६१ पद संगृहीत है। मीरा के अतिरिक्त अन्य बहुत से सन्त कवियो की रचनाए भी सगृहीत है।

(१७) भजन सग्रह : तीसरा भाग। : सन् १९३१ मे यह सग्रह श्री वियोगी हरि द्वारा सपादित है। इसमे मीरा के ६२ पद सकलित है।

(१८) मीराबाई की पदावली : सन्त साहित्य मर्मज्ञ प० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सपादित यह सग्रह सन् १९५७ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित है। यह प्रथमतः १९३२ ई०, में सपादित सस्करण का सप्तम सशोधित एव परिवर्धित सस्करण हैं। इसमें मीरांबाई के २०२ पद सकलित हैं। मीराबाई के जीवन और कृतित्व का सक्षिप्त किन्तु स्पष्ट प्रामाणिक परिचय इम सग्रह की विशेषता है। वस्तुतः अब तक उपलब्ध समस्त संग्रहो में से यह सर्वाधिक वैज्ञानिक ढंग से संपादित होने के कारण विश्वसनीय हैं।

(१९) मीरांबाई का काव्य : श्री मुरलीधर श्रीवास्तव द्वारा सपादित यह काव्य संग्रह साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग से सन् १९३४ ई० मे प्रकाशित है। इसमें मीरां के १३९ पद संगृहीत है।

(२०) मीरां की प्रेम-साधना : वाणी मदिर, छपरा से सन् १९३४ ई० में प्रकाशित यह ग्रंथ भुवनेश्वर मिश्र "माधव" कृत है। इसमे मीरा के १२६ पद ग्रंथ के अंत में दिये गये है। इस ग्रंथ का दूसरा संस्करण सन् १९४६ मे प्रकाशित हुआ है जिसमे सकलित पदों की संख्या २१६ कर दी गई है।

(२१) मीराबाई : यह सग्रह सत्संग मडल नर नारायण मदिर, वबई, द्वारा सन् १९३८ मे प्रकाशित है। इसमें मीरा विरचित कहे जाने वाले १०५ गुजराती और १५९ हिन्दी पद सगृहीत है।

(२२) मीरा पदावली : श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव "मजु" द्वारा यह पदावली हिन्दी भवन, लाहौर से सन् १९३८ मे प्रकाशित है। यह ग्रंथ की तृतीय आवृत्ति है। इसमे मीरां के २०१ पद संगृहीत हैं।

(२३) मीरां जीवनी और काव्य : श्री महावीर सिह गहलोत द्वारा यह काव्य संग्रह सन् १९४५ में वाराणसी से प्रकाशित है। पुस्तक के अत में मीरा के १०८ पद संकलित हैं।

(२४) मीरां माधुरी : सन् १८४८ मे यह पुस्तक बनारस से बाबू ब्रजरत्न दास द्वारा प्रकाशित हुई है। ऐतिहासिक आधार पर लिखी गई इस पुस्तक मे अब तक प्राप्त सभी पद सग्रहो मे से अधिक सख्या मे पद सगृहीत है।

(२५) मीरा स्मृति ग्रथ : सन् १९४९ मे बगीय हिन्दी परिषद् कलकत्ता द्वारा प्रकाशित इस स्मृति ग्रथ मे ललिता प्रसाद सुकुल द्वारा निर्दिष्ट मीरा के १०३ पद सगृहीत है। यह डाकोर की प्रामाणिक प्रति के आधार पर सगृहीत मीरा के पदो का प्रामाणिक सग्रह है।

(२६) मीरा बृहद् पद सग्रह : श्रीमती पद्मावती शबनम् ने यह पद सग्रह सन् १९५२ मे लोक सेवक प्रकाशक, बनारस से प्रकाशित कराया। इसमे मीरा के नाम से प्रचलित और उपलब्ध सभवत सभी पदो को सकलित करने का प्रयत्न किया गया है। मीरा के कुल पदो की सख्या इस सग्रह मे ५९० है। विषय और भाषा के अनुसार सजाकर पदो को रखा गया है। इस ग्रथ की महत्वपूर्ण विशेषता पदो के विषय मे दी गई पाद टिप्पणिया है।

(२७) मीरा दर्शन : प्रोफेसर मुरलीधर श्रीवास्तव द्वारा सन् १९५६ मे प्रकाशित इस पुस्तक के अत मे प्रामाणिक पदावली शीर्षक के अन्तर्गत मीरा के १०३ पद सगृहीत है। ये पद मीरा स्मृति ग्रथ मे प्रकाशित प० ललिता प्रसाद सुकुल द्वारा निर्दिष्ट पद ही है।

(२८) मीरा सुधा सिन्धु : यह मीरा प्रकाशन समिति, भीलवाडा, राजस्थान के तत्त्वावधान मे स्वामी आनन्द स्वरूप द्वारा सकलित और सन् १९५७ मे प्रकाशित है। यह मीरा के पदो का सर्वाधिक बृहद् सग्रह है जिसमे मीरां से सबंधित १३१२ पद सकलित है।

(२९) भक्त मीरा : श्री व्यथित हृदय द्वारा सन् १९३३ ई० मे धर्म ग्रंथावली, दारागज, प्रयाग से प्रकाशित इस ग्रथ मे मीरा की जीवनी के साथ कुछ पद भी सगृहीत है।

(३०) सांग्स आफ मीराबाई आर० सी० टण्डन द्वारा प्रणीत इस ग्रथ मे मीराबाई के ५० पदो का अग्रेजी अनुवाद पद सूची और टिप्पणियो के साथ सगृहीत है। यह हिन्दी मदिर, इलाहाबाद मे १९३४ मे प्रकाशित है।

(३१) मीरा की पदावली : श्री सदानन्द भारती की इस पुस्तक में मीरा के आलोचनात्मक परिचय के अतिरिक्त शब्दार्थ के साथ कुछ पद भी सगृहीत है। यह एस० एस० मेहता ऐण्ड ब्रदर्स, बनारस सिटी से स० १९५२ वि० में प्रकाशित है।

(३३) मीरा : वामदेव शर्मा कृत सन्त कार्यालय, प्रयाग से सन् १९३६ में प्रकाशित इस पुस्तक मे मीरा की सक्षिप्त जीवनी के साथ टिप्पणी सहित कुछ पद भी संगृहीत है।

इनके अतिरिक्त भी वहु ा से ऐसे प्राचीन पद सग्रह है जिनमे मीरा अथवा उनके नाम से सबधित कुछ पद यत्र तत्र मिल जाते हैं। उस समस्त सामग्री का परिचय देना न सभव है, न समीचीन है। क्योकि मीरा के प्रामाणिक पदो के ऊपर उनसे कोई प्रकाग नही पडता।

सहायक ग्रंथ सूची

१	अरस्तु का काव्य-शास्त्र	डा० नगेन्द्र
२	उत्तरी भारत की सन्त परपरा	प० परशुराम चतुर्वेदी
३	उदयपुर राज्य का इतिहास	म० म० गौरीशकर हीराचंद ओझा
४	कवि वचन सुधा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
५	घनानन्द कवित्त	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
६	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	गोसाई गोकुलनाथ
७	भारतीय प्रतीक विद्या	डा० जनार्दन मिश्र
८	भक्त मीरा	व्यथित हृदय
९	भागवत भक्ति का स्वरूप	डा० मुन्शी राम शर्मा
१०	भागवत धर्म	हरिभाउ उपाध्याय
११	मिश्र वन्धु विनोद	मिश्रबन्धु
१२	मीरां वृहद् सग्रह	पद्मावती शवनम
१३	मीराबाई की शब्दावली	वेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग
१४	मीराबाई का जीवन चरित्र	मुँशी देवी प्रसाद
१५	मीरा स्मृति ग्रथ	वगीय हिन्दी परिषद्
१६	मीरा माधुरी	व्रजरत्न दास
१७	मीराबाई की पदावली	प० परशुराम चतुर्वेदी
१८	मीराबाई, सहजोबाई, दयाबाई, का पद्य सग्रह	वियोगी हरि
१९	मीरा मन्दाकिनी	नरोत्तमदास स्वामी
२०	मीरा दर्शन	मुरलीधर श्रीवास्तव
२१	मीराबाई का काव्य	मुरलीधर वास्तव
२२	मीरा पदावली	विष्णु कुमारी मजु
२३	मीरां एक अध्ययन	पद्मावती शवनम्
२४	मीरा जीवनी और काव्य	महावीर सिह गहलोत
२५	मीराबाई का जीवन चरित्र	कार्तिक प्रसाद खत्री
२६	मीरा की पदावली	सदानन्द भारती
२७	महिला मृदुवाणी	मुँशी देवी प्रसाद

२८	मीराबाई	डा० कृष्णलाल
२९	मीरा पदावली	ललिता प्रसाद सुकुल
३०	मीरा की प्रेम साधना	भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव"
३१	मीराबाई	डा० प्रभात
३२	मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिया	डा० सावित्री सिन्हा
३३	मध्यकालीन प्रेम साधना	पं० परशुराम चतुर्वेदी
३४	मध्यकालीन धर्म साधना	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
३५	मध्यकालीन हिन्दी काव्य की तान्त्रिक पृष्ठ—भूमि	विश्वंभर नाथ उपाध्याय
३६	महादेवी अभिनदन ग्रथ	संपादक मडल, प्रयाग
३७	मूल गोसाई चरित	वेणी माधव दास
३८	राजस्थान का पिगल साहित्य	डा० मोतीलाल मेनारिया
३९	राजपूताने का इतिहास (प्रथम भाग)	म० म० गौ० ही० ओझा
४०	रार्जाष अभिनदन ग्रथ	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
४१	विनय पत्रिका	गोस्वामी तुलसीदास
४२	व्रज भाषा	डा० धीरेन्द्र वर्मा
४३	व्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य मे अभिव्यंजना शिल्प	डा०सावित्री सिन्हा
४४	श्री गोस्वामी तुलसी दास	बा० शिवनन्द सहाय
४५	साहित्य का मर्म	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
४६	साहित्य जिज्ञासा	ललिता प्रसाद सुकुल
४७	शिवसिह सरोज	ठाकुर शिवसिह सेगर
४८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल
४९	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा
५०	हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में सगीत	डा० आशा गुप्त
५१	हिन्दी भाषा का इतिहास	डा० धीरेन्द्र वर्मा
५२	हिन्दी सन्त साहित्य	डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
५३	हिन्दी व्याकरण	कामताप्रसाद गुरु

तमिऴ् :

५४	आऴ्वार्कळ् काल निलै	मु० राघवय्यगार
५५	आरावमुदाऴ्वान् मगलाशासन पासुरगळ्	श्री श्रीनिवासराघवन
५६	आण्डाळ वरलारुम् नूलाराच्चियुम्	का सुब्रह्मण्य पिळ्ळै

५७ गोदास्तुतियुम् न्यास दसकमुम् (वेदान्तदेशिक कृत) सपादक : दुरैस्वामी अय्यगार

५८ गोदा स्तुति मधुर कवि श्रीनिवासय्यगार

५९ तमिल इलक्किय वरलारु ई० एम० वरदराजय्यर

६० तिरुप्पावै टीका काची प्र० भ० अण्णगराचार्य

६१ तिरुप्पावै श्री वै० मु० गोपाकृष्णमाचार्य

६२ तिरुप्पावैयुम् दिव्य देसगलुम् डी० रामस्वामी अय्यगार

६३ तिरुप्पावै व्याख्यानकळ मयिले मादवदासन पदिप्पु

६४ तिरुप्पावैयिल् तमिल इन्बम् डी० रामस्वामी अय्यगार

६५ तिरुप्पावै मालै सपादक तिरुमलै अय्यगार

६६ तिरुप्पावै विशेपार्थम् काची, प्र, भ० अण्णगराचार्य

६७ तिरुवाय् मोलि १ सपादक बी० के० रामानुजदासन

६८ तिरुवाय् मोलि २ सपादक बी० के० रामानुजदासन

६९ तिरुवाय् मोलि ३ सपादक बी० के० रामानुजदासन

७० तिरुवाय् मोलि ४ सपादक बी० के० रामानुजदासन

७१ नोत्तिरमालै तिरुवल्लिकेणि तमिल् सगम्

७२ द्रमिडोपनिषद् सार तात्पर्य रत्नावलि श्रीनिवासराघवन और वी अनन्ताचार्य

७३ दिव्यप्रबन्धम् (इयर्पा) सपादक एस० राजम् मरै सस्करण

७४ दिव्यप्रबन्धम् (पेरिय तिरुमोलि) संपादक एस० राजम्, मरै सस्करण

७५ दिव्य प्रबन्धम् रामस्वामी अय्यगार

७६ दिव्य सूरि सरितम् वगीपुरम् श्रीनिवासचारियर्

७७ दिव्य प्रबन्ध सारम् पी० श्री०, आनन्द विकटन कार्यालय, मद्रास

७८ नाच्चियार तिरुमोलि काञ्ची प्र० भ० अण्णगराचार्य

७९ निबन्ध सग्रह मु० राघवय्यगार

८० प्रथम हजार सपादक : पार्थसारथी अय्यगार

८१ परिपाडल

८२ पूंकोदै मालै तिरुवल्लिकेणि तमिल संगम्

८३ पेरियवाच्चान पिल्लै कृत नाच्चियार तिरुमोलि व्यानम् सपादक एस० कृष्ण स्वामी अय्यंगार

८४ मार्कलि नोन्बु एन० आर० कृष्णस्वामी अय्यंगार

८५	मीनाक्षीसुन्दरम् मणि विला मञर्	कलैक्कदिर् वेलियीडु, कोयमुत्तूर
८६	श्री सिद्धान्त त्रय सग्रह	श्रीनिवासराघवन
८७	शिलप्पदिकारम्	अडियाकुनल्लार
८८	श्री वैष्णवम्	आर रगनाद मुदलियार्
८९	श्री वैष्णवम्	डी० रामस्वामी अय्यगार
९०	श्री आण्डाळ मालै	तिरुवल्लिकेणि तमिल सगन्

संस्कृत :

९१	अभिनव भारती	गायकवाड सिरीज
९२	इशादिविशोत्तरशतोपनिषद. (महा नारायण उपनिषद्)	निर्णय सागर,
९३	कृत्य संग्रह	सपादित. स्वामी नारायणाचारी
९४	काव्य प्रकाश	भंडारकर, रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना
९५	तैत्तिरीय नारायणीय, कठोपनिषद् आदि	
९६	नारद भक्ति सूत्र	गीता प्रेस, गोरखपुर
९७	श्रीमद् भागवत	गीताप्रेस, गोरखपुर
९८	श्रीमद् भगवद्गीता	गीता प्रेस, गोरखपुर
९९	श्री न्याय सिद्धात	वेदातदेशिक कृत
१००	श्री भागवत भक्ति रसायनम्	मधुसूदन सरस्वती सपादित : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
१०१	शाण्डिल्य भक्ति सूत्र	गीता प्रेस, गोरखपुर
१०२	सुबालोपनिषद्	निर्णय सागर, खड, ६

पत्र–पत्रिकाएं

१ श्री नृसिह प्रिया
२ देशदूत
३ सरस्वती
४ वेदान्त दीपिका
५ प्रदीप
६ हिन्दुस्तानी
७ सरस्वती
८ परिषद् निबन्धावली
९ वीणा
१० राष्ट्र वाणी
११ सम्मेलन पत्रिका